ओ३म्

अष्टाध्यायीभाष्यम्

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्येण
दयानन्दसरस्वतीस्वामिना
प्रणीतम्

तत्रस्थः

चतुर्थोऽध्यायः

(तृतीयो भागः)

आर्यभाषानुवादकः

आचार्य-राजवीर-शास्त्री

सम्पादक :

विरजानन्द-दैवकरणिः

महर्षिदयानन्दसरस्वतीस्वामिना संस्थापितया
अजयमेरुनगरस्थया श्रीमत्या परोपकारिणीसभया
सञ्चालितेन वैदिकपुस्तकालयेन प्रकाशितम्

प्रकाशक :
वैदिक पुस्तकालय
केसरगंज, अजमेर (राज०)

दयानन्दाब्द: : १७३
विक्रमसंवत् : २०५४
सृष्टिसंवत् : १,९६,०८,५३,०९८

प्रथमं संस्करणम् : १०००

मूल्यम् : १२५/- १३०/-

अक्षरयोजक:
भगवती लेज़र प्रिंट्स
दिल्ली-६५. दूरभाष : ६४७४०६६

मुद्रक:
जैय्यद प्रैस
५२२८, बल्लीमारान, दिल्ली-६

के साथ मन बुद्धि को भी दुर्बल और पराधीन बना दिया और आज जब विश्व प्रगति कर रहा है हम प्रगति के स्थान पर अपनी धरोहर को भी प्रस्तुत करने में असमर्थता अनुभव कर रहे हैं। ऐसे समय में पाणिनि के महत्त्व को प्रस्तुत करने का एक प्रयास किया दण्डी स्वामी विरजानन्द सरस्वती ने। उन्होंने भट्टोजी दीक्षित को पढ़ा था, परन्तु ऋषिकेश में गङ्गा के किनारे किसी दक्षिणी पण्डित के मुख से अष्टाध्यायी का पाठ सुनकर इस चमत्कार का अनुभव किया और उसी दिन से अष्टाध्यायी के भक्त बन गये और अपनी पाठशाला में अष्टाध्यायी महाभाष्य परम्परा का सूत्रपात कर दिया। यहीं से उन्हें आर्ष और अनार्ष विज्ञान का बोध हुआ। वे आर्ष विद्या के प्रचारक-प्रसारक बन गये। उन्होंने पाणिनि परम्परा की उत्कृष्टता बताते हुए कहा—

अष्टाध्यायीमहाभाष्ये द्वे व्याकरणपुस्तके।
अतोन्यत् पुस्तकं यत्तु तत् सर्वं धूर्त्तचेष्टितम्॥

इस आर्ष-अनार्ष विवेक की कसौटी को अपने उत्तराधिकारी शिष्य स्वामी दयानन्द सरस्वती को उन्होंने दिया। इसी विवेक से स्वामीजी ने वर्त्तमान युग की क्रान्ति का सूत्रपात किया। जिस प्रकार धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में ऋषि दयानन्द ने अज्ञानान्धकार का निवारण कर समाज से पाखण्ड व कुरीतियों के निराकरण का सफल प्रयास किया। धर्मग्रन्थों के वास्तविक अर्थों का प्रकाशन करने हेतु प्रचलित अनार्ष परम्पराओं का तिरस्कार करके वेदों का भाष्य किया और उसे निरुक्त ब्राह्मण ग्रन्थ एवं वैदिक साहित्य से प्रमाणित किया। मध्यकाल के सायण महीधर आदि तथा उनके अनुयायी मैक्समूलर आदि पाश्चात्य विद्वानों के त्रुटि प्रमादपूर्ण वेदभाष्य का पाठकों को दिग्दर्शन कराया जिससे पढ़नेवाले के मन में आर्ष साहित्य के गौरव का मान हो सका, उसी भाँति व्याकरण के क्षेत्र में भी स्वामीजी ने अष्टाध्यायी भाष्य की रचना कर आधुनिक वैयाकरणों की भूलों को स्पष्ट किया तथा महाभाष्य के प्रमाण से पाणिनि के प्रौढ पाण्डित्य और ज्ञान की गहराई को प्रकाशित किया।

यह दुःख की बात है कि स्वामीजी महाराज वेदभाष्य की भाँति अपना अष्टाध्यायी भाष्य भी पूर्ण नहीं कर पाये। उनका किया प्रायः चार अध्याय पर्यन्त भाष्य हस्तलेखों में प्राप्य है जिसमें से तीन अध्याय तक का भाष्य सभा द्वारा प्रकाशित किया जाता रहा है। चतुर्थ अध्याय का भाष्य किसी कारणवश प्रकाशित नहीं हो सका था। सभा ने १९८३ में ऋषि दयानन्द बलिदान शताब्दी के समय इसका सम्पादन कराकर प्रकाशित कराने का निश्चय किया था, परन्तु इसमें भी अनपेक्षित विलम्ब हुआ। इस सबके बाद भी आज यह ग्रन्थरत्न प्रकाश में आ सका। इसके लिए हम ईश्वर का धन्यवाद करते हैं।

इस कार्य में जिन महानुभावों ने अपना सहयोग प्रदान किया उनके हम आभारी हैं। श्री राजवीरजी शास्त्री ने अनुवाद करने तथा श्री पं० विरजानन्दजी दैवकरणि ने सम्पादन, संशोधन व प्रकाशन में जो पुरुषार्थ किया है उसके बिना इस ग्रन्थ का इस समय प्रकाश में आना कठिन था।

सोनीपत निवासी कर्मठ ऋषिभक्त स्वर्गीय सत्यपालजी आर्य की प्रेरणा से इस ग्रन्थ के प्रकाशन का व्यय उठाना स्वर्गीय धर्मपालजी नांगिया ने स्वीकार किया था, परन्तु उनका आकस्मिक निधन हो गया। फिर भी उनके पुत्र ने इस कार्य हेतु बीस हज़ार रुपये का सहयोग प्रदान किया, वे धन्यवाद के पात्र हैं। सोनीपत के दोनों महानुभाव आज संसार में नहीं हैं, उनकी ऋषिभक्ति के लिए हम श्रद्धावनत हैं।

इस प्रकार ऋषि के ज्ञात लेखन में जो प्रकाशनीय था वह प्रकाशित हो गया है, यह हमारे लिए सन्तोष की बात है। सभी पाठकों द्वारा इस ग्रन्थ का भी वैसा ही स्वागत होगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

अजमेर
१ अक्तूबर १९९७ ई०

विद्वानों का अनुचर
गजानन्द आर्य
मन्त्री
परोपकारिणी सभा, अजमेर

ओ३म्
सम्पादकीय

ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेय इति। प्रधानञ्च षट्स्वङ्गेषु व्याकरणम्। प्रधाने च कृतो यत्नः फलवान् भवति।

निखिलशब्दशास्त्रनिष्णात महाप्राज्ञ महर्षि श्री पाणिनि मुनि कृत अष्टाध्यायी के दार्शनिक और विशेष व्याख्यान ग्रन्थ महर्षि पतञ्जलि विरचित महाभाष्य के उपर्युक्त उद्धरण से संस्कृतव्याकरणशास्त्र की महत्ता सुतरां सिद्ध है। वर्त्तमान उपलब्ध संस्कृतव्याकरण के ग्रन्थों में महर्षि पाणिनि मुनि विरचित अष्टाध्यायी सर्वश्रेष्ठ है। एक सहस्र श्लोक परिमाणात्मक (३९७७ सूत्रयुक्त) इस छोटे से ग्रन्थरत्न में संस्कृतसाहित्य का विशालतम शब्दभण्डार निहित करके दाक्षिपुत्र शालातुरीय महर्षि पाणिनि ने वस्तुतः महदाश्चर्य कर दिखाया है। व्याकरणशास्त्र में इसके समान, उत्तम अथवा उच्चकोटि की दूसरी रचना अभी तक नहीं हो सकी है। पाणिनिमुनि के पश्चाद्वर्त्ती वैयाकरणों ने व्याकरणविषय में जो कुछ लिखा, वह सब अष्टाध्यायी तथा इसके व्याख्याग्रन्थों को ही आधारभूत मानकर लिखा है। अष्टाध्यायी के निर्माण से (महाभारतयुद्ध के लगभग ३०० वर्ष पश्चात् से) लगभग ३५०० वर्ष पश्चात् तक आर्ष पद्धति से रचे इसी व्याकरणग्रन्थ का अध्ययनाध्यापन इस आर्यावर्त्त में प्रचलित रहा है। तदनन्तर कौमुदी, सारस्वत, चन्द्रिका, मुग्धबोध आदि प्रक्रिया प्रधान अनार्षग्रन्थों के अधिक प्रचार-प्रसार से अष्टाध्यायी का पठन-पाठन लुप्त प्रायः हो गया।

अनार्षग्रन्थों में पाणिनीय सूत्रों को तो अपनाया गया, किन्तु पाणिनीय सूत्रक्रमपद्धति का परित्याग कर दिया। इस प्रकार घोर परिश्रम के अनन्तर भी स्वल्प लाभ होने जैसे अनिष्ट को गहराई तक समझकर व्याकरण के सूर्य श्री ब्रह्मर्षि विरजानन्द जी दण्डी ने आर्ष परम्परा को पुनः जीवित रखने के लिये यावज्जीवन सुमहत्प्रयत्न किया और महर्षि दयानन्द सरस्वती जैसा एक दिव्य रत्न संसार में आर्षज्योति को प्रसारित करने के लिये प्रदान किया।

गुरुवर विरजानन्दजी दण्डी कहा करते थे—

अष्टाध्यायीमहाभाष्ये द्वे व्याकरणपुस्तके।
अतोऽन्यत्पुस्तकं यत्तु तत्सर्वं धूर्त्तचेष्टितम्॥

अपने गुरु की भाँति महर्षि दयानन्द सरस्वती ने भी आर्षग्रन्थों को श्रेष्ठ तथा अनार्षग्रन्थों को आर्यावर्त्त के लिये घातक समझकर लिखा था—

.........जितने महाभारतयुद्ध के पीछे टीका वा ग्रन्थ बने हैं, वे विद्याहीन मिथ्या सम्प्रदाय में फस के भ्रान्त पुरुषों ने रचे हैं, इससे उनको पढ़ने-पढ़ाने से पुरुष भी वैसे ही होते हैं, क्योंकि जैसा ग्रन्थ पढ़े वा पढ़ावेगा, वैसे ही संस्कार उसके,

बुद्धि में होंगे। इससे ऋषि-मुनियों के रचित मूल, भाष्य और टीकाओं के विना पढ़ने वा पढ़ाने से वेदों का सत्य-सत्य अर्थ और सत्यासत्य का कभी यथावत् बोध नहीं होगा। ....इससे इनको अवश्य सब मनुष्यों को पढ़ना चाहिये और जिन (अनार्षग्रन्थों) को दूर छोड़ने [के लिये] कहा इनको न पढ़ें, न पढ़ावें, न इनको देखें। क्योंकि इनको देखने से वा सुनने से मनुष्य की बुद्धि बिगड़ जाती है। इससे इन ग्रन्थों को संसार में रहने भी न दें तो बहुत उपकार होय।

—सत्यार्थप्रकाश स्वमन्तव्यामन्तव्य, १८७५ ईसवी

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने इसी आर्ष परम्परा की सुरक्षा के लिये संस्कृतभाषा के मूलग्रन्थ अष्टाध्यायी का सुबोध भाष्य लिखा था, उसीका यह चतुर्थ अध्याय आपके हाथों में है।

परोपकारिणी सभा का स्तुत्य कार्य

महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा (अजमेर) के संग्रह में महर्षि के प्राय: सभी ग्रन्थों की मूलप्रतियाँ सुरक्षित हैं। इन सभी पाण्डुलिपियों का कागज कालवशात् अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण हो जाने से इन ग्रन्थों की सुरक्षा की समस्या उत्पन्न होगयी थी। इसलिये सभा के अधिकारियों की इच्छानुसार भारत सरकार के 'राष्ट्रीय अभिलेखाकार' तथा 'राष्ट्रीय संग्रहालय' नई दिल्ली के अधिकारियों से मिलकर मैंने महर्षि दयानन्द सरस्वती के अधिकतर हस्तलेख आधुनिकतम प्रणाली के अनुसार सुरक्षित करवा दिये हैं। इससे ये ग्रन्थ आगामी दो सौ वर्षों तक के लिये पूर्ण सुरक्षित हो गये हैं। इन्हीं ग्रन्थों में अष्टाध्यायीभाष्य भी सम्मिलित है उसीके एक खण्ड में यह चौथा अध्याय १३१ पृष्ठों में लिखा हुआ है। इन ग्रन्थों के सुरक्षाकार्य हेतु भारत की तत्कालीन शिक्षा राज्यमन्त्री कुमारी शैलजा का योगदान अविस्मरणीय रहेगा। पहले इसी कार्य का कुछ भाग प्रो० शेरसिंह शिक्षा राज्यमन्त्री भारत सरकार के सहयोग से भी सुरक्षित हुआ था। अवशिष्ट पाण्डुलिपियों का सुरक्षाकार्य आजकल 'राष्ट्रीय अभिलेखाकार' की जयपुर शाखा द्वारा किया जा रहा है।

एक निवेदन

परोपकारिणी सभा के अधिकारियों से एक निवेदन यह है कि जहाँ सभा ने महर्षिकृत अष्टाध्यायीभाष्य प्रकाशित करके एक सराहनीय कार्य किया है, वहीं दण्डी स्वामी श्री विरजानन्दजी कृत व्याकरणग्रन्थ शब्दबोध, पाणिनीय सूत्रार्थप्रकाश और वाक्यमीमांसा का भी प्रकाशन कर देना चाहिये। इनमें से शब्दबोध नामक ग्रन्थ अलवर म्यूजियम में ३३३४ संख्या पर विद्यमान है। शेष दोनों ग्रन्थ कविरत्न अखिलानन्द शर्मा के अनुज श्री सुबोधचन्द्र शर्मा अनूपशहर (बुलन्दशहर उ० प्र०) के संग्रह में हैं। वहाँ से प्राप्त कर लेने चाहिए। ऐतिहासिक दृष्टि से भी इन ग्रन्थों का प्रकाशन अत्यन्त आवश्यक है। इस कार्य में विलम्ब करना अशोभनीय है। प्रस्तुत अष्टाध्यायीभाष्य के प्रकाशन में भी अक्षम्य विलम्ब हो चुका है।

आर्षगुरुकुलों के लिये सुझाव

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने आर्षप्रणाली का पुनरुद्धार करने के लिये अथक प्रयास किया था। उसे सतत चालू रखने के लिये कुछ गुरुकुलों में यथाशक्ति प्रयत्न हो रहा है, परन्तु वहाँ भी महाभाष्य का पठन-पाठन लुप्तप्रायः होता जा रहा है। गुरुकुलों के आचार्यजनों को इस विषय में गम्भीरता से विचार करना चाहिये। अन्यथा पुराकाल की भाँति महाभाष्य का चतुर्थ वार पुनरुद्धार करना पड़ जायेगा। क्योंकि आज भी महाभाष्य को पढानेवाले पण्डित अङ्गुलियों पर गिनने योग्य ही रह गये हैं।

राज्य की ओर से मिलनेवाली आजीविका प्राप्ति की सुविधा तथा मान्यताप्राप्ति हेतु आर्षपाठविधि के साथ-साथ अन्य ग्रन्थों को भी पाठ्यक्रम में स्थान देना पड़ रहा है। इस विधि से हमारे छात्र योग्यता और ज्ञान की दृष्टि से खोखले होते जा रहे हैं। इस पीड़ा को गुरुकुलों के पुराने स्नातक अनुभव करते देखे गये हैं। इस प्रकार तो पूरी आर्षपद्धति की रक्षा होनी असम्भव है। परीक्षा उत्तीर्ण करने की दृष्टि से आधे-अधूरे ग्रन्थ को पढ़ लेना आर्षग्रन्थों के साथ न्याय नहीं कहलाता। आर्षग्रन्थों की रक्षा के लिए तो पूरा शास्त्र पढना-पढाना और पाठविधि में भी पूरा ही ग्रन्थ लगाना चाहिए। इसलिए इस विषय में भी चिन्तन करने की आवश्यकता है।

गुरुकुलों की अपनी पुरानी पाठविधि और वर्त्तमान में प्रचलित गुरुकुलीय पाठ्यक्रम की तुलना से भी दोनों का अन्तर स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि हम शनैः-शनैः ऋषिनिर्दिष्ट पाठ्यप्रणाली से कितने दूर होते जा रहे हैं।

महर्षि जी ने अष्टाध्यायी की द्वितीयावृत्ति पढ़ने के लिये काशिकादि किसी ग्रन्थविशेष का नाम नहीं लिखा। वे काशिका आदि के दोषों से सुपरिचित थे, अतः उसे पढ़ने-पढ़ाने के लिये कहना अनार्षग्रन्थों की पुष्टि करना हो जाता। इसीलिये उन्होंने काशिका के स्थानापन्न इस अष्टाध्यायीभाष्य का प्रणयन किया। अतः आर्षगुरुकुलों में काशिका के स्थान पर इसी भाष्य को पढ़ाया जाना चाहिये। तभी हम ऋषि ऋण से अनृण हो सकेंगे।

सम्पादन कार्य

अप्रैल १९९७ से परोपकारिणी सभा के प्रधान श्रद्धेय श्री स्वामी सर्वानन्दजी महाराज, मन्त्री श्री गजानन्दजी आर्य और संयुक्त मन्त्री श्री प्रो० धर्मवीरजी आदि ने सभा की ओर से चारों वेद मूल, अष्टाध्यायीभाष्य, निरुक्त, पारिभाषिक और वेदभाष्य आदि ग्रन्थों का सम्पादन कार्य सौंपकर मेरा गौरव बढ़ाया है।

प्रस्तुत भाष्य का हिन्दी भाषारूपान्तर श्री पं० राजवीरजी शास्त्री ने किया है। ये मेरे संस्कृत विद्यागुरु रह चुके हैं। इनके ग्रन्थ का सम्पादन करना मेरे लिये हर्ष का विषय है।

इस भाष्य के सम्पादन करने में निम्नलिखित बातों का विशेष ध्यान रक्खा

गया है—

१. इस अष्टाध्यायीभाष्य में महर्षि दयानन्दजी के लिखे मूलभाग को यथावत् सुरक्षित रक्खा गया है।

२. महर्षिजी के सभी ग्रन्थ और पत्रादि का लेखन कार्य प्राय: लेखक लोग किया करते थे। लिखते समय असावधानी से सामान्य त्रुटि रह जाना स्वाभाविक है, ऐसी सामान्य अशुद्धियाँ ठीक कर दी गई हैं।

३. मूल संस्कृतभाष्य में प्रमाण और उदाहरण स्वरूप दिये गये सूत्रों के पते नहीं लिखे हैं, उनके पते अनुवाद करते समय कोष्ठक में दे दिये हैं।

४. च, वा, न, विभाषा, अन्यतरस्याम् और गच्छति, करोति, तिष्ठति आदि पदों को पदपाठ में अव्ययपद वा क्रियापद नहीं लिखा। इन सबके आगे कोष्ठक-[ ]-में अव्ययपद अथवा क्रियापद यथावसर लिख दिया है।

५. कुछ आवश्यक स्थानों पर टिप्पणियाँ भी दे दी गई हैं।

६. अनुवादक महोदय ने छात्रों की सुविधा हेतु कहीं-कहीं सन्धिकार्य में शैथिल्य भी कर दिया है।

७. इस भाष्य को शुद्धतम प्रकाशित करने का पूरा प्रयास किया गया है, पुनरपि अनवधानतावश कोई त्रुटि रह गई हो तो जानने-जनाने पर उसका संशोधन कर दिया जायेगा।

अष्टाध्यायी के इस भाष्य तथा उपर्युक्त वेद आदि सभी ग्रन्थों के सम्पादनादि कार्यकाल में श्री वैद्य सुकर्मपालजी आर्य, नयागांव (झज्जर) तथा इनके पूरे परिवार ने अत्यन्त निस्स्वार्थ आत्मीयता से भोजनाच्छादन, आवास आदि की पूर्ण सुविधा प्रदान करके मुझे सर्वथा निश्चिन्त किया हुआ है। लगभग इसी प्रकार का साहाय्य श्री आचार्य हरिदेवजी गुरुकुल गौतमनगर, दिल्ली ने भी दे रक्खा है। इसीलिये यह गुरुतर कार्य निर्विघ्न सम्पन्न हो रहा है, एतदर्थ मैं इनका हृदय से कृतज्ञ हूँ।

नयागांव, झज्जर (हरयाणा)
श्रावणी २०५४ विक्रमसंवत्

सम्पादक
—विरजानन्द दैवकरणि

भूमिका

महर्षि दयानन्द की निर्वाण शताब्दी के शुभ अवसर पर समस्त आर्यजगत् में महर्षि दयानन्द के अलौकिक कार्यों के प्रति जो अगाध श्रद्धा, स्नेह, उत्साह एवं आस्था की प्रबल-उमङ्गों की तरङ्गें आन्दोलित हुई, उनसे अदृश्य, जनमानस से विस्मृत प्राय तल स्थानीय अनेक बातें भी ऊपर उमड़कर आईं। उनमें महर्षि दयानन्द कृत अष्टाध्यायी के चतुर्थाध्याय का यह भाष्य भी ऋषि के अनन्य-भक्तों के समक्ष आया, जिसे देखकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि क्या महर्षि का लिखा यह ग्रन्थ महर्षि के निधन के सौ वर्ष बाद भी नहीं छप सका! और अब भी यदि स्वनाम धन्य, आर्षग्रन्थों के अनन्य-भक्त तथा महर्षि दयानन्द के परम दिवाने गुरुवर श्री स्वामी ओमानन्दजी सरस्वती इस ग्रन्थ के प्रति ध्यान नहीं देते, तो यह ग्रन्थ न जाने कितने समय तक अप्रकाशित ही पड़ा रहता। यथार्थ में जो जिसके गुणों का पारखी होता है, वही उसका मूल्य समझता है। हीरों की परख कोई विरला जौहरी ही कर पाता है। परोपकारिणी सभा के अधिकारियों ने जहाँ महर्षि दयानन्द की धरोहर को न केवल सुरक्षित ही रक्खा, प्रत्युत उसका प्रचार व प्रसार सतत उद्यम से किया, एतदर्थ हार्दिक धन्यवाद के योग्य है।

पूज्य स्वामीजी ने इस अमूल्य धरोहर को जब संपादन एवं हिन्दीभाष्य करने के लिये मुझे सौंपा, तो मैंने अपना परम सौभाग्य समझकर इसे सहर्ष स्वीकार किया। यद्यपि आर्षसाहित्य-प्रचार ट्रस्ट के कार्याधिक्य के कारण समय का अभाव ही था, पुनरपि मैं इसे अपना कर्त्तव्य समझकर विघ्न बाधाओं की उपेक्षा करते हुए अतीव श्रद्धाभाव से सम्पन्न कर पाया, एतदर्थ सर्वेश्वर परम दयालु जगदीश्वर का कोटि-कोटि धन्यवाद करता हूँ।

महर्षिकृत अष्टाध्यायीभाष्य के प्रमाण—महर्षि निर्वाण के सौ वर्ष बाद प्रकाशित इस ग्रन्थ के विषय में पाठकों के मन में यह सन्देह होना स्वाभाविक ही है कि इस ग्रन्थ को महर्षिकृत कैसे माना जाये? यद्यपि महर्षि दयानन्द के वेद-भाष्य तथा सत्यार्थप्रकाश के द्वितीय संस्करण को छोड़कर समस्त ग्रन्थों का प्रकाशन महर्षि के जीवनकाल में ही हुआ है, और वेद-भाष्य तथा सत्यार्थप्रकाश भी निर्वणोत्तर कुछ वर्षों के अन्तराल से ही प्रकाशित होकर जनता के हस्तगत हो गये थे। अत: किसी को किसी प्रकार की आशङ्का का कोई अवसर नहीं मिला, परन्तु निर्वाणोत्तर एक शताब्दी का समय थोड़ा नहीं होता, अत: पाठकों के सन्देहनिवारण के लिये प्रामाणिक बाह्य तथा आन्तरिक साक्षी के कतिपय उद्धरण यहाँ दिये जाते हैं—

(क) सं० १९३५ वि० के वैशाख मास में प्रकाशित ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका के अन्तिम (१५-१६ वें) अङ्क के अन्त में निम्नलिखित विज्ञापन-पत्र छपा—

''आगे यह विचार किया जाता है कि संस्कृत विद्या की उन्नति करनी चाहिये,

सो विना व्याकरण के नहीं हो सकती। जो आजकल कौमुदी, चन्द्रिका, सारस्वत, मुग्धबोध और आशुबोध आदि ग्रन्थ प्रचलित हैं, इनसे न तो ठीक ठीक बोध और न वैदिक विषय का ज्ञान यथावत् होता है। वेद और प्राचीन आर्षग्रन्थों के ज्ञान से विना किसीको संस्कृत विद्या का यथार्थ फल नहीं हो सकता और इसके विना मनुष्य जन्म का साफल्य होना दुर्घट है। इसलिये जो सनातन प्रतिष्ठित अष्टाध्यायी, महाभाष्य नामक व्याकरण है, उसमें अष्टाध्यायी [की] सुगम संस्कृत और आर्यभाषा में वृत्ति बनाने की इच्छा है।''

(ख) इसी विषय में आर्यसमाज दानापुर (संयुक्त प्रान्त) के मन्त्री थे बाबू माधोलाल को भी महर्षि दयानन्द ने कई पत्र लिखे थे, उनमें से कतिपय उपलब्ध पत्र देखिये—

(१) बाबू माधवलाल जी! आनन्द रहो। विदित है कि चिट्ठी आपकी आई। बहुत हर्ष हुआ। आप पाणिनीय अष्टाध्यायीभाष्य के ग्राहकों का सूचीपत्र बनाकर भेज दीजिये, क्योंकि जो इसमें खर्च होगा, वह तो आपको ज्ञात ही होगा। १००० ग्राहक जब हो जाएँगे, तब आरम्भ करेंगे। सब सभासदों को नमस्ते।

—(२५ जुलाई १८७८ ई०, रुड़की सहारनपुर)

(२) ''अब ग्राहक अष्टाध्यायी के भेज दो, क्योंकि अब तैयार होने लगी है।'' —(९ अगस्त, १८७८ ई०, रुड़की सहारनपुर)

(३) ''अष्टाध्यायी की वृत्ति बनने का आरम्भ हो गया है।''

—(१५ अगस्त, १८७८ ई०, रुड़की, सहारनपुर)

(४) ''अष्टाध्यायी के अभी तक पर्याप्त संख्या में ग्राहक नहीं हुए हैं। इसके चार अध्याय अभी तैयार हुए हैं। काम सर्वथा भले प्रकार चल रहा है। यद्यपि कोई कॉपी आजतक यन्त्रालय में से नहीं निकली।'' (२४ अप्रैल १८७९ ई०)

(श्री पं० युधिष्ठिर मीमांसक द्वारा लिखित 'ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास' नामक पुस्तक के पृ० १७१-७२ से)

(ग) अमर-हुतात्मा श्री पं० लेखरामजी द्वारा संगृहीत महर्षि दयानन्द के जीवन-चरित्र के ९३९ पृ० पर निम्नलिखित लेख भी उपर्युक्त बात का साक्षी है—

''वेदाङ्ग-प्रकाश के सन्धिविषय में महर्षि का यह लेख है—'यह अठ्ठारह प्रयोजन यहाँ संक्षेप से लिखे हैं, किन्तु इनको प्रमाण और विस्तारपूर्वक अष्टाध्यायी की भूमिका में लिखेंगे।' इस लेख के सङ्केत को लेकर हम अनुमान करते हैं कि महर्षि ने वेदाङ्ग प्रकाश के अतिरिक्त अष्टाध्यायी का भाष्य भी रचा होगा। यही नहीं हमारा अनुमान ही यह नहीं कह रहा है, प्रत्युत निम्नलिखित लेख इस बात की निर्भ्रान्ति पुष्टि करता है कि वे अष्टाध्यायी का भाष्य सम्पूर्ण छोड़ गये हैं—

''स्वामी दयानन्द सरस्वती कृत अष्टाध्यायी की टीका धरी हुई है। संस्कृत

और भाषा टीका सहित छपाई जावे।''

(वैदिक यन्त्रालय द्वारा सं० १९४६ में प्रकाशित ऋग्वेदभाष्य के ११४,११५वें अङ्कों के संयुक्त अङ्क के अन्त में प्रकाशित विज्ञापन से)

महर्षि कृत अष्टाध्यायी की टीका की जितनी आवश्यकता है, उसको संसार जानता है। ऐसे अपूर्व और परमोपयोगी ग्रन्थ का आजतक न छपना हमको विस्मित कर रहा है।

(घ) ऋग्वेदभाष्य १५,१८ तथा यजुर्वेदभाष्य अङ्क १५ (सं० १९३७) और 'सत्यधर्मविचार' नामक पुस्तक (सं० १९३७) में निम्नलिखित विज्ञापन भी विशेषरूपेण द्रष्टव्य है—

'अष्टाध्यायी—यह पुस्तक अलग भी संस्कृतवृत्ति सहित छपेगा।'

महर्षि ने कितना अष्टाध्यायीभाष्य लिखा—

महर्षि दयानन्द के उपर्युक्त पत्रों तथा विज्ञापनों से स्पष्ट है कि महर्षि दयानन्द ने अष्टाध्यायी का भाष्य अवश्य किया था। एक सहस्र ग्राहक बन जाने पर उनका प्रकाशन करने का भी पूर्ण निश्चय था, किन्तु ग्राहकों की संख्या पर्याप्त न होने तथा अन्य कार्यों में व्यस्त होने के कारण महर्षि की इच्छापूर्ण न हो सकी। महर्षि ने अष्टाध्यायी का भाष्य कितना किया था। यह भी एक विचारणीय प्रश्न है। महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों के सप्रमाण इतिहास के लेखक तथा चिरकाल तक अजमेर में रहकर महर्षि के हस्तलेखों का भी अनुशीलन करनेवाले श्री पं० युधिष्ठिरजी मीमांसक का लेख इस विषय में तथ्यपूर्ण होने से यहाँ दिया जाता है—

''अष्टाध्यायीभाष्य की परोपकारिणी-सभा अजमेर के संग्रह में जो हस्तलिखित प्रति विद्यमान है, उसको हम चार विभागों में बाँट सकते हैं। यथा—(१) प्रारम्भ से तृतीयाध्याय के प्रथम पाद के चालीसवें सूत्र तक। इस भाग में संस्कृतभाष्य का भाषानुवाद भी है और पृ० १।११९ तक (अ० १ पा० २ सूत्र ७१ तक) कहीं कहीं लाल स्याही से संशोधन भी है, परन्तु यह संशोधन स्वामीजी के हाथ का नहीं है। इसके आगे संशोधन का सर्वथा अभाव है। इस भाग में पृ० १२० से २२३ तक १०३ पृ० लुप्त हैं। इन पृष्ठों में प्रथमाध्याय के ३-४ पाद का भाष्य था।

(२) अ० ३। पा० १ सूत्र ४१ से चतुर्थ अध्याय के अन्ततक। इस भाग में भाषानुवाद नहीं है। भाषानुवाद के लिये सामने का पृष्ठ खाली छोड़ रखा है। संशोधन किञ्चिन्मात्र नहीं है। आरम्भ से लेकर यहाँ तक के संस्कृत भाग की लेखन शैली अच्छी है। कहीं कहीं लेख अत्यन्त प्रौढ है।

(३) पञ्चमाध्याय के आरम्भ से षष्ठाध्याय के चतुर्थ पाद के १६३ सूत्र पर्यन्त। इस भाग में न भाषानुवाद ही है और न ही संशोधन। पूर्व की अपेक्षा इसकी रचना शैली भिन्न है और संस्कृत भाष्य का लेख अत्यन्त साधारण है। प्रायः तीन चौथाई भाग काशिका की प्रतिलिपि मात्र है।

इन तीनों भागों का कागज प्राय: एक जैसा है। इस तरह का कागज कहीं कहीं वेदभाष्य के हस्तलेखों में भी प्रयुक्त हुआ है।

(४) अ० ६ पा० ४ सू० १६४ से लेकर सप्तमाध्याय के द्वितीयपाद के दो तिहाई भाग पर्यन्त। इस भाग की रचनाशैली पहिली से सर्वथा निराली है। इसकी लेखनशैली व्याकरण के नव्यग्रन्थों की लेखनशैली से मिलती है......

मैंने आचार्यवर श्री पं० ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु के साथ अष्टाध्यायीभाष्य के तृतीय और चतुर्थ अध्याय का सम्पादन कार्य किया है। अत: इस भाष्य से भली-भाँति सुपरिचित होने के कारण मैं दृढतापूर्वक कह सकता हूँ कि यह भाष्य चतुर्थाध्याय पर्यन्त ऋषि का बनाया हुआ निश्चित है, क्योंकि इन अध्यायों में कई स्थल इतने प्रौढ और गम्भीर है कि व्याकरण के बड़े पण्डित भी उसमें चक्कर खा सकते हैं।

इस ग्रन्थ के सम्पादन काल में हमें किसी किसी बात के विचारने में कई कई दिन लग गये थे। ऋषि के वेदभाष्य में जिस प्रकार व्याकरण सम्बन्धी अनेक अभूतपूर्व लेख मिलते हैं, वैसे ही इस अष्टाध्यायीभाष्य में भी चतुर्थाध्याय पर्यन्त उपलब्ध होते हैं। इस प्रकार के प्रौढ लेख महर्षि के विना और किसीके नहीं हो सकते। ('ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास' पृ० १६६-१६८)

अष्टाध्यायीभाष्य के दो भाग इससे पूर्व प्रकाशित हो चुके हैं। उनमें प्रथमभाग में अष्टाध्यायी के प्रथम तथा द्वितीय अध्यायों का भाष्य है। इस भाग में प्रथमाध्याय के ३-४ पादों का भाष्य नहीं। पता नहीं, इन दो पादों का भाष्य किसके प्रमाद के कारण आर्यजनता को नहीं मिल सका और द्वितीयभाग में तृतीयाध्याय का भाष्य है। ये दोनों भाग भी महर्षि को निर्वाण के ४६ वर्ष के बाद सन् १९२७ में परोपकारिणी-सभा ने प्रकाशित किये हैं। उस समय भी यह प्रश्न उत्पन्न हुआ था कि इस भाष्य के महर्षिकृत होने में किसीको कोई शङ्का पैदा न हो, इसलिये प्रथमभाग की भूमिका में श्री डॉ० रघुवीरजी 'एम०ए०' ने अनेक विज्ञापनों व पत्रों की साक्षियाँ प्रस्तुत करके इस शङ्का का उत्तम ढङ्ग से समाधान किया है, और साथ ही महर्षि के दूसरे लेखों से इस भाष्य की तुलना करके भी यही सिद्ध किया है कि इस प्रौढ़शैली में लिखे अष्टाध्यायी का भाष्य महर्षि से भिन्न व्यक्ति का कभी नहीं हो सकता है। अत: प्रथमभाग के तुलनात्मक लेख तथा प्रमाणभाग भी इस विषय में अवश्य द्रष्टव्य हैं।

महर्षि दयानन्द के भाष्य की विशेषताएँ—

महर्षि दयानन्द ने यद्यपि मनुष्य-मात्र के कल्याण के लिये ही अपना समस्त जीवन समर्पित किया था और मानव की वैयक्तिक, सामाजिक तथां राष्ट्रिय स्तर की समस्त बुराइयों को दूर कर सत्य-ज्ञान का प्रकाश फैलाया था, किन्तु उनको सर्वाधिक श्रेय बात का है कि उन्होंने सत्य-ज्ञान के लुप्त-प्राय: निर्भ्रान्त वैदिक ज्योति पर आच्छन्न, काल्पनिक एवं मिथ्याज्ञान की घोर-घटाओं को छिन्न-भिन्न

करके वेदज्ञान और वेदों को जानने के साधन प्राचीन आर्षज्ञान के ग्रन्थों को जन समान्य के समक्ष प्रस्तुत करके उनके गौरव को अक्षुण्ण रखने का भगीरथ प्रयास किया। जिन अनार्षग्रन्थों ने मानव की बुद्धि को इतना कुण्ठित कर दिया था कि वह सत्यासत्य के निर्णय करने की प्रतिभा को न के केवल खो बैठा था, प्रत्युत अन्धविश्वासों की वीथिकाओं में भटकने को ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ बैठा था। उन ग्रन्थों से, जिनका पढना ऐसा ही था, जैसे पहाड़ खोदना, किन्तु लाभ कुछ भी न होना था; मानव को मुक्ति दिलाकर उस पावन आर्षज्ञान की शिक्षा को प्राप्त कराया, जिसमें गोता लगाना मानो बहुमूल्य मोतियों को प्राप्त करने के समान है।

महर्षि ने वेदों के सत्यार्थ को जानने के लिये वेदाङ्ग, उपाङ्ग तथा ब्राह्मणग्रन्थों को पढ़ना परमावश्यक माना है और वेदाङ्गों में भी व्याकरण की प्रधानता शरीर में मुख की भाँति मानी है। महर्षि पतञ्जलि के 'प्रधानं षडङ्गेषु व्याकरणम्।' **'रक्षार्थं वेदानामध्येयं व्याकरणम्।'** (महाभाष्य) इन वचनों की यथार्थता को महर्षि दयानन्द ने ही परखा था। महर्षि के गुरुवर ब्रह्मर्षि विरजानन्दजी भी व्याकरण के अनार्षग्रन्थों के प्रति इसीलिये छात्रों में अश्रद्धा उत्पन्न किया करते थे कि इन ग्रन्थों ने व्याकरणादि का वेदाङ्गत्व ही नष्ट कर दिया था और लघु-उपाय से शब्दों को जानने के साधन व्याकरण को अतीव क्लिष्ट बना दिया था। इसीलिये महर्षि की यह प्रबल इच्छा थी कि वेदभाष्य के साथ साथ व्याकरणादि वेदाङ्गों की भी सत्य एवं सरल व्याख्यायें प्रकाशित कराई जायें। इसी उद्देश्य से उन्होंने अष्टाध्यायी का भाष्य संस्कृत तथा आर्यभाषा में छपवाने के लिये यह विज्ञापन (सं० १९३६ में यजुर्वेदभाष्य के १५वें अङ्क में) प्रकाशित करवाया था—'अब उन्होंने आर्यसमाजों के कहने से व्याकरण आदि.....को भी अति सुलभ आर्यभाषा में प्रकाश करने का प्रारम्भ किया है।'

प्रस्तुत अष्टाध्यायी के चतुर्थाध्याय के भाष्य में भी महर्षि ने स्थान स्थान पर जो विशेष सूत्रार्थ, अनार्षग्रन्थों की महाभाष्य के आश्रय से समीक्षा और वेदार्थ में परम सहायक वैदिक नियमों की विशेष व्याख्या की है, उनसे जहाँ अनेक भ्रान्तियों का निराकरण होता है, वहाँ पाश्चात्य विद्वानों तथा उनके अन्धभक्तों द्वारा जो वेदों पर इतिहास आदि विषयक मिथ्या आक्षेप किये गये हैं, उनका सरल तथा निर्भ्रान्त समाधान भी स्वतः ही मिल जाता है। पाठकों के लाभार्थ महर्षि की कतिपय विशिष्ट व्याख्याओं का यहाँ दिग्दर्शन कराया जाता है—

(१) व्याकरण वेद का मुख्य अङ्ग है। जैसे वैदिक शब्द रूढ़ अर्थों को न बताकर यौगिक प्रक्रिया से अर्थों के बोधक होते हैं, वैसे ही वैदिक व्याकरण में भी रूढ़-अर्थों का ग्रहण करना अनुचित है। यद्यपि व्याकरण का प्रयोजन— "नैगम-रूढ़ि भवं हि सुसाधु" के अनुसार लौकिक तथा वैदिक उभयविध शब्दों का साधुत्व बताना है। पुनरपि लोक तथा वेद, दोनों के लिये अथवा वेद के ही लिये जो विशिष्ट नियम हैं, उनमें लोकरूढ़ अर्थों का करना बहुत ही अनर्थ

का कारण बन जाता है। जैसे—तस्यापत्यम् (अ० ४।१।९२) सूत्र में 'अपत्यम्' शब्द का सन्तान अर्थ ही पठन-पाठन में व्यवहार में आता है। जैसे—उपगोरपत्यम् औपगव:। उपगु का पुत्र औपगव कहलाता है। इस लोक प्रसिद्ध अर्थ को पढ़ने के पश्चात् जब वेद में ऐसे शब्दों का अर्थ सन्तानपरक किया जाता है, तो इतिहास की भ्रान्ति स्वत: ही होने लगती है। जैसे—उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठ: (ऋ० ७।३३।११) यहाँ मित्रावरुण से उत्पन्न वसिष्ठ की भ्रान्ति होती है। इसी प्रकार—मनोरपत्यं मानव:। अदितेरपत्यमादित्य:। इत्यादि में भी भ्रान्ति होती है कि अदिति का अपत्य सूर्य कैसे सम्भव है? तथा—द्वयोर्मात्रोरपत्यं द्वैमातुर:, षाण्मातुर:, अर्थात् दो अथवा छह माताओं का अपत्य (सन्तान) कैसे सम्भव है! क्या व्याकरण से इस प्रकार के शब्दों का साधुत्व आकाश-पुष्प की भाँति निरर्थक ही है। इस भ्रान्ति का निराकरण महर्षि ने कितने उत्तम प्रकार से किया है—

'**अपत्यमित्युत्पन्नस्य कार्यस्य ग्रहणम्॥**' (४।१।९२) अर्थात् 'अपत्यम्' शब्द यहाँ सन्तान का वाची नहीं है अपितु उत्पन्न कार्य का ग्राहक है। जो वस्तु जिस कारण से उत्पन्न होती है, वह कार्य अपत्य कहलाता है और इस अर्थ की सङ्गति जड़-चेतन समस्त पदार्थों में हो जाती है तथा उपर्युक्त भ्रान्तियों का निराकरण भी हो जाता है। सूर्य से दिन प्रकट होता है अत: वह सूर्य का अपत्य है। जिस वस्तु के दो अथवा उससे अधिक कारण हों, वह 'द्वैमातुर: षाण्मातुर:' इत्यादि कहलायेगा। इसी कार्य-कारणभाव को न समझकर और लोक प्रसिद्ध अर्थों का आश्रय करके जब वेदों के अर्थ किये जाने लगे, तो कैसे कैसे अनर्थ हुए, इसका भी एक उदाहरण द्रष्टव्य है। (ऋ० ३।३१।१) में एक मन्त्र है—

पिता यत्र दुहितु: सेकमृञ्जन्०॥

इसका लौकिक अर्थ यह होगा—पिता अपनी पुत्री में वीर्यस्थापन करता है। ऐसे अर्थों को देखकर कौन व्यक्ति वेदों पर आस्था तथा श्रद्धा कर सकता है? महर्षि दयानन्द ने ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका में इसका सत्यार्थ दिखाते हुए लिखा है—

"यहाँ प्रजापति कहते हैं सूर्य को, जिसकी दो कन्या एक प्रकाश और दूसरी उषा, क्योंकि जो जिससे उत्पन्न होता है, वह उसका ही सन्तान कहाता है। इसलिये उषा.....सूर्य की किरण से उत्पन्न होने के कारण उसकी कन्या कहाती है। उनमें से उषा के सम्मुख जो प्रथम सूर्य की किरण जाके पड़ती है, वही वीर्यस्थापन के समान है। उन दोनों के समागम से पुत्र अर्थात् दिवस उत्पन्न होता है।' (ऋग्वेदादि० ग्रन्थ प्रामाण्या०)

(२) इस पूर्वोक्त कार्य-कारणभाव को न समझने के कारण ही एक अन्य भ्रान्ति देखिये—समुद्राभ्राद् घ:॥ (४।४।११८)

इस सूत्र में समुद्र और अभ्र दो शब्दों का समास है और समास में यह नियम है कि जिसमें अल्प अच् (स्वर) हों, उसका पूर्वनिपात होना चाहिये, किन्तु

सूत्र में इस नियम का उल्लङ्घन दिखायी देता है, इसलिये काशिकाकार ने लिखा है—'अभ्रशब्दस्यापूर्निपातस्य लक्षणस्य व्यभिचारित्वात्।' अर्थात् व्याकरण के नियम का व्यभिचार (उल्लङ्घन) करके यहाँ 'अभ्र' शब्द का पूर्वनिपात नहीं किया है। इसपर महर्षि की व्याख्या देखिये—

''अहो जयादित्यस्येदृशी बुद्धिर्यया सूत्रमिदं दूषितम्। नैतत् तेन विचारितम्—समुद्रशब्दोऽन्तरिक्षनामसु पठितम्। अभ्रशब्दश्च मेघवाची। तत्रान्तरिक्षं पिता मेघोऽभ्रं पुत्रः। मेघानामन्तरिक्षादेव जायमानत्वात्। समुद्रशब्दोऽभ्यर्हितं मेघस्योत्पत्तिकारणत्वात्॥ अभ्यर्हितं पूर्वं निपततीति भवत्येव समुद्रशब्दस्य पूर्वनिपातः॥''

अर्थात् जयादित्य की ऐसी ही बुद्धि है, जिसने सूत्र को ही अशुद्ध बता दिया है। उसने यह विचार नहीं किया कि यह छान्दस सूत्र है और वैदिक शब्दों में समुद्र शब्द का पाठ अन्तरिक्ष नामों में है और अभ्र शब्द मेघ नामों में पठित है और मेघ अन्तरिक्ष में उत्पन्न होते हैं अतः कार्य-कारणभाव होने से समुद्र तथा मेघ में पिता-पुत्र का सम्बन्ध है। पितृवत् अभ्यर्हित (पूजित) होने से सूत्र में 'समुद्र' शब्द का पूर्व निपात नियमानुकूल ही हैं विरुद्ध नहीं, क्योंकि ''अल्पाच्तरम्'' सूत्र नियम का ''अभ्यर्हितं पूर्वं निपतति'' यह नियम अपवाद है।

(३) व्याकरण में ऐतिहासिक नामों का ग्रहण नहीं है—व्याकरणशास्त्र में यद्यपि लौकिक शब्दों का अनुशासन है, और सामान्य-अपवाद की अद्भुत प्रक्रिया का आश्रय करके पाणिनि मुनि ने सूत्रों की रचना की है। जिससे लघुतम उपाय के द्वारा अल्पकाल में ही शब्द-सिद्धि का बोध हो सके। पुनरपि कहीं कहीं विशिष्ट शब्दों की सिद्धि के लिये विशेष-सूत्रों की भी रचना की है और उन विशेष-शब्दों का आश्रय करके कुछ व्यक्ति व्याकरण में भी लौकिक इतिहास की खोज करने का प्रयत्न करते हैं। जैसे—

(क) द्रोण-पर्वत-जीवन्तादन्यतरस्याम्। (४।१।१०३) सूत्र में महाभारत के आचार्य द्रोण का ग्रहण करना।

(ख) बाह्वादिगण में युधिष्ठिर तथा अर्जुन शब्दों का पाठ है और (ऋष्यन्धकवृष्णि-कुरुभ्यश्च, ४।१।११४) सूत्र में वृष्णिविशेष वासुदेव, कुरुविशेष नाकुल, साहदेव, इत्यादि शब्दों को देखकर महाभारत कालीन पुरुषों का ग्रहण करते हैं।

इस विषय को स्पष्ट करने के लिये महर्षि दयानन्द ने महाभाष्य का प्रमाण देकर स्पष्ट किया है—''बाह्वादिप्रभृतिषु येषां दर्शनं गोत्रभावे लौकिके ततोऽन्यत्र तेषां प्रतिषेधः।'' इत आरभ्यापत्याधिकारे सर्वत्र वार्त्तिकस्यास्य प्रवृत्तिः। अर्थात् इस वार्त्तिक की प्रवृत्ति अपत्याधिकार में सर्वत्र होती है। इस वार्त्तिक का अभिप्राय यह है कि—अपत्याधिकार में जिन प्रातिपदिकों से प्रत्यय विधान किया है, वे लोकप्रसिद्ध गोत्रों के मुख्य आदि पुरुष लिये गये हैं। जो गोत्रों के प्रवर्त्तक आदिपुरुष

वाचक शब्द हैं, वे यदि किसी व्यक्ति की संज्ञा को बताते हैं, तो उनसे ये प्रत्यय **नहीं होते हैं। महर्षि ने इसी भाव को (द्रोण-पर्वत० ४।१।१०३) सूत्र पर (महाभारते यो द्रोणो बभूव तस्मान्न भविष्यति) यह कहकर और (पाण्डोर्ड्यण् वक्तव्यः, ४।१।१६६ वा०) इस वार्त्तिक पर (युधिष्ठिरादीनां पितुः पाण्डोर्ग्रहण-मत्रनास्ति) यहाँ युधिष्ठिरादि के पिता पाण्डु का ग्रहण नहीं है, यह कहकर प्रकट किया है।**

(४) 'वासुदेव' शब्द परमात्मा का वाचक है, श्रीकृष्ण का नहीं—वसुदेवस्यापत्यं वासुदेवः। ऐसा विग्रह करके 'वासुदेव' शब्द से वसुदेव के पुत्र श्रीकृष्ण के ग्रहण में बहुधा भ्रान्ति हुई है और (वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन् अ० ४।३।९८) सूत्र में 'अर्जुन' शब्द के सान्निध्य से इस बात की पुष्टि होती, प्रतीत होती है, परन्तु यह भी भ्रम ही है, क्योंकि अपत्याधिकार में मुख्य गोत्रप्रवर्त्तक आदिपुरुषों के नामों से ही प्रत्यय होते हैं, व्यक्तिवाचक संज्ञाओं से नहीं, यह बात सप्रमाण पहले लिखी जा चुकी है और यदि इस सूत्र में गोत्रापत्य मान कर प्रत्यय विधान किया होता तो (गोत्रक्षात्रियाख्येभ्यो बहुलं वुञ् अ० ४।३।९९) सूत्र से ही वुञ् प्रत्यय हो जाता है। इसीलिये इस सूत्र की व्याख्या में महर्षि दयानन्द लिखते हैं—''वासुदेवशब्दो गोत्रक्षत्रियाख्यो नैवात्र गृह्यते, किन्तु सच्चिदानन्दादि-लक्षणस्य परमात्मनः संज्ञा।'' अर्थात् वासुदेव शब्द से इस सूत्र में परमात्मा का ग्रहण है, वसुदेव के अपत्य का नहीं और यह बात सूत्र में 'अर्जुन' शब्द के अल्पाच्तर होने पर भी पूर्वनिपात न करने से स्पष्ट होती है, क्योंकि 'अल्पाच्तरम्'' सूत्र का भी ''अभ्यर्हितं पूर्वं निपतति'' वार्त्तिक अपवाद है।

(५) याज्ञवल्क्यादि प्रोक्त ब्राह्मणग्रन्थ प्राचीन हैं—'पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मण-कल्पेषु' (अ० ४।३।१०५) सूत्र पर जयादित्य ने ''पुराणप्रोक्तेषु'' का प्रत्युदाहरण 'याज्ञवल्कानि ब्राह्मणानि' दिया है और यह लिखा है कि याज्ञवल्क्यादि के द्वारा प्रोक्त ब्राह्मणग्रन्थ नवीन है, किन्तु यह बात महाभाष्य से विरुद्ध होने से मिथ्या है, क्योंकि महाभाष्य में (एतान्यपि तुल्यकालानि) कहकर शाट्यायनादि ऋषियों के द्वारा प्रोक्त ब्राह्मणग्रन्थों के समकालीन ही याज्ञवल्क्यादि के ब्राह्मणग्रन्थों को माना है और इसी बात की पुष्टि इस सूत्र पर वार्त्तिक से होती है—''पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु याज्ञवल्क्यादिभ्यः प्रतिषेधस्तुल्यकालत्वात्। अन्यथा पुराणप्रोक्त न होने से प्रत्यय की अप्राप्ति में प्रतिषेध करना निरर्थक ही है और काशिकाकार ने इस वार्त्तिक को भी जान-बूझकर ही छोड़ दिया है। इसका कारण भी इसके अपने मत का विरोध ही प्रतीत होता है।

(६) क्या छात्र गुरुजनों के दोषों (पापकर्मों) को ढकनेवाला होता है—(छत्रादिभ्यो णः अ० ४।४।६२) सूत्र से 'छत्र' शब्द से शील अर्थ में 'ण' प्रत्यय करने से 'छात्र' शब्द सिद्ध होता है। इस शब्द का सत्यार्थ न समझकर जयादित्य तथा भट्टोजिदीक्षितादि लिखते हैं—'**गुरुकार्येष्ववहितस्तच्छिद्रावरण-प्रवृत्तश्छत्रशीलः शिष्यश्छात्रः।**' अर्थात् गुरुजनों के कार्यों में जो प्रमाद नहीं करता

तथा गुरुजनों के दोषों को ढकने का जिसका स्वभाव हो गया है। वह शिष्य छात्र कहलाता है।

किन्तु छात्र शब्द का यह अर्थ महाभाष्य तथा प्राचीन शास्त्रीय मर्यादाओं से भी विरुद्ध होने से मिथ्या है। महाभाष्य में ''छत्रमिव छत्रम्'' यहाँ उत्तरपद का लोप माना है। जिसके अनुसार 'छात्र' शब्द का अर्थ है। जैसे छत्र=छाते से धूपादि से होनेवाले दु:खों का निवारण होता है, वैसे ही छत्र के तुल्य गुरु के द्वारा जिसके मूढत्वादि दोषों को दूर किया जाये, वह छात्र है। ''**छत्रं गुरुस्तत्सेवनं शीलमस्य स छात्र:**'' और जैसे छत्र की भाँति गुरु शिष्य को अविद्यादि दूर करके दु:खों से बचाता है, वैसे ही शिष्य को छत्र तुल्य गुरु की भी सेवा करनी चाहिये।

और कोई भी मनुष्य कितना भी प्रयास करे, वह निर्दोष हो सके, यह असम्भव ही है। इसलिये प्राचीन आचार्य शिष्यों को यह उपदेश दिया करते थे—'**यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि।**' अर्थात् हे शिष्यो! तुम हमारे सुचरितों का ही ग्रहण करो, दुश्चरितों का नहीं। इससे स्पष्ट है कि गुरुजन दोषों को छिपाना कभी नहीं चाहते थे, अपितु दूर कराना ही चाहते थे, परन्तु मध्यकालीन गुरुडम की अन्ध परम्पराओं ने अपने अनुयायी शिष्यों में ऐसे भाव भरने का प्रयास किया कि जिससे दोषों को दूर करने की प्रवृत्ति समाप्त हो गई और पापकर्मों को छिपाने की प्रवृत्ति बढ़ने लगी। मध्यकालीन अष्टाध्यायी के व्याख्याकारों ने भी वे ही अशुद्ध भाव व्याकरण में समाविष्ट कर दिये, किन्तु ऋषि तो निष्पाप थे, वे पाप के आवरण को कैसे सहन कर सकते थे। इसलिये उन्होंने व्याकरण के द्वारा भी जहाँ अपशब्दों से बचाकर म्लेच्छता से हमें बचाया, वहाँ व्याकरण के मुख्य वेदाङ्गत्व का गौरव भी समझाया। ऐसे पवित्रात्माओं के भाष्यों की जितनी भी प्रशंसा की जाये, वह थोड़ी ही है।

सत्य-ज्ञान की कसौटी-आर्षशिक्षा

(१) गुरुवर से प्राप्त पारसमणि को क्या आर्य अपना रहे हैं?

महर्षि दयानन्द जिस समय शिक्षा-समाप्त करके और गुरुदक्षिणा में मिले गुरु-आदेश को शिरोधार्य करके विदा होने लगे, उस समय गुरुजी ने अपने आदर्श शिष्य को एक आदर्श एवं मूल्यवान् आशीर्वाद दिया—

''मनुष्यकृत ग्रन्थों में परमेश्वर और ऋषियों की निन्दा है और ऋषिकृत में नहीं। इस कसौटी को हाथ से न छोड़ना।''

(२) क्या हम आर्यजन आदर्श गुरु के आदर्श शिष्य के आदेश की अवहेलना तो नहीं कर रहे हैं? महर्षि दयानन्द ने लिखा है—

(क) 'जितना बोध इनके (अष्टाध्यायी, महाभाष्य) के पढ़ने से तीन वर्ष में होता है, उतना बोध कुग्रन्थ सारस्वत, चन्द्रिका, कौमुदी, मनोरमा आदि के पढ़ने से पचास वर्ष में भी नहीं हो सकता।'

(ख) 'महर्षि लोगों का आशय जहाँ तक हो सके, वहाँ तक सुगम और

जिसके ग्रहण में समय थोड़ा लगे, इस प्रकार का होता है और क्षुद्राशय लोगों की मनसा ऐसी होती है कि जहाँ तक बने वहाँ तक कठिन रचना करनी। जिसको बड़े परिश्रम से पढ़के अल्पलाभ उठा सकें, जैसे पहाड़ का खोदना, कौड़ी का लाभ होना और आर्षग्रन्थों का पढ़ना ऐसा है कि एक गोता लगाना, बहुमूल्य मोतियों का पाना।' (स० प्र० ३ समु०)

(३) गुरुवर विरजानन्दजी दण्डी अनार्षग्रन्थों पर कैसे अश्रद्धा उत्पन्न करते थे?

'भट्टोजिदीक्षित, जो सिद्धान्त कौमुदी संस्कृत-व्याकरण के रचयिता हैं, उनके नाम पर दण्डीजी विद्यार्थियों से जूते लगवाया करते थे और जबतक उसका सम्मान विद्यार्थियों के हृदय से दूर नहीं होता था तबतक अष्टाध्यायी का आरम्भ नहीं करते थे। यह बात उनकी जगत् प्रसिद्ध थी।' (पं० लेखराम-लिखित जीवनचरित, पृ० ४५)

(४) गुरुवर दण्डीजी के मनमें अनार्षग्रन्थों के प्रति अश्रद्धा क्यों और कैसे जागृत हुई?

(क) व्याकरण के 'सारस्वत' ग्रन्थ की वास्तविकता का रहस्य दण्डीजी सुनाया करते थे—'अनुभूति स्वरूप आचार्य ने इसे बनाया है। बूढ़ा होने के कारण मुख में दाँत न रहने से किसी शास्त्रार्थ में (पुंसु) अशुद्ध शब्द मुख से निकल गया। पण्डितों ने आक्षेप किया, वे क्रोध में आ गये और उसकी सिद्धि के लिये यह झूठा ग्रन्थ बनाया और मिथ्या अभिमान में आकर इस अशुद्ध को शुद्ध कर दिखाया।' (पं० लेखराम जीवनचरित, ४५ पृ०)

(ख) वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्य श्री कृष्णशास्त्री न्याय और व्याकरण के प्रसिद्ध पण्डित थे। एक दिन शास्त्री जी के दो विद्यार्थियों (लक्ष्मण ज्योतिषी और मुड-मुडिया पण्ड्या) का विरजानन्दजी के दो विद्यार्थियों (चौबे गङ्गादत्त और रङ्गदत्त) से शास्त्रार्थ हो पड़ा। कृष्णशास्त्री के विद्यार्थियों ने पूछा— (अजाद्युक्तिः) इस वाक्य में कौन-सा समास है? दण्डीजी के विद्यार्थी कहते थे—षष्ठीतत्पुरुष और शास्त्रीजी के विद्यार्थी सप्तमीतत्पुरुष कहते थे। विवाद बढ़ने पर यह बात गुरुओं तक पहुँच गई। दोनों गुरुओं ने अपने अपने शिष्यों का ही [१]समर्थन किया। श्री दण्डीजी ने अपने कथन में प्रमाण की खोज के लिये एक दक्षिणी ब्राह्मण से अष्टाध्यायी का आद्योपान्त पाठ सुना और उसपर विचार किया। विचारने के पश्चात् दण्डजी ने अपने पक्ष में प्रमाण प्राप्त किया—(कर्त्तृकर्मणोः कृतिः) अर्थात् कृदन्त 'उक्ति' शब्द से कर्म में षष्ठी विभक्ति का विधान किया है। इस प्रमाण को पाकर दण्डीजी की आत्मा में कितनी प्रसन्नता थी, उसका अनुमान कौन लगा सकता था? उन्होंने महर्षिकृत अष्टाध्यायी की महिमा का अनुभव

---

१. इस विषय में पूर्ण शास्त्रार्थ की घटना पं० लेखरामकृत महर्षि जीवनचरित के ८५९ पृ० पर द्रष्टव्य है।

किया और सूर्य के दर्शन करनेवाले का चित्त जिस प्रकार कृत्रिम दीपकों से घृणा करने लगता है, वही अवस्था दण्डीजी की हुई। तब से दण्डीजी अपनी पाठशाला में ऋषियों के ग्रन्थ पढ़ाने लगे और अनार्षग्रन्थों से घृणा करने लगे।

(अजाद्युक्तिः) का सत्यसमाधान तथा उसका प्रमाण पाकर श्री दण्डीजी आधी रात को ही उठ खड़े हुए और अपने विद्यार्थी उदयप्रकाश के घर पर आधी रात के समय में जाकर यह समाधान बताया और उसे जगाकर उसी समय लिखाया। ('पं० लेखरामकृत जीवनचरित' के आधार पर)

(५) श्री दण्डीजी की अनार्षग्रन्थों के प्रति कितनी अश्रद्धा थी? इसका अनुमान निम्नलिखित दो घटनाओं से किया जा सकता है—

(क) एक बार मिस्टर प्रीस्टली साहब मथुरा के स्थानापन्न कलक्टर नियत होकर आये। एक दिन वे भ्रमण करते हुए विरजानन्द जी की कुटिया के पास से जा रहे थे। दण्डीजी की विद्वत्ता की प्रशंसा पहले सुनी थी, इसलिये उनसे मिलने का विचारकर दण्डीजी के पास गये और पूछने लगे कि हमारे योग्य कोई सेवा हो तो अवश्य कहिये। दण्डीजी बोले—यदि हमारी सेवा कर सकते हो तो भट्टोजिदीक्षित के जितने बनाये कौमुदी आदि ग्रन्थ हैं, उनको भारतवर्ष या केवल मथुरा से लेकर आग में फूँक दो या यमुना में प्रवाहित कर दो।

(ख) सं० १९१७ के अन्त में आगरा में राजाओं का एक दरबार हुआ था। उसमें जयपुर नरेश महाराजा रामसिंह ने दण्डीजी को सत्कारपूर्वक बुलवाया और उनसे व्याकरण-विद्या पढ़ने की इच्छा प्रकट की और अन्त में कहने लगे कि कोई ऐसा उपाय बताओ जिससे मेरी कीर्त्ति हो। दण्डीजी ने उत्तर दिया कि आप सार्वभौम एक सभा करें। उसपर आपके तीन लाख रुपये व्यय होंगे और पृथिवी भरके पण्डितों को इकट्ठा करके उनसे अष्टाध्यायी और महाभाष्य ही व्याकरण के मुख्य ग्रन्थ हैं, कौमुदी आदि नहीं, इस विषय पर शास्त्रार्थ करायें। हम सबके सामने दो घण्टे में सबको यह निश्चय करा देंगे और आपको विजयपत्र दिलवा देंगे और उससे तुम्हारी विक्रमादित्य के समान अमरकीर्त्ति हो जायेगी, किन्तु महाराज रामसिंह चुप होकर सुनते रहे। दण्डीजी ने उस समय कुछ कटु शब्द भी कहे— इस काम को करोगे तो तुम्हारी कीर्त्ति होगी अन्यथा जिस प्रकार कुत्ते और गधे मर जाते हैं, ऐसे ही मरने के बाद तुम्हें कोई स्मरण नहीं करेगा। चलते समय महाराजा ने दण्डीजी को २०० रुपये, दो अशर्फी और एक दुशाला भेंट किया, किन्तु दण्डीजी ने कहा कि हम रुपये लेने नहीं आये।

(६) अष्टाध्यायी और महाभाष्य ही व्याकरण का राजमार्ग है—

(क) 'अष्टाध्यायी ही वास्तव में ऋषिकृत ग्रन्थ है और पाँच हजार वर्षों से लुप्त संस्कृत विद्या के अनमोल कोषों की यही (अष्टाध्यायी ही) एक अप्राप्य कुञ्जी का महान् भाग है।'

(ख) 'इंजन बनानेवाले ने वाष्प के गुणों को जाना, किन्तु वाष्प को उत्पन्न नहीं किया। अष्टाध्यायी को ठीक इसी प्रकार विरजानन्दजी ने बनाया नहीं, प्रत्युत

पहले की बनी हुई इस अष्टाध्यायी की महिमा को अनुभव किया।'

(ग) 'आर्यों की सभ्यता, आर्यों के शास्त्र, आर्यों की विद्या और समस्त उन्नतियों के वास्तविक स्रोत वेद तक पहुँचने का मार्ग और राजपथ अष्टाध्यायी, महाभाष्य, निघण्टु और निरुक्त बतला रहा है।'

(घ) जयपुर नरेश महाराज रामसिंह ने अष्टाध्यायी और महाभाष्य के समझने में असमर्थता प्रकट की और दण्डीजी से कहा—'आप कोई और ग्रन्थ बनाकर उसके बदले मुझे पढा दीजिये। तब दण्डीजी ने कहा कि उनका (अष्टाध्यायी और महाभाष्य का) बद्दल कोई और ग्रन्थ नहीं बन सकता। जैसे सूर्य के बिम्ब को कोई तोड़कर बना नहीं सकता, ठीक यही दशा इन ग्रन्थों की है।' (श्री पं० लेखरामकृत जीवनचरित से उद्धृत)

१. महाभाष्य-सम्मत शुद्ध सूत्र-पाठ—

महर्षि दयानन्द ने महाभाष्य को परम प्रमाण मानकर जहाँ नवीन असङ्गत मिथ्या व्याख्याओं की समीक्षा की है, वहाँ नवीन परवर्त्ती व्याख्याकारों ने जहाँ कहीं योगविभाग को पृथक् सूत्र मानकर अथवा वार्त्तिकों का सूत्रों में समावेश करके मूल-सूत्रों में परिवर्त्तन कर दिया था, उनका भी सप्रमाण शुद्धीकरण किया है। जैसे—

२.	उपलब्ध-पाठ	शुद्ध-पाठ
(१)	वृद्धस्य च पूजायाम् (अ० ४।१।१६६)	वार्त्तिक माना है (अ० ४।१।१६३)
(२)	यूनश्च कुत्सायाम् (अ० ४।१।१६७)	जीवद् वंश्यं च कुत्सितम् (अ० ४।१।१६२) इसके स्थान पर नवीन वार्त्तिक रचना)
(३)	लाक्षा-रोचना शकलकर्दमाट् ठक् (४।२।२)	लाक्षा-रोचनाट् ठक् (यहाँ 'शकल, कर्दम' शब्दों को वार्त्तिक से मिलाया है)
(४)	कलेर्ढक् (४।२।८)	(वार्त्तिक से कलि शब्द से ढक् का विधान है)।
(५)	साऽस्मिन् पौर्णमासीति संज्ञायाम् (४।२।२१)	साऽस्मिन् पौर्णमासीति। (संज्ञाग्रहण वार्त्तिक से किया है)
(६)	ग्रामजनबन्धुसहायेभ्यस्तल्। (४।२।४३)	ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल् (४।२।४२) (सहाय शब्द का पाठ वार्त्तिक से लिया है)
(७)	कच्छाग्निवक्त्रगर्त्तोत्तरपदात्। (४।२।१२६)	कच्छाग्निवक्त्रवर्त्तोत्तरपदात्। (४।२।१२५)

(८) संज्ञायाम्॥ (अ० ४।३।११७) कुलालादिभ्यो वुञ्॥ (अ० ४।३।११८)	संज्ञायां कुलालादिभ्यो वुञ् (महाभाष्य में यहाँ योगविभाग किया है)
(९) शाकलाद्वा॥ (अ० ४।३।१२७)	शकलाद्वा॥ (अ० ४।३।१२६)
(१०) कौपिञ्जल-हास्तिपदादण्॥ (४।३।१३२)	महाभाष्य में ये दोनों वार्त्तिक है।
(११) आथर्वणिकस्येकलोपश्च॥ (४।३।१३३)	
(१२) शम्याष्टलञ्॥ (अ० ४।३।१३९)	शम्याष् षलञ् (४।३।१३९)
(१३) विभाषा विवध-वीवधात्॥ (अ० ४।४।१७)	विभाषा विवधात् (४।४।१७ (वार्त्तिक का भाग सूत्र में मिलाया है)
(१४) कुत्रेर्मम्नित्यम्॥ (अ० ४।४।२०)	त्रेर्मम्नित्यम् (४।४।२०)
(१५) मधोर्ञ च॥ (अ० ४।४।१२९)	मधोरञ् च॥ (४।४।१२९)

३. अनार्ष-व्याख्याओं की समीक्षा—

वैयाकरण-निकाय में महर्षि पतञ्जलि कृत महाभाष्य परमप्रमाण है। इस आर्षग्रन्थ को समस्त प्राच्य तथा नवीन वैयाकरण प्रमाण मानते हैं, परन्तु नवीन काशिकादि ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर इस ग्रन्थ से विरुद्ध अथवा स्वेच्छा से असङ्गत व्याख्यायें की हैं, महर्षि दयानन्द ने यथा स्थान उनकी असङ्गतियाँ दिखायी हैं। जिनका परिज्ञान होना जहाँ वैयाकरणों के लिये परमावश्यक हैं, वहाँ इन समीक्षाओं से महर्षि की व्याकरण में विद्वत्ता एवं प्रौढ़ता का भी बोध होता है। पाठक उन समीक्षाओं से लाभान्वित हो सकें, एतदर्थ उनका दिग्दर्शन यहाँ संक्षेप से किया जाता है—

(१) हरितादिभ्योऽञः (४।१।१००)। इस सूत्र में गोत्र की अनुवृत्ति उत्तरार्थ मानने पर काशिका के प्रयोजन का खण्डन।

(२) फाण्टाहृति-मिमताभ्यां णफिञौ (४।१।१५०)। इस सूत्र में अल्पाच्तर मिमत शब्द के पूर्वनिपात के काशिका में कहे प्रयोजन का खण्डन।

(३) उदीचामिञ् (४।१।१५३) क्या इस इञ् प्रत्यय का शिवादि से विहित अण् प्रत्यय बाधक है?

(४) कत्र्यादिभ्यो ढकञ् (अ० ४।२।९४) इस गण में काशिका में ग्राम शब्द का पाठ निरर्थक है, क्योंकि 'ग्रामाच्च' वार्त्तिक से रूपसिद्धि हो जाती है।

(५) द्वन्द्वाद् वुन् वैर-मैथुनिकयोः (अ० ४।३।१२४) इस सूत्र की व्याख्या में श्री जयादित्य ने 'वैर-मैथुनिकयोः' को प्रत्ययार्थ विशेषण माना है, यह

इसलिए 'ङीष्' यहाँ नहीं होता—महोधाः पर्जन्यः। यहाँ 'बहुव्रीहि' का ग्रहण इसलिये है कि **प्राप्ता ऊधः प्राप्तोधाः।** यहाँ ङीष् नहीं हुआ। समासान्त 'अनङ्' आदेश में भी बहुव्रीहि की अनुवृत्ति होने से यहाँ अनङ् आदेश नहीं हुआ है॥ २५॥

संख्याव्ययादेर्ङीप्॥ २६॥

पूर्वसूत्रस्यायमपवादः। ङीष् प्राप्तौ ङीब् विधीयते। संख्याव्ययादेः-५।१। ङीप् —१।१। संख्यादेरव्ययादेश्चोधसन्ताद् बहुव्रीहेः प्रातिपदिकात् स्त्रियाँ ङीप् प्रत्ययो भवति। द्व्यूध्नी। त्र्यूध्नी। उपोध्नी। अत्यूध्नी। आदिग्रहणादिहापि सिद्धं भवति। द्विविधोध्नी॥ २६॥

भाषार्थ—यह पूर्वसूत्र का अपवाद है। पूर्वसूत्र से 'ङीष्' की प्राप्ति में 'ङीप्' का विधान किया है। स्त्रीलिंग में वर्त्तमान, संख्या और अव्यय जिसके आदि में हों, ऐसे ऊधस् शब्दान्त बहुव्रीहि प्रातिपदिक से 'ङीप्' प्रत्यय होता है। जैसे—संख्यादि—द्व्यूध्नी। त्र्यूध्नी। अव्ययादि—उपोध्नी। अत्यूध्नी। आदि ग्रहण से यहाँ भी ङीप् होता है—द्विविधोध्नी॥ २६॥

दामहायनान्ताच्च॥ २७॥

ऊधस इति निवृत्तम्। संख्यादेरित्यनुवर्त्तते। अव्ययादेरिति निवृत्तम्। क्वचिदेक देशोऽप्यनुवर्त्तत इति वचनात्। दामहायनान्तात् —५।१। च-[अ०] दामान्ताद् हायनान्ताच्च संख्यादेर्बहुव्रीहेः प्रातिपदिकान् ङीप् प्रत्ययो भवति। द्वे दाम्नी अस्या द्विदाम्नी। त्रिदाम्नी। द्विहायनी। त्रिहायणी। दामन्-शब्दादनोबहुव्रीहेरिति डाप्-प्रतिषेधौ प्राप्तौ। तयोरपवादः। हायनान्तादप्राप्ते ङीप् विधीयते। अथेह कस्मान्न भवति—द्वौ हायनावस्याः शालाया द्विहायना। त्रिहायना। 'हायनो वयसि स्मृत' इति महाभाष्य प्रामाण्याद् वयो वाची हायनशब्दो गृह्यते। स च चेतनावत्सु घटते, न च शालादिषु जडेषु॥ २७॥

भाषार्थ—यहाँ 'ऊधस्' पद की अनुवृत्ति नहीं है। 'संख्यादेः' पद की अनुवृत्ति है, 'अव्ययादेः' की नहीं। यद्यपि सूत्रस्थ पदों की एक साथ ही अनुवृत्ति या निवृत्ति होती है, किन्तु इस नियम का यह अपवाद है—कहीं एकावयव की भी अनुवृत्ति होती है। स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान, संख्या जिसके आदि में हो उस दामन् शब्दान्त और हायन शब्दान्त बहुव्रीहि प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय होता है। जैसे—**द्वे दाम्नी अस्या द्विदाम्नी। त्रिदाम्नी। द्विहायनी। त्रिहायणी।**

यहाँ दामन् शब्दान्त से अनो 'बहुव्रीहेः' (४।१।१२) सूत्र से डाप् और प्रतिषेध प्राप्त हैं, यह उन दोनों का अपवाद है। और हायनान्त शब्द से अप्राप्त ङीप् का विधान किया है।

प्रश्न—यह ङीप् प्रत्यय यहाँ क्यों नहीं होता—**द्वौ हायनावस्याः शालाया द्विहायना। त्रिहायना।**

उत्तर—'**हायनो वयसि स्मृतः**'। इस महाभाष्य के वचन से यहाँ वयः अवस्थावाची हायन शब्द का ग्रहण है, और वह चेतनावानों में ही संगत होता

काशिका में 'कुट्याया यलोपश्च' के स्थान पर भ्रान्ति से लिखा है। यदि पाणिनि मुनि को 'कुल्या' शब्द अभीष्ट होता तो गणसूत्र बनाने की कोई आवश्यकता ही नहीं थी, क्योंकि इस वार्त्तिक से जो 'कौलेयक:' रूप बनता है, उसकी सिद्धि तो अगले सूत्र (कुलकुक्षि० ४।२।१९५) से ही हो जाएगी।

(६) गहादिभ्यश्च (अ० ४।२।१३७) इस सूत्र के गणपाठ में काशिकादि ग्रन्थों में निम्न तीन वार्त्तिकों का पाठ मिलता है—

मुख-पार्श्वतसोर्लोप: ॥ १ ॥

जनपरयो: कुक् च ॥ २ ॥

देवस्य च ॥ ३ ॥

यहाँ जयादित्यादि ने कुछ भी यह विचार नहीं किया कि इन वार्त्तिकों की यहाँ क्या आवश्यकता है! जबकि महाभाष्य में इन वार्त्तिकों का पाठ (अन्त: पूर्वपदाट् ठञ् अ० ४।३।६०) सूत्रस्थ कारिका में किया है और सोदाहरण व्याख्या भी की है। आश्चर्य तो इस बात का है कि काशिका में इनकी व्याख्या दोनों सूत्रों पर की है।

(७) मध्यान्म: (अ० ४।३।८) सूत्र पर काशिका में दो वार्त्तिक लिखे हैं—

आदेश्चेति वक्तव्यम् ॥ १ ॥ आदिम: ॥

अवोधसोर्लोपश्च ॥ २ ॥ अवमम्। अधमम् ॥

इनमें प्रथम वार्त्तिक तो इसलिये निरर्थक है कि 'आदिम' शब्द की सिद्धि (सायं चिरं० अ० ४।३।२३) सूत्रस्थ (अग्रादि पश्चाड् डिमच्) वार्त्तिक से हो जाती है। दूसरे वार्त्तिक का महाभाष्य में कहीं भी पाठ नहीं है, अत: मिथ्या है।

(८) गम्भीराञ्ञ्य: (अ० ४।३।५८) सूत्र पर काशिका में (बहिर्देवपञ्च-जनेभ्यश्चेति वक्तव्यम्) एक नवीन वार्त्तिक की कल्पना करके (बाह्यम्, दैव्यम्। पाञ्चजन्यम्) रूपों की सिद्धि की है। जबकि इन प्रयोगों की सिद्धि महाभाष्यकार ने 'अ० ४।३।६०' सूत्रस्थ 'बाह्यो दैव्य: पाञ्चजन्योऽथ गम्भीराञ्ञ्य इष्यते' कारिका से की है।

पाठक इस एक अध्याय के सूत्रों की व्याख्या, समीक्षाओं, सूत्रपाठों में परिवर्त्तन एवं परिवर्धनों तथा नवीन वार्त्तिकों की कल्पना से अनुमान कर सकते हैं कि सम्पूर्ण अष्टाध्यायी के सूत्रों, वार्त्तिकों तथा मिथ्या-व्याख्याओं में कितना त्रुटिपूर्ण मिश्रण किया गया है। इन सब दोषों का निराकरण ऋषियों के भाष्यों तथा प्रामाणिक महाभाष्य के अध्ययन-अध्यापन के विना सम्भव नहीं है।

अष्टाध्यायीभाष्य का भाषा-भाष्य—

अष्टाध्यायी के इस भाष्य की मूल प्रति में महर्षि दयानन्द का संस्कृतभाष्य ही उपलब्ध है। पूर्व प्रकाशित अष्टाध्यायीभाष्य की भाँति संस्कृत तथा भाषा में

यह भाष्य प्रकाशित किया गया है। भाषार्थ बनाने में सर्वत्र यह विशेष ध्यान रखा गया है कि भाषा-भाष्य मूल संस्कृत भाष्य के अनुकूल ही हो। महर्षि के भावों की पुष्टि कहीं-कहीं महाभाष्य के प्रमाणों से भी की गई है। सूत्रों, वार्त्तिकों परिभाषाओं तथा कारिकाओं के अर्थ सोदाहरण सरल एवं सुगम भाषा में इस भाष्य में समझाने का विशेष प्रयास किया है। व्युत्पन्न शब्दों की विशेष सिद्धि तथा विशेष सूत्रों का दिग्दर्शन भी यथा स्थान कराया गया है। इस भाष्य में महर्षि के संस्कृतभाष्य को अक्षुण्ण रखने का विशेष ध्यान रखते हुए संस्कृतभाष्य में यदि कहीं भाषा की सामान्य त्रुटियाँ अथवा मात्रादि का दोष दिखाई दिया, उसे हमने शुद्ध कर दिया है और जहाँ कहीं पूरे पद ही छूट गये हैं, अथवा अनेक स्थानों पर सूत्रार्थ भी रह गये हैं, वहाँ पर [ ] ऐसा कोष्ठक देकर पदों तथा अर्थों का सन्निवेश आवश्यक समझकर किया है और सूत्रों के पदच्छेद तथा गणपाठीय शब्दों को अनावश्यक समझकर भाषाभाष्य में नहीं रक्खा है। सर्वत्र गणपाठों का निर्देश तथा महर्षि दयानन्द द्वारा नवीन वैयाकरणों की समीक्षाओं को पृथक् नवीन सन्दर्भ से देने का भी पूर्ण प्रयास किया गया है।

हमें आशा ही नहीं, प्रत्युत पूर्ण विश्वास है कि जिन पवित्रभावों, दृढ़ आस्था एवं श्रद्धा से ऋषि के भाष्य को सरल भाषा-भाष्य में प्रस्तुत करने का हमने यह प्रयास किया है, उन्हीं पावनभावों से विद्वद्वर्ग, जिज्ञासु विद्यार्थिवृन्द तथा अनुशीलन एवं शोध करनेवाले इस भाष्य से लाभ उठाने का सत्प्रयास करेंगे और जहाँ कहीं किसी भी प्रकार की त्रुटि वा दोष दिखाई देवे, उसका उचित समाधान पूर्वक निर्देश भी अवश्य करते रहेंगे, जिससे उनका संशोधन अगले संस्करणों में किया जा सके।

आभार-प्रदर्शन—भारतीय इतिहास में वर्त्तमान समय जितना संस्कृत पठन-पाठन की दृष्टि से अधोगति का है, उतना कभी नहीं रहा। अपनी संस्कृति व सभ्यता से पराङ्मुख, संस्कृतभाषा के ज्ञान से शून्य होने से वेद-वेदाङ्गादि के स्वाध्याय से उपरत, तथा भौतिक चकाचौंध के प्रबल आकर्षण के कारण आध्यात्मिक ज्ञान से विमुख भारतीयजनों को परिश्रमसाध्य व्याकरण के ग्रन्थों को पढने की प्रेरणा देना और चरमसीमा पर आरूढ़ महंगाई के थपेड़ों से विकलाङ्ग की भाँति असहाय बने निराश प्राय प्रकाशकों की स्थिति अत्यन्त दयनीय एवं शोचनीय हो रही है। ऐसे विषम समय में व्याकरण के ग्रन्थों के प्रकाशन के लिये सत्प्रेरणा देकर किन्हीं सत्पुरुषों को प्रोत्साहित करना किन्हीं अदृश्य विद्या, त्याग तथा तप का ही प्रभाव हो सकता है। मैं उन आर्षभक्त, तप तथा त्याग की भट्ठी में तपे विशुद्ध कुन्दन के समान परम तेजस्वी आर्यजगत् के प्रसिद्ध संन्यासी परोपकारिणी-सभा के प्रधान गुरुवर श्री स्वामी ओमानन्दजी सरस्वती का किन शब्दों से धन्यवाद करूँ जिन्होंने विद्यार्थीकाल से ही मुझपर असीम अनुकम्पा तथा सहृदयता रखी है, जिनके फलस्वरूप ही आर्षविद्या की कुछ शिक्षा मैं प्राप्त कर सका और प्रस्तुत हिन्दी भाष्य भी उन्हींकी सत्प्रेरणा का ही फल

है। मैं उनके उपकारों से अनृण तो कभी हो ही नहीं सकता, उनका हृदय से धन्यवाद करता हुआ सर्वाधार परम गुरु परमेश्वर से यह अभ्यर्थना करता हूँ कि वे ऐसे महर्षि दयानन्द व आर्षग्रन्थों के अनन्य भक्तों को, जिन्होंने अपना सर्वस्व ही परोपकार में लगा दिया है, दीर्घजीवन, अपारधैर्य, अनभिभवनीय उत्साह एवं दुर्धर्षणीय तेज प्रदान करे, कि जिससे पांच हजार वर्षों के पश्चात् प्रज्वलित महर्षि की आर्षशिक्षा की ज्योति उत्तरोत्तर बढ़ती ही रहे।

नमो ब्रह्मणे ब्रह्मर्षि-महर्षिभ्यो गुरुजनेभ्यश्च॥

ज्येष्ठ कृष्णा दशमी,
सं० २०४१ वि०
२५ मई, १९८४ ई०
भूपेन्द्रपुरी, मोदीनगर (उ० प्र०)

विनयावनत
राजवीर शास्त्री
सम्पादक
(दयानन्द-सन्देश)

* ओ३म् *

अथाष्टाध्यायीभाष्ये चतुर्थोऽध्यायः

तत्र

प्रथमः पादः

ङ्याप्प्रातिपदिकात्॥ १ ॥

ङ्याप्प्रातिपदिकात्।५।१। ङी च आप् च प्रातिपदिकानि च तेषां समाहारो ङ्याप्प्रातिपदिकम्। तस्मात्। समाहारद्वन्द्वः। निरनुबन्धकग्रहणे सानुबन्धकानां ग्रहणं भवतीति ङीब्ङीष्ङीनां सामान्येन ग्रहणम्। तथा टाप्-डाप्-चापाम् आबित्यनेन। अधिकारसूत्रमिदम्। आपञ्चमाध्यायपरिसमाप्ते-र्ङ्याप्प्रातिपदिकादिति प्रकृतेरधिकारः। प्रत्ययाधिकारस्तु कृत एव। कप्पर्यन्तेषु स्वादिषु ङ्याप्प्रातिपदिकात् प्रत्यया विधास्यन्ते।

धातोस्तव्यादयः प्रत्यया विधीयन्ते, धात्वधिकारे समाप्ते शिष्टाः प्रत्ययाः प्रातिपदिकादेव भविष्यन्ति, पुनः प्रातिपदिकाधिकारस्यैतत् प्रयोजनम्। भा०— वृद्धावृद्धावर्णस्वरद्व्यज्लक्षणे तर्हि प्रत्ययविधौ तत्सम्प्रत्ययार्थं ङ्याप्प्राति-पदिकग्रहणं क्रियते। 'वृद्धात्' 'अवृद्धात्' 'अवर्णान्तात्' [अनुदात्तादेः] 'द्व्यचः' इत्येतानि ङ्याप्प्रातिपदिकविशेषणानि यथा स्युरिति। यद्यत्र प्रातिपदिकग्रहणं न क्रियेत तर्हि 'समर्थानां प्रथमाद्वेति' वक्ष्यमाणसूत्रेण समर्थविशेषणानि स्युः। तत्र 'उदीचां वृद्धादगोत्रादिति' वृद्धात् समर्थादुत्पत्तौ सत्यां ज्ञानां ब्राह्मणानामपत्यमित्यत्र ज्ञानामिति समर्थं वृद्धं तस्मात् फिञ् प्राप्नोति। प्रातिपदिकविशेषणे सत्यवृद्धं ज्ञ-प्रातिपदिकम्। इत्यादीनि प्रयोजनानि प्रातिपदिकग्रहणस्य। ङ्यापाम् अकृत्तद्धितत्वात् प्रातिपदिकसंज्ञा नास्ति, तत्राप्रातिपदिकत्वात् स्वाद्युत्पत्तिर्न स्यादिति ङ्याप्ग्रहणम्। कुमारीः पश्य। कुमारीभ्यो देहि। बहुराजा नगर्यः। बहुराजायां नगर्याम्।

परि०—प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणं भवतीत्येषा परिभाषा कर्तव्या। अवश्यमेषा परिभाषा कर्त्तव्या। बहून्येतस्याः परिभाषायाः प्रयोजनानि।

वा०—प्रयोजनम्-सर्वनाम-स्वर-समास-तद्धितविधि-लुगलुगर्थम्॥ १ ॥

सर्वनामविधिः प्रयोजनम्। 'सर्वनाम्नः सुट्' इहैव स्यात्—येषाम्, तेषाम्। यासां, तासामित्यत्र न स्यात्। स्वर—'कुसुलकूपकुम्भशालं बिले'। इहैव स्यात्-कुसूलबिलम्, कुसूलीबिलमित्यत्र न स्यात्। समासः—द्वितीया श्रितादिभिः सह समस्यते। इहैव स्यात्—कष्टं श्रितः कष्टश्रितः। कष्टं श्रिता कष्टश्रिता, इत्यत्र न स्यात्। तद्धित—विधिप्रयोजनम्—'अचित्तहस्तिधेनोष्ठक्'।

इहैव स्यात्—हस्तिनां समूहो हास्तिकम्। हस्तिनीनां समूहो हास्तिकमित्यत्र न स्यात्। लुक्—'नेन्सिद्ध बध्नातिषु च।' इहैव स्यात्—स्थण्डिलशायी, स्थण्डिलशायिनीत्यत्र न स्यात्। अलुक्—'शयवासवासिष्वकालात्।' इहैव स्यात्—ग्रामेवासी। ग्रामवासिनीत्यत्र न स्यात्। एवमन्यान्यसंख्यातानि प्रयोजनान्यस्याः परिभाषायाः सन्ति, सर्वाणि प्रयोजनानि लेखितुमशक्यानि। यत्प्रातिपदिकं नितयलिङ्गं तत्रास्याः प्रवृत्तिर्न भवति, यानि च विशेष्यनिघ्नानि तत्र यल्लिङ्गं प्रातिपदिकं सूत्रेषु निर्दिष्टं तस्मादेव प्रातिपदिकाल्लिङ्गान्तरादपि तत्कार्यं भवतीति॥ १॥

भाषार्थ—यह अधिकारसूत्र है। 'ङ्याप्प्रातिपदिकात्' पद में समाहारद्वन्द्व समास है। व्याकरणशास्त्र में अनुबन्ध-रहितों का जहाँ ग्रहण किया है, वहाँ अनुबन्ध-सहितों का ग्रहण हो जाता है। इस परिभाषा से इस सूत्र में 'ङी' शब्द से ङीप्, ङीष् और ङीन् तीनों प्रत्ययों का यहाँ ग्रहण होता है और 'आप्' शब्द से टाप्, डाप् और चाप् का ग्रहण होता है। पञ्चमाध्याय की समाप्ति तक प्रकृतियों का निर्देश इस सूत्र से किया गया है। प्रत्यय का अधिकार तो ''प्रत्ययः, परश्च'' (३।१।१-२) तृतीयाध्याय में पहले ही किया गया है। 'सु' से लेकर पञ्चमाध्याय के 'कप्' पर्यन्त प्रत्यय ङ्यन्त, आबन्त तथा प्रातिपदिकों से विधान किये जाएँगे।

इस सूत्र में प्रातिपदिकाधिकार करने की क्या आवश्यकता है? प्रत्ययों की दो ही प्रकृतियाँ हैं—धातु और प्रातिपदिक। धातु का अधिकार करके तृतीयाध्याय में तव्यादि प्रत्ययों का विधान किया है और धात्वधिकार के यहाँ समाप्त होने पर शेष प्रत्यय प्रातिपदिकों से ही हो जाएँगे। फिर प्रातिपदिक के अधिकार करने का प्रयोजन यह है—

भा०— वृद्धावृद्धावर्णस्वरद्व्यज्लक्षणे तर्हि प्रत्ययविधौ तत्सम्प्रत्ययार्थं ङ्याप्प्रातिपदिकग्रहणं क्रियते॥

जिन सूत्रों में ''वृद्धात्, अवृद्धात्, अवर्णान्तात्, अनुदात्तादेः, द्व्यचः'' इस प्रकार के पाठ हैं, वे ङ्याप्प्रातिपदिक के विशेषण हो सकें, इसलिए यह अधिकार किया गया है। अन्यथा प्रातिपदिक के अधिकार के अभाव में उपर्युक्त सूत्रस्थ पद समर्थ के (समर्थानां प्रथमाद्वा) (४।१।८२) विशेषण हो जाएँगे और फिर निम्नलिखित दोष प्राप्त होंगे—

(१) **उदीचां वृद्धादगोत्रात्** (४।१।१५७) इस सूत्र के वृद्ध पद के समर्थ का विशेषण होने पर 'ज्ञानां ब्राह्मणानामपत्यम्' यहाँ षष्ठी बहुवचन में 'ज्ञ' शब्द समर्थ वृद्ध संज्ञक है, इससे तो 'फिञ्' प्रत्यय प्राप्त होगा और 'ज्ञयोर्ब्राह्मणयोरपत्यम्' इस षष्ठी के द्विवचन में समर्थवृद्ध न होने से 'फिञ्' प्राप्त नहीं होगा और 'वृद्धात्' पद के प्रातिपदिक का विशेषण होने पर 'ज्ञ' प्रातिपदिक अवृद्ध है, अतः इससे 'फिञ्' नहीं होगा।

(२) **प्राचामवृद्धात् फिन् बहुलम्** (४।१।१६०) इस सूत्र के अवृद्ध पद के समर्थ का विशेषण होने पर ''ज्ञयोर्ब्राह्मणयोरपत्यम्'' यहाँ 'फिन्' प्रत्यय होगा

और "ज्ञानां ब्राह्मणानामपत्यम्" यहाँ समर्थ वृद्ध होने से फिन् प्राप्त नहीं होगा।

(३) **अतः इञ्** (४।१।९५) सूत्र के 'अतः' पद के समर्थ का विशेषण होने पर "दक्षस्यापत्यम्" यहाँ तो इञ् प्रत्यय हो जाएगा, किन्तु "दक्षयोरपत्यं, दक्षाणामपत्यम्" में समर्थ अदन्त न होने से 'इञ्' प्राप्त नहीं होगा।

(४) **अनुदात्तादेश्च** (४।३।१४०) सूत्र के 'अनुदात्तादेः' पद के समर्थ का विशेषण होने पर "वाचोविकारः, त्वचोविकारः" यहाँ वाक् शब्द से "सावेकाचः०" (६।१।१६८) सूत्र से विभक्ति के उदात्त होने से शेष अनुदात्त हो जाता है, इसलिए ये दोनों शब्द अनुदात्तादि हैं, इनसे 'अञ्' प्रत्यय प्राप्त होता है, और "सर्वेषां विकारः" यहाँ "सर्वस्य सुपि" (६।१।१९१) सूत्र से आद्युदात्त स्वर होने से 'अञ्' प्रत्यय प्राप्त नहीं होगा।

(५) **नौ-द्व्यचष्ठन्** (४।४।७) सूत्र के 'द्व्यच्' पद के समर्थ विशेषण होने पर 'वाचा तरति, त्वचा तरति' यहाँ समर्थ द्व्यच् होने से 'ठन्' प्रत्यय प्राप्त होता है और 'घटेन तरति' यहाँ समर्थ द्व्यच् न रहने से 'ठन्' प्राप्त नहीं होता।

प्रातिपदिक का अधिकार करने से वृद्धादि शब्द प्रातिपदिक के विशेषण होंगे और प्रातिपदिक यदि वृद्ध अवृद्धादि है तो ये कार्य होंगे; अन्यथा नहीं।

और 'ङ्याप्' के ग्रहण का क्या प्रयोजन है? 'ङ्याप्' के ग्रहण न करने पर ङ्यन्त और आबन्त शब्दों से स्वादि प्रत्यय प्राप्त नहीं होंगे, क्योंकि प्रातिपदिक संज्ञा में "अर्थवदधातुरप्रत्ययः" (१।२।४५) प्रत्ययान्त का निषेध किया है, और प्रत्ययान्तों में कृत् और तद्धित प्रत्ययान्तों की "कृत्तद्धितसमासाश्च" (१।२।४६) प्रातिपदिक संज्ञा की है, किन्तु ङ्याप् की कृत्-तद्धित संज्ञाएँ भी नहीं हैं, अतः ङ्याप् का प्रयोजन ङ्यन्त और आबन्त शब्दों से 'सु' आदि प्रत्यय करना है।

परिभाषा—प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणं भवति॥

अर्थात् प्रातिपदिक से जो सूत्रविहित कार्य होते हैं, वे पठित प्रातिपदिक के लिङ्ग से भिन्न लिङ्ग में भी हो जाते हैं। इस परिभाषा के अनेक प्रयोजन हैं, जैसे—

वा०—प्रयोजनं सर्वनामस्वरसमासतद्धितविधिलुगलुगर्थम्॥ १॥

(१) **सर्वनामविधि**—आमि सर्वनाम्नः सुट् (७।१।५२) सूत्र में 'सर्वनाम्नः' पद में पुल्लिंग का निर्देश है, अतः 'येषाम्, तेषाम्' इत्यादि में ही सुट्-आगम होना चाहिए और 'यासाम्, तासाम्' इत्यादि में सुट् नहीं होना चाहिए।

(२) **स्वरविधि**—कुसूलकूपकुम्भशालं बिले (६।२।१०२) सूत्र से कुसूलादि को विहित अन्तोदात्त 'कुसूलबिलम्' में ही होना चाहिए (कुसूलीबिलम्) में नहीं।

(३) **समासविधि**—द्वितीयान्त का श्रितादि के साथ समास होता है। वह यहाँ ही होवे—'कष्टं श्रितः कष्टश्रितः', और यहाँ नहीं होना चाहिए—'कष्टं श्रिता कष्टश्रिता।'

(४) **तद्धितविधि**—अचित्तहस्तिधेनोष्ठक् (४।२।४७) सूत्र से विहित

'ठक्' प्रत्यय यहाँ तो हो जाए—'हस्तिनां समूहो हास्तिकम्', और यहाँ नहीं होना चाहिए—'हस्तिनीनां समूहो हास्तिकम्।'

(५) **लुक्-विधि**—'नेन्सिद्धबध्नातिषु च' (६।३।१९) सूत्र से विहित लुक् यहाँ ही होवे—'स्थण्डिलशायी' और 'स्थण्डिलशायिनी' में लुक् नहीं होवे।

(६) **अलुक्-विधि**—'शयवासवासिष्वकालात्' (६।३।१८) सूत्र से विहित अलुक् यहाँ ही हो—'ग्रामे वासी' और 'ग्रामवासिनी' प्रयोग में नहीं होना चाहिए। प्रातिपदिक के ग्रहण में लिङ्ग विशिष्ट का भी ग्रहण हो जाता है, इस परिभाषा से उपर्युक्त समस्त दोषों का परिहार हो जाता है, और इस परिभाषा के अन्य भी असंख्य प्रयोजन हैं। सभी प्रयोजनों का लिखना सम्भव नहीं है। और जहाँ सूत्रों में ऐसा प्रातिपदिक हो, जिसका लिङ्ग निश्चित हो, वहाँ इस परिभाषा की प्रवृत्ति नहीं होती और जिन सूत्रों में विशेष्यपरक विशेषण के रूप में प्रातिपदिक पठित हैं, उनसे भिन्न लिङ्ग से भी सूत्र[1] कार्य होते हैं।

स्वौजसमौट्छष्टाभ्यांभिस्ङेभ्यांभ्यस्ङसिभ्यांभ्यस्ङसोसाम्ङ्योस्सुप्॥ २॥

सुँ। औ। जस्। अम्। औट्। शस्। टा। भ्याम्। भिस्। ङे। भ्याम्। भ्यस्। ङसि। भ्याम्। भ्यस्। ङस्। ओस्। आम्। ङि। ओस्। सुप्। एते सप्तत्रिका एकविंशतिः। स्वादयो ङ्याप् प्रातिपदिकेभ्यः परे स्युः। 'सुँ' इत्यत्रोकारोऽनुबन्धः 'सौ चे'-ति विशेषणार्थः। अन्येऽप्यनुबन्धा यथायोग्यं कार्यार्थाः, पकारः सुप्प्रत्याहारसिद्ध्यर्थः।

ङ्यन्तात्तावत्—कर्त्री। गौरी। कापटवी। इमे त्रयः शब्दा ङीप्-ङीष्-ङीबन्ताः क्रमेण। कर्त्री। कर्त्र्यौ। कर्त्र्यः। कर्त्रीम्। कर्त्र्यौ। कर्त्रीः। कर्त्र्या। कर्त्रीभ्याम्। कर्त्रीभिः॥ कर्त्र्यै। कर्त्रीभ्याम्। कर्त्रीभ्यः। कर्त्र्याः। कर्त्रीभ्याम्। कर्त्रीभ्यः। कर्त्र्याः। कर्त्र्योः। कर्त्रीणाम्। कर्त्र्याम्। कर्त्र्योः। कर्त्रीषु। एवमन्येष्वपीकारान्तेषूदाहार्यम्।

आबन्तात्—चटका। चटके। चटकाः। चटकाम्। चटके। चटकाः। चटकया। चटकाभ्याम्। चटकाभिः। चटकायै। चटकाभ्याम्। चटकाभ्यः। चटकायाः। चटकाभ्याम्। चटकाभ्यः। चटकायाः। चटकयोः। चटकानाम्। चटकायाम्। चटकयोः। चटकासु। एवं डाबन्तादिष्वप्युदाहार्यम्।

प्रातिपदिकात्—वेदिषद्। वेदिषत्। वेदिषदौ। वेदिषदः। वेदिषदम्।

---

१. इस प्रकार परिभाषा के आश्रय से 'ङ्याप्' ग्रहण का प्रयोजन खण्डित हो जाता है। महाभाष्य में इसके बाद (तद्धितविधानार्थं तु, विप्रतिषेधाद्धि तद्धितबलीयस्त्वम्) कहकर 'ङ्याप्' का प्रयोजन यह रक्खा है कि विप्रतिषेध कार्यों में तद्धित प्रत्यय ङ्यन्त और आबन्त से होने चाहिएँ, एतदर्थ यहाँ 'ङ्याप्' का ग्रहण है। जैसे—कालितरा। हरिणितरा। खट्वातरा। मालातरा। इत्यादि में स्त्रीप्रत्ययों की अपेक्षा परत्व से तद्धित प्रत्यय प्रथम होना चाहिए। 'ङ्याप्' ग्रहण से स्त्री प्रत्ययान्त से तद्धित होते हैं। अन्यथा 'कालितरा' न बनकर 'कालतरा' आदि प्रयोग बनने चाहिएँ। —अनुवादक

वेदिषदौ। वेदिषदः। वेदिषदा। वेदिषद्भ्याम्। वेदिषद्भिः। वेदिषदे। वेदिषद्भ्याम्। वेदिषद्भ्यः। वेदिषदः। वेदिषद्भ्याम्। वेदिषद्भ्यः। वेदिषदः। वेदिषदोः। वेदिषदाम्। वेदिषदि। वेदिषदोः। वेदिषत्सु। एवमन्येष्वपि प्रातिपदिकमात्रेषूदाहार्यम्।

''सुपांकर्मादयोऽप्यर्थाः संख्या चैव तथा तिङामि'' त्युक्तया कारिकया सुपामर्था विज्ञेयाः॥ २॥

भाषार्थ—ङ्यन्त, आबन्त और प्रातिपदिकों से 'सुँ' इत्यादि इक्कीस प्रत्यय होते हैं। 'सुँ' प्रत्यय में सानुनासिक उकार अनुबन्ध है और 'सौ च' (६।४।१३) इत्यादि सूत्रों में विशेषण के लिए है। इसी प्रकार प्रत्ययों में दूसरे अनुबन्ध भी यथायोग्य कार्यार्थ लगाये हैं और 'सुप्' में पकार 'सुप्' प्रत्याहार की सिद्धि के लिए है। जैसे—ङ्यन्त से—कर्त्री। गौरी। कापटवी। इनमें क्रम से ङीप्, ङीष् तथा ङीन् प्रत्यय होते हैं। 'ङी' शब्द से इन तीनों प्रत्ययों का ग्रहण है। कर्त्री आदि से परे 'सु' प्रत्यय का ''हल्ङ्याब्भ्यो०'' (६।१।६८) सूत्र से लोप हुआ है। आबन्त से—चटका। दामा। कारीषगन्ध्या। इनमें क्रमशः टाप्, डाप्, चाप् प्रत्यय हैं। इन प्रत्ययों के सामान्य रूप का ही निर्देश सूत्र में 'आप्' शब्द से किया है। इनसे भी परे 'सु' प्रत्यय का ''हल् ङ्याब्भ्यो०'' (६।१।६८) सूत्र से लोप हुआ है। प्रातिपदिक से—वेदिषत्। वेदिषद्। यहाँ भी सु प्रत्यय का हलन्त से परे लोप हुआ है। इनके इक्कीस प्रत्ययों में उदाहरण संस्कृतभाष्य में देख लेवें।

'सु' आदि इक्कीस प्रत्यय हैं। प्रत्यय शब्द का अर्थ है—''प्रत्याययति प्रत्याय्यते वाऽसौ प्रत्ययः'', अर्थात् जो अर्थों का निश्चय करावे अथवा स्वार्थ में विहित स्वयं ही प्रतीत हो। इन 'सु' आदि प्रत्ययों का यहाँ कोई अर्थ निर्देश नहीं किया है, अतः सन्देह की निवृत्ति करते हैं—**'सुपां कर्मादयोऽप्यर्थाः संख्या चैव तथा तिङाम्॥'** (महाभाष्य—१।४।२१)। व्याकरणशास्त्र में ''कर्मणि द्वितीया'' (२।३।२) इत्यादि प्रकरण की और ''बहुषु बहुवचनम्'' (१।४।२१) इत्यादि सूत्रों की इस ''स्वौजस्'' (४।१।२) के साथ एकवाक्यता है, अतः स्वादि प्रत्ययों के कर्मादि[1] तथा संख्या=एकवचन, द्विवचन, बहुवचन अर्थ हैं। इसी प्रकार तिङ् प्रत्ययों के भी अर्थ जानने चाहिएँ।

स्त्रियाम्॥ ३॥

स्त्रियाम् ७।१। अधिकारसूत्रमिदम्। अतोऽग्रे यद् विधास्यते स्त्रीलिङ्गे वर्तमानं यत् प्रातिपदिकं—वर्तते तस्मात्तद् वेदितव्यम्। उपेयुषी गृहं कन्या। स्त्रियामिति किम्—उपेयिवान् पुस्तकं छात्रः।

---

१. वैयाकरणनिकाय में—स्वार्थ, द्रव्य, लिङ्ग, संख्या, कर्मादिलक्षण 'प्रातिपदिक के पाँच अर्थ हैं, यह एक पक्ष है। इस पक्ष में सुपादि प्रत्यय कर्मादि अर्थों के द्योतकमात्र ही रहते हैं, और जो स्वार्थ, द्रव्य तथा लिङ्ग, इन तीनों को ही प्रातिपदिक का अर्थ मानते हैं, उनके पक्ष में संख्या और कर्मादि स्वादि प्रत्ययों के अर्थ हैं। इसी द्वितीय पक्ष को मानकर महाभाष्य में यह कारिका लिखी है। **—अनुवादक**

लिङ्गविषये किंचिद् विचार्यते—इदं कुतो ज्ञातव्यम्। इयं स्त्री। अयं पुमान्। इदं नपुंसकमिति। यद्येतल्लक्षणं स्यात्।

स्तनकेशवती स्त्री स्याल्लोमशः पुरुषः स्मृतः।
उभयोरन्तरं यच्च तदभावे नुपंसकम्॥ १॥

तर्हि जडपदार्थेषु स्तनादयो न सन्ति।

भा०—तटे च खल्वपि सर्वाणि लिङ्गानि दृष्ट्वा—तटः। तटी। तटमिति कस्तदध्यवसातुमर्हति। इयं स्त्री। अयं पुमान्। इदं नपुंसकमिति। तस्मान्न वैयाकरणैः शक्यं लौकिकं लिङ्गमास्थातुम्। अवश्यं कश्चित् स्वकृतान्त आस्थेयः। कोऽसौ स्वकृतान्तः? संस्त्यानप्रसवौ लिङ्गमास्थेयौ स्वकृतान्ततः। संस्त्यान-प्रसवौ लिङ्गमास्थेयौ॥ किमिदं संस्त्यानप्रसवाविति। संस्त्याने स्त्यायतेर्ड्रट्स्त्री। सूतेः सप् प्रसवे पुमान्। अधिकरण-साधना लोके स्त्री। स्त्यायत्यस्याङ् गर्भ इति। कर्तृसाधनश्च पुमान्। इह पुनरुभयं भावसाधनम्। संस्त्यानं स्त्री। प्रवृत्तिश्च पुमान्। संस्त्यानं तिरोभावः प्रवृत्तिराविर्भावः। तत्र वैयाकरणानां मते शब्दस्पर्शरूपरसगन्धानां गुणानामल्पीयसी प्रवृत्तिः संस्त्यानं स्त्रीत्वम्। उक्तगुणानां प्रबलप्रवृत्तिः पुंस्त्वम्। नैतल्लोके प्रसिद्धम्।

परि०—लिङ्गमशिष्यं लोकाश्रयत्वाल्लिङ्गस्य॥

अष्टाध्यायी-व्याकरणे लिङ्गानुशासनं यत् क्रियते तन्न कर्त्तव्यम्, अर्थात् पुंसीदं, नपुंसक इदं, स्त्रियामिदं च कार्यं भवतीति। तल्लोकतः सिद्धम्। अन्यथा लिङ्गव्यवस्थां निश्चेतुं न शक्नुवन्ति॥ ३॥

भाषार्थ—यह अधिकारसूत्र है। इससे आगे जो प्रत्ययों का विधान करेंगे, वे स्त्रीलिंग में वर्तमान प्रातिपदिकों से जानने चाहिएँ। जैसे—उपेयुषी गृहं कन्या यहाँ 'स्त्रियाम्' का ग्रहण इसलिए है कि—**उपेयिवान्**[१] **पुस्तकं छात्रः॥**

यहाँ लिंग-विषय में विचार किया जाता है—यह स्त्रीलिंग है, यह पुल्लिंग है, और यह नपुंसक है, इसका ज्ञान कैसे हो? यदि इन लिंगों के विषय में लौकिक इन चिह्नों का आश्रय किया जाए—

स्तनकेशवती स्त्री स्याल्लोमशः पुरुषः स्मृतः।
उभयोरन्तरं यच्च तदभावे नपुंसकम्॥ १॥

'स्तनकेशवती' तथा 'लोमश' शब्द में भूमा—बहुत्वादि अर्थों में मतुप् तथा श प्रत्यय हैं। लोक में स्तन और केशों को देखकर स्त्री का, अतिशय लोमों को देखकर पुल्लिंग का ज्ञान होता है और जो दोनों के कुछ सदृश हो, किन्तु दोनों के विशेष चिह्नों का जिसमें अभाव हो, वह नपुंसकलिंग होता है।

लिंग-ज्ञान में इस लौकिक[२] लक्षण का आश्रय करना सम्भव नहीं है। इस

---

१. उपेयिवान्=उप+इण्+क्वसु+सु। 'उपेयिवाननाश्वाननूचानश्च' (३।२।१०९) सूत्रे निपातनाद् रूपसिद्धिः।

२. महाभाष्य में इस विषय में अनेक दोष दिखाये हैं—'लिंगात् स्त्रीपुंरुषयोर्ज्ञाने भ्रकुंसे टाप् प्रसज्यते। नत्वं खरकुटीः पश्य खट्वावृक्षौ न सिध्यतः॥ नापुंसकं भवेत्तस्मिन् तदभावे नपुंसकम्॥ तटे च सर्वलिंगानि दृष्ट्वा कोऽध्यवसास्यति—तटः, तटी, तटमिति॥'-**अनु०**

लक्षण से खट्वा, वृक्षादि जड़ पदार्थों में लिंग की व्यवस्था को समझना सम्भव नहीं है और तट शब्द का तीनों लिंगों में प्रयोग देखकर लिंग का निश्चय कौन कर सकता है। इसलिए वैयाकरण लौकिक लिंग-लक्षण को स्वीकार नहीं कर सकते। उन्हें कोई अपने शास्त्र में स्वसिद्धान्त मानना ही पड़ेगा। उनका अपना सिद्धान्त कौन-सा है?

संस्त्यानप्रसवौ लिंगमास्थेयौ स्वकृतान्ततः।
संस्त्याने स्त्यायतेर्ड्रट् स्त्री सूते सप् प्रसवे पुमान्॥

वैयाकरणों ने लिंगविषयक स्वसिद्धान्त में यह स्वीकार किया है—स्त्रीलिंग और पुल्लिंग के क्रमशः संस्त्यान—प्रसव लिंग हैं। संस्त्यान और प्रसव का अभिप्राय क्या है? इसे कारिका के उत्तरार्द्ध में समझाया गया है। स्त्रीलिंग का लक्षण संस्त्यान=संघातार्थक 'ष्ट्यै' धातु से अधिकरण कारक में 'ड्रट्' प्रत्यय करने से 'स्त्री' शब्द बना है। जिसका अर्थ है—'**स्त्यायत्यस्यां गर्भः**' अर्थात् जिसमें गर्भ संघातरूप होता है, उसे स्त्रीलिंग कहते हैं और प्रसव—सन्तान उत्पन्न करने अर्थ में 'सू' धातु से कर्त्ता कारक में 'सप्' प्रत्यय करने से पुमान् शब्द बनता है—''**सूते अपत्यं जनयति स पुमान्**''। जो सन्तानोत्पत्ति करता है यह पुमान् है। स्त्री-पुमान् शब्द का यह अर्थ भी लोकप्रसिद्ध है। इससे भी व्याकरणशास्त्र में कार्य-निर्वाह नहीं हो सकता, इसलिए महाभाष्यकार कहते हैं—'**इह पुनरुभयं भावसाधनम्**' अर्थात् स्त्री और पुमान् शब्दों में ऊपर जो अधिकरण तथा कर्त्ता कारक में प्रत्यय स्वीकार किये हैं, उन्हें भाव में माना जाए। '**संस्त्यानं स्त्री**' अर्थात् वैयाकरणों के मत में शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध इन गुणों का तिरोभाव—अल्परूप में प्रवृत्ति होना स्त्रीलिंग और इन्हीं गुणों की प्रबलरूप से प्रवृत्ति होना पुल्लिंग है और यह व्यवस्था वक्ता की विवक्षा के अधीन है, क्योंकि प्रत्येक पदार्थ में गुणों का तिरोभाव अथवा प्रवृत्ति होना होता ही रहता है। कोई भी गुण मुहूर्त्त (थोड़े समय) के लिए भी अपने स्वरूप में स्थित नहीं रहता है।

किन्तु यह व्यवस्था भी लोक में प्रसिद्ध न होने से लोकव्यवहार में ठीक नहीं है। लिङ्ग का ज्ञान तो लौकिक व्यवहार से ही हो सकता है, इसमें कोई निश्चित लक्षण नहीं बनाया जा सकता। इसीलिए भाष्यकार कहते हैं—'**लिङ्गमशिष्यं लोकाश्रयत्वाल्लिंगस्य**', अर्थात् व्याकरणशास्त्र में लिंगानुशासन नहीं करना चाहिए। लिंग के ज्ञान में लौकिक व्यवहार ही परम प्रमाण है॥ ३॥

अजाद्यतष्टाप्॥ ४॥

अजाद्यतः ५।१।टाप् १।१।अजादयश्च अच्च।एषां समाहारस्तस्मात्। स्त्रियां वर्त्तमानेभ्योऽजादिभ्योऽदन्तेभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यष्टाप् प्रत्ययो भवति। अजा।एडका।कोकिला।अदन्तात्—बालो हसति।बाला हसति।देवदत्ता। खट्वा।माला।अत इति तपरकरणं तत् कालार्थं तेनेह न भवति—सोमपाः। गोपाः।यद्यत्र दीर्घान्ताद् टाप् स्यात् तर्हि 'हल्ङ्याब्भ्य' इति सुलोपः प्रसज्येत। अजादिभ्यो विशेषविहितान् ङीबादीन् बाधित्वा टाब् भवति। स्त्रियामिति

किम्-अजो वर्करः।

वा०—शूद्रा चामहत्पूर्वा॥ १॥

अमहत्पूर्वात् केवलात् स्त्रियां वर्तमानाच्छूद्रशब्दात् टाप् प्रत्ययो भवति। शूद्रा। अमहत्पूर्वेति किमर्थम्। महाशूद्री।

वा०—जातिः॥ २॥

महत्पूर्वाच्छूद्रशब्दाज्जातावभिधेये टापः प्रतिषेधो वेद्यः। तत्र टापि प्रतिषिद्धे जातेरस्त्रीविषयादिति ङीष्। यदा तु महत्त्वविशिष्टा शूद्रा स्यात्तदा महाशूद्रा। इति टाप् भवत्येव।

अथाजादिगणः—अजा। एडका। कोकिला। चटका। अश्वा। मूषिका। बाला। होडा। पाका। वत्सा। मन्दा। बिलाता। पूर्वापहरणा। अपरापहरणा। क्रुञ्चा। उष्णिहा। देवविशा। ज्येष्ठा। कनिष्ठा। मध्यमा। मूलान्नञः-अमूला॥ इत्यजादयः॥ ४॥

भाषार्थ—स्त्रीलिंग में वर्तमान अजादि गणपठित प्रातिपदिकों तथा अदन्त प्रातिपदिकों से 'टाप्' प्रत्यय होता है। जैसे अजा। एडका। कोकिला। इत्यादि। अदन्त शब्दों से—बालो हसति। बाला हसति। देवदत्ता। खट्वा। माला। इत्यादि।

यहाँ 'अतः' में तपरकरण तत्काल के लिए है, जिससे यहाँ अकार से आकार का ग्रहण न होने से आकारान्त शब्दों से टाप् प्रत्यय नहीं होता। जैसे—सोमपाः। गोपाः। यदि इन दीर्घान्तों से 'टाप्' हो जावे तो 'हल्ङ्याब्भ्योदीर्घात्०' (६।१।६८) सूत्र से सु प्रत्यय का लोप हो जावे।

अजादि शब्दों से जो विशेषविहित ङीप् आदि प्रत्यय प्राप्त होते हैं, उनका यह अपवाद है, अतः 'टाप्' ही होता है। जैसे—प्रथम पाँच अजा आदिशब्दों से जातिलक्षण ङीष् प्राप्त है। बाला आदि छह शब्दों से 'वयसि प्रथमे' (४।१।२०) सूत्र से प्रथम अवस्था वाचक होने से 'ङीष्' प्राप्त है और पूर्वापहरणा और अपरापहरणा शब्दों से टिल्लक्षण 'ङीप्' प्राप्त है। 'स्त्रियाम्' का ग्रहण इसलिए है कि—'**अजो वर्करः**' यहाँ टाप् न होवे।

वा०—शूद्रा चामहत्पूर्वा॥ १॥

स्त्रीलिंग में वर्तमान, 'महत्' शब्द जिसके पूर्व नहीं है, ऐसे केवल 'शूद्र' शब्द से 'टाप्' प्रत्यय होता है। जैसे—शूद्रा। यहाँ '**अमहत्पूर्वा**'[१] का ग्रहण इसलिए है कि '**महाशूद्री**' यहाँ 'टाप्' न होवे॥ १॥

---

१. शूद्र शब्द का अजादिगण में पाठ है। ('ग्रहणवता प्रातिपदिकेन तदन्तविधि प्रतिषिध्यते') इस परिभाषा से यहाँ तदन्तविधि प्राप्त नहीं है, फिर 'अमहत्पूर्वा' कहने की आवश्यकता ही नहीं है। किन्तु वार्तिक में यह पाठ किया है। वह निरर्थक होकर इस बात का ज्ञापक है कि इस प्रकरण में तदन्तविधि होती है और तदन्तविधि मानकर महत्पूर्व से भी टाप् प्राप्त होता उसका प्रतिषेध करना आवश्यक है और अन्यत्र प्रयोजन यह है कि ('उगितश्च'—४।१।६) जैसे भवती, महती में ङीप् होता है वैसे अतिभवती, अतिमहती में भी ङीप् प्रत्यय हो जाता है।

—अनुवादक

वा०—जातिः ॥ २ ॥

पूर्ववार्त्तिक में जो अमहत्पूर्वा कहकर महत्पूर्व 'शूद्र' शब्द से 'टाप्' का प्रतिषेध किया है, उसमें यह जानना चाहिए—यदि महत्पूर्व शूद्र शब्द जातिवाचक है, तब तो टाप् प्रत्यय का प्रतिषेध होता है और टाप् का प्रतिषेध होने पर जातिलक्षण (**जातेरस्त्रीविषयात्**) (४।१।६३) ङीष् प्रत्यय हो जाता है—महाशूद्री। और यदि जातिवाचक न होकर (**महती शूद्रा महाशूद्रा**) महत्त्व विशिष्ट शूद्रा हो तो 'टाप्' प्रत्यय ही होता है। जैसे—महाशूद्रा।

ऋन्नेभ्यो ङीप्॥ ५ ॥

स्त्रियामिति वर्त्तते। ऋन्नेभ्यः —५।३। ङीप् —१।१। स्त्रियां वर्त्तमानेभ्य ऋकारान्त—नकारान्तेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो ङीप् प्रत्ययो भवति। कर्त्री। हर्त्री। सुपात्री। अध्येत्री। नकारान्तेभ्यः—उष्णभोजिनी। पण्डितमानिनी। उदरिणी कन्या। ङकारोऽनुबन्धो ङ्याबिति सामान्यग्रहणार्थः। पकारोऽनुदात्तार्थः। स्त्रियामिति किम्। कर्त्ता देवदत्तः। एवं सर्वत्र प्रत्युदाहार्य्यम्॥ ५ ॥

भाषार्थ—यहाँ 'स्त्रियाम्' की अनुवृत्ति है। स्त्रीलिंग में वर्त्तमान ऋकारान्त और नकारान्त प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय होता है। जैसे ऋकारान्त—कर्त्री। हर्त्री। सुपात्री। अध्येत्री, इत्यादि। नकारान्त—उष्णभोजिनी। पण्डितमानिनी। उदरिणी कन्या। प्रत्यय में ङकारानुबन्ध 'ङ्याप्'—४।१।१ इत्यादि सूत्रों में सामान्य ग्रहण के लिए है। और पकारानुबन्ध अनुदात्त स्वर के लिए है। ['अनुदात्तौ सुप्पितौ' —३।१।४] यहाँ 'स्त्रियाम्' ग्रहण का प्रयोजन यह है कि—**कर्त्ता देवदत्तः**, यहाँ ङीप् न हो। इसी प्रकार सब सूत्रों में प्रत्युदाहरण जानने चाहिएँ॥ ५ ॥

उगितश्च ॥ ६ ॥

ङीबित्यनुवर्त्तते। उगितः —५।१। [च अ०] उक् प्रत्याहार इत्संज्ञो यस्य स उगित् तस्मात्। उगिदन्तात् स्त्रियां वर्त्तमानात् प्रातिपदिकान् ङीप् प्रत्ययो भवति। भवती। अतिभवती। बृहती। महती। पृषती। जगती। गोमती। यवमती।

वा०—धातोरुगितः प्रतिषेधः ॥ १ ॥

उखास्त्रद् ब्राह्मणी। पर्णध्वद् ब्राह्मणी। अत्र स्रंसु-ध्वंसुधातुभ्यां क्विप्। उकारस्येत्त्वात् क्विबन्तान् ङीप् प्राप्तः। स न भवति।

वा०—अञ्चतेश्चोपसंख्यानम्॥ २ ॥

अञ्चु गतिपूजनयोः। अस्मात् क्विन्नन्तात् पूर्ववार्त्तिकेन ङीपः प्रतिषेधः प्राप्तः स मा भूत्। किन्तु ङीप् स्यादेव। प्राची। प्रतीची॥ ६ ॥

भाषार्थ—यहाँ ङीप् की अनुवृत्ति है। उक् प्रत्याहार (उ, ऋ, लृ) इत् संज्ञक है, जिसका वह उगित् है। स्त्रीलिंग में वर्त्तमान उगिदन्त प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय होता है। जैसे—भवती। अतिभवती। बृहती। महती। पृषती। जगती। गोमती। यवमती।

वा०—धातोरुगितः प्रतिषेधः ॥ १ ॥

उक् जिसका इत् हो गया है, ऐसे क्विप् आदि सर्वापहारी प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से स्त्रीविषय में ङीप् प्रत्यय नहीं होता है। जैसे—उखास्रद् ब्राह्मणी। पर्णध्वद्। यहाँ धातु के उकार की इत् संज्ञा होने से ङीप् प्राप्त होता है। उसका इससे प्रतिषेध किया है।

वा०—अञ्चतेश्चोपसंख्यानम्॥ २॥

क्विन् प्रत्ययान्त अञ्चू धातु से पहले वाले वार्त्तिक सें ङीप् का निषेध प्राप्त था, वह निषेध न हो अर्थात् ङीप् प्रत्यय हो ही जाए। जैसे—प्राची। प्रतीची॥२॥

वनो र च ॥७॥

वनः—५।१। र—१।१। च —[अ०] स्त्रियां वर्त्तमानाद् वन्नन्तात् प्रातिपदिकान् ङीप् प्रत्ययो भवति वन्नन्तस्य प्रातिपदिकस्य र इत्यादेशश्च। वन इति क्वनिब्-ङ्वनिब्-वनिपां सामान्येन ग्रहणम्। धीवरी। पीवरी। परलोकदृश्वरी। राजकृत्वरी। सहकृत्वरी। पूर्वसूत्रेण नकारान्तत्वान् ङीपि सिद्धे रेफविधानार्थ आरम्भः।

वा०—वनो न हशः॥ १॥

हशन्तात् परो यो वन्नन्तशब्दस्तस्मात् ङीप् न भवतीति। सहयुध्वा ब्राह्मणी। 'सह चेति' क्वनिप्॥ ७॥

भाषार्थ—स्त्रीलिंग में वर्त्तमान वन् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय होता है और वन्नन्त प्रातिपदिक को रेफ आदेश होता है। सूत्र में वन् से क्वनिप्, ङ्वनिप् और वनिप् तीनों प्रत्ययों का सामान्यरूप से ग्रहण किया गया है। जैसे—वनिप्—धीवरी। पीवरी। क्वनिप्—परलोकदृश्वरी। राजकृत्वरी। सहकृत्वरी। ङ्वनिप्—सुत्वरी। यज्वरी। यहाँ नकारान्त होने से पूर्व सूत्र से ही ङीप् प्राप्त है, यह रेफ विधानार्थ सूत्र बनाया है।

वा०—वनो न हशः॥ १॥

हश् प्रत्याहारान्तर्गत अक्षर जिसके अन्त में हो उससे परे जो वन्, तदन्त प्रातिपदिक से स्त्रीविषय में ङीप् प्रत्यय नहीं होता है। जैसे—सहयुध्वा ब्राह्मणी। यहाँ ('सहे च' —३।२।९६) सूत्र से क्वनिप् हुआ है। और यहाँ ध अक्षर से परे वन् होने से ङीप् नहीं हुआ। ध् हश् प्रत्याहारान्तर्गत है॥७॥

पादोऽन्यतरस्याम्॥ ८॥

पादः—५।१। अन्यतरस्याम् [अ०] अप्राप्तविभाषेयम्। समासान्तस्य हलन्त पाद्शब्दस्य निर्देशः कृतः। स्त्रियां वर्त्तमानात् पादन्तात् प्रातिपदिकाद् विकल्पेन ङीप् प्रत्ययो भवति। द्विपदी। द्विपात्। चतुष्पदी। चतुष्पात्। अत्र 'पादः पदिति' ङीप्पक्षे भत्वात् पदादेशः॥ ८॥

भाषार्थ—यह अप्राप्त विभाषा है। सूत्र में समासान्त हलन्त पाद् शब्द का निर्देश किया है। स्त्रीलिंग में वर्त्तमान पाद् शब्दान्त प्रातिपदिक से विकल्प से ङीप् प्रत्यय होता है। जैसे—द्विपदी। द्विपात्। चतुष्पदी। चतुष्पात्। यहाँ (**'संख्यासु-**

पूर्वस्य' —५।४।१४४) सूत्र से अकार लोप और "**पादः पत्**" (६।४।१३०) सूत्र से ङीप् पक्ष में भ संज्ञा होने से पदादेश हुआ है।

टाब् ऋचि॥ ९॥

पाद इत्यनुवर्त्तते, न विकल्पः। टाप् —१।१। ऋचि —७।१। स्त्रियां वर्त्तमानात् पादन्तात् प्रातिपदिकाद् ऋच्यभिधेये टाप् प्रत्ययो भवति। द्विपदा ऋक्। त्रिपदा ऋक्। चतुष्पदा ऋक्। पूर्वसूत्रेण ङीप् प्राप्तस्तस्यापवादः। ऋचीति किम्। चतुष्पदी। चतुष्पात्॥ ९॥

भाषार्थ—यहाँ 'पादः' की अनुवृत्ति है, विकल्प की नहीं। स्त्रीलिंग में वर्त्तमान पादशब्दान्त प्रातिपदिकों से ऋग्वेदविषयक मन्त्रवाच्य हो तो 'टाप्' प्रत्यय होता है। जैसे—द्विपदा ऋक्। त्रिपदा ऋक्। चतुष्पदा ऋक्। पूर्वसूत्र से ङीप् प्रत्यय प्राप्त है, उसका यह अपवाद है। यहाँ 'ऋचि' इसलिए पढ़ा है कि जहाँ ऋक्-मन्त्र अभिधेय न हो, वहाँ टाप् न हो। जैसे—चतुष्पदी। चतुष्पात्॥ ९॥

न षट् स्वस्रादिभ्यः॥ १०॥

न [अ०] षट्स्वस्रादिभ्यः —५।३। ऋन्नेभ्यो ङीबिति ङीप् प्राप्तः स प्रतिषिध्यते। षट्संज्ञकेभ्यः स्वस्रादिभ्यश्च स्त्रियां वर्तमानेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो ङीप् प्रत्ययो न भवति। षट्संज्ञा षकारान्तानामपि तेभ्यो यः कश्चित् प्राप्तः स प्रतिषिध्यते। पंच ब्राह्मण्यो गच्छन्ति। षट्। सप्त। अष्ट। नव। दश। स्वस्रादयो गणशब्दाः। स्वसा। दुहिता। ननान्दा। याता। माता। तिस्रः। चतस्रः। सर्वे ऋकारान्ताः।

का०— षट्संज्ञानामन्ते लुप्ते टाबुत्पत्तिः कस्मान्न स्यात्।
प्रत्याहाराच्चापा सिद्धं दोषस्त्वित्वे तस्मान्नोभौ॥ १॥

सर्वगुरु विद्युन्माला छन्द इदम्। विद्युन्माला मौ गाविति लक्षणात्। षट्संज्ञकानां शब्दानां न लोपः प्रतिपदिकान्तस्येत्यन्त्यनकारे लुप्तेऽदन्तत्वात् टाप् प्रत्ययः कस्मान्नोत्पद्यते। अर्थादजाद्यष्टाबिति टाप् प्राप्नोत्येव। यदि न लोपः सुप्स्वरेति सूत्रे सुब्विधौ प्रत्याहारग्रहणम्-प्रथमैकवचनात् सुशब्दादारभ्याचापः पकारात्। तदातु टाब्विधानं सुब्विधिस्तत्र न लोपस्यासिद्धत्वाद् टाप् न भविष्यति। परन्त्वस्मिन् पक्षेऽयं दोषः। दोषस्त्वित्वे / चापः पकारपर्य्यन्ते सुप् प्रत्याहारे कृते टापोऽपि सुब्ग्रहणेन ग्रहणात् प्रत्ययस्थात्कादिति सूत्रे सप्तमाध्यायस्य तृतीयपादे सुब्विधौ टापि परतो न लोपस्यासिद्धत्वाद् अतोऽभावाद् बहुचर्मिकेत्यत्रेत्वं न प्राप्नोति। तस्मात् कारणाद् उभौ टाप्-ङीपौ न भवत इति विज्ञेयम्॥ १०॥

भाषार्थ—नकारान्त और ऋकारान्त शब्दों से 'ऋन्नेभ्यो ङीप्' (४।१।५) सूत्र से ङीप् प्राप्त है, इससे उसका प्रतिषेध किया गया है। स्त्रीलिंग में वर्त्तमान षट्संज्ञक और गणपठित 'स्वसृ' आदि प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय नहीं होता है। "ष्णान्ता षट्' (१।१।२३.) सूत्र से षट् संज्ञा षकारान्त शब्दों की भी है, उनमें

स्त्रीविषय में जो कोई प्रत्यय प्राप्त होवे, उसका प्रतिषेध किया गया है। जैसे—**पञ्च ब्राह्मण्यो गच्छन्ति।** षट्। सप्त। अष्ट। नव। दश। स्वसृ आदि गणोपदिष्ट शब्दों से—स्वसा। दुहिता। ननान्दा। याता। माता। तिस्रः। चतस्रः। ये सभी ऋकारान्त शब्द हैं।

का०— षट् संज्ञानामन्ते लुप्ते टाबुत्पत्तिः कस्मान्न स्यात्।
प्रत्याहाराच्चापा सिद्धं दोषस्त्वित्त्वे तस्मान्नोभौ॥ १॥

छन्दः शास्त्र के (विद्युन्माला मौ गौ) इस लक्षण के अनुसार कारिका में सर्वगुरु विद्युन्माला छन्द है।

प्रश्न—पञ्चादि षट्संज्ञक शब्दों में "नलोपः प्रतिपदिकान्तस्य" (८।२।७) सूत्र से अन्त्य नकार लोप करने पर पञ्चादिशब्दों के अदन्त होने से स्त्रीलिंग में टाप् प्रत्यय क्यों नहीं होता है? "अजाद्यतष्टाप्" (४।१।३) सूत्र से टाप् प्रत्यय प्राप्ति होती ही है।

उत्तर—उक्त सूत्र से अदन्त शब्दों से टाप् होता है किन्तु पञ्चादि शब्दों में नकार लोप स्त्री प्रत्यय करने के पूर्व कार्य के प्रति असिद्ध है, इसलिए अदन्तता न होने से टाप् नहीं होता। यहाँ यदि कोई ऐसी आशंका करे कि नलोप की असिद्धता कुछ परिगणित कार्यों में होती है, उनमें टाप् विधि नहीं है। इसका उत्तर यह है—"**प्रत्याहाराच्चापा सिद्धम्**" अर्थात् "न लोपः सुप्०" (८।२।२) सूत्र में 'सुप्' शब्द से प्रत्यय का ग्रहण न होकर प्रत्याहार का ग्रहण है। "स्वौजस०" (४।१।२) सूत्र के सु शब्द से लेकर "यडश्चाप्" (४।१।७४) सूत्रस्थ चाप् प्रत्यय के पकार से 'सुप्' प्रत्याहार मान लिया जायेगा और इस प्रत्याहार के अन्तर्गत होने से टाप् विधि भी सुप्-विधि हो जायेगी तथा नलोप के असिद्ध होने से टाप् प्रत्यय नहीं होगा।

शङ्का—आपका उपर्युक्त समाधान ठीक नहीं है। यदि टाप्-विधि को भी सुप्-विधि मान लिया जायेगा तो आपको अन्यत्र भी ऐसा मानना पड़ेगा जिससे "**दोषस्त्वित्त्वे**" इत्वविधायक सूत्र में "प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्य०" (४।३।४४) 'टाप्' के भी 'सुप्' के ग्रहण से ग्रहण होने से 'टाप्' के परे इत्वविधि में नलोप के असिद्ध होने से 'बहुचर्मन्+कप्+टाप्=बहुचर्म+क+आ=बहुचर्मिका' प्रत्ययस्थ ककार से पूर्व अकार के न होने से इत्व की प्राप्ति नहीं हो सकेगी और 'बहुचर्मिका' प्रयोग में दोष आयेगा। इसलिये प्रत्याहार मानना ठीक नहीं है, और प्रत्याहार न मानने से वही पूर्वोक्त दोष (पञ्च आदि में न लोप होने पर टाप् का) यथापूर्व बना रहता है।

इसका दूसरा समाधान देते हैं—'**तस्मान्नोभौ**' अर्थात् इस 'न षट् स्वस्रा०' सूत्र से केवल 'ङीप्' प्रत्यय का ही निषेध नहीं है, प्रत्युत टाप् और ङीप् दोनों का निषेध है, और इसके लिये सूत्र की व्याख्या इस प्रकार जाननी चाहिये—यहाँ 'स्त्रियाम्' की अनुवृत्ति आ रही है। स्त्री विषय में जो-जो प्रत्यय प्राप्त होते हैं, उन सभी का इस सूत्र से निषेध होता है॥ १०॥

मनः ॥ ११ ॥

नेत्यनुवर्त्तते। मनः —५।१। नकारान्तत्वान् ङीप् प्राप्तः प्रतिषिध्यते। स्त्रियां वर्त्तमानान् मन्नन्तात् प्रतिपदिकान् ङीप् प्रत्ययो न भवति। दामा। दामानौ। दामानः। सीमा। सीमानौ। सीमानः। पामा। पामानौ। पामानः ॥ ११ ॥

भाषार्थ—यहाँ पूर्वसूत्र से 'न' की अनुवृत्ति है। 'मन' प्रत्ययान्त शब्दों से नकारान्त होने से ङीप् प्राप्त है, उसका यह निषेध करता है। मन् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय नहीं होता है। जैसे—दामा।[1] दामानः। सीमा। सीमानौ। सीमानः। पामा। पामानौ। पामानः॥

अनो बहुव्रीहेः ॥ १२ ॥

नेत्यनुवर्त्तते। अनः। -५।१। बहुव्रीहेः। -५।१। स्त्रियां वर्त्तमानादन्नन्तात् कृतबहुव्रीहिसमासात् प्रातिपदिकान् ङीप् प्रत्ययो न भवति। शोभनं शर्म स्थानं यस्याः सुशर्मा। सुशर्माणौ। सुशर्माणः। शोभना ग्रावाणोऽस्यां नगर्य्यां सुग्रावा। सुग्रावाणौ। सुग्रावाणः। बहुव्रीहेरिति किम्। अतिक्रान्ता ग्रावाणम् अतिग्राव्णी ॥ १२ ॥

भाषार्थ—यहाँ भी 'न' की अनुवृत्ति है। 'अन्' प्रत्ययान्त बहुव्रीहि समासवाले प्रतिपादकों से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय नहीं होता है। जैसे—**शोभनं शर्मस्थानं यस्याः सा सुशर्मा**। सुशर्माणौ। सुशर्माणः। **शोभना ग्रावाणोऽस्यां नगर्य्यां सुग्रावा**। सुग्रावाणौ। सुग्रावाणः। 'शर्मन्' शब्द में मनिन् और ग्रावन् शब्द में वन् औणादिक प्रत्यय हैं। यहाँ ''बहुव्रीहौ'' ग्रहण इसलिए है कि यहाँ प्रतिषेध न हो—अतिक्रान्ता ग्रावाणम् अतिग्राव्णी। यहाँ एकविभक्ति समास है, बहुव्रीहि नहीं ॥ १२ ॥

डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम् ॥ १३ ॥

डाप् —१।१। उभाभ्याम् —५।२। अन्यतरस्याम्। [अ०] प्राप्ताप्राप्त-विभाषेयम्। भसंज्ञायामुपधालोपिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः प्राप्तविभाषा। अनुपधा-लोपिभ्योऽप्राप्ता। स्त्रियां वर्तमानाभ्यां मन्नन्त—अन्नन्ताभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां विकल्पेन डाप् प्रत्ययो भवति। पक्षे प्रतिषेधः। दामा। दामे। दामाः। पामा। पामे। पामाः। दामा। दामानौ। दामानः। बहुव्रीहौ—बहवो राजानोऽस्यां सभायां बहुराजा। बहुराजे। बहुराजाः। बहुराजानः सभाः। यान्युपधालोपीन्यन्नन्तानि प्रातिपदिकानि तेषां चत्वारि रूपाणि भवन्ति। विकल्पद्वयेन प्रतिषेधारम्भ-सामर्थ्याच्च। बहवो धीवानोऽस्यां नगर्य्याम्—बहुधीव्नी। अन उपधालोपि-नोऽन्यतरस्यामिति ङीप्। अनो बहुव्रीहेरिति प्रतिषेधारम्भसामर्थ्यात् प्रतिषेधः। बहुधीवानौ। बहुधीवानः। पश्चाद् विकल्पेन डाप्। बहुधीवे। बहुधीवाः। पुनरस्मिन् सूत्रेऽन्यतरस्यां ग्रहणस्यैतत् प्रयोजनं पक्षे वनो र चेति बहुव्रीहावपि ङीप्रौ यथा स्याताम्। बहुधीवरी बहुधीवर्य्यौ। बहुधीवर्य्यः ॥ १३ ॥

---

१. दामा-पामाशब्दयोः 'आतो मनिन्०' (३।२।७४) सूत्रेण मनिन्। 'सीमा' शब्दे तु औणादिको मनिन्। —अनुवादकः

भाषार्थ—यहाँ प्राप्ताप्राप्त विभाषा है। भ संज्ञा में उपधालोपी प्रातिपदिकों से प्राप्तविभाषा और अनुपधालोपी प्रातिपदिकों से अप्राप्त विभाषा है। 'मन्' और 'अन्' प्रत्ययान्त स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान प्रातिपदिकों से विकल्प से 'डाप्' प्रत्यय होता है। पक्ष में प्रतिषेध होता है। जैसे डाप्—दामा। दामे। दामाः। पामा। पामे। पामाः। पक्ष में—दामा। दामानौ। दामानः। अन्नन्त बहुव्रीहि—बहवो राजानोऽस्यां सभायां बहुराजा। बहुराजे। बहुराजाः। पक्ष में—बहुराजा। बहुराजानौ। बहुराजानः सभाः। जो उपधालोपी अन्-प्रत्ययान्त प्रातिपदिक हैं, उनके चार रूप बनते हैं—दो वार विकल्प करने तथा प्रतिषेध का विधान करने से। जैसे—बहवो धीवानोऽस्यां नगर्यां बहुधीव्नी। यहाँ ''अन उपधालोपिनोऽन्यतरस्याम्'' (४।१।२८) सूत्र से ङीप्, ''अनो बहुव्रीहेः'' (४।१।१२) इस प्रतिषेध के करने से ङीप् का निषेध भी—बहुधीवा। बहुधीवानौ। बहुधीवानः। इसके बाद विकल्प से डाप्—बहुधीवा। बहुधीवे। बहुधीवाः। और इस सूत्र में पुनः विकल्प करने का प्रयोजन यह है कि पक्ष में ''वनो र च'' (४।१।७) सूत्र से बहुव्रीहि समास में भी ङीप् और रेफादेश हो जायें। जैसे—बहुधीवरी। बहुधीवर्य्यौ । बहुधीवर्य्यः॥१३॥

अनुपसर्जनात्॥ १४॥

अनुपसर्जनात्—५।१। अधिकारसूत्रमिदम्। अतोऽग्रेऽधिकारे यदनुक्रमिष्यतेऽ-नुपसर्जनात् तद् वेदितव्यम्। 'अप्रधानम् उपसर्जनम्' उपसर्जनान्न भवतीति। कथमुपसर्जनात् प्राप्तं प्रतिषिध्यते। तदन्तविधिना। अन्यपदार्थप्रधाने सति यस्माद् विधीयते तदप्रधानं भवति। 'टिड्ढाणञ्' ङीब् विधीयते कुम्भकारी। नगरकारी। अनुपसर्जनादिति किम्। बहवाः कुम्भकारा अस्यां नगर्य्यां बहुकुम्भकारा। बहुनगरकारा। जातिवाचिभ्यो ङीब् विधीयते। कुक्कुटी। मयूरी। सूकरी। अनुपसर्जनादिति किम्। बहु कुक्कुटा नगरी॥ १४॥

भाषार्थ—यह अधिकार सूत्र है। इससे आगे जिस-जिस प्रत्यय का विधान करेंगे, सो-सो अनुपसर्जन अर्थात् स्वार्थ में मुख्य प्रातिपदिकों से ही होंगे, **'अप्रधानमुपसर्जनम्'** इस पूर्वाचार्य कृत परिभाषा से अप्रधान को उपसर्जन कहते हैं, उसका इससे निषेध किया है। उपसर्जन (अप्रधान) से प्रत्यय कैसे प्राप्त हो सकता है, जो आपको निषेध करने की आवश्यकता हुई? तदन्तरविधि मानकर उपसर्जन से भी प्रत्यय प्राप्त होता है। अन्य पदार्थ की प्रधानता होने पर जिससे प्रत्यय विधान किया जाता है, वह अप्रधान होता है। जैसे—''टिड्ढाणञ्'' (४।१।१५) सूत्र से ङीप् का विधान किया है—कुम्भकारी। नगरकारी। ''अनुपसर्जनात्'' का अधिकार किसलिये किया है—**बहवः कुम्भकारा अस्यां नगर्य्यां बहुकुम्भकारा नगरी। बहुनगरकारा सभा।** इसी प्रकार जातिवाचकों से ङीप् का विधान किया है—कुक्कुटी। मयूरी। सूकरी। 'अनुपसर्जन' का अधिकार करने से यहाँ ङीप् नहीं हुआ—बहुकुक्कुटा नगरी॥१४॥

टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः॥ १५॥

अजाद्यतष्टाबिति सूत्रादत इत्यनुवर्त्तते। टित्....क्वरपः—१।३ टिदादयः

प्रत्यया निर्दिश्यन्ते। स्त्रियां वर्त्तमानेभ्यष्टिदादिप्रत्ययान्तेभ्योऽदन्तेभ्योऽनुपसर्जनेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो ङीप् प्रत्ययो भवति। टित्—चरेष्टः। कुरुचरी। मद्रचरी। श्राद्धकरी। तद्धिते—सनातनी विद्या। ढ—अत्रेरपत्यं कन्या आत्रेयी। वैनतेयी। यामुनेयी। अण्—कुम्भकारी। आसुरी माया। अञ्—औत्सी। औदपानी। वैनोदी। द्वयसच्—उरुद्वयसी। जानुद्वयसी। दघ्नच्—उरुदघ्नी। जानुदघ्नी। मात्रच्—उरुमात्री। नाभिमात्री। तयप्—पंचतयी। षट्तयी। ठक्—रैवतिकी। अश्वपालिकी। ठञ्—नैषाद कर्षुकी। वैदिकी। काशिकी। केवले ठकार ग्रहणे द्वयोर्ग्रहणं स्यात् पुनष्ठक्—ठञोः पृथग्ग्रहणं ठनो निवृत्त्यर्थम्। कञ्—यादृशी। तादृशी। एतादृशी। ईदृशी। कीदृशी। क्वरप्—इत्वरी। नश्वरी। जित्वरी। टिदादीनां केषाञ्चित् तद्धितानामेव ग्रहणं केषांचित् कृदन्तानामेव केषांचित् सामान्येन। अस्मिन् सूत्रे मात्रजिति प्रत्याहारग्रहणम्। मात्रशब्दात् प्रभृतिद्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वेति अयच् प्रत्ययस्य चकारपर्यन्तम्। तेन—उभयीत्यत्रापि ङीब् भवति। अत इति किम्। कति ब्राह्मण्यः। मात्रजिति प्रत्याहारग्रहणेनात्रापि ङीप् प्राप्तोऽत इत्यनुवर्त्तनान्न भवति। अनुपसर्जनादिति किम्—बहुकुरुचरा नगरी।

वा०—नञ्स्नञीकक्ख्युँस्तरुणतलुनानामुपसंख्यानम्॥ १॥

नञ्। स्नञ्। ईकिक्। ख्युन्। इत्येते प्रत्यया एतदन्तेभ्यो ङीप्। तरुणतलुनौ शब्दौ ताभ्यांच। नञ्-स्त्रैणी। स्नञ्—पौंस्नी। ईकक्—शाक्तिकी याष्टिकी। ख्युन्—आढ्यंकरणी। सुभगंकरणी। तरुणी। तलुनी॥ १५॥

भाषार्थ—यहाँ ''अजाद्यतष्टाप्'' (४।१।४) सूत्र से 'अतः' पद की अनुवृत्ति आती है। 'टित्' आदि से प्रत्ययों का निर्देश किया गया है। स्त्रीलिंग में वर्त्तमान टिदादि प्रत्ययान्त अदन्त अनुपसर्जन प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय होता है। जैसे—टित् (चरेष्टः ३।२।१६) कुरुचरी। मद्रचरी। (कृञो हेतुताच्छी० ३।२।२०) श्राद्धकरी। तद्धित टित्—सनातनीविद्या (सायंचिरं......... अव्ययेभ्यष्टुट्युलौ तुट् च ४।३।२३) ढ—अत्रेरपत्यं कन्या आत्रेयी। वैनतेयी। यामुनेयी। (इतश्चानिञः ४।१।२२ स्त्रीभ्यो ढक् ४।१।१२०) अण्—कुम्भकारी। आसुरी माया। (कर्मण्यण् ३।२।१) मायायामण् ४।४।१२४) अञ्—औत्सी। औदपानी। वैनोदी। (उत्सादिभ्योऽञ् ४।१।८६) द्वयसच्—उरुद्वयसी। जानुद्वयसी। दघ्नच्—उरुदघ्नी। जानुदघ्नी। मात्रच्—उरुमात्री। नाभिमात्री। (प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः ५।२।३७) तयप्—पंचतयी। षट्तयी। (संख्याया अवयवे तयप् ५।२।४२) ठक्—रैवतिकी/आश्वपालिकी (रेवत्यादिभ्यष्ठक् ४।१।१४६)। ठञ्—नैषादकर्षुकी। वैदिकी। काशिकी। (ओर्देशेठञ् ४।२।११९) काश्यादिभ्यष्ठञ्—ञिठौ ४।२।११६) यहाँ सूत्र में केवल 'ठ' पढ़ने से भी ठक्; ठञ् प्रत्ययों का ग्रहण हो जाता, पुनः दोनों का पृथक्-पृथक् निर्देश ठन् प्रत्यय की निवृत्ति के लिये हैं। कञ्—यादृशी। तादृशी। एतादृशी। ईदृशी। कीदृशी (त्यदादिषु दृशेरनालोचने कञ् च ३।२।६०) क्वरप्—इत्वरी। नश्वरी। जित्वरी। (इण्नश्जिसर्तिभ्यः क्वरप् ३।२।१६३)।

टित् आदि प्रत्ययों में किन्हीं से तद्धितों का ही ग्रहण है, किन्हीं से कृदन्तों का ही और किन्हीं से सामान्यरूप से दोनों का ग्रहण है और इस सूत्र में 'मात्रच्' से प्रत्याहार का ग्रहण है—'मात्रच्' प्रत्यय के मात्र शब्द से लेकर 'द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा' (५।२।४३) सूत्र के 'अयच्' के चकार पर्यन्त। इससे 'उभयी' में भी ङीप् प्रत्यय होता है। यहाँ 'अतः' की अनुवृत्ति का प्रयोजन यह है कि कति ब्राह्मण्यः। यहाँ मात्रच् से प्रत्याहार के ग्रहण से ङीप् प्रत्यय प्राप्त होता है, उसकी निवृत्ति 'अतः' की अनुवृत्ति से होती है। और 'अनुसर्जनात्' का ग्रहण इसलिये है—बहुकुरुचरा नगरी, यहाँ ङीप् न होवे।

वा०—नञ्स्नञ्ईकक्ख्युँस्तरुणतलुनानामुपसंख्यानम्॥ १॥

नञ्, स्नञ्, ईकक्, ख्युन् ये प्रत्यय जिन के अन्त में हैं उन शब्दों तथा तरुण, तलुन से स्त्रीविषय में ङीप् प्रत्यय होता है। जैसे—नञ्—स्त्रैणी। स्नञ्—पौंस्नी। ईकक्—शाक्तिकी। याष्टिकी। ख्युन्—आढ्यंकरणी। सुभगंकरणी। तरुणी। तलुनी॥

यहाँ तदन्त प्रातिपदिकों से 'टाप्' प्रत्यय प्राप्त है, यह उसका अपवाद है॥ १५॥

यञश्च॥ १६॥

ङीबित्यनुवर्त्तते। यञः —५।१। च-[अ०]। स्त्रियां वर्तमानाद् यञन्तादनुपसर्जनात् प्रातिपदिकान् ङीप् प्रत्ययो भवति। गार्गी। वात्सी। शाकली। पृथग्योग उत्तरार्थः॥

वा०—अपत्यग्रहणं द्वीपाद् यञः प्रतिषेधार्थम्॥ १॥

अपत्याधिकारविहिताद् यञन्तान् ङीब् यथा स्यात्। इह मा भूत्। द्वीपे भवा द्वैप्याः॥ १६॥

भाषार्थ—यहाँ 'ङीप्' की अनुवृत्ति है। स्त्रीलिंग में वर्तमान यञ् प्रत्ययान्त अनुपसर्जन प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय होता है। जैसे—गार्गी। वात्सी। शाकली। पृथक् सूत्र करने का प्रयोजन उत्तरार्थ है।

वा०—अपत्यग्रहणं द्वीपाद् यञः प्रतिषेधार्थम्॥ १॥

इस सूत्र में अपत्याधिकार के 'यञ्' का ग्रहण है, अतः तदन्त से ही ङीप् होता है। अपत्य से अन्यत्र (द्वीपादनुसमुद्रं यञ् ४।३।१०) यञन्त से ङीप् नहीं होता। जैसे—द्वीपे भवा द्वैप्याः॥ १६॥

प्राचां ष्फस्तद्धितः॥ १७॥

यञ इत्यनुवर्त्तते। प्राचाम्—६।३। ष्फः १।१। तद्धितः १।१। स्त्रियां वर्तमानाद् यञन्तात् प्रातिपदिकात् प्राचामाचार्याणां मते ष्फः प्रत्ययो भवति स च तद्धितसंज्ञो भवति। तद्धितत्वात् प्रातिपदिक संज्ञा, पुनः षिदन्तात् प्रतिपदिकान् ङीष्। गार्ग्यायणी। वात्स्यायनी। अन्येषां मते—गार्गी। वात्सी। ष्फप्रत्यये षित्करणसामर्थ्यात्स्यादेव ङीष् पुनस्तद्धितग्रहणस्योत्तरत्र प्रयोजनम्। आसुरेरुपसंख्यानमिति वार्तिकेन ष्फछौ प्रत्ययौ विधास्येते, तत्र ष्फ-छ

प्रत्यययोर्यदि तद्धितसञ्ज्ञा न स्यात्तर्हि आसुरि शब्दस्येकारलोपः कथं स्यात्॥ १७॥

भाषार्थ—यहाँ 'ङीप्' की अनुवृत्ति है। स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान 'यञ्' प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से प्राच्य-आचार्यों के मत में 'ष्फ' प्रत्यय होता है और उसकी तद्धित संज्ञा होती है। तद्धित संज्ञा करने का प्रयोजन है कि 'ष्फ' प्रत्ययान्त की पुनः प्रातिपदिकसंज्ञा होकर षिदन्त प्रातिपदिक से 'ङीष्' प्रत्यय हो जाता है। जैसे— गार्ग्यायणी। वात्स्यायनी। दूसरों के मत में—गार्गी। वात्सी।

'**ष्फ**' प्रत्यय में षित् करण का अन्य कोई प्रयोजन न होने से ही षित्करण सामर्थ्य से '**ङीष्**' प्रत्यय हो जाता, पुनः तद्धित ग्रहण का प्रयोजन अगले सूत्र के लिये है। '**आसुरेरुपसंख्यानम्**' वार्त्तिक से ष्फ-छ प्रत्ययों का विधान किया है। वहाँ यदि तद्धित संज्ञा न होवे तो 'आसुरि' शब्द के इकार का लोप कैसे होवे॥ १७॥

सर्वत्र लोहितादिकतन्तेभ्यः॥ १८॥

ष्फस्तद्धित इत्यनुवर्त्तते। सर्वत्र [अ०]। लोहितादिकतन्तेभ्यः। ५। ३। स्त्रियां वर्त्तमानेभ्यो गर्गाद्यन्तर्गतलोहितादिकतपर्यन्तेभ्यः [यञन्तेभ्यः] प्रातिपदिकेभ्यः सर्वेषां मते तद्धितसंज्ञकः ष्फः प्रत्ययो भवति। पूर्वेण विकल्पे प्राप्ते नित्यार्थप्रारम्भः। लौहित्यायनी। सांशित्यायनी। बाभ्रव्यायणी। ष्फन्तान् ङीष्। कपि शब्दादुत्तरः केवलो यः कतशब्दस्तत्पर्य्यन्तस्य ग्रहणं न तु यः समस्तः कुरुकतेति।

प्राचामित्यनुवृत्तेरभावात् सर्वत्र ग्रहणमन्तरेणापि सर्वेषां मते स्यादेव पुनः सर्वत्रग्रहणस्यैतत् प्रयोजनम्—अत्र यञन्तात् ष्फविधानप्रकरणस्य यः कश्चिद् बाधकस्तमपि बाधित्वा ष्फो यथा स्यात्। यथाऽवटशब्दो लोहितादेः पूर्वं गर्गादिषु पठ्यते तस्माद् यञन्तात् प्राचां मते ष्फो भवत्येव। परन्त्वन्येषां मते 'आवट्याच्चेति' चाप्प्राप्तस्तं बाधित्वा सर्वत्र ष्फो यथा स्यात्। आवट्यायनी॥

का०— कण्वात्तु शकलः पूर्वः कतादुत्तर इष्यते।
पूर्वोत्तरौ तदन्तादी ष्फाणौ तत्र प्रयोजनम्॥ १॥

अनया कारिकया गर्गादिगणस्य विचारः क्रियते। गर्गाद्यन्तर्गता एव शब्दा लोहितादिकतन्ताः कण्वादयश्च। तत्र कण्वशब्दात् परः शकल शब्दः पठितोऽस्ति। लोहितादिकतन्ताः कण्वशब्दात् पूर्वमेव समाम्नाः। शकलशब्दस्य कार्यद्वयमिष्यते। तत्रैकः शकलशब्दः कण्वादिषु स्यात्तदा तु शैषिकोऽण् स्यात्। यदि लोहितादिषु स्यात्तर्हि ष्फः स्यात्। इष्येते चोभौ। गर्गादिष्वेवं पठिताः कपि। कत। कुरुकत। अनडुह। कण्व। शकल। तत्रैवं व्यवस्था कर्त्तव्या—कुरुकत-अनडुह शब्दावत उत्थाप्यान्यत्र गर्गादिषु पठितव्यौ। शकल शब्दस्तत उत्थाप्य कत—कण्वयोर्मध्ये पठितव्यः। तेनोभयत्र समासविशेषेण ग्रहणं करिष्यते। तद्यथा—कतस्यान्तः कतन्त इति तत्पुरुषस्ततो बहुव्रीहिः—कतन्तोऽन्ते येषां तानि कतन्तानि। एवं समासे द्वयोः कतशब्दयोरेकशेषः। तेन कतशब्दात्परः शकलशब्दो लोहितादिकतन्तेष्वायाति।

तस्मात् ष्फः। शाकल्यायनी। तथा कण्वादिभ्यो गोत्र इत्यत्र कण्वस्यादिः कण्वादिरिति षष्ठी तत्पुरुषस्ततो बहुव्रीहिः। कण्वादिः शकलशब्द आदौ येषां ते कण्वादयोऽर्थाच्छकलादयः। अत्रापि द्वयोरादिशब्दयोरेकशेषः। तेन कण्वादित्वाच्छकलशब्दादण्। शाकल्यस्येमे छात्राः शाकलाः। कारिकायां 'तदन्तादी' इति शब्दात् समासोऽयं निस्सरति॥ १८॥

भाषार्थ—यहाँ पूर्वसूत्र से 'ष्फः—तद्धितः' पदों की अनुवृत्ति आती है। स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान गर्गादिगण में पठित लोहितादि कतपर्यन्त यञन्त प्रातिपदिकों से सर्वत्र=सब आचार्यों के मत में तद्धित संज्ञक 'ष्फ' प्रत्यय होता है। पूर्व सूत्र से विकल्प से प्राप्ति में नित्य ङीप् करने के लिए यह सूत्र है। जैसे—लौहित्यायनी। सांशित्यायनी। बाभ्रव्यायणी। इनमें 'ष्फ' प्रत्ययान्त से ङीष् हुआ है।

यहाँ कत पर्यन्त से कपि शब्द से अगले गणपठित केवल 'कत' शब्द का ग्रहण है, समस्त 'कुरुकत' का नहीं। यहाँ 'प्राचाम्' की अनुवृत्ति न होने से 'सर्वत्र' शब्द के विना भी सब आचार्यों के मत में ही प्रत्यय हो जाता, पुनः 'सर्वत्र' ग्रहण करने का यह प्रयोजन है—इस यञ् प्रत्ययान्त से ष्फ-विधान का जो कोई अन्य बाधक प्रत्यय हो, उसका भी बाधन होकर 'ष्फ' प्रत्यय ही होवे। जैसे—अवट् शब्द लोहितादि से पूर्व गर्गादि गण में पढा है, उस यञ् प्रत्ययान्त से प्राच्याचार्यों के मत में 'ष्फ' होता ही है, परन्तु दूसरों के मत में ''आवट्याच्च (४।१।७५) से 'चाप्' प्रत्यय प्राप्त होता है, उसका भी बाधन होकर 'ष्फ' प्रत्यय ही होवे। जैसे—आवट्यायनी।

का०— कण्वात्तु शकलः पूर्वः कतादुत्तर इष्यते।
पूर्वोत्तरौ तदन्तादी ष्फाणौ तत्र प्रयोजनम्॥ १॥

इस कारिका के द्वारा गर्गादिगण के कतिपय शब्दों पर विचार किया गया है। गर्गादिगण के अन्तर्गत ही लोहितादिकतन्त और कण्वादिगण हैं। गर्गादिगण में कण्व शब्द से परे शकल शब्द का पाठ है और लोहितादिकतन्त कण्व शब्द से पूर्व ही समाप्त हो गये हैं। शकल शब्द से लोहितादिकतन्त तथा कण्वादिगण के दोनों कार्य करने अभीष्ट हैं। कण्वादि में शकल शब्द के पाठ से शैषिक 'अण्' प्रत्यय हो जावे और लोहितादि में पाठ करने से स्त्रीविषय में 'ष्फ' प्रत्यय होना चाहिये। किन्तु गर्गादिगण में यथापठित शब्दों के पाठ से दोनों कार्य सिद्ध नहीं होते। गर्गादिगण में शब्द-पाठ इस प्रकार है—कपि। कत। कुरुकत। अनडुह। कण्व। शकल। और यहाँ इस प्रकार व्यवस्था समझनी चाहिए—शब्दों के इस क्रमिक पाठ में से कुरुकत तथा अनडुह शब्दों को यहाँ से उठाकर अन्यत्र गर्गादि में पाठ करना चाहिये और शकल शब्द का पाठ कत-कण्व शब्दों के मध्य में कर लेना चाहिये। इस प्रकार पाठ-परिवर्त्तन करने तथा समास विशेष मानने से दोनों कार्यों की सिद्धि हो जायेगी।

कारिका की प्रथम पंक्ति में गण-पाठ में परिवर्त्तन का प्रकार बताया गया है और अब उत्तरार्द्ध में समास विशेष मानकर इष्टसिद्धि बताते हैं—'पूर्वोत्तरौतद—

न्तादी।' जैसे शकल शब्द से 'ष्फ' प्रत्यय करने के लिए—'कतस्यान्त: कतन्त:' (तत्पुरुषसमास) और तत्पश्चात् 'कतन्तोऽन्ते येषां तानि कतन्तानि' बहुव्रीहि समास करना चाहिये। और इस प्रकार समास में दोनों कत शब्दों का एक शेष किया जाये। ऐसा करने से 'कत' शब्द से परवर्ती 'शकल' शब्द लोहितादिकतन्त में गृहीत हो जाता है और शकल शब्द से 'ष्फ' प्रत्यय होकर 'शाकल्यानी' रूप सिद्ध हो जायेगा। और 'कण्वादिभ्यो गोत्रे' सूत्र से शकल शब्द से शौषिक 'अण्' करने के लिये इस प्रकार समास किया जाये—'कण्वस्यादि: कण्वादि:' (षष्ठीतत्पुरुष) उसके बाद बहुव्रीहि समास किया जाये—'कण्वादि: शकलशब्द आदौ येषां ते कण्वादय:।' इस प्रकार समास करने से कण्वादि से शकलादि का ग्रहण हो जायेगा। यहाँ भी दोनों आदि शब्दों का एकशेष मानकर रूपसिद्धि जाननी चाहिए। इस प्रकार शकल शब्द से कण्वादि मानकर शैषिक 'अण्' प्रत्यय हो जायेगा। जैसे—शाकल्यस्येमे छात्रा: शाकला:। इस कारिका के 'तदन्तादी' शब्द से दोनों प्रकार का समास जानना चाहिए॥ १८॥

कौरव्यमाण्डूकाभ्यां च॥ १९॥

ष्फस्तद्धित इत्यनुवर्त्तते। कौरव्य-माण्डूकाभ्याम्—५।२। च [अ०]। कुरुशब्दाण् ण्यो भवति तदन्ताट् टाप् प्राप्तो मण्डूकशब्दादण् विधीयते तदन्ताच्च ङीप्। तयोष्टाप्-ङीपोरपवाद:। स्त्रियां वर्त्तमानाभ्यां कौरव्य-माण्डूकाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां तद्धितसंज्ञक: ष्फो भवति। कौरव्यायणी। मण्डूकायनी।

वा०—कौरव्य-माण्डूकयोरासुरेरुपसंख्यानम्॥ १॥

आसुरिशब्दादिञन्तादपि ष्फो यथा स्यात्। आसुरायणी।

वा०—छश्च॥ २॥

शैषिकेष्वर्थेषु छापवाद इञश्चेत्यण् प्राप्त: स आसुरिशब्दान्माभूत् छ एव यथा स्यात्। अस्मिन् वार्त्तिके शेषाधिकारे पठितव्येऽत्र पठनं लाघवार्थम्। तत्र पठने आसुरिशब्दस्योभयत्र पाठ: स्यात्। अत्रानुवर्तिष्यते। आसुरिणा प्रोक्त आसुरीय: कल्प:॥ १९॥

भाषार्थ—यहाँ 'ष्फ:, तद्धित:' पदों की अनुवृत्ति है। यह सूत्र टाप्-ङीप् प्रत्ययों का अपवाद है। कुरु शब्द से ण्य प्रत्यय करने पर कौरव्य शब्द बना है, इससे अदन्त होने से टाप् प्राप्त है और मण्डूक शब्द से अण् प्रत्यय करने पर 'माण्डूक' शब्द बना है, इससे ''टिड्ढाणञ्'' (४।१।१५) सूत्र से ङीप् प्राप्त है। स्त्रीलिंग में वर्त्तमान कौरव्य, माण्डूक प्रातिपदिकों से तद्धित संज्ञक 'ष्फ' प्रत्यय होता है। जैसे—कौरव्यायणी। माण्डूकायनी।

वा०—कौरव्यमाण्डूकयोरासुरेरुपसंख्यानम्॥ १॥

इञ् प्रत्ययान्त आसुरि शब्द से भी स्त्रीविषय में तद्धित संज्ञक 'ष्फ' प्रत्यय होता है। जैसे—आसुरायणी।

वा०—छश्च॥ २॥

यह वार्त्तिक शेषाधिकार में पढ़ना चाहिए किन्तु यहाँ इसका पाठ लाघवार्थ है। शेषाधिकार में पाठ करने पर 'आसुरि' शब्द का पुन: पाठ करना पड़ता। यहाँ अनुवृत्ति से ही कार्यसिद्धि हो जाती है। 'इञ्' प्रत्ययान्त शब्दों से शेषाधिकार में छ प्रत्यय के अपवाद 'इञश्च' (४।२।११२) सूत्र से 'अण्' प्राप्त होता है। 'अण्' न होकर 'छ' ही हो, इसलिये वार्त्तिक बनाया है। जैसे—आसुरिणा प्रोक्त आसुरीय: कल्प:॥ १९॥

वयसि प्रथमे॥ २०॥

ङीबनुवर्त्तते। वयसि —७।१। प्रथमे —७।१। प्रथमावस्थायां स्त्रीलिङ्गे यत् प्रातिपदिकं वर्त्तते तस्माददन्तान् ङीप् प्रत्ययो भवति। कुमारी। किशोरी। कुमारीत्यत्र पुंसा सहासमागमसंबन्धाद् वयो गम्यते। कन्याशब्दात्तु 'कन्याया: कनीन चेति' निपातनज्ञापकान्न भवति।

वा०—वयस्यचरम इति वक्तव्यम्॥ १॥

सूत्रे प्रथमशब्दाद् बाल्यावस्था गृह्यते। अचरमे=मध्ययौवनावस्थायामपि स्यात्—वधूटी। चिरण्टी। प्राप्तयौवनेत्यर्थ:। अचरम इति किमर्थम्। वृद्धा। स्थविरा। अत्र टाबेव॥ २०॥

भाषार्थ—यहाँ ङीप् की अनुवृत्ति है। प्रथमावस्था को बोध करानेवाला स्त्रीलिङ्ग में जो प्रातिपदिक है, उस अदन्त प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय होता है। जैसे—कुमारी। किशोरी।

'कुमारी' शब्द से पुरुष के साथ सम्बन्ध न होने से प्रथम वय का बोध होता है। और कन्या शब्द भी यद्यपि वय का बोधक है उससे 'ङीप्' इसलिये नहीं होता। क्योंकि पाणिनिमुनि ने 'कन्याया: कनीन च' सूत्र में निपातन करके ङीप् प्रत्यय नहीं किया है।

वा०—वयस्यचरम इति वक्तव्यम्॥ १॥

सूत्र में प्रथम शब्द से बाल्यावस्था का ग्रहण किया है। यौवनावस्था में भी ङीप् हो जाये, एतदर्थ वार्त्तिक बनाया है। अचरमे=वृद्धावस्था को छोड़कर अन्य बाल्य तथा यौवनावस्था में ङीप् प्रत्यय होता है। जैसे—वधूटी। चिरण्टी। ये प्राप्तयौवन द्वितीयावस्था के नाम हैं। यहाँ 'अचरमे' का ग्रहण इसलिये है कि—वृद्धा। स्थविरा। यहाँ ङीप् न हो, टाप् ही हो॥ २०॥

द्विगो:॥ २१॥

द्विगो:—५।१। अकारान्तो द्विगु: स्त्रियां भाष्यत इति वार्तिकात् स्त्रीत्वम्। स्त्रियां वर्त्तमानाददन्ताद् [द्विगुसंज्ञकात्] प्रातिपदिकान् ङीप् प्रत्ययो भवति। अष्टाध्यायी। पंचपूली। दशपूली। त्रिफला शब्दोऽजादिषु पठ्यते। तस्मान् ङीम् न भवति। अत इति किम्—बह्वीनां कुमारीणां समाहारो बहुकुमारि। पंचकुमारि॥ २१॥

भाषार्थ—अकारान्त द्विगु समास स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त होता है' ऐसा वार्त्तिक में कहा है। स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान द्विगुसंज्ञक अदन्त प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय होता है। जैसे—अष्टाध्यायी। पञ्चपूली। दशपूली। 'त्रिफला' शब्द में भी द्विगु समास है, किन्तु इसका अजादिगण में पाठ है, अतः उससे 'टाप्' ही होता है, 'ङीप्' नहीं। यहाँ 'अतः' ग्रहण का प्रयोजन है कि—**बह्वीनां कुमारीणां समाहारो बहुकुमारि। पञ्चकुमारि।** यहाँ अदन्त न होने से ङीप् नहीं हुआ॥ २१॥

अपरिमाणबिस्ताचितकम्बल्येभ्यो न तद्धितलुकि॥ २२॥

द्विगोरित्यनुवर्त्तते। पूर्वसूत्रेण प्राप्तस्य ङीपोऽयं प्रतिषेधः। अपरि......... कम्बल्येभ्यः —५।३।न [अ०] तद्धितलुकि —७।१। परितो मानं परिमाणं निश्चितव्यवस्थेयत्ता। तत्प्रतिषेधः। बिस्तादीनां ग्रहणं परिमाणार्थम्। अपरिमाणान्ताद् द्विगोर्बिस्ताचितकम्बल्यन्ताच्च तद्धितलुकि सति स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो न भवति। अपरिमाणान्तात्—पंचभिरश्वैः क्रीता पंचाश्वा। दशाश्वा। तेन क्रीतमिति ठक्। अध्यर्द्धपूर्वाद् द्विगोरिति लुक्। द्विबिस्ता। त्रिबिस्ता। द्व्याचिता। त्र्याचिता। द्विकम्बल्या। त्रिकम्बल्या। अपरिमाणेति किम्। द्व्याढकी। त्र्याढकी। तद्धितलुकीति किम्। द्वाभ्यां कार्षापणाभ्यां क्रीता द्विकार्षापणिकी॥ २२॥

भाषार्थ—यहाँ 'द्विगोः' पद की अनुवृत्ति है। पूर्वसूत्र से प्राप्त ङीप् का इससे प्रतिषेध किया गया है। परिमाण शब्द का अर्थ है—**'परितो मानं परिमाणम्'** अर्थात् तोलकर निश्चित व्यवस्था करने का साधन परिमाण कहलाता है। और परिमाण के प्रतिषेध से बिस्तादि का भी ग्रहण प्राप्त है, अतः इन परिमाण वाचियों से भी सूत्रकार्य हो जाये, अतः इनका पृथक् ग्रहण किया है। स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान अपरिमाणान्त, बिस्तान्त, आचितान्त और कम्बल्यान्त द्विगु संज्ञक अदन्त प्रातिपदिकों से तद्धित प्रत्यय के लुक् होने पर 'ङीप्' प्रत्यय नहीं होता है। जैसे—**पंचभिरश्वैः क्रीता पंचाश्वा। दशाश्वा।** यहाँ 'तेन क्रीतम्' (५।१।७) सूत्र से 'ठक्' और ''अध्यर्द्धपूर्वात्'' (५।१।२८) सूत्र से तद्धित का लुक् हुआ है।

द्विबिस्ता। त्रिबिस्ता। द्व्याचिता। त्र्याचिता। द्विकम्बल्या। त्रिकम्बल्या। यहाँ 'अपरिमाण' का ग्रहण इसलिये है—द्व्याढकी। त्र्याढकी। और 'तद्धितलुकि' का ग्रहण इसलिये है कि **द्वाभ्यां कार्षापणाभ्यां क्रीता द्विकार्षापणिकी**॥ २२॥

काण्डान्तात् क्षेत्रे॥ २३॥

द्विगोरिति प्राप्तस्यैव प्रतिषेधः। काण्डान्तात् —५।१। क्षेत्रे —७।१। स्त्रियां वर्त्तमानात् काण्डान्ताद् द्विगोः प्रतिपदिकान् ङीप् प्रत्ययो न भवति [क्षेत्रेऽभिधेये] द्विकाण्डा। त्रिकाण्डा। क्षेत्र इति काण्डान्तात् प्रतिषेधो नियमार्थम्। तेनेह प्रतिषेधो न भवति। द्विकाण्डी रज्जुः। त्रिकाण्डी रज्जुः॥ २३॥

भाषार्थ—'द्विगोः' सूत्र से प्राप्त 'ङीप्' का इससे निषेध किया है। स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान काण्ड शब्दान्त द्विगुसंज्ञक प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय नहीं होता, क्षेत्र

अभिधेय हो तो। जैसे—**द्वे काण्डे प्रमाणमस्याः सा द्विकाण्डा क्षेत्रभक्तिः। त्रिकाण्डा क्षेत्रभक्तिः।** क्षेत्रवाच्य हो तो काण्डान्त से यह प्रतिषेध नियमार्थ है। इसलिये क्षेत्र से अन्यत्र निषेध नहीं होता। जैसे—द्विकाण्डी रज्जुः। त्रिकाण्डी रज्जुः।

पुरुषात् प्रमाणेऽन्यतरस्याम्॥ २४॥

अप्राप्तविभाषेयम्। पुरुषात् —५।१। प्रमाणे —७।१। अन्यतरस्याम् [अ०] प्रमाणेऽर्थे यः पुरुषशब्दस्तदन्ताद् द्विगोः प्रातिपदिकात् तद्धितलुकि सति स्त्रियां विकल्पेन ङीप् प्रत्ययो भवति। द्विपुरुषी परिखा। द्विपुरुषा परिखा। अपरिमाणान्तत्वान्नित्ये प्रतिषेधे प्राप्ते विकल्पार्थ आरम्भः। प्रमाण इति किम्। द्विपुरुषा। त्रिपुरुषा। तद्धितलुकीति किम्। समाहारे विकल्पः प्रतिषेधो वा मा भूत्। द्विपुरुषी। त्रिपुरुषी। ङीप् स्यादेव॥ २४॥

भाषार्थ—यह अप्राप्तविभाषा है। प्रमाण=नापने अर्थ में स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान पुरुष शब्दान्त द्विगु संज्ञक प्रातिपदिक से तद्धित प्रत्यय के लुक् होने पर विकल्प से ङीप् प्रत्यय होता है। जैसे—**द्वौ पुरुषौ प्रमाणमस्याः परिखायाः सा द्विपुरुषी परिखा। द्विपुरुषा परिखा।**

यहाँ अपरिमाण वाची होने से पुरुषान्त से नित्य निषेध प्राप्त है, इसलिये यह अप्राप्त विभाषा है। यहाँ 'प्रमाणे' का ग्रहण इसलिये है—द्विपुरुषा। त्रिपुरुषा। यहाँ विकल्प से ङीप् न हो। और 'तद्धितलुकि' इसलिये कहा है कि द्विपुरुषी। त्रिपुरुषी। यहाँ समाहार में विकल्प अथवा निषेध न होवे। ङीप् प्रत्यय ही हो जावे॥ २४॥

बहुव्रीहेरूधसो ङीष्॥ २५॥

ङीप्डाप्प्रतिषेधानामपवादः। बहुव्रीहेः —५।१। ऊधसः —५।१। ङीष् —१।१। बहुव्रीहिसमासे ऊधश्शब्दात् समासान्तोऽनङ् विधीयते। तेन अन उपधालोपित्वान् ङीप् प्राप्तः। पक्षेऽनो बहुव्रीहेरिति डाप्-प्रतिषेधौ। तेषां सर्वेषां बाधको ङीष् विधीयते। स्त्रियां वर्तमानाद् ऊधश्शब्दान्ताद् बहुव्रीहेङीर्ष् प्रत्ययो भवति। ऊधस् इति पश्वादीनां दुग्धस्थानमुच्यते। पीतमूधोऽस्याः पीतोध्नी। रक्तोध्नी। घट इव ऊधोऽस्या घटोध्नी। कुम्भोध्नी। समासान्तानङ् आदेशोऽपि स्त्रीलिङ्ग एव भवति। तेनेह न भवति। महोधाः पर्जन्यः। बहुव्रीहेरिति किम्। प्राप्ता ऊधः प्राप्तोधाः। समासान्तेऽपि बहुव्रीहेरनुवर्त्तनादत्रानङ् न भवति॥ २५॥

भाषार्थ—यह ङीप् और डाप् प्रत्ययों का तथा प्रतिषेधों का अपवाद है। बहुव्रीहि समास में 'ऊधस्' शब्द से समासान्त 'अनङ्' आदेश का विधान किया है। इससे अन उपधालोपिनो' (४।१।२८) सूत्र से ङीप् प्रत्यय विकल्प से प्राप्त है और पक्ष में 'अनो बहुव्रीहेः' (४।१।१२) सूत्र से 'डाप्' और प्रतिषेध प्राप्त हैं। यह 'ङीष्' उन सबका बाधक है। स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान ऊधस् शब्दान्त बहुव्रीहि प्रातिपदिक से 'ङीष्' प्रत्यय होता है। गौ आदि पशुओं के दुग्धस्थान को ऊधस् कहते हैं। जैसे—**पीतमूधोऽस्याः पीतोध्नी। रक्तोध्नी। घट इव ऊधोऽस्याः सा घटोध्नी। कुम्भोध्नी।** समासान्त 'अनङ्' आदेश भी स्त्रीलिङ्ग में ही होता है।

इसलिए 'ङीष्' यहाँ नहीं होता—महोधाः पर्जन्यः। यहाँ 'बहुव्रीहि' का ग्रहण इसलिये है कि **प्राप्ता ऊधः प्राप्तोधाः**। यहाँ ङीष् नहीं हुआ। समासान्त 'अनङ्' आदेश में भी बहुव्रीहि की अनुवृत्ति होने से यहाँ अनङ् आदेश नहीं हुआ है॥ २५॥

संख्याव्ययादेर्ङीप्॥ २६॥

पूर्वसूत्रस्यायमपवादः। ङीष् प्राप्तौ ङीब् विधीयते। संख्याव्ययादेः-५।१। ङीप् —१।१। संख्यादेरव्ययादेश्चोधसन्ताद् बहुव्रीहेः प्रातिपदिकात् स्त्रियाँ ङीप् प्रत्ययो भवति। द्व्यूध्नी। त्र्यूध्नी। उपोध्नी। अत्यूध्नी। आदिग्रहणादिहापि सिद्धं भवति। द्विविधोध्नी॥ २६॥

भाषार्थ—यह पूर्वसूत्र का अपवाद है। पूर्वसूत्र से 'ङीष्' की प्राप्ति में 'ङीप्' का विधान किया है। स्त्रीलिंग में वर्त्तमान, संख्या और अव्यय जिसके आदि में हों, ऐसे ऊधस् शब्दान्त बहुव्रीहि प्रातिपदिक से 'ङीप्' प्रत्यय होता है। जैसे—संख्यादि—द्व्यूध्नी। त्र्यूध्नी। अव्ययादि—उपोध्नी। अत्यूध्नी। आदि ग्रहण से यहाँ भी ङीप् होता है—द्विविधोध्नी॥ २६॥

दामहायनान्ताच्च॥ २७॥

ऊधस इति निवृत्तम्। संख्यादेरित्यनुवर्त्तते। अव्ययादेरिति निवृत्तम्। क्वचिदेक देशोऽप्यनुवर्त्तत इति वचनात्। दामहायनान्तात् —५।१। च-[अ०] दामान्ताद् हायनान्ताच्च संख्यादेर्बहुव्रीहेः प्रातिपदिकान् ङीप् प्रत्ययो भवाति। द्वे दाम्नी अस्या द्विदाम्नी। त्रिदाम्नी। द्विहायनी। त्रिहायणी। दामन्-शब्दादनोबहुव्रीहेरिति डाप्-प्रतिषेधौ प्राप्तौ। तयोरपवादः। हायनान्तादप्राप्ते ङीप् विधीयते। अथेह कस्मान्न भवाति—द्वौ हायनावस्याः शालाया द्विहायना। त्रिहायना। 'हायनो वयसि स्मृत' इति महाभाष्य प्रामाण्याद् वयो वाची हायनशब्दो गृह्यते। स च चेतनावत्सु घटते, न च शालादिषु जडेषु॥ २७॥

भाषार्थ—यहाँ 'ऊधस्' पद की अनुवृत्ति नहीं है। 'संख्यादेः' पद की अनुवृत्ति है, 'अव्ययादेः' की नहीं। यद्यपि सूत्रस्थ पदों की एक साथ ही अनुवृत्ति या निवृत्ति होती है, किन्तु इस नियम का यह अपवाद है—कहीं एकावयव की भी अनुवृत्ति होती है। स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान, संख्या जिसके आदि में हो उस दामन् शब्दान्त और हायन शब्दान्त बहुव्रीहि प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय होता है। जैसे—**द्वे दाम्नी अस्या द्विदाम्नी। त्रिदाम्नी। द्विहायनी। त्रिहायणी।**

यहाँ दामन् शब्दान्त से अनो 'बहुव्रीहेः' (४।१।१२) सूत्र से डाप् और प्रतिषेध प्राप्त हैं, यह उन दोनों का अपवाद है। और हायनान्त शब्द से अप्राप्त ङीप् का विधान किया है।

प्रश्न—यह ङीप् प्रत्यय यहाँ क्यों नहीं होता—**द्वौ हायनावस्याः शालाया द्विहायना। त्रिहायना।**

उत्तर—**'हायनो वयसि स्मृतः'**। इस महाभाष्य के वचन से यहाँ वयः अवस्थावाची हायन शब्द का ग्रहण है, और वह चेतनावानों में ही संगत होता

है, जडशालादि में नहीं। अतः ङीप् नहीं होता है॥ २७॥

अन उपधालोपिनोऽन्यतरस्याम्॥ २८॥

अप्राप्तविभाषेयम्। डाबुभाभ्यामिति डाप्-प्रतिषेधौ प्राप्तौ न तु केनापि ङीप्। अनः —५।१। उपधालोपिनः —५।१। अन्यतरस्याम् [अ०]। उपधालोपिनोऽन्नन्तात् स्त्रियां वर्त्तमानाद् बहुव्रीहेर्ङीप् प्रत्ययो विकल्पेन भवति। पक्षे डाप्-प्रतिषेधौ। बहवो राजानोऽस्यां सभायां बहुराज्ञी। बहुराजाः सभा। बहुराजानः सभाः। अन इति किम्। बहुमत्स्या। अत्रापीकारे परत उपधासंज्ञस्य यकारस्य लोपो भवति। उपधालोपिन इति किम्। सुपर्वे। सुपर्वाणौ। चारुपर्वे। चारुपर्वाणौ। अत्र डाप्-प्रतिषेधौ भवतः॥ २८॥

भाषार्थ—यह अप्राप्तविभाषा है। 'डाबुभाभ्यां' (४।१।१३) सूत्र से डाप् और प्रतिषेध प्राप्त हैं, किन्तु किसी से 'ङीप्' प्राप्त नहीं है। स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान अन् जिसके अन्त में है, उस उपधालोपी बहुव्रीहि प्रातिपदिक से विकल्प से ङीप् प्रत्यय होता है। पक्ष में डाप् और स्त्री प्रत्यय का प्रतिषेध होता है। जैसे—**बहवो राजानोऽस्यां सभायां बहुराज्ञी। डाप्=बहुराजाः सभाः।** स्त्रीप्रत्यय प्रतिषेध—**बहुराजानः सभाः।** यहाँ 'अन्नन्त' का ग्रहण इसलिये हैं कि—**बहुमत्स्या।** यहाँ ङीप् नहीं होता, यथाप्राप्त डाप्-प्रतिषेध तो होते हैं॥ २८॥

नित्यं संज्ञाछन्दसोः॥ २९॥

अन उपधालोपिन इत्यनुवर्त्तते। विकल्पस्यापवादः। नित्यम् —१।१। संज्ञाछन्दसोः —७।२। संज्ञायां विषये छन्दसि चोपधालोपिनोऽन्नन्ताद् बहुव्रीहेः स्त्रियां नित्यं ङीप् प्रत्ययो भवति। संज्ञायाम्—सुराज्ञी। अतिराज्ञी। छन्दसि—गौः पञ्चदाम्नी। एकमूर्द्ध्नी। समानमूर्द्ध्नी॥ २९॥

भाषार्थ—यहाँ 'अन उपधालोपिनः' पदों की अनुवृत्ति है। पूर्वसूत्र के विकल्प का यह अपवाद है। स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान अन्नन्त उपधालोपी बहुव्रीहि प्रातिपदिक से संज्ञा और वेद विषय में 'ङीप्' प्रत्यय नित्य होता है। जैसे—संज्ञा में—सुराज्ञी। अतिराज्ञी। वेदविषय में—गौः पञ्चदाम्नी। एकमूर्ध्नी। समानमूर्ध्नी॥ २९॥

केवलमामकभागधेयपापापरसमानार्य्यकृतसुमङ्गलभेषजाच्च॥ ३०॥

संज्ञाछन्दसोरित्यनुवर्त्तते। अन उपधालोपिनो बहुव्रीहेरिति निवृत्तम्। केवल........ भेषजात् —५।१। च [अ०]/केवलादीनां समाहारद्वन्द्वः। संज्ञायां विषये छन्दसि च स्त्रियां वर्तमानेभ्यः केवलादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो ङीप् प्रत्ययो भवति। टापोऽपवादः। केवली। मामकी तनू इति। मित्रावरुणयोर्भागधेयी। पापी। अपरी। समानी। आर्य्यकृती। सुमंगलीरियं वधूः। [भेषजी] संज्ञाछन्दसोरिति किम्। केवला। इत्येवान्यत्र। मामक शब्दात् त्वणन्तत्वान् ङीप् प्राप्तस्तन् नियमार्थं संज्ञा-छन्दसोरेव ङीप्। मामका इत्येवान्यत्र॥ ३०॥

भाषार्थ—यहाँ 'संज्ञा-छन्दसोः' पद की अनुवृत्ति आती है और 'अन उपधालोपिनो बहुव्रीहेः' पदों की नहीं। सूत्र में केवलादि पदों का समाहार द्वन्द्व

समास है। स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान केवल, मामक, भागधेय, पाप, अपर, समान, आर्यकृत, सुमंगल और भेषज प्रातिपदिकों से संज्ञा और वेद विषय में ङीप् प्रत्यय होता है। यह 'टाप्' प्रत्यय का अपवाद है। जैसे—केवली। मामकी तनू इति। मित्रावरुणयोर्भागधेयी। पापी। अपरी। समानी। आर्य्यकृती। सुमंगलीरियं वधूः। भेषजी। यहाँ 'संज्ञा-छन्दसोः' का ग्रहण इसलिये है—केवला। इत्यादि में 'टाप्' ही होवे। यद्यपि 'मामक' शब्द से अण् प्रत्ययान्त होने से 'ङीप्' प्राप्त है, पुनरपि 'ङीप्' का विधान नियमार्थ है। संज्ञा तथा वेदविषय से अन्यत्र ङीप् न हो। और 'टाप्' प्रत्यय होकर 'मामका' ही रूप बने॥ ३०॥

रात्रेश्चाजसौ॥ ३१॥

संज्ञा-छन्दसोरित्यनुवर्त्तते। रात्रेः —५।१। च [अ०] अजसौ —७।१। संज्ञायां छन्दसि च विषये जसोऽन्यत्र विभक्तौ परतो रात्रिशब्दान् ङीप् प्रत्ययो भवति। या रात्री सृष्टा। रात्रीभिः। अजसाविति किम्। यास्ता रात्रयः॥

वा०— अजसादिष्विति वक्तव्यम्॥ १॥

इहापि यथा स्यात्—

रात्रिं रात्रिं स्मरिष्यन्तो रात्रिं रात्रिमजानन्तः।
सर्वां रात्रिं सहोषित्वा पत्या एकान्तरात्रिकाम्॥ १॥

अस्मिन् श्लोके रात्रिशब्दो द्वितीयैकवचनान्तस्तत्र ङीप् न भवति॥ ३१॥

भाषार्थ—यहाँ 'संज्ञा-छन्दसोः' पद की अनुवृत्ति है। संज्ञा और वेदविषय में स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान रात्रि शब्द से 'जस्' विभक्ति से भिन्न विभक्ति में 'ङीप्' प्रत्यय होता है। जैसे—**या रात्री सृष्टा। रात्रीभिः**। यहाँ 'अजसौ' का ग्रहण इसलिये है कि यास्ता रात्रयः। यहाँ 'जस्' विभक्ति के परे ङीप् प्रत्यय न होवे।

वा०—अजसादिष्विति वक्तव्यम्॥ १॥

सूत्र में केवल जस् विभक्ति के परे ङीप् का निषेध किया है, वह जस् आदि के परे निषेध कहना चाहिये। जिससे यहाँ भी निषेध हो सके—**रात्रिं रात्रिं स्मरिष्यामोरात्रिं रात्रिमजानन्तः। सर्वां रात्रिं सहोषित्वा पत्या एकान्तरात्रिकाम्॥** इस श्लोक में रात्रि शब्द द्वितीय विभक्ति का एकवचनान्त है। इसमें भी ङीप् नहीं हुआ॥ ३१॥

अन्तर्वत्पतिवतोर्नुक्॥ ३२॥

अन्तर्वत्पतिवतोः —६।२। नुक् —१।१। स्त्रीलिङ्गे वर्त्तमानाभ्यां मत्वन्ताभ्याम् अन्तर्वत्—पतिवच्छब्दाभ्यां ङीप् प्रत्ययो भवति। ङीप् संनियोगेऽनयोर्नुगागमश्च। अन्तर्वत्नी। पतिवत्नी।

का०— अन्तर्वत् पतिवतोर्नुङ्मतुब्वत्वे निपातनात्।
गर्भिण्यां जीवपत्यां च वाच्छन्दसि नुग्भवेन्॥ १॥

अन्तःशब्दोऽधिकरणवाची। प्रथमासमानाधिकरणे च मतुब् विधीयते।

तत्रान्तर्शब्दे निपातनान्मतुप्। पतिशब्दान्मतुपो वत्वं निपात्यते। छन्दसि=वैदिकप्रयोगे गर्भिण्यामभिधेयायामन्तर्वच्छब्दाद् विकल्पेन नुक् ङीप् च नित्यमेव भवति। पतिवच्छब्दाच्च जीवपत्यामभिधेयायां पूर्ववन्ङीम्—नुकौ। जीवो विद्यमान पतिरस्या इति। अन्तर्वच्छब्दाद् गर्भिण्यां तावत्—सान्तर्वत्नी देवानुपैत्। सान्तर्वती देवान् उपैत्। पतिवच्छब्दाज्जीवपत्याम्। पतिवती तरुणवत्सा। पतिवत्नी तरुणवत्सा। जीवद्भर्तृका॥ ३२॥

भाषार्थ—स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान मतुप् प्रत्ययान्त अन्तर्वत् और पतिवत् शब्दों से ङीप् प्रत्यय होता है और ङीप् के संनियोग से दोनों शब्दों को नुक् आगम होता है। जैसे—अन्तर्वत्नी। पतिवत्नी।

का०— अन्तर्वत्-पतिवतोर्नुङ् मतुब्-वत्वे निपातनात्।
गर्भिण्यां जीवपत्यां च वा च छन्दसि नुग् भवेत्॥ १॥

अन्तर् शब्द अधिकरणवाची है और मतुप् प्रत्यय का प्रथमासमानाधिकरण में विधान किया है। इसलिये 'अन्तर्' शब्द से 'मतुप्' प्रत्यय प्राप्त न होने से निपातन से 'मतुप्' प्रत्यय हुआ है और पति शब्द से 'मतुप्' प्राप्त है, वकारादेश प्राप्त नहीं है, वह निपातन से हुआ है। क्या यह निपातन का कार्य सामान्यरूप से विधान किया गया है? नहीं। 'गर्भिण्यां जीवपत्यां च०' वैदिक प्रयोग विषय में 'अन्तर्वत्' से गर्भिणी अर्थ में विकल्प से 'नुक्' आगम और 'ङीप्' प्रत्यय नित्य होता है और 'पतिवत्' शब्द से जिसका पति जीवित हो उस अर्थ में पूर्ववत् ङीप्-नुक् होते हैं अर्थात् विकल्प से 'नुक्' और 'ङीप्' प्रत्यय नित्य होता है। जैसे—'अन्तर्वत्' शब्द से गर्भिणी अर्थ में—**सान्तर्वत्नी देवानुपैत्। सान्तर्वती देवानुपैत्।** पतिवत् शब्द से जीवितपति अर्थ में—**पतिवत्नी तरुणवत्सा। पतिवती तरुणवत्सा॥ ३२॥**

पत्युर्नो यज्ञसंयोगे॥ ३३॥

पत्युः —६।१। नः —१।१। यज्ञसंयोगे —७।१। यज्ञेन संयोगो यज्ञसंयोगः। स्त्रियां वर्त्तमानात् पतिशब्दान् ङीप् प्रत्ययः पतिशब्दस्य नकारादेशश्च भवति। गृहस्थानां पंचमहायज्ञानुष्ठानं नैत्यकं कर्म, तत्र जायापत्योः सहाधिकारः। यजमानस्य पत्नी। इममस्य पत्नी। पत्नि! वाचं यच्छ। यज्ञसंयोग इति किम्—ग्रामस्य पतिरियं ब्राह्मणी॥ ३३॥

भाषार्थ—स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान 'पति' शब्द से यज्ञ से संयोग होने पर 'ङीप्' प्रत्यय होता है और प्रत्यय सन्नियोग से पति शब्द को नकारादेश होता है। पञ्चमहायज्ञों का अनुष्ठान करना गृहस्थ-पुरुषों का नित्य कर्म है। उनमें पति-पत्नी का एकसाथ अधिकार है; यज्ञों के कर्त्ता होने से दोनों ही यज्ञकृत फल से सम्बन्ध रखने के कारण यज्ञ से सम्बद्ध हैं। जैसे—यजमानस्य पत्नी। इयमस्य पत्नी। पत्नि! वाचं यच्छ। यहाँ 'यज्ञसंयोगे' का ग्रहण इसलिये है कि ग्रामस्य पतिरियं ब्राह्मणी। यहाँ न हो॥ ३३॥

विभाषा सपूर्वस्य॥ ३४॥

पत्युर्नो इत्यनुवर्त्तते। विभाषा [अ०]। सपूर्वस्य —६।१। अप्राप्तविभाषेयम्। अयज्ञसंयोगार्थ आरम्भः। विद्यमानपूर्वात् पतिशब्दाद् विकल्पेन स्त्रियां ङीप् तत्संनियोगे पतिशब्दस्य नकारादेशश्च। निषेधपक्षे नकारादेशोऽपि न भवति। वृद्धपत्नी। वृद्धपतिः। बालपत्नी। बालपतिः। समानाधिकरणतत्पुरुषोऽयं समासः। सपूर्वस्येति किम्। ग्रामस्य पतिरियम्॥ ३४॥

भाषार्थ—यहाँ 'पत्युर्नः' पदों की अनुवृत्ति है। यह अप्राप्त विभाषा है। यज्ञ संयोग से अन्यत्र यह विधान करता है। स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान सपूर्व=पूर्वपदसहित पति शब्द से विकल्प से ङीप् प्रत्यय और प्रत्यय सन्नियोग से पति शब्द को नकारादेश होता है। निषेध पक्ष में नकारादेश भी नहीं होता है। जैसे—वृद्धपत्नी। वृद्धपतिः। बालपत्नी। बालपतिः। यहाँ समानाधिकरण तत्पुरुष समास है। यहाँ 'सपूर्वस्य' का ग्रहण इसलिये किया है कि—**ग्रामस्य पतिरियम्**। यहाँ ङीप्-नकारादेश न होवें॥ ३४॥

नित्यं सपत्न्यादिषु॥ ३५॥

पूर्वेण विकल्पे प्राप्ते नित्यार्थ आरम्भः/नित्यम्—१।१। सपत्न्यादिषु —७।३। सपत्न्यादिषु पतिशब्दान् ङीम् नकारादेशश्च नित्यं भवति। समानः पतिरस्याः सपत्नी। एकपत्नी। सपत्न्यादिष्विति पाठः समानशब्दस्य निपातनात् सकारादेशो यथास्यात्। अन्यथा समानादिभ्य इति वक्तव्यं स्यात्।

समानादिगणः—समान। एक। वीर। पिण्ड। श्व। भ्रातृ। भद्र। पुत्र। दासाच्छन्दसि॥ इति समानादिगणः॥ ३५॥

भाषार्थ—पूर्वसूत्र से विकल्प की प्राप्ति में नित्यार्थ यह सूत्र बनाया है। सपत्नी आदि शब्दों में स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान पति शब्द से नित्य 'ङीप्' प्रत्यय और नकारादेश होते हैं। जैसे—**समानः पतिरस्याः सपत्नी। एकपत्नी**। इत्यादि।

यहाँ सूत्र में 'सपत्न्यादिषु' ऐसा पाठ इसलिये किया है कि निपातन से समान शब्द को सकारादेश हो जाये। अन्यथा 'समानादिभ्यः' पाठ से भी कार्यसिद्धि हो सकती थी॥ ३५॥

पूतक्रतोरै च॥ ३६॥

ङीबनुवर्तते। पूतक्रतोः —६।१। ऐ —१।१। च [अ०]। पूतः क्रतुर्येन स पूतक्रतुः। पुंयोगायां स्त्रियां वर्त्तमानात् पूतक्रतुशब्दात् ङीप् प्रत्ययो भवति प्रकृतेरैकारादेशश्च। पूतक्रतोः स्त्री पूतक्रतायी।

वा०—पूतक्रत्वादीनां पुंयोगप्रकरणे वचनम्॥ २॥

आदिशब्देनात्र त्रीणि सूत्राणि गृह्यन्ते मनोरौवेति पर्यन्तम्। त्रिषु योगेषु पुंयोगान् ङीब् यथा स्यात्। तथैवोदाहृतम्। तेनेह न भवति—यया हि पूताः क्रतवः पूतक्रतुः सा भवति।

परि०—संनियोगशिष्टानामन्यतरापाय उभयोरप्यपायः॥

तद्यथा-देवदत्तयज्ञदत्ताभ्यामिदं कार्यं कर्त्तव्यम्। देवदत्तापाये यज्ञदत्तोऽपि न करोति। लौकिकोऽयं दृष्टान्तः। इह व्याकरणेऽस्या एतत् प्रयोजनम्। पंचपूतक्रताय्यो देवता अस्य स्थालीपाकस्य। एवं विग्रहे देवतायां विहितस्याण् प्रत्ययस्य 'द्विगोर्लुगनपत्य' इति लुक्। ततो 'लुक् तद्धितलुकीति' स्त्री-प्रत्ययस्य लुक्। स्त्री प्रत्यय संनियुक्तस्यैकारादेशस्यानया परिभाषयाऽभावः। एवं पंचेन्द्राण्यो देवता अस्य पंचेन्द्रः। दशाग्नाय्यो देवता अस्य दशाग्निः। इत्यादिष्वागमादेशानामभावो भवति॥ ३६॥

भाषार्थ—यहाँ ङीप् की अनुवृत्ति है। स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान पुंयोग=पुरुष के योग के कहने में 'पूतक्रतु' शब्द से 'ङीप्' प्रत्यय और प्रकृति को ऐकारादेश होता है। जैसे—पूतक्रतोः स्त्री पूतक्रतायी।

वा०—पूतक्रत्वादीनां पुंयोगप्रकरणे वचनम्॥

आदि शब्द से यहाँ तीन सूत्रों का ग्रहण किया गया है। 'पूतक्रतोरै च' सूत्र से 'मनोरौ वा' सूत्रपर्यन्त तीन सूत्र हैं। इन तीन सूत्रों में पुंयोगाख्या में ङीप् प्रत्यय होवे, एतदर्थ यह वार्तिक है। इनके उदाहरण यथायोग में कहे हैं। पुंयोग कहने से यहाँ ङीप् नहीं होता है—**यया हि पूताः क्रतवः पूतक्रतुः सा भवति।**

परि०—संनियोगशिष्टानामन्यतरापाय उभयोरप्यपायः॥

किसी सूत्र से एक साथ एक से अधिक कार्यों का जो विधान किया है, वह संनियोगशिष्ट कहलाता है। उन कार्यों में जब एक कार्य का अभाव जिस सूत्र से हो जाता है, तो दूसरे कार्य का भी अभाव उसी सूत्र से समझना चाहिए। जैसे यह लौकिक दृष्टान्त है—देवदत्त और यज्ञदत्त दोनों मिलकर इस कार्य को करें। सो जो देवदत्त किसी कारणवश कार्य को न कर सके, तो यज्ञदत्त भी उस कार्य से स्वयं निवृत्त हो जाता है। इसी प्रकार यहाँ व्याकरण में भी इस दृष्टान्त का प्रयोजन यह है कि—'पञ्च पूतक्रताय्यो देवता अस्यस्थालिपाकस्य' ऐसा विग्रह करने पर देवता अर्थ में विहित अण् प्रत्यय का द्विगोर्लुगनपत्ये' (४।१।८८) सूत्र से लुक् हुआ है। उसके बाद 'लुक् तद्धितलुकि' (१।२।४९) सूत्र से स्त्री प्रत्यय के भी लुक् का विधान किया गया है। उपर्युक्त दृष्टान्त मूलक परिभाषा के आश्रय से स्त्रीप्रत्यय के संन्नियोग से विहित ऐकारादेश का भी अभाव स्त्री प्रत्यय के साथ ही हो जाता है।

इसी प्रकार—**पंचेन्द्राण्यो देवता अस्य पंचेन्द्रः। दशाग्नाय्यो देवता अस्य दशाग्निः।** इत्यादि प्रयोगों में भी प्रत्ययों के साथ आगम तथा आदेशों का भी अभाव समझना चाहिए॥ ३६॥

वृषाकप्यग्निकुसितकुसीदानामुदात्तः॥ ३७॥

ऐकारग्रहणमनुवर्त्तते। वृषाक—कुसीदानाम् -६।३। उदात्तः -१।१। स्त्रियां वर्त्तमानेभ्यो वृषाकप्यादि प्रातिपदिकेभ्यः पुंयोगे सति ङीप् प्रत्ययो

भवति। प्रकृतीनामैकारादेशो भवति स चोदात्तः। वृषाकपेः स्त्री वृषाकपायी। अग्नेः स्त्री अग्नायी। कुसितस्य स्त्री कुसितायी। कुसीदस्य स्त्री कुसीदायी। पुंयोगवचन इति वार्तिकमत्रानुवर्त्तते। पुंयोग इति किमर्थम्। वृषाकपिर्ब्राह्मणी। अत्र माभूत्॥ ३७॥

भाषार्थ—यहाँ पूर्वसूत्र से ऐकारादेश की अनुवृत्ति है। पुरुष के योग के कहने में स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान वृषाकपि, अग्नि, कुसित और कुसीद शब्दों से 'ङीप्' प्रत्यय होता है और प्रकृतियों को उदात्त ऐकारादेश होता है। जैसे—**वृषाकपेः स्त्री वृषाकपायी। अग्नेः स्त्री अग्नायी। कुसितस्य स्त्री कुसितायी। कुसीदस्य स्त्री कुसीदायी।** 'पुयोगवचनः' वार्तिक की यहाँ भी अनुवृति है। यहाँ 'पुंयोग' वचन इसलिये है कि—**वृषाकपिर्ब्राह्मणी।** यहाँ ङीप् न होवे॥ ३७॥

मनोरौ वा॥ ३८॥

ऐ उदात्त इत्यनुवर्त्तते। मनोः —५।१।औ —१।१।वा[अ०]अप्राप्त-विभाषेयम्। स्त्रियां वर्त्तमानान् मनुशब्दाद् विकल्पेन ङीप् प्रत्ययो भवति। तत्संनियोगेन प्रकृतेरौकारादेशो भवति, चादैकारादेशोऽपि विकल्पेनैव स चोदात्तः। एवं द्वयोरादेशयोर्विकल्पत्वात् त्रीणि रूपाणि भवन्ति। मनोः स्त्री मनावी। मनायी। मनुः। 'पुंयोग' इत्यनुवर्त्तते तेनेह न भवति—मनुर्ब्राह्मणी॥ ३८॥

भाषार्थ—यहाँ 'ऐ, उदात्तः' पदों की अनुवृत्ति है। यह अप्राप्तविभाषा है। पुरुष के योग के कथन में स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान 'मनु' प्रातिपदिक से विकल्प से 'ङीप्' प्रत्यय होता है और प्रत्यय सन्नियोग से प्रकृति को औकारादेश तथा ऐकारादेश भी विकल्प से होते हैं और वे उदात्त होते हैं। इस प्रकार दोनों आदेशों के विकल्प होने से तीन रूप बनते हैं। जैसे—**मनोः स्त्री मनावी। मनायी। मनुः।** पुंयोग वचन से यहाँ ङीप् नहीं होता—मनुर्ब्राह्मणी॥ ३८॥

वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः॥ ३९॥

वेत्यनुवर्त्तते। वर्णात् -५।१। अनुदात्तात् —५।१। तोपधात् —५।१। तः —६।१। नः —१।१। त उपधायां यस्य तस्मात्। स्त्रियां वर्तमानाद् वर्णवाचिनोऽनुदात्तान्तात् तोपधात् प्रातिपदिकाद् विकल्पेन ङीप् प्रत्ययो भवति प्रकृतेस्तकारस्य नकारादेशश्च। पीता। पीनी। लोहिता। लोहिनी। हरिता। हरिणी। एता। एनी। वर्णादिति किम्। प्रकृता। प्रहृता। पूर्वपदप्रकृतिस्वरेणानुदात्तान्तौ। अनुदात्तादिति किम्। श्वेता। तोपधादिति किम्। अन्योपधाद् वक्ष्यमाणसूत्रेण ङीष्।

वा०—असित-पलितयोः प्रतिषेधः॥ १॥

असिता। पलिता। वर्णवाचि—तोपधादनुदात्तान्तत्वात् प्राप्तं प्रतिषिध्यते॥ १॥

वा०—छन्दसि क्नमेके॥ २॥

छन्दसि=वैदिकप्रयोगविषयेऽनुदात्तवर्णवाचि—तोपधाभ्यामसितपलित-शब्दाभ्यां ङीप् तकारस्य च क्नमित्यादेशो भवति, इति केषाञ्चिदाचार्य्याणां मतम्। असिक्न्यस्योषधे। पलिक्नीरिद्युवतयो भवन्ति॥ २॥

वा०—वर्णान् ङीब्विधाने पिशङ्गादुपसंख्यानम्॥ ३॥

पिशङ्गी। परसूत्रेण ङीषि प्राप्ते ङीबर्थोऽस्य तृतीयवार्त्तिकस्यारम्भः। स्वरे विशेषः। रूपं तु समानमेव॥ ३॥ ३९॥

भाषार्थ—यहाँ पूर्वसूत्र से 'वा' की अनुवृत्ति है। स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान वर्णवाची, अनुदात्तान्त, तकारोपध प्रातिपदिकों से विकल्प से ङीप् प्रत्यय होता है और प्रकृति के तकार को प्रत्ययसंनियोग से नकारादेश होता है। जैसे—पीता। पीनी। लोहिता। लोहिनी। हरिता। हरिणी। एता। एनी।

यहाँ 'वर्णात्' इसलिए कहा है कि—प्रकृता। प्रहृता। यहां ङीप् तथा नकारादेश न होवें। ये शब्द पूर्वपद प्रकृति स्वर से अनुदात्तान्त है। 'अनुदात्तात्' का ग्रहण इसलिए है कि त से भिन्न उपधावालों से ङीप् न होवे, अगले सूत्र से ङीष् ही होवे।

वा०—असित-पलितयोः प्रतिषेधः॥ १॥

असित और पलित शब्दों से वर्णवाची, तकारोपध और अनुदात्तान्त होने से ङीप्-नकारादेश प्राप्त थे, इससे उनका निषेध किया है। जैसे—असिता। पलिता॥ १॥

वा०—छन्दसि क्नमेके॥ २॥

वैदिक प्रयोग विषय में वर्णवाची, अनुदात्तान्त, तकारोपध असित-पलित शब्दों से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय और तकार को क्नम् आदेश होता है। यह कुछ आचार्यों का मत है। जैसे—**असिक्न्यस्योषधे। पलिक्नीरिद्युवतयो भवन्ति॥ २॥**

वा०—वर्णान् ङीब् विधाने पिशङ्गादुपसंख्यानम्॥ ३॥

पिशङ्ग शब्द वर्णवाची अनुदात्तान्त तो है, किन्तु तकारोपध न होने से ङीप् प्रत्यय प्राप्त नहीं है और अगले सूत्र से ङीष् की प्राप्ति में इस तृतीय वार्तिक से ङीप् का विधान किया है। जैसे—पिशङ्गी। यहाँ ङीप् और ङीष् में स्वर में ही भेद है, रूप तो दोनों में समान ही है ॥ ३॥— ॥ ३९॥

अन्यतो ङीष्॥ ४०॥

वेति निवृत्तम्। वर्णादनुदात्तादिति वर्तते। अन्यतः -५। १। ङीष् -१। १। स्त्रियां वर्त्तमानात् तोपधादन्यस्माद् वर्णवाचिनोऽनुदातान्तात् प्रातिपदिकान् ङीष् प्रत्ययो भवति। सारङ्गी। कल्माषी। शबली। वर्णादिति किम्। लट्वा। अनुदात्तादिति किम्। कृशा। कपिला। अत्रोभयत्रादन्तत्वाट् टाप्॥ ४०॥

भाषार्थ—यहाँ 'वा' की अनुवृत्ति नहीं है। स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान तकारोपध से भिन्न वर्णवाची अनुदात्तान्त प्रातिपदिकों से ङीष् प्रत्यय होता है। जैसे—सारङ्गी। कल्माषी। शबली। सारङ्गी और कल्माषी शब्द 'लघावन्ते'' (फिट्० २। १९) सूत्र

से मध्योदात्त है और शबली शब्द औणादिक कल प्रत्ययान्त होने से मध्योदात्त है (उणा० १।१०५) यहाँ 'वर्णात्' इसलिए कहा है कि—लट्वा। यहाँ ङीष् न होवे और 'अनुदात्तात्' का ग्रहण इसलिए है कृष्णा। कपिला*। यहाँ दोनों प्रत्युदाहरणों में अदन्त होने से टाप् प्रत्यय हुआ है॥४०॥

षिद् गौरादिभ्यश्च॥४१॥

ङीषनुवर्तते। षिद्गौरादिभ्यः —५।१। च [अ०] स्त्रियां वर्त्तमानेभ्यः षित्प्रत्ययान्तेभ्यो गणपठितेभ्यो गौरादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो ङीष् प्रत्ययो भवति। शिल्पिनि ष्वुन्। नर्तकी। खनकी। षाकन्—वराकी। गौरी। मत्सीत्यत्र 'सूर्य्यतिष्येति' यकारलोप ईकारे परतः। अकारलोपस्तु 'यस्येति चेति' सर्वत्र।

अथ गौरादिगणः—गौर। मत्स्य। मनुष्य। शृङ्ग। पिङ्गल। हय। गवय। मुकय। ऋष्य। पुट। तूण। द्रुण। द्रोण। हरिण। कण। काकण। पटर। उणक। उकण। आमल। आमलक। कुवल। बिम्ब। बदर। कर्कार। तर्कार। शर्कार। पुष्कर। शिखण्ड। सलन्द। शंस्कण्ड। सनन्द। सुषम। सुषव। गडुज। आनन्द। स्वभ। अलिन्द। गडुल। षाण्डश। आढक। आत्थ। नन्दा। अश्व। सृपाट। सृगेठ। आच्चिक। शष्कुल। सूर्म। शूर्म। सुब। सूर्य्य। सूच। पूष। यूथ। सूप। पूप। मेथ। वल्लक। भल्लक। धातक। घातक। सकलूक। सल्लक। मालक। मालत। साल्वक। वेतस। वृस। अतस। पृस। उभय। भङ्ग। सह। मह। मठ। छेद। पेश। भेद। श्वन्। तक्षन्। अनडुही। अनड्वाही। एषण-करणे। ह्रद। देहल। देह। काकादन। गवादन। तेजन। रजन। लवण। पान। मेघ। गौतम। प्राप। स्थूल। भौरि। भौरिकि। भौलिकि। भोलिङ्गि। औद्वाहमानि। आलिङ्गि। आलम्बि। आलजि। आलब्धि। आलक्षि। आपिच्छक। केवाल प्रापक। आरट। टोट। नट। टोप। नोट। नाट। मूलाट। शातन। पोतन। पातन। पाटन। पावन। आस्तरण। एत। अधिकरण। अधिकारण। अधिकार। आग्रहायणी। प्रत्यवरोहिणी। सेवन। सेपूत। सुमङ्गलात् संज्ञायाम्। अण्डर। सुन्दर। मण्डल। मन्थर। मङ्गल। पट। पिण्ड। षण्ड। ऊर्द। कुर्द। शम। शूद। आर्द्र। पाण्ट। लोपाण्ट। माण्डल। भाण्ड। लोहाण्ड। कन्दर। कन्दल। कदल। तरुण। तलुन। कल्माष। बृहत्। महत्। सोम। रोहिणी नक्षत्रे। रेवती नक्षत्रे। विकल। निष्कल। पुष्कल। कटाच्छ्रेणिवचने॥ पिप्पल्यादयश्च॥ पिप्पली। हरीतकी। कोशातकी। शमी। करीरी। वरी। शरी। पृथिवी। क्रोष्ट्री। मातामह। पितामह। इति गौरादयः॥४१॥

भाषार्थ—यहाँ ङीष् की अनुवृत्ति है। स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान षित् और गण पठित गौर आदि प्रातिपदिकों से ङीष् प्रत्यय होता है। जैसे—नर्तकी। खनकी। रजकी। यहाँ 'शिल्पिनि ष्वुन्' (३।१।१४५) सूत्र से षित् ष्वुन् प्रत्यय है। वराकी।

---

* कपिला शब्द में औणादिक (३।१।५४) इलच् प्रत्यय होने से चित् स्वर से अन्तोदात्त है और कृष्णा शब्द में (३.३।२८४) औणादिक नक् है। यह शब्द प्रत्यय स्वर से अन्तोदान्त है।

—अनुवादक

इसमें षित् षाकन् प्रत्यय है। गौरादि से—गौरी। मत्सी। इत्यादि। 'मत्सी' प्रयोग में 'सूर्यतिष्य' (६।४।१४९) सूत्र से ईकार के परे होने पर यकार का लोप हुआ है। और सभी उदाहरणों में 'यस्येति च' (६।४।१४९) सूत्र से अकार का लोप हुआ है॥ ४१ ॥

जानपद-कुण्ड-गोण-स्थल-भाज-नाग-काल-नील-कुश-कामुक-कबराद् वृत्त्यमत्रावपनाकृत्रिमाश्राणास्थौल्यवर्णानाच्छादनाऽयोविकारमैथुनेच्छाकेशवेशेषु॥ ४२ ॥

जानपद..........कबरात् —५।१। वृत्त्यमत्रा.........केशवेशेषु —७।३। जानपदाद्येकादशशब्दानां समाहारद्वन्द्वः। स्त्रियां वर्त्तमानेभ्यो जानपदाद्येकादशप्रातिपदिकेभ्यो वृत्याद्येकादशार्थेष्वभिधेयेषु यथासंख्यं ङीष् प्रत्ययो भवति। जनपद शब्द उत्सादिषु पठ्यते तस्मादञन्तान् ङीपि प्राप्ते स्वरभेदार्थं ङीष्। जानपदाद् वृत्तौ—जानपदी वृत्तिः। अन्यत्र ङीप्, स्वरे भेदः। प्रयोगस्तु समान एव। कुण्डाद् अमत्रे-कुण्डी-अमत्रं पात्रमित्यर्थः। गोणादावपने-गोणी आवपनम्। स्थलादकृत्रिमायाम्—स्थली। भाजाच्छ्रणायाम्—भाजी यवागूः। पक्वेत्यर्थः। नागात् स्थौल्ये—नागी। कालात् वर्णे—काली। नीलादनाच्छादने—नीली। कुशादयोविकारे—कुशी। कामुकान् मैथुनेच्छायाम्—कामुकी। सामान्येच्छायां कामुका। कबरात् केशवेशे—कबरी। कुण्डादिभ्योऽमत्रादीनामभावे टाबेव भवति।

वा०—नीलादोषधौ॥ १ ॥

नीली ओषधिः॥ १ ॥

वा०—प्राणिनि च॥ २ ॥

नीली गौः। नीली वडवा॥ २ ॥

वा०—वा संज्ञायाम्॥ ३ ॥

नीलादित्येव। नीली। नीला। अनाच्छादन इति सामान्ये निर्दिष्टे विशेषार्थप्रतिपादनाय वार्त्तिकानि॥ ३ ॥— ॥ ४२ ॥

भाषार्थ—स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान जानपद इत्यादि ग्यारह शब्दों से वृत्ति आदि ग्यारह अर्थों में यथाक्रम 'ङीष्' प्रत्यय होता है। जनपद शब्द उत्सादि गण में पठित होने से 'अञ्' प्रत्ययान्त है, अतः जानपद शब्द से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीप्' प्राप्त है। यहाँ स्वरभेद के लिए 'ङीष्' का विधान किया गया है। जैसे—जानपद से वृत्ति अर्थ में—जानपदी वृत्तिः। वृत्ति से अन्यत्र 'ङीप्' होता है। रूप समान होने पर भी स्वर में भेद होता है। कुण्ड शब्द से अमत्र=पात्र अर्थ में—कुण्डी अमत्रम्। गोण शब्द से आवपन (माप) अर्थ में—गोणी आवपनम्। स्थल शब्द से अकृत्रिम (प्राकृतिक) अर्थ में—स्थली भूमिः। भाज शब्द से श्राणा (पकी हुई) अर्थ में भाजी यवागूः (पकी हुई यवागू)। नाग शब्द से स्थौल्य (मोटापा) अर्थ में—नागी। काल शब्द से वर्ण अर्थ में—काली। नील शब्द से अनाच्छादन

अर्थ में—नीली। कुश शब्द से अयोविकार (लोह का विकार) अर्थ में कुशी। कामुक शब्द से मैथुनेच्छा में—कामुकी। सामान्य इच्छा में—कामुका। कबर शब्द से केशवेश (केश संवारने) अर्थ में—कबरी। इन कुण्डादि शब्दों से अमत्रादिके अभाव में ङीप् ही होता है।

वा०—नीलादोषधौ॥ १॥

नील शब्द से ओषधि अर्थ में 'ङीष्' प्रत्यय होता है। जैसे—नीली ओषधिः॥ १॥

वा०—प्राणिनि च॥ २॥

प्राणी अभिधेय हो तो नील शब्द से 'ङीष्' प्रत्यय होता है। जैसे—नीली गौः। नीली बडवा॥ २॥

वा०—वा संज्ञायाम्॥ ३॥

संज्ञा वाच्य हो तो नील शब्द से विकल्प से 'ङीष्' प्रत्यय होता है। जैसे—नीली। नीला। सूत्र में नील शब्द से अनाच्छादन अर्थ में सामान्यरूप से प्रत्यय का विधान किया है। इन वार्त्तिकों में उसी का विशेष कथन किया गया है॥ ४२॥

शोणात् प्राचाम्॥ ४३॥

शोणात् —५।१।प्राचाम् —६।३।स्त्रियां वर्त्तमानाच्छोण प्रातिपदिकात् प्राचामाचार्याणां मते ङीष् प्रत्ययो भवति। टापोऽपवादः। शोणी। अन्येषां मते शोणा॥ ४३॥

भाषार्थ—स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान शोण प्रातिपदिक से प्राच्य आचार्यों के मत में 'ङीष्' प्रत्यय होता है। यह 'टाप्' प्रत्यय का अपवाद है। जैसे—शोणी। दूसरे आचार्यों के मत में—शोणा॥ ४३॥

वोतो गुणवचनात्॥ ४४॥

वा [अ०] उतः —५।१। गुणवचनात् —५।१। गुणमुक्तवान् गुणवचनः, तस्मात्। उत इति तपरकरणं सवर्णग्रहण-निवारणार्थम्। स्त्रियां वर्त्तमानाद् गुणवचनादुकारान्तात् प्रातिपदिकाद् विकल्पेन ङीष् प्रत्ययो भवति। पट्वी। पटुः। मृद्वी, मृदुः। उत इति किम्। शुचिरियमङ्गना। गुणवचनादिति किम्। आखुः।

वा०—गुणवचनान् ङीबाद्युदात्तार्थः॥ १॥

यानि गुणवचनानि प्रातिपदिकान्याद्युदात्तानि तेभ्यो ङीषि सति प्रत्ययस्वरः प्रकृतिस्वरस्य बाधको भवतीत्यन्तोदात्तान्येव स्युः। ङीपि सति तु प्रत्ययस्यानुदात्तत्वादाद्युदात्तान्येव। यानि चान्तोदात्तानि तेभ्यः परस्य ङीपोऽप्युदात्तत्वमेव तत्र नास्ति विशेषः। ङीप् स्यान् ङीष् वा। वस्वी, तन्वी। वसुतनु शब्दावौणादिकावाद्युदात्तौ ताभ्यां ङीब् विधीयते॥ १॥

वा०—खरुसंयोगोपधप्रतिषेधश्च॥ २॥

खरु प्रातिपदिकात् संयोगोपधाच्च ङीष् प्रतिषिध्यते। खरुरियं ब्राह्मणी।

पाण्डुरियं ब्राह्मणी॥ २॥

भा०—गुणवचनादित्युच्यते। को गुणो नाम?

का०— सत्त्वे निविशतेऽपैति पृथग् जातिषु दृश्यते।
आधेयश्चाक्रियाजश्च सोऽसत्त्वप्रकृतिर्गुणः॥ १॥

अपर आह— उपैत्यन्यज्जहात्यन्यद् दृष्टो द्रव्यान्तरेष्वपि।
वाचकः सर्वलिङ्गानां द्रव्यादन्यो गुणः स्मृतः॥ २॥

आभ्यां कारिकाभ्यां गुणलक्षणमुच्यते। सत्त्वे यस्मिन् द्रव्ये निविशते व्याप्तो भवति तस्मादपैति=पृथगपि भवति। कार्यपक्षेऽयं विचारः। अर्थाद् यानि द्रव्याणि नित्यानि तेषु ये गुणास्तेऽपि नित्या एव। भिन्नजातीयेषु द्रव्येषु गुणः पृथग् दृश्यते। अर्थाज्जातेर्गुणत्वं नास्ति। जातिः पृथग् गुणश्च पृथक्। क्रियया द्रव्यं निष्पद्यते न तु गुणः। तदा द्रव्ये निष्पन्ने गुणः प्रादुर्भवति। द्रव्यमाधारो गुण आधेयः। आधाराभाव आधेयस्य गुणस्यापि तिरोभावः। सः असत्व प्रकृतिः—तस्य गुणस्य सत्त्वं द्रव्यं प्रकृतिः कारणं नास्ति। अर्थात् कारणरूपेऽपि द्रव्ये गुणः पृथगेव तिष्ठति॥ १॥ द्वितीययापि कारिकयाऽयमेवाभिप्रायः। गुणः सर्वलिङ्गानां वाचको भवति। गुणवचनानां हि शब्दानामाश्रयतो लिङ्गवचनानि भवन्तीति महाभाष्यप्रामाण्यात्॥ ४४॥

भाषार्थ—जो गुण को कहे उसे 'गुणवचन' कहते हैं। 'उत्' शब्द में तपरकरण सवर्ण ग्रहण के निवारण के लिए है, अर्थात् तपरकरण से तत्काल के वर्णों का ही ग्रहण होता है। स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान गुणवचन उकारान्त प्रातिपदिकों से विकल्प से 'ङीष्' प्रत्यय होता है। जैसे—पट्वी। पटुः। मृद्वी। मृदुः।

इस सूत्र में 'उतः' का ग्रहण इसलिये है कि—**शुचिरियमङ्गना,** यहाँ 'ङीष्' न हो और 'गुणवचनात्' का ग्रहण इसलिए है कि—**आखुः,** यहाँ 'ङीष्' न होवे।

वा०—गुणवचनान् ङीबाद्युदात्तार्थः॥ १॥

जो गुणवचन प्रातिपदिक आद्युदात्त हैं, उनसे ङीष् प्रत्यय होने से 'प्रत्यय स्वर प्रकृतिस्वर का बाधक होता है' इस नियम से वे प्रातिपदिक अन्तोदात्त ही हो जाते, इसलिये उनसे यह वार्त्तिक ङीप् का विधान करता है, जिससे प्रत्यय के अनुदात्त होने से वे शब्द आद्युदात्त ही रहे और जो गुणवचन शब्द अन्तोदात्त हैं, उनसे परे 'ङीप्' होने पर 'उदात्त यणो हल्पूर्वात् (६।१।१७४) सूत्र से प्रत्यय का उदात्तत्व बना ही रहता है। अतः इन शब्दों से 'ङीप्' अथवा 'ङीष्' करने से कोई स्वरभेद नहीं होता है। जैसे—वस्वी। तन्वी। वसु और तनु शब्द औणादिक आद्युदात्त हैं, उनसे वार्त्तिक से 'ङीप्' होता है॥ १॥

वा०—खरुसंयोगोपधप्रतिषेधश्च॥ २॥

खरु प्रातिपदिक और संयोग जिसकी उपधा में हो, ऐसे गुणवचन उकारान्त प्रातिपदिकों से स्त्रीविषय में ङीष् प्रत्यय नहीं होता है। जैसे—**खरुरियं ब्राह्मणी। पाण्डुरियं ब्राह्मणी॥ २॥**

भा०—इस सूत्र में गुणवचन से प्रत्यय कहा है। गुण किसे कहते हैं—

का०— **सत्त्वे निविशतेऽपैति पृथग् जातिषु दृश्यते।**
आधेयश्चाक्रियाजश्च सोऽसत्त्वप्रकृतिर्गुणः॥ १॥

अपर आह— **उपैत्यन्यज्जहात्यन्यद् दृष्टो द्रव्यान्तरेष्वपि।**
वाचकः सर्वलिङ्गानां द्रव्यादन्यो गुणः स्मृतः॥ २॥

इन दोनों कारिकाओं से वैयाकरणसम्मत गुण का लक्षण कहा गया है। वह इस प्रकार है—(सत्त्वे निविशते) सत्त्व (द्रव्य) के जो आश्रय से रहता है (अपैति) और उस द्रव्य से पृथक् भी हो जाता है। जैसे आम के फल में पहले श्यामता आश्रय करती है और पकने पर जब लालिमा आ जाती है, तब वह श्यामता उससे पृथक् हो जाती है। गुण के इस लक्षण में यह ध्यान रखना चाहिये कि जो कार्य (उत्पन्न होनेवाले) द्रव्य हैं, उनमें यह लक्षण संगत होता है और जो द्रव्य नित्य हैं, उनके गुण भी नित्य ही होते हैं। (पृथग् जातिषु दृश्यते) जाति भी द्रव्य के आश्रय से रहती है, अतः गुण का लक्षण जाति में अति व्याप्त न हो, इसके लिए यह लक्षण कहा है—गुण भिन्न-भिन्न घट पटादि जातियों में रहता है, जाति नहीं। जाति तो द्रव्य की उत्पत्ति से लेकर विनाश होने तक उसके आश्रय में रहती है और गोत्व जाति अश्वादि में और अश्वत्व जाति गौ आदि में नहीं दिखाई देती, किन्तु शुक्लत्वादि गुण गौ आदि विभिन्न जातियों में दिखाई देता है। इसलिए जाति गुण नहीं है। जाति पृथक् है और गुण पृथक् है।

(आधेयश्चाक्रियाजश्च) क्रिया भी द्रव्य के आश्रय से रहती है, द्रव्य से निवृत्त भी होती है और भिन्न भिन्न जातियों में दिखाई देती है, अतः गुण का लक्षण क्रिया में अतिव्याप्त न हो, एतदर्थ यह लक्षण कहा है—आधेय=गुण उत्पाद्य है। क्रिया से द्रव्य सिद्ध होता है, गुण नहीं। द्रव्य बनने पर गुण का प्रादुर्भाव होता है इसलिए द्रव्य आधार है और गुण आधेय है। आधारभूत द्रव्य के अभाव होने पर आधेय भूत गुण का भी तिरोभाव हो जाता है। जैसे—कुम्भकार ने घड़ा बनाया और उसमें अग्निपाक से भिन्न गुण का आविर्भाव होता है।

प्रश्न—क्रिया भी उत्पाद्य ही होती है, इससे गुण का लक्षण क्रिया में अति व्याप्त होगा, उसका निराकरण क्या है?

उत्तर—उस अतिव्याप्ति दोष के निराकरण के लिए ही कारिका में कहा है—अक्रियाजः। जो क्रिया से उत्पन्न होता है वह उत्पाद्य है। गुण उत्पाद्य अनुत्पाद्य दो प्रकार का है। आकाशादि द्रव्यों में महत्वादि गुण अनुत्पाद्य हैं और कार्य घटादि में उत्पाद्य हैं। किन्तु क्रिया तो उत्पाद्य ही होती है, नित्य नहीं। इसलिये क्रिया से गुण को पृथक् रखने के लिए कारिका में कहा है—अक्रियाजश्चेति।

(सोऽसत्त्वप्रकृतिगुणः) सत्त्व (द्रव्य) में गुण का लक्षण, अतिव्याप्त न हो, एतदर्थ गुण को असत्त्व प्रकृति कहा है। तद्यथा द्रव्य भी द्रव्य के आरम्भिक अवयवों के आश्रय से रहता है और उनसे पृथक् भी हो जाता है। जैसे शरीर

एक अवयवी द्रव्य है, वह शरीर के आरम्भक हस्तादि अवयवों के आश्रय से रहता है, और हस्तपादादि अवयवों के नाश से नष्ट हो जाता है और हाथी आदि भिन्न-भिन्न जातियों में शरीर द्रव्य रहता है और यह अवयवी उत्पाद्य और आकाशादि अनुत्पाद्य द्विविध होने से गुण के लक्षण द्रव्य में भी घटते हैं। इसलिए कारिका में कहा है कि असत्वप्रकृति, जिस गुण की सत्व (द्रव्य) प्रकृति (कारण नहीं है। अर्थात् यद्यपि गुण का आश्रय होने से द्रव्य कारण है, पुनरपि गुण द्रव्य से पृथक् ही है॥ १ ॥

द्वितीयाकारिका के द्वारा भी गुण के लक्षण का पूर्वोक्त भाव ही प्रकारान्तर से समझाया गया है। (उपैत्यन्यत्) भिन्न-भिन्न द्रव्यों के आश्रय से रहता है और (जहात्यन्यत्) उनसे पृथक् भी हो जाता है। (दृष्टो द्रव्यान्तरेष्वपि) भिन्न जातीय द्रव्यों में भी दिखाई देता है। (वाचकः सर्वलिङ्गानाम्) गुण सब लिङ्गों का वाचक है। जैसे शुक्लः कम्बलः। शुक्ला शाटी। शुक्लं वस्त्रम्। 'गुणवाचक शब्दों के लिङ्ग वचन द्रव्यों के आश्रय से होते हैं, इस महाभाष्य के प्रमाण से गुण जिस लिङ्गवाले द्रव्य का आश्रय करते हैं, उसी लिङ्ग के वे हो जाते हैं। और (द्रव्यादन्यो गुणः स्मृतः) पूर्वोक्त लक्षण द्रव्य में भी घटते हैं, अतः उससे भिन्न करने के लिए यह बात कही है॥ २ ॥— ॥ ४४ ॥

बह्वादिभ्यश्च ॥ ४५ ॥

वेत्यनुवर्त्तते। बह्वादिभ्यः —५।३ च [अ०]। गणोपदिष्टेभ्यः स्त्रियां वर्त्तमानेभ्यो बह्वादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो विकल्पेन ङीष् प्रत्ययो भवति। बह्वी। बहुः। पद्धती। पद्धतिः। बहुशब्दो गुणवचनस्तस्य पाठ उत्तरसूत्रे नित्यार्थः।

अथ बह्वादिगणः—बहु। पद्धति। अङ्कति। अञ्चति। अंहति। वहति। शकटि। शक्ति शस्त्रे। शारि। वारि। राति। गति। अहि। कपि। यष्टि। मुनि॥ इतः प्राण्यङ्गात्॥ इकारान्तात् प्राण्यवयववाचिनः प्रातिपदिकात्। यथा— अङ्गुलिः॥ कृदिकारादक्तिनः॥ क्तिन्नन्तादन्यादिकारान्तात् कृदन्तप्रातिपदिकात्। यथा—ग्लानिः हानिः॥ सर्वतोऽक्तिन्नर्थादित्येके॥ केषांचित् मते क्तिन्नर्थं विहाय सर्वस्मात् कृदन्ततद्धितान्तादिकारान्ताद् अनिकाराद्वा॥ चण्ड। अराल। कमल। कृपण। विकट। विमल। विशाल॥ विशङ्कट। भरुज। ध्वज। चन्द्रभागान्नद्याम्। कल्याण। उदार पुराण। अहन्॥ इति बह्वादयः॥ ४५ ॥

भाषार्थ—यहाँ 'वा' की अनुवृत्ति है। स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान गण-पठित बहु आदि प्रातिपदिकों से विकल्प करके ङीष् प्रत्यय होता है। जैसे—बह्वी। बहुः। पद्धती। पद्धतिः। बहु शब्द गुणवाची है, अतः पूर्वसूत्र से ही ङीष् का विकल्प सिद्ध है। फिर यहाँ पाठ करने का प्रयोजन अगले सूत्र में नित्यार्थ है॥ ४५ ॥

नित्यं छन्दसि ॥ ४६ ॥

विकल्पग्रहणं निवृत्तम्। नित्यम्—१।१। छन्दसि—७।१। स्त्रीलिङ्गे वर्त्तमानेभ्यो बह्वादिप्रातिपदिकेभ्यश्छन्दसि वेदविषये नित्यं ङीष् प्रत्ययो

भवति। बह्वी। पद्धती॥ ४६॥

भाषार्थ—यहाँ नित्य ग्रहण से विकल्प की अनुवृत्ति नहीं है। वेदविषय में स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान बहु आदि प्रातिपदिकों से ङीष् प्रत्यय नित्य होता है। जैसे—बह्वी। पद्धती॥ ४६॥

भुवश्च॥ ४७॥

छन्दसीत्यनुवर्त्तते। उत इति च। भुवः—५। १। च [अ०] सौत्रे निपातनादत्रोवङादेशः। स्त्रीलिङ्गार्थाद् उकारान्तभुशब्दाच्छन्दसि विषये ङीष् प्रत्ययो भवति। विभ्वी च। प्रभ्वी च। उत इत्यनुवर्त्तनादिह न भवति। स्वयम्भूः॥ ४७॥

भाषार्थ—यहाँ 'छन्दसि, उतः' पदों की अनुवृत्ति है। दीर्घ ऊकारान्त भू शब्द से उवङ् आदेश होकर 'भुवः' रूप बनता है और यह इष्ट नहीं है। और उकारान्त 'भु' शब्द का 'भोः' रूप बनेगा 'भुवः' नहीं। इसलिए सौत्रनिर्देश मानकर यहाँ उवङ् आदेश है। वेदविषय में स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान उकारान्त भु शब्द से ङीष् प्रत्यय होता है। जैसे—विभ्वी च। प्रभ्वी च। 'उतः' की अनुवृत्ति होने से दीर्घान्त 'भू' शब्द से ङीष् नहीं होता—स्वयम्भूः॥ ४७॥

पुंयोगादाख्यायाम्॥ ४८॥

पुंयोगात्—५। १। आख्यायाम्—७। १। पुंसा योगः पुंयोगः। पुंयोगात् स्त्र्याख्यायां सत्यामदन्तात् प्रातिपदिकान् ङीष् प्रत्ययो भवति। प्रष्ठस्य स्त्री प्रष्ठी। प्रवरी। महामात्री। गर्गस्य स्त्री गर्गी। पुंयोगादिति किम्। गोदा। कम्बलदा। आख्याग्रहणं स्त्रीविशेषणम्। पुंयोगात् पुंसा सह सम्बन्धात् स्त्रियमाचक्षते। अर्थात् कृतब्राह्मादिशिष्टविवाहया स्त्रिया सह नियतपुरुषस्य सम्बन्धो भवति। तस्येयमिति यत्राचक्षते तत्रैवास्य सूत्रस्य प्रवृत्तिः। तेनेह न भवति। राज्ञो वेष्याः। राज्ञो गणकाः।

वा०—गोपालिकादीनां प्रतिषेधः॥ १॥

गोपालकस्य स्त्री गोपालिका। पशुपालिका॥ १॥

वा०—सूर्याद् देवतायां चाब्वक्तव्यः॥ २॥

सूर्यस्य स्त्री सूर्य्या। देवतायामिति किमर्थम्। सूर्य्यस्य कस्यचिन् मनुष्यस्य स्त्री सूरी॥ २॥

परि०—गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासो भवतीत्येषा परिभाषा कर्त्तव्या। कानि पुनरस्याः परिभाषायाः प्रयोजनानि। प्रयोजनं क्तादल्पाख्यायाम्। अभ्रलिप्ती सूर्यविलिप्ती। सुबन्तानां समासः। तत्रान्तरंगत्वाद् टाप्। टापि कृते समासः। विलिप्ता शब्दः समस्येत। तत्र क्तादल्पाख्यायामकारान्तादिति ङीष् न प्राप्नोति। अस्या एतत् प्रयोजनम्। सूर्यविलिप्तीत्यत्र विशब्दो गतिसंज्ञः। तस्य क्तान्तेन लिप्तशब्देन सह यदि पृथक् समासः स्यात्, तदा करणपूर्वाभावाद् गतिपूर्वात् क्तादल्पाख्यायामिति ङीष् न प्राप्नोति। तदर्थोऽयं यत्नः। गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सहैव समासः स्यात्। अर्थाद् विशब्दस्य कृद्ग्रहणेन

ग्रहणाद् विलिप्तशब्दः क्तान्तो निष्पद्येत। एवमस्या अन्यान्यपि प्रयोजनानि॥ ४८॥

भाषार्थ—पुरुष के योग से स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान अदन्त प्रातिपदिकों से ङीष् प्रत्यय होता है। जैसे—प्रष्ठस्य स्त्री प्रष्ठी। महामात्री। गर्गस्य स्त्री गर्गी। इत्यादि। यहाँ 'पुंयोगात्' का ग्रहण इसलिए है कि गोदा। कम्बलदा। सूत्र में 'आख्या' का ग्रहण स्त्री का विशेषण है। पुरुष के साथ सम्बन्ध से स्त्री को कहा जाता है; अर्थात् ब्राह्मादि शिष्ट चार विवाहों में किसी एक विधि से विवाहित स्त्री के साथ निश्चित पुरुष का सम्बन्ध होता है। उस पुरुष की यह स्त्री है, इस प्रकार जो कहा जाता है, उसी सम्बन्ध को बताने के लिए इस सूत्र की प्रवृत्ति है। इसलिए यहाँ 'ङीष्' प्रत्यय नहीं होता—राज्ञो वेष्याः। राज्ञो गणकाः। इनमें विवाहित सम्बन्ध नहीं है।

वा०—गोपालिकादीनां प्रतिषेधः॥ १॥

पुरुष के योग से स्त्रीलिङ्ग के कथन में गोपालिका इत्यादि शब्दों से 'ङीष्' प्रत्यय नहीं होता है। जैसे—गोपालकस्य स्त्री गोपालिका। पशुपालिका, इत्यादि॥ १॥

वा०—सूर्याद् देवतायां चाब्वक्तव्यः॥ २॥

पुंयोग से स्त्रीलिङ्ग के कथन में देवता अर्थ में सूर्य शब्द से चाप् प्रत्यय होता है। जैसे—सूर्य्यस्य स्त्री देवता सूर्या। यहाँ 'देवतायाम्' का ग्रहण इसलिए है कि—किसी मनुष्य का नाम सूर्य है, तो उसकी स्त्री 'सूरी' कहलायेगी। उससे 'चाप्' प्रत्यय नहीं होगा॥ २॥

परि०—गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं [प्राक् सुबुत्पत्तेः]॥

गति, कारक और उपपद—इन तीनों का कृदन्त के साथ 'सु' आदि प्रत्ययों की उत्पत्ति से पूर्व ही समास होता है। ऐसी परिभाषा बनानी चाहिए। इस परिभाषा के प्रयोजन क्या हैं? यद्यपि सर्वत्र सुबन्त का सुबन्त के साथ समास होता है, किन्तु इस नियम का यह अपवाद है। इस नियम का प्रयोजन देखिए—

(१) क्तादल्पाख्यायाम् (४।१।५१) इस सूत्र में 'ङीष्' प्रत्यय होकर—अभ्रलिप्ती। सूर्यविलिप्ती, इत्यादि प्रयोग बनते हैं। यदि सामान्य नियम से सुबन्तों का यहाँ समास करते हैं तो अन्तरङ्ग कार्य होने से पहले स्त्रीलिङ्ग में 'टाप्' प्रत्यय होना चाहिए। और टाप् करने पर 'लिप्ता' शब्द का समास होगा। और 'क्तादल्पा०' (४।१।५१) सूत्र से अदन्त से होनेवाला 'ङीष्' प्रत्यय प्राप्त नहीं हो सकेगा और इस परिभाषा के नियम से सुबन्तता से पूर्व ही समास होने से स्त्री प्रत्यय 'टाप्' की अन्तरङ्गता न होने से टाप् से पूर्व ही समास हो जाता है। और फिर समस्त शब्द से 'टाप्' करें या 'ङीष्', पर विप्रतिषेध से ङीष् हो जाता है। इसी प्रकार 'सूर्यविलिप्ती' प्रयोग में गति संज्ञक 'वि' का लिप्त के साथ पृथक् समास हो जाये तो क्तान्त से पूर्व करणकारक के न होने से (मध्य में वि का व्यवधान है) 'क्तादल्पा०' (४।१।५१) सूत्र से 'ङीष्' प्राप्त नहीं होता। एतदर्थ यह यत्न किया गया है—गति आदि का कृदन्त के साथ एक साथ ही समास होता है।

अर्थात् गतिसंज्ञक 'वि' का कृद् के ग्रहण होने से 'विलिप्त' शब्द कृदन्त के ग्रहण से गृहीत हो जायेगा और पूर्वोक्त दोष का अवसर नहीं होगा। इसी प्रकार इस परिभाषा के महाभाष्य में अनेक प्रयोजन* दिखाये हैं॥ ४८॥

इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययवयवनमातुलाचार्य्याणामानुक्॥ ४९॥

पुंयोगादित्यनुवर्त्तते। इन्द्र......चार्य्याणाम् —६।३। आनुक् —१।१। पुंयोगात् स्त्र्याख्यायां सत्याम् इन्द्रादि प्रातिपदिकेभ्यो ङीष् प्रत्ययो भवत्येषामानुगागमश्च। इन्द्रस्य स्त्री इन्द्राणी। वरुणानी। भवानी। शर्वाणी। रुद्राणी। मृडानी।

वा०—हिमारण्ययोर्महत्वे॥ १॥

हिमारण्ययोः शब्दयोः ङीषानुकौ महत्त्वेऽभिधेये भवतः। अत्र पुंयोगादाख्या न संबध्यते। महद् हिमं हिमानी। महदरण्यम् अरण्यानी॥ १॥

वा०—यवाद् दोषे॥ २॥

अत्रापि पुंयोगेति न संबध्यते दोषाभिधेयत्वात्। दुष्टो यवो यवानी॥ २॥

वा०—यवनाल्लिप्याम्॥ ३॥

लेखनक्रियायामभिधेयायामिति। यवनानी लिपिः। अत्रापि पूर्ववत् पुंयोगाऽभावः॥ ३॥

वा०—उपाध्यायमातुलाभ्यां वा॥ ४॥

अत्र तु पुंयोगादाख्यायामेव नित्ये प्राप्ते विकल्पार्थं वार्त्तिकम्। उपाध्यायी। उपाध्यायानी। मातुली। मातुलानी। अनेन वार्त्तिकेनानुग् विकल्प्यते। पक्षे पूर्वसूत्रेण ङीष्॥ ४॥

वा०—आचार्यादणत्वं च॥ ५॥

आचार्यानी। णत्वप्रतिषेधार्थमिदम्। अन्यत्तु सर्वं सूत्रेणैव सिद्धम्॥ ५॥

वा०—मुद्गलाच्छन्दसि लिच्च॥ ६॥

अपूर्वविधानमेतत्। लित्करणं स्वरार्थम्। मुद्गलशब्दान् ङीषानुकौछन्दसि विषये भवतः। रथीरभून् मुद्गलानी गविष्ठौ॥ ६॥

वा०—अर्य्यक्षत्रियाभ्यां वा॥ ७॥

अर्य्य-क्षत्रियशब्दाभ्यां ङीषानुकौ विकल्पेन भवतः। अर्य्या। अर्य्याणी।

---

* इस परिभाषा का इस सूत्र पर दिखाने का प्रयोजन क्या है। ऐसी आशंका हो सकती है। इसका समाधान महाभाष्य से मिलता है। इस सूत्र का उदाहरण है—प्रष्ठस्य स्त्री प्रष्ठी। इसमें 'प्र' का कृदन्त 'ष्ठ' के साथ समास है। यदि इसमें सुबन्तों का समास करें तो अन्तरंग होने से सुबन्तता से पहले ही 'टाप्' प्रत्यय प्राप्त होगा। और फिर अदन्त न होने से इस सूत्र से 'ङीष' नहीं हो सकता और स्त्री प्रत्यय की अन्तरंगता लिङ्ग को प्रातिपदिकार्थ मानकर पूर्वोपस्थिति है। और कारक की उपस्थिति परवर्ती होने से बहिरंग है। सुबन्त से पूर्व ही समास होने से यह दोष नहीं आता है। —**अनुवादक**

क्षत्रिया। क्षत्रियाणी॥४९॥

भाषार्थ—यहाँ पूर्व सूत्र से 'पुंयोगात्' की अनुवृत्ति है। पुरुष के योग से स्त्रीलिङ्ग के कथन में इन्द्र, वरुण, भव, शर्व, रुद्र, मृड, हिम, अरण्य, यव, यवन, मातुल और आचार्य—इन बारह प्रातिपदिकों से 'ङीष्' प्रत्यय होता है। और इन्द्रादि शब्दों को प्रत्ययसंनियोग से 'आनुक्' आगम होता है। जैसे—इन्द्रस्य स्त्री इन्द्राणी। वरुणानी। भवानी। शर्वाणी। रुद्राणी। मृडानी।

वा०—हिमारण्ययोर्महत्त्वे॥१॥

सूत्रविहित 'ङीष्' तथा 'आनुक्' हिम और अरण्य शब्दों से महत्त्व अर्थ में होते हैं। यहाँ पुंयोगाख्या का सम्बन्ध नहीं है। जैसे—महद् हिमं हिमानी। महदरण्यम् अरण्यानी॥१॥

वा०—यवाद् दोषे॥२॥

यहाँ पुंयोगाख्या का सम्बन्ध नहीं है दोष वाच्य कहने से। स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान 'यव' शब्द से दोष अर्थ में 'ङीष्' प्रत्यय और 'आनुक्' आगम होता है। जैसे—दुष्टो यवो यवानी॥२॥

वा०—यवनाल्लिप्याम्॥३॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान 'यवन' प्रातिपदिक से लिपि (लेखन क्रिया विशेष) अर्थ में 'ङीष्' प्रत्यय और 'आनुक्' आगम होते हैं। जैसे—यवनानी लिपिः। यहाँ पुंयोगाख्या का पूर्ववत् सम्बन्ध नहीं है॥३॥

वा०—उपाध्याय-मातुलाभ्यां वा॥४॥

यहाँ पुंयोगाख्या में नित्य प्रत्यय प्राप्त होने पर विकल्प के लिए वार्त्तिक बनाया है। पुंयोग से स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान 'उपाध्याय' और 'मातुल' प्रातिपदिकों से 'ङीष्' प्रत्यय और 'आनुक्' आगम विकल्प करके होवे। इस वार्त्तिक से आगम का ही विकल्प किया है। प्रत्यय तो पूर्वसूत्र से नित्य ही होता है। जैसे—उपाध्यायस्य स्त्री उपाध्यायानी। उपाध्यायी। मातुलानी। मातुली॥४॥

वा०—आचार्यादणत्वं च॥५॥

यह वार्त्तिक केवल णत्व के निषेध के लिए है। प्रत्ययादि तो यथाप्राप्त सूत्र से ही होते हैं। पुंयोग से स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान 'आचार्य' प्रातिपदिक से 'ङीष्' प्रत्यय और 'आनुक्' आगम होते हैं; और संहिता नियम से प्राप्त णत्व नहीं होता है। जैसे—आचार्यस्य स्त्री आचार्य्यानी॥५॥

वा०—मुद्गलाच्छन्दसि लिच्च॥६॥

यह अपूर्वविधान किया है। स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान मुद्गल शब्द से वेद विषय में 'ङीष्' प्रत्यय और 'आनुक्' आगम होते हैं, और ङीष् प्रत्यय लित् होता है। प्रत्यय का लित्करण स्वर के लिए है। जैसे—रथीरभून् मुद्गलानी गविष्ठौ॥६॥

वा०—अर्य्य-क्षत्रियाभ्यां वा॥७॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान 'अर्य्य' और 'क्षत्रिय' शब्दों से 'ङीष्' प्रत्यय और

'आनुक्' आगम विकल्प से होते हैं। जैसे—अर्य्याणी। अर्य्या। क्षत्रियाणी। क्षत्रिया॥ ७॥— ॥ ४९॥

क्रीतात् करणपूर्वात्॥ ५०॥

क्रीतात्—५।१। करणपूर्व्रात्—५।१। करणं पूर्वमस्य तस्मात्। स्त्रियां वर्त्तमानात् करणपूर्वात् क्रीतशब्दान् ङीष् प्रत्ययो भवति। वस्त्रेण क्रीयतेऽसौ वस्त्रक्रीती। वसनक्रीती। करणपूर्वादिति किम्। सुक्रीता। दुष्क्रीता॥ ५०॥

भाषार्थ—स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान करणकारकवाची जिसके पूर्वपद में हो, उस 'क्रीत' शब्द से 'ङीष्' प्रत्यय होता है। जैसे—वस्त्रेण क्रीयतेऽसौ वस्त्रक्रीती। वसनक्रीती। इत्यादि। यहाँ 'करणपूर्वात्' इसलिए है—सुक्रीता। दुष्क्रीता। यहाँ ङीष् न हो॥ ५०॥

क्तादल्पाख्यायाम्॥ ५१॥

करणपूर्वादित्यनुवर्त्तते। क्तात्—५।१। अल्पाख्यायाम्—७।१। अल्पाख्यायां करणपूर्वात् क्तान्तात् प्रातिपदिकान् ङीष् प्रत्ययो भवति। अभ्रेण विलिप्ता अभ्र विलिप्ती द्यौः। सूर्यविलिप्ती। सूपविलिप्ती स्थाली। अल्पसूपेत्यर्थः। अल्पाख्यायामिति किम्। घृतविलिप्ता तनूः। अत्र टाबेव॥ ५१॥

भाषार्थ—यहाँ पूर्वसूत्र से 'करणपूर्वात्' की अनुवृत्ति है। स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान करण कारक जिसके पूर्व में हो उस क्तप्रत्ययान्त प्रातिपदिक से अल्पाख्या अर्थ में 'ङीष्' प्रत्यय होता है। जैसे—अभ्रेण विलिप्ता अभ्रविलिप्ती द्यौः। सूर्यविलिप्ती। सूपविलिप्ती स्थाली। यहां 'अल्पाख्यायाम्' इसलिए कहा है कि—घृतविलिप्ता तनूः। यहाँ अल्पाख्या न होने से 'ङीष्' न होवे॥ ५२॥

बहुव्रीहेश्चान्तोदात्तात्॥ ५२॥

क्तादित्यनुवर्त्तते। बहुव्रीहेः —५।१। च [अ०]। अन्तोदात्तात्—५।१। स्त्रियां वर्त्तमानात् क्तान्तादन्तोदात्ताद् बहुव्रीहिप्रातिपदिकान् ङीष् प्रत्ययो भवति। केशा लूना यस्याः केशलूनी। नखछिन्नी। नासिका भिन्ना यस्याः सा नासिकाभिन्नी। केशसिती। बहुव्रीहेरिति किम्। पादाभ्यां याता पादयाता।

वा०—अन्तोदात्ताज्जातप्रतिषेधः॥ १॥

जाति-काल-सुखादिभ्यः परस्य जातान्तस्य बहुव्रीहेर्विकल्पेनान्तोदात्तत्वं विधीयते। यस्मिन् पक्षेऽन्तोदात्तत्वं तत्र प्राप्तस्य ङीषः प्रतिषेधः। दन्तजाता। स्तनजाता॥ १॥

वा०—पाणिगृहीत्यादीनां विशेषे॥ २॥

पाणिगृहीत्यादिशब्देषु विशेषेऽर्थे वैदिकसंस्कारब्राह्मादिविवाहे गम्यमाने ङीष् प्रत्ययो विज्ञेयः। पाणिगृहीती भार्य्या चेत्। यस्या हि यथाकथंचिद् व्यभिचाराद्यर्थं पाणिर्गृह्यते पाणिगृहीता सा भवति॥ २॥

वा०—बहुलं [1]संज्ञाछन्दसोः प्रबद्धविलूनाद्यर्थम्॥ ३॥

---

१. महाभाष्य में 'बहुलं तणि प्रबद्धविलूनाद्यर्थम्' ऐसा पाठ है। —सम्पादक

संज्ञायां विषये छन्दसि च बहुलं ङीष् प्रत्ययो भवति। प्रबद्धविलूनी प्रबद्धविलूना॥ ३ ॥

वा०—अन्तोदात्तादबहुनञ्सुकालसुखादिपूर्वात्॥ ४॥

बहु, नञ्, सु, काल, सुखादि। बह्वादिभ्यः परस्मादन्तोदात्ताद् बहुव्रीहेर्ङीष् प्रत्ययो न भवति। बहुकृता। अकृता। सुकृता। काल-मासजाता। संवत्सरजाता। सुखादि-सुखयाता। दुःखयाता। क्षिप्रयाता॥ ५२ ॥

भाषार्थ—पूर्वसूत्र से 'क्तात्' की अनुवृत्ति है। स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान क्तप्रत्ययान्त अन्तोदात्त बहुव्रीहि प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय होता है। जैसे—केशा लूना यस्याः सा केशलूनी। नखछिन्नी। नासिका भिन्ना यस्याः सा नासिकाभिन्नी। केशसिती। इत्यादि। यहाँ 'बहुव्रीहेः' का ग्रहण इसलिए है कि—पादाभ्यां याता पादयाता। यहाँ बहुव्रीहि न होने से ङीष् नहीं होवे।

वा०—अन्तोदात्ताज् जात प्रतिषेधः॥ १ ॥

सूत्र से जो अन्तोदात्त बहुव्रीहि प्रातिपदिकों से ङीष् कहा है सो जात-शब्दान्त से न होवे। ''जाति-काल-सुखादिभ्यः'' (६।२।१६९) इस सूत्र से जातान्त बहुव्रीहि को विकल्प से अन्तोदात्त विधान किया है। जिस पक्ष में अन्तोदात्त होता है, उसमें प्राप्त 'ङीष्' का यह निषेध है। जैसे—दन्तजाता। स्तनजाता॥ १ ॥

वा०—पाणिगृहीत्यादीनां विशेषे॥ २ ॥

पाणिगृहीती इत्यादि शब्दों में विशेष वेदोक्तरीति से ब्राह्मादि शिष्ट विवाह अर्थ में 'ङीष्' प्रत्यय जानना चाहिये। जैसे—पाणिगृहीती भार्या। और जिसका जैसे तैसे अशिष्ट व्यवहार के लिए पाणिग्रहण किया हो, वहाँ 'पाणिगृहीता' प्रयोग बनेगा॥ २ ॥

वा०—बहुलं संज्ञा-छन्दसोः प्रबद्ध विलूनाद्यर्थम्॥ ३ ॥

संज्ञा और वैदिक प्रयोग विषय में क्तान्त शब्दों से बहुल करके 'ङीष्' प्रत्यय होता है। जैसे—प्रबद्धविलूनी। प्रबद्धविलूना। इत्यादि॥ ३ ॥

वा०—अन्तोदात्ताद् अबहुनञ्सुकाल सुखादिपूर्वात्॥ ४ ॥

बहु, नञ्, सु, काल और सुखादि से परे क्तान्त अन्तोदात्त बहुव्रीहि प्रातिपदिकों से स्त्रीलिङ्ग विषय में 'ङीष्' प्रत्यय नहीं होता है। जैसे—बहुकृता। अकृता। सुकृता। काल-मासजाता। संवत्सरजाता। सुखादि—सुखयाता। दुःखयाता। क्षिप्रयाता॥ ४-५२ ॥

अस्वाङ्गपूर्वपदाद्वा॥ ५३ ॥

क्तान्तादन्तोदात्तादित्यनुवर्त्तते। अस्वाङ्गपूर्वपदात् —५।१।, वा [अ०] प्राप्तविभाषेयम्। पूर्वेण नित्ये प्राप्ते विकल्पः। स्त्रियां वर्त्तमानात् क्तान्तादन्तोदात्तादस्वाङ्गपूर्वपदाद् बहुव्रीहेः प्रातिपदिकाद् विकल्पेन ङीष् प्रत्ययो भवति। मांसं जग्धमनया। मांसजग्धी। मांसजग्धा। सुरापीती। सुरापीता। लशुनभक्षिती। लशुनभक्षिता। स्वाङ्गपूर्वपदात् पूर्वसूत्रेण नित्यं ङीष्। [दन्तभिन्नी] अन्तोदात्तादिति किम्। पर्णानि छिन्नानि यस्याः सा पर्णाच्छिन्ना।

अत्रानाच्छादनादिति प्रतिषेधादन्तोदात्तो न भवति॥ ५३॥

भाषार्थ—यहाँ 'क्तात्, अन्तोदात्तात्' पदों की अनुवृत्ति है। यह प्राप्त विभाषा है। पूर्वसूत्र से नित्य प्राप्त होने पर यह विकल्प करता है। स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान क्तान्त अन्तोदात्त बहुव्रीहि प्रातिपदिक से, जिसके पूर्वपद में स्वाङ्गवाची न हो, उससे विकल्प से ङीष् प्रत्यय होता है। जैसे—मांसं जग्धमनया मांसजग्धी। मांसजग्धा। सुरापीती। सुरापीता। लशुनभक्षिती। लशुनभक्षिता*। जिसके पूर्वपद में स्वांगवाची हो, उससे पूर्वसूत्र से नित्य ङीष होता है। जैसे—[दन्तभिन्नी] इत्यादि।

यहाँ 'अन्तोदात्तात्' इसलिये ग्रहण किया है—पर्णानि छिन्नानि यस्याः सा पर्णच्छिन्ना। यहाँ 'जातिकाल सुखादिभ्योऽनाच्छादनात्' (६।२।१६९) अनाच्छादन कहने से अन्तोदात्त नहीं हुआ है। इसलिये इस सूत्र से 'ङीष्' नहीं हुआ॥ ५३॥

स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्॥ ५४॥

वेत्यनुवर्त्ततेऽन्यत्सर्वं निवृत्तम्। स्वाङ्गात् —५।१। च [अ०] उपसर्जनात् —५।१। असंयोगोपधात् —५।१। स्त्रियां वर्त्तमानात् स्वाङ्गादुपसर्जनान्ताद् असंयोगोपधात् प्रातिपदिकाद् विकल्पेन ङीष् प्रत्ययो भवति। चन्द्रवन्मुखमस्याः चन्द्रमुखी। चन्द्रमुखा। मृदुहस्ती। मृदुहस्ता। श्लक्ष्णमुखी। श्लक्ष्णमुखा। निष्क्रान्ता केशेभ्यो निष्केशी। निष्केशा वा यूका। अतिक्रान्ता केशान् अतिकेशी। अतिकेशा वा माला। अत्रैकविभक्तिसमासे बहुव्रीहेर्निवृत्तत्वात् सिद्धम्। स्वङ्गादिति किम्। बहुधना। शोभनाश्वा। उपसर्जनादिति किम्। न शिखा अशिखा। असंयोगोपधादिति किम्। शोभनगुल्फा। स्थूलपार्श्वा।

वा०—संयोगोपधप्रतिषेधेऽङ्गगात्रकण्ठेभ्योऽप्रतिषेधः॥ १॥

अङ्ग-गात्र-कण्ठानि प्रातिपदिकानि संयोगोपधानि। तेभ्यः सूत्रेण प्रतिषिद्धो ङीष् विधीयते। अव्यङ्गाङ्गी। अव्यङ्गाङ्गा। मृद्वङ्गी। मृद्वङ्गा। दर्शनीयगात्री। दर्शनीयगात्रा। स्निग्धकण्ठी। स्निग्धकण्ठा।

का०— अद्रवं मूर्तिमत्स्वाङ्गं प्राणिस्थमविकारजम्।
अतत्स्थं तत्र दृष्टं च तस्य चेत्तत् तथायुतम्॥ १॥

स्वस्य शरीराभिमानिन आत्मनः शरीरांशानां सामान्येन स्वाङ्गत्वं प्राप्तं तत्रानया कारिकया स्वाङ्गस्य विशेषलक्षणमुच्यते। (अद्रवम्) आर्द्रीभावाद् इतरं स्वाङ्गम्। यथा—बहुकफा। अत्र कफस्य प्राणिस्थत्वात् स्वाङ्गत्वं प्राप्तं तन् मा भूत्। (मूर्त्तिमत्) मूर्त्तिः स्थौल्यं विद्यतेऽस्मिन् तत्। मूर्त्तिमदिति किम्। बहुज्ञाना। ज्ञानस्यामूर्त्तत्वात् स्वाङ्गसंज्ञा न भवति। (प्राणिस्थम्) प्राणिनि शरीरे तिष्ठतीति। प्राणिस्थमिति किम्। श्लक्ष्णमुखा शाला। (अविकारजम्) विकाराद् वाय्वादेर्वैषम्याज्जातं विकारजं स्वाङ्गं न भवतीति। अविकारजमिति किम्। बहुव्रणा। बहुशोफा। (अतत्स्थं तत्र दृष्टं च) तस्मिन् प्राणिनि तिष्ठतीति तत्स्थं

---

* इन समस्त प्रयोगों में (जातिकालसुखादि अ० ६।२।१६९) सूत्र से उत्तरपद को अन्तोदात्त हुआ है।
—अनुवादक

न तत्स्थम् अतत्स्थम्। अप्राणिस्थमपि स्वाङ्गं भवति। परन्तु पूर्वं तत्र प्राणिनि दृष्टं तद्भवेत्। यथा—दीर्घाः केशा अस्यां रथ्यायां दीर्घकेशी रथ्या। (तस्य चेत्तत् तथायुतम्) तस्याप्राणिनस्तदङ्गं यथा प्राणिनि युक्तं भवति तथा जडपदार्थेऽपियुक्ते स्वाङ्गसंज्ञं भवति। यथा—दीर्घनासिकी अर्च्चा। तुङ्गनासिकी अर्च्चा। एवमनया कारिकया स्वाङ्गस्य लक्षणमभिधीयते॥५४॥

भाषार्थ—यहाँ 'वा' की अनुवृत्ति है, अन्य क्तादि सब पदों की निवृत्ति हो गयी है। स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान, जिसके स्वाङ्गवाची संयोगोपध से भिन्न हों, उन उपसर्जन प्रातिपदिकों से विकल्प से ङीष् प्रत्यय होता है। जैसे—चन्द्रवन्मुखमस्याः चन्द्रमुखी। चन्द्रमुखा। मृदुहस्ती। मृदुहस्ता। श्लक्ष्णमुखी। श्लक्ष्णमुखा। निष्क्रान्ता केशेभ्यो निष्केशी। निष्केशा वा यूका। अतिक्रान्ता केशान् अतिकेशी। अतिकेशा वा माला। यहाँ एकविभक्ति समास में बहुव्रीहि पद की निवृत्ति होने से विकल्प से 'ङीष्' हुआ है। यहाँ 'स्वाङ्गात्' पद का ग्रहण इसलिए है—बहुधना। शोभनाश्वा। यहाँ स्वांगवाची न होने से ङीष् नहीं हुआ। 'उपसर्जनात् का ग्रहण इसलिये है कि—न शिखा अशिखा। यहाँ उपसर्जन न होने से 'ङीष्' नहीं हुआ और 'असंयोगोपधात्' का ग्रहण इसलिये है कि शोभनगुल्फा। स्थूलपार्श्वा। यहाँ संयोगोपध होने से 'ङीष्' नहीं हुआ है।

वा०—संयोगोपधप्रतिषेधेऽङ्गगात्रकण्ठेभ्योऽप्रतिषेधः॥ १ ॥

सूत्र में संयोगोपधों से निषेध होने से ङीष् प्रत्यय अंगादि शब्दों से प्राप्त नहीं है, उसका यह अपवाद विधान करता है। स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान जो उपसर्जन स्वाङ्गवाची अंग, गात्र और कण्ठ प्रातिपदिक हैं, उनसे ङीष् प्रत्यय विकल्प से होता है। जैसे—अव्यङ्गागी। अव्यङ्गागा। मृद्वंगी। मृद्वंगा। दर्शनीयगात्री। दर्शनीयगात्रा। स्निग्धकण्ठी। स्निग्धकण्ठा। इत्यादि।

का०— अद्रवं मूर्त्तिमत् स्वाङ्गं प्राणिस्थमविकारजम्।
अतत्स्थं तत्र दृष्टं च तस्य चेत्तत् तथायुतम्॥ १ ॥

अपने शरीर के अभिमानी जीवात्मा से सम्बद्ध शरीर के अवयवों की सामान्यरूप से स्वाङ्ग संज्ञा प्राप्त है—स्वमङ्गं स्वाङ्गम्। किन्तु व्याकरणशास्त्र में स्वाङ्ग शब्द का विशेष लक्षण है जो इस कारिका के द्वारा कहा गया है—(अद्रवम्) द्रव तरल पदार्थ को कहते हैं, उससे भिन्न अद्रव होता है। प्राणी में स्थित होने से कफ की भी स्वाङ्ग संज्ञा प्राप्त होती है। इसलिए अद्रव विशेषण देकर उसका निषेध किया है। इसलिए 'बहुकफा' प्रयोग में ङीष् नहीं होता है। (मूर्तिमत्) मूर्ति=स्थूलता को कहते हैं, जिसे स्पर्शादि किया जा सके। जिसमें मूर्तत्व हों, उसे स्वाङ्ग कहते हैं। प्राणिस्थ होने से ज्ञान की भी स्वाङ्ग संज्ञा प्राप्त होती है, उसका निराकरण इस दूसरे विशेषण से किया गया है। क्योंकि ज्ञान प्राणिस्थ तो है किन्तु मूर्त्त नहीं है। अतः उसकी स्वाङ्ग संज्ञा न होने से यहाँ 'ङीष्' प्रत्यय नहीं होता है—बहुज्ञाना। (प्राणिस्थम्) प्राणवाले को प्राणी कहते हैं और प्राणी के शरीर में स्थित अवयव हैं, उन्हें स्वाङ्ग कहते हैं। इसलिए जो प्राणवाले नहीं

हैं. उनकी स्वाङ्ग संज्ञा नहीं हैं। इस विशेषण के लगाने से यहाँ 'ङीष्' नहीं होता श्लक्ष्णमुखाशाला। शाला (घर) प्राणवान् नहीं है। (अविकारजम्) शरीर में वात, पित्त, कफ के विकृत होने से जो रोग उत्पन्न हो उसे विकारज कहते हैं। और जो विकारज फोडा, सूजनादि शरीर में हो जाते हैं, उनकी स्वाङ्ग संज्ञा न होवे, इसलिए यह विशेषण लगाया है। इससे यहाँ 'ङीष्' नहीं होता—बहुव्रणा। बहुशोफा।

(अतत्स्थं तत्र दृष्टं च) जो अवयव प्राणी के शरीर में स्थित हो उसे 'तत्स्थ' कहते हैं। और जो प्राणिस्थ न हो उसे 'अतत्स्थ' कहते हैं। व्याकरणशास्त्र में कहीं अप्राणिस्थ अवयवों की भी स्वाङ्ग संज्ञा होती है, किन्तु वे अवयव प्राणियों में पहले देखे गये हों तो स्वाङ्ग संज्ञा होती है। जैसे—दीर्घाः केशा अस्यां रथ्यायां सा दीर्घकेशी रथ्या। बड़े-बड़े बाल प्राणियों में देखे जाते हैं, वैसे ही बाल रथ्या गली में देखकर ऐसा प्रयोग किया जाता है। (तस्य चेत् तत् तथायुतम्) और जैसे प्राणी के शरीर में अंग युक्त होते हैं, यदि वैसे ही अचेतन (अप्राणी) पदार्थों में युक्त हों तो उनकी भी स्वाङ्ग संज्ञा होती है। जैसे—दीर्घनासिकी अर्च्चा। तुङ्गनासिकी अर्च्चा। ऐसी मूर्त्ति जिसकी नाक लम्बी है अथवा ऊँची हो, उसे इन शब्दों से कहा जाता है।

इस प्रकार व्याकरण शास्त्र में यह स्वाङ्ग का विशेष लक्षण किया गया है॥५४॥

नासिकोदरौष्ठजङ्घादन्तकर्णशृङ्गाच्च॥५५॥

स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादित्यनुवर्त्तते। नासिको.......शृंगात् —५।१।च [अ०] नासिकादीनां समाहारद्वन्द्वः। नासिकोदरयोर्बह्वच्त्वाद् ओष्ठादीनां संयोगोपधत्वाच्च प्रतिषेधः प्राप्तः सोऽनेन बाध्यते। स्त्रियां वर्त्तमानेभ्यः स्वाङ्गोपसर्जन-नासिकाद्यन्तेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो विकल्पेन ङीष् प्रत्ययो भवति। कल्याणनासिकी। कल्याणनासिका। उच्चनासिकी। उच्चनासिका। कृशोदरी। कृशोदरा। रक्तौष्ठी। रक्तौष्ठा। स्थूलजङ्घी। स्थूलजङ्घा। समदन्ती। समदन्ता। विशालकर्णी। विशालकर्णा। तीक्ष्णशृङ्गी गौः। तीक्ष्णशृङ्गा वा।

'पुरस्तादपवादा अनन्तरान् विधीन् बाधन्ते नोत्तराननिति' परिभाषया संनिकृष्टस्य बह्वज्लक्षणस्यैव प्रतिषेधस्य बाधनं भवति। 'सह-नञ्-विद्यमानपूर्वाच्चेति' प्रतिषेधो भवत्येव। सनासिका। अनासिका। विद्यमान-नासिका। तथा 'मध्येऽपवादाः पूर्वान् विधीन् बाधन्त' इति परिभाषया पूर्वस्य संयोगोपधलक्षणस्यैव प्रतिषेधो भवति, न तु सह-नञ्-विद्यमान-पूर्वाच्चेत्यस्य। सदन्ता। अदन्ता। विद्यमानदन्ता।

वा०—नासिकादीनां विभाषायां पुच्छाच्च॥१॥

पुच्छशब्दः संयोगोपधः स्वाङ्गं, तस्मात् पूर्वसूत्रेण प्रतिषेधः प्राप्तोऽनेन वार्त्तिकेन बाध्यते। कल्याणपुच्छी। कल्याणपुच्छा॥१॥

वा०—कबर-मणि-विष-शरेभ्यो नित्यम्॥२॥

कबरादिभ्यः परस्मात् पुच्छशब्दान् नित्यं ङीष् प्रत्ययो भवति। कबरपुच्छी।

मणिपुच्छी। विषपुच्छी। शरपुच्छी॥ २॥

वा०—उपमानात् पक्षाच्च पुच्छाच्च॥ ३॥

उपमानवाचिनः पक्षान्तात् पुच्छान्ताच्च प्रातिपदिकान्नित्यं ङीष् प्रत्ययो भवति। उलूकपक्षाविव पक्षौ यस्या उलूकपक्षीशाला। उलूकपुच्छी सेना॥ ३॥ ५५॥

भाषार्थ—यहाँ 'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनात्' पदों की अनुवृत्ति है। नासिकादि शब्दों में समाहारद्वन्द्व समास है। इस सूत्र में नासिका और उदर शब्दों से बह्वच् होने से 'न क्रोडादिबह्वचः' (४।१।५६) सूत्र से ङीष् का निषेध प्राप्त है और ओष्ठ आदि संयोगोपध हैं इसलिए पूर्वसूत्र से निषेध प्राप्त है। यह सूत्र दोनों का अपवाद है। स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान स्वाङ्गवाची और उपसर्जन (अप्रधानभूत) नासिका आदि शब्द जिनके अन्त में हों, उन प्रातिपदिकों से विकल्प से 'ङीष्' प्रत्यय होता है। जैसे—कल्याणनासिकी। कल्याणनासिका। उच्चनासिकी। उच्चनासिका। कृशोदरी। कृशोदरा। रक्तोष्ठी। रक्तोष्ठा। स्थूलजङ्घी। स्थूलजङ्घा। समदन्ती। समदन्ता। विशालकर्णी। विशालकर्णा। तीक्ष्णशृङ्गी गौः। तीक्ष्णशृङ्गा वा।

[ऊपर यह बात कही गई है कि यह सूत्र निषेधों का बाधक है किन्तु सब का नहीं है। किस का बाधक है किस का नहीं? इस का निर्णय इन परिभाषाओं से होता है—]

परि०—पुरस्तादपवादा अनन्तरान् विधीन् बाधन्ते नोत्तरान्॥ १॥

जो सामान्य सूत्र से पहले अपवाद सूत्र हैं, वे अपने समीपस्थ कार्यों के बाधक होते हैं, दूरस्थ (अपेक्षाकृत) विधियों के नहीं। इस परिभाषा के नियम से यह सूत्र समीपस्थ 'न क्रोडादि बह्वचः' (४।१।५६) सूत्र से विहित निषेध का तो बाधक है किन्तु 'सहनञ्विद्यमान पूर्वाच्च' (४।१।५७) सूत्र का नहीं। इसलिए नासिकादि से पूर्व सहादि शब्द हों तो 'ङीष्' का निषेध ही होता है। जैसे—सनासिका। अनासिका। विद्यमाननासिका। इसी प्रकार दूसरी परिभाषा है—

परि०—मध्येऽपवादाः पूर्वान् विधीन् बाधन्ते नोत्तरान्॥ २॥

जो पूर्व और पर सामान्य सूत्रों के मध्य में अपवाद सूत्र पढा हो तो वह अपने से पूर्वविधि का बाधक होता है, उत्तरविधि का नहीं। इस परिभाषा से भी पूर्वोक्त दोष का समाधान होता है। अर्थात् यह 'नासिकोदर०' (४।१।५५) सूत्र पूर्ववर्ती संयोगोपध मानकर जो निषेध किया है, उस प्रतिषेध का यह बाधक है, परवर्ती 'सहनञ्विद्यमान०' (४।१।५७) इस निषेध का बाधक नहीं है। इसलिए यहाँ निषेध ही होता है—सदन्ता। अदन्ता। विद्यमानदन्ता।

वा०—नासिकादीनां विभाषायां पुच्छाच्च॥ १॥

पुच्छ शब्द संयोगोपध और स्वाङ्गवाची है, इस कारण पूर्वसूत्र से 'ङीष्' का निषेध प्राप्त हुआ, उसका यह वार्त्तिक बाधक है। पुच्छान्त स्वाङ्गवाची उपसर्जन स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान जो प्रातिपदिक है, उससे विकल्प करके 'ङीष्' प्रत्यय होता

है। जैसे—कल्याणपुच्छी। कल्याणपुच्छा॥ १॥

वा०—कबर-मणि-विष-शरेभ्यो नित्यम्॥ २॥

कबर, मणि, विष और शर इन शब्दों से परे जो स्वाङ्गवाची उपसर्जन पुच्छ प्रातिपदिक है, उससे स्त्रीविषय में नित्य 'ङीष्' प्रत्यय होता है। जैसे—कबरपुच्छी। मणिपुच्छी। विषपुच्छी। शरपुच्छी॥ २॥

वा०—उपमानात् पक्षाच्च पुच्छाच्च॥ ३॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान उपमानवाची शब्दों से परे स्वाङ्गवाची पक्ष और पुच्छ प्रातिपदिक हों, उनसे नित्य ही 'ङीष्' प्रत्यय होता है। जैसे—उलूकपक्षाविव पक्षौ यस्याः सा उलूकपक्षी शाला। उलूकपुच्छी सेना॥ ३॥—॥ ५५॥

न क्रोडादिबह्वचः॥ ५६॥

स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादित्यस्य प्रतिषेधः। स्वाङ्गादित्यनुवर्त्तते। न [अ०] क्रोडादिबह्वचः —५।१। क्रोडादयश्च बह्वचश्चैषां समाहारः। क्रोडादि-स्वाङ्गान्ताद् बह्वच्स्वाङ्गान्ताच्च प्रातिपदिकान् ङीष् प्रत्ययो न भवति। कल्याणक्रोडा। कल्याणखुरा। पृथुजघना। स्निग्धकपोला। चारुललाटा।

अथ क्रोडादयः—क्रोड। नख। खुर। गोखा। उखा। शिखा। बाल। शफ। गुद। घोण। भग। गल। क्रोडादयः सर्वेऽबह्वचः॥ इति क्रोडादयः॥ ५६॥

भाषार्थ—यह सूत्र 'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनात्' (४।१।५४) सूत्र से प्राप्त 'ङीष्' का निषेध करता है। यहाँ 'स्वांगात्' पद की अनुवृत्ति है। स्त्रीलिंग में वर्त्तमान जो क्रोडा आदि प्रातिपदिक हैं और जिनमें बहुत अच् (स्वर) हों, वे स्वाङ्गवाची शब्द जिनके अन्त में हैं, उनसे 'ङीष्' प्रत्यय नहीं होता है। जैसे—क्रोडादि—कल्याणक्रोडा कल्याणखुरा। बह्वच्—पृथुजघना। स्निग्धकपोला। चारुललाटा॥ ५६॥

सहनञ्विद्यमानपूर्वाच्च॥ ५७॥

स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादित्यनुवर्त्तते। सहनञ्विद्यमानपूर्वात् —५।१। च [अ०] स्वाङ्गोपसर्जनान्तात् सह-नञ्-विद्यमानपूर्वात् प्रातिपदिकान् ङीष् प्रत्ययो न भवति। सकेशा। अकेशा। विद्यमानकेशा। सनासिका। अनासिका। विद्यमाननासिका॥ ५७॥

भाषार्थ—यहाँ भी 'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनात्' पदों की अनुवृत्ति है। स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान सह, नञ्, विद्यमान ये जिनके पूर्व हों उन स्वाङ्गान्त उपसर्जन प्रातिपदिकों से 'ङीष्' प्रत्यय नहीं होता है। जैसे—सकेशा। अकेशा। विद्यमानकेशा। सनासिका। अनासिका। विद्यमाननासिका॥ ५७॥

नखमुखात् संज्ञायाम्॥ ५८॥

नेत्यनुवर्त्तते। नखमुखात् —५।१। संज्ञायाम् —७।१। नखस्वाङ्गान्तान् मुखस्वाङ्गान्ताच्च संज्ञायां विषये ङीष् प्रत्ययो न भवति। शूर्पणखा। वज्रणखा। गौरमुखा। कालमुखा। संज्ञायामिति किमर्थम्। कुनखी कन्या।

चन्द्रमुखी बाला। नखशब्दः क्रोडादिषु पठ्यते तेन प्रतिषेधे सिद्धे नियमार्थ आरम्भः। नखशब्दात् संज्ञायामेव प्रतिषेधः॥ ५८॥

भाषार्थ—यहाँ भी 'न' की अनुवृत्ति है। स्त्रीलिंग में वर्त्तमान स्वाङ्गवाची नख और मुख शब्द जिसके अन्त में हों, उन प्रातिपदिकों से संज्ञा विषय में 'ङीष्' प्रत्यय नहीं होता है। जैसे—शूर्पणखा। वज्रनखा। गौरमुखा। कालमुखा। यहाँ 'संज्ञायाम्' ग्रहण इसलिए है कि कुनखी कन्या। चन्द्रमुखी बाला। यहाँ 'ङीष्' का निषेध न हो। यद्यपि नख शब्द क्रोडादि गण में पठित है, उससे प्रतिषेध प्राप्त है, पुनरपि इस सूत्र में निषेध करना नियमार्थ है, नख शब्द से संज्ञा में ही प्रतिषेध होवे, अन्यत्र नहीं॥ ५८॥

दीर्घजिह्वी च छन्दसि॥ ५९॥

नेति नानुवर्त्तते। दीर्घजिह्वी —१।१। च [अ०] छन्दसि —७।१। जिह्वा-शब्दः संयोगोपधस्तस्मात् प्रतिषेधे प्राप्ते नियमार्थोऽयमारम्भः। इत्यर्थे चशब्दः। छन्दसि विषये दीर्घजिह्वीति शब्दो ङीष् प्रत्ययान्तो निपात्यते। दीर्घजिह्वी वै देवानां हव्यमलेट्॥ ५९॥

भाषार्थ—यहाँ भी 'न' पद की अनुवृत्ति है। जिह्वा शब्द संयोगोपध है, उससे प्रतिषेध (स्वाङ्गाच्चोपसर्जन) प्राप्त होने पर यह सूत्र नियमार्थक है। सूत्र में 'च' शब्द 'इति' के अर्थ में है*। वेदविषय में 'दीर्घजिह्वी' शब्द ङीष्-प्रत्ययान्त निपातन किया है। जैसे—दीर्घजिह्वी वै देवानां हव्यमलेट्।

दिक्पूर्वपदान् ङीप्॥ ६०॥

स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादित्यादिप्रकरणं सर्वमनुवर्त्तते। छन्दसीति च। दिक्-पूर्वपदात् —५।१। ङीप् —१।१। दिग्वाची शब्दः पूर्वपदं यस्य तस्मात्। स्त्रियां वर्त्तमानात् स्वाङ्गोपसर्जनादसंयोगोपधादक्रोडादेश्च बह्वचो दिक्पूर्व-पदात् प्रातिपदिकात् परस्य ङीष् स्थाने छन्दसि विषये ङीप् प्रत्ययो भवति। प्राङ्मुखी। प्राङ्मुखा। प्रत्यङ्मुखी। प्रत्यङ्मुखा। प्रत्ययस्यानुदात्तः स्वरो यथा स्यादिति ङीप्-विधानम्। प्रतिषिद्धानामप्यनुवर्तनादिह न भवति—प्राग्गुल्फा। प्राक्क्रोडा। प्रत्यग्ललाटा। अत्र बह्वज्लक्षणेन संयोगोपधलक्षणेन च प्रतिषेधो भवत्येव॥ ६०॥

भाषार्थ—यहाँ 'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनात् इत्यादि और 'छन्दसि' पदों की अनुवृत्ति है। स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान दिशावाची पूर्वपद है जिनके, उन स्वाङ्गवाची, उपसर्जन असंयोगोपध प्रातिपदिकों से वेद विषय में 'ङीष्' के स्थान में 'ङीप्' प्रत्यय होता है, क्रोडादि तथा बह्वच् को छोड़कर। जैसे—प्राङ्मुखी। प्राङ्मुखा। प्रत्यङ्मुखी। प्रत्यङ्मुखा। प्रत्यय के पित् होने से अनुदात्त स्वर हो जाये, इसलिए 'ङीप्' का विधान किया है। प्रतिषेध करनेवाले पदों व सूत्रों की भी अनुवृत्ति होने से यहाँ 'ङीप्' प्रत्यय नहीं होता—प्राग्गुल्फा। प्राक्क्रोडा। प्रत्यग्ललाटा। इनमें संयोगोपध

* जयादित्य ने 'चकारः संज्ञानुकषर्णार्थः' लिखा है। यह चिन्त्य है। —अनुवादक

तथा बह्वच् लक्षण से 'ङीष्' का निषेध होता ही है॥६०॥

वाहः॥६१॥

छन्दसीत्यनुवर्त्तते। वाहः —५।१। कृतवृद्धेर्वाहशब्दस्य ण्विप्रत्ययान्तस्य ग्रहणम्। वाहन्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रीलिङ्गे ङीष् प्रत्ययोभवति। दित्यवाट् च मे दित्यौही च मे। प्रष्ठौही च। वाह ऊठिति भत्वे सत्यूठ्संप्रसारणम्॥६१॥

भाषार्थ—यहाँ 'छन्दसि' पद की अनुवृत्ति है। सूत्र में 'वाहः' शब्द वह धातु से 'वहश्च' (३।२।६४।) सूत्र से ण्वि प्रत्ययान्त है। णित् होने से वृद्धि करके निर्देश किया है। स्त्रीलिंग में वर्त्तमान वाह्—शब्दान्त प्रातिपदिकों से ङीष् प्रत्यय होता है वैदिक प्रयोग विषय में। जैसे—दित्यवाट् च मे दित्यौही च मे। प्रष्ठौही च। यहाँ ङीष् के परे भ संज्ञा होने पर 'वाह ऊठ्' (६।४।१३२) सूत्र से ऊठ् संप्रसारण हुआ है॥६१॥

सख्यशिश्वीति भाषायाम्॥६२॥

छन्दसीति निवृत्तम्।[सख्यशिश्वी-लुप्तविभक्तिको निर्देशः। इति-अ.प.] सखी, अशिश्वी, इत्येतौ शब्दौ ङीष्प्रत्ययान्तौ भाषायां लौकिकप्रयोगविषये निपात्येते। सखीयं मे ब्राह्मणी। न विद्यते शिशुरस्याः सा अशिश्वी। भाषायामिति किम्। सखे सप्तपदी भव। अशिशुरियम्॥६२॥

भाषार्थ—यहाँ 'भाषायाम्' कहने से 'छन्दसि' पद की अनुवृत्ति नहीं है। लौकिक प्रयोग में सखी और अशिश्वी, ये दोनों शब्द स्त्रीविषय में ङीष् प्रत्ययान्त निपातन किये हैं। जैसे—सखीयं मे ब्राह्मणी। न विद्यते शिशुरस्याः सा अशिश्वी। यहाँ 'भाषायाम्' का ग्रहण इसलिए है कि सखे सप्तपदी भव। अशिशुरियम्। यहाँ ङीष् न हो॥६२॥

जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्॥६३॥

जातेः —५।१। अस्त्रीविषयात् -५।१। अयोपधात् -५।१। स्त्रीलिङ्गं नियतविषयोऽस्य न भवति तस्मात्। स्त्रियां वर्त्तमानाद् अस्त्रीविषयाद् यकारोपधात् इतराज्जातिवाचिनः प्रातिपदिकान् ङीष् प्रत्ययो भवति। ब्राह्मणी। वृषली। महिषी। वर्करी। मयूरी। कुक्कुटी। सूकरी। इत्यादि। अस्त्रीविषयादिति किम्। बडवा। मक्षिका। जातेरिति किम्। मुण्डा। खल्वाटा। अयोपधादिति किम्। क्षत्रिया। वैश्या॥

वा०—योपधप्रतिषेधे हयगवयमुकयमत्स्यमनुष्याणामप्रतिषेधः॥

एतेभ्यस्तु यकारोपधेभ्यो ङीष् प्रत्ययो भवत्येव। हयी। गवयी। मुकयी। मत्सी। मनुषी। जातेरित्युच्यते का जातिर्नाम?

का०— आकृतिग्रहणा जातिर्लिङ्गानां च न सर्वभाक्।
सकृदाख्यातनिर्ग्राह्या गोत्रं च चरणैः सह॥१॥

अपर आहुः— प्रादुर्भावविनाशाभ्यां सत्त्वस्य युगपद् गुणैः।
असर्वलिङ्गां बह्वर्थां तां जातिं कवयो विदुः॥२॥

आभ्यां कारिकाभ्यां जातिलक्षणमुच्यते। (आकृतिग्रहणा जातिः) आकृतेर्ग्रहणं यया साऽऽकृतिग्रहणा। एकस्य शब्दस्योच्चारणे-आकृतिमात्रस्य ग्रहणं भवति। यथा—मनुष्यः। अश्वः। गर्दभः। (लिङ्गानां च न सर्वभाक्) इति द्वितीयं जातिलक्षणम्। लिङ्गानामिति कर्मणि षष्ठी। सर्वंभजत इति सामान्य-सर्वोपपदाण् ण्विः। सर्वाणि लिङ्गानि यस्मिन्न भवन्ति साऽपि जातिः। पूर्वेण जातिलक्षणेन तत्त्वस्य मनुष्यत्वादेर्जातिसंज्ञा। अनेन त्वेकाकृतौ भिन्ना जातयः। यथा—ब्राह्मणः। क्षत्रियः। वैश्यः। वृषलः। इमे विशेषजातयः। (सकृदाख्यातनिर्ग्राह्या) सकृदाख्या अनेन निरन्तरं गृह्यते। यथा—गौरित्युक्ते पिण्डान्तरेषु निश्चितं जातेर्ग्रहणं भवति। गोत्रस्य च जातिसंज्ञा भवति। यथा—गर्गस्यापत्यं गार्ग्यः। गार्गी वा। तथा नडस्य गोत्रापत्यं कन्या नाडायनी। अत्र जातित्वादेव ङीष्। गोत्राणि मनुष्येष्वेव भवन्ति। तत्र सर्वे मनुष्या गोत्रेष्वेव। येषां चरणसंज्ञा ते गोत्रेषु न भवन्ति। प्राचीनानामध्येतॄणां चरणसंज्ञा। तेषामपि जातिसंज्ञा भवति। यथा—कठी। पैप्पलादी। कौथुमी। अत्र जातित्वादेव ङीष्॥ १॥

जातिलक्षणे केषांचित् मतं भिन्नम्। सत्वस्य द्रव्यस्य प्रादुर्भावेन याऽऽविर्भावं प्राप्नोति विनाशेन च तिरोभावं सा जातिः। गुणैर्युगपद् द्रव्येण सह जातिः सम्बध्यते। असर्वलिङ्गां नियतलिङ्गां बह्वर्थां बहुविषयां कवयो दीर्घदर्शिनो जातिं विदुर्वदन्ति। पूर्वस्यां कारिकायामाकृतिग्रहणा जातिरिति विशेषः। तत्राकृतिग्रहणत्वात् कौमारं यौवनं जरेति तिसृणामवस्थानामपि जातिसंज्ञा भवति। येषां मतं पूर्वं जातिलक्षणं स्यादिति, तेषां मते कुमारी युवतिः। वृद्धा। इति शब्दत्रयस्य जातित्वाज् जातेश्चेति पुंवद्भावप्रतिषेधः। कुमारी भार्याऽस्य स कुमारीभार्यः। युवतिभार्यः। वृद्धाभार्यः। द्वितीयस्यां कारिकायां प्रादुर्भावविनाशाभ्यामिति विशेषः। तत्राकृतिग्रहणाभावाद् द्रव्येन सहावस्थायाः प्रादुर्भावतिरोभावौ न भवतः। तेन येषां मतमुत्तरं जातिलक्षणं स्यादिति तेषां मते कुमार्यादिशब्दत्रयस्य जातिसंज्ञा नास्ति। तत्र पुंवद्भावो भवत्येव। कुमारी भार्य्याऽस्य कुमारभार्य्यः। युवभार्य्यः। वृद्धभार्य्यः॥ २॥ ६३॥

भाषार्थ—स्त्रीलिंग में वर्त्तमान जो यकारोपध वर्जित जातिवाचक अदन्त और नियत स्त्रीलिंग न हों, उन प्रातिपदिकों से ङीष् प्रत्यय होता है। जैसे—ब्राह्मणी। वृषली। महिषी। वर्करी। मयूरी। कुक्कुटी। सूकरी। इत्यादि। यहाँ 'अस्त्रीविषयात्' इसलिए कहा है कि—बडवा। मक्षिका। यहाँ ङीष् न होवे। 'जातेः' का ग्रहण इसलिए है कि—मुण्डा। खल्वाटा और 'अयोपधात्' का ग्रहण इसिलिए है कि—क्षत्रिया। वैश्या।

वा०—योपधप्रतिषेधे हय-गवय-मुकय-मत्स्य-मनुष्याणामप्रतिषेधः॥ १॥

इस सूत्र से यकारोपध शब्दों से ङीष् का निषेध किया है, किन्तु यकारोपध शब्दों में हय, गवय, मुकय, मत्स्य और मनुष्य प्रातिपदिकों से ङीष् प्रत्यय का निषेध नहीं होता है। जैसे—हयी। गवयी। मुकयी। मत्सी। मनुषी।

इस सूत्र में जातिवाचक शब्दों से 'ङीष्' विधान किया है। जाति किसे कहते हैं? वैयाकरणों ने जाति का लक्षण क्या स्वीकार किया है? इसका उत्तर निम्नलिखित कारिकाओं में दिया गया है—

का०— आकृतिग्रहणाजातिर्लिङ्गानां च न सर्वभाक्।
सकृदाख्यातनिर्ग्राह्या गोत्रं च चरणैः सह॥१॥
अपर आहुः— प्रादुर्भावविनाशाभ्यां सत्त्वस्य युगपद्गुणैः।
असर्वलिंगां बह्वर्थां तां जातिं कवयो विदुः॥२॥

(आकृतिग्रहणा जातिः) आकृति (अवयवसंनिवेशिविशेष) का अर्थ है— विशेष प्रकार के अवयवों की रचना 'आक्रियते व्यज्यतेऽनयेत्याकृतिः' इस व्युत्पति से भी यही अर्थ ध्वनित होता है। और आकृति से जिस का ग्रहण (ज्ञान) होता है, उसे जाति कहते हैं। जैसे—गोत्व, अश्वत्वादि विभिन्न जातियाँ हैं। उनमें एक गौ में अवयवविशेष रचना देखकर समस्त गोओं का बोध हो जाता है, इसी प्रकार अश्वत्वादि का भी। इन जातिवाचक शब्दों में एक शब्द के उच्चारण करने से समस्त आकृतिमात्र का ग्रहण हो जाता है। जैसे अश्व कहने से अश्व जाति का, मनुष्य कहने से मनुष्य जाति का इत्यादि। (लिङ्गानां च न सर्वभाक्) यह जाति का द्वितीय लक्षण है। वैयाकरण निकाय में ब्राह्मण-क्षत्रियादि शब्द भी जातिवाचक माने गये हैं। किन्तु पूर्व जाति के लक्षण से इन को जाति संज्ञा प्राप्त नहीं होती। क्योंकि ब्राह्मण-क्षत्रियादि के शरीरों की रचना में कोई अन्तर नहीं है। अतः द्वितीय लक्षण बनाया है—'सर्वाणि लिङ्गानि भजते इति सर्वलिंगभाक्। यहाँ कारिका में 'लिङ्गानाम्' पद में कर्म में षष्ठी है और 'सर्वभाक्' पद में सर्व उपपद होने पर भज् धातु से ण्वि प्रत्यय है। जिसमें सब लिंग नहीं होते वह भी जाति है। प्रथम जाति के लक्षण से तत्त्व (तस्य भावस्तत्वम्) मनुष्यत्वादि की जाति संज्ञा होती है। और द्वितीय लक्षण से एकाकृति होने पर भी भिन्न-भिन्न जातियाँ हो जाती हैं। जैसे—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, वृषलादि। ये विशेष* जातियाँ हैं। ये ब्राह्मणादि

---

* इस विषय में महर्षि दयानन्द का अन्यत्र लेख भी द्रष्टव्य है—

प्रश्न—जातिभेद ईश्वर कृत है वा मनुष्यकृत?

उत्तर—ईश्वरकृत और मनुष्यकृत भी जातिभेद हैं।

प्रश्न—कौन से ईश्वरकृत और कौन से मनुष्यकृत?

उत्तर—मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष, जल-जन्तु आदि जातियाँ परमेश्वरकृत हैं। जैसे—पशुओं में गौ, अश्व, हस्ति आदि जातियाँ, वृक्षों में पीपल, वट, आम्र आदि, पक्षियों में हंस, काक, बकादि, जलजन्तुओं में मत्स्य, मकरादि जातिभेद हैं, वैसे मनुष्यों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अन्त्यज जातिभेद ईश्वरकृत हैं, परन्तु मनुष्यों में ब्राह्मणादि को सामान्य जाति में नहीं, किन्तु सामान्य-विशेषात्मक जाति में गिनते हैं।''

(सत्यार्थप्रकाश—एकादश समुल्लास)

इससे स्पष्ट है कि ब्राह्मणादि सामान्य मनुष्य जाति के अन्तर्गत विशेषजाति में आते हैं। न्यायदर्शन के (समानप्रसवात्मिका जातिः २।२।६८) सूत्र के अनुसार तो आकृति से जानने योग्य मनुष्य ही एक जाति है, ब्राह्मणादि नहीं। किन्तु शास्त्रीय कार्य सिद्धि के

शब्द स्त्रीलिंग और पुल्लिंग में ही होने से सर्वलिङ्गभाक् नहीं हैं। (सकृदाख्यातनिर्ग्राह्या) जाति नित्य और एक होकर भी अनेकों में रहती है। इसको स्पष्ट करते हुए कहा है—सकृदाख्यात:। जैसे किसी व्यक्ति को एक बार किसी चार पैरवाले पशु के पास ले जाकर यह कहा कि—यह गौ है। वह इसी कथन से उसी के समान पिण्डान्तर (शरीरान्तर) में भी स्वयं गौ का ज्ञान कर लेता है। और जाति के नित्य होने से एक गौ के शरीर के नाश होने पर भी शरीरान्तर में गोत्व जाति रहती है। अत: पिण्डनाश से जाति का नाश नहीं होता है। (गोत्रं च चरणै: सह) इसमें जाति का तृतीय लक्षण बताया गया है। जैसे—गर्गस्यापत्यं गार्ग्य:। गार्गी वा। उसी प्रकार—नडस्य गोत्रापत्यं कन्या नाडायनी। यहाँ गोत्र की जाति संज्ञा होने से जाति लक्षण 'ङीष्' प्रत्यय हुआ है। गोत्र संज्ञा मनुष्यों में ही होती है और सभी मनुष्य गोत्रों के अन्तर्गत हैं। यहाँ चरण शब्द से शाखाओं को पढ़नेवालों का ग्रहण है। (चरणशब्देन शाखाध्यायिनो गृह्यन्ते) और जिनकी चरणसंज्ञा है वे गोत्रों में नहीं होते। उन शाखाओं को पढ़नेवालों की भी जातिसंज्ञा होती है। जैसे—कठी। पैप्पलादी। कौथुमी। यहाँ जाति संज्ञा होने से ही 'ङीष्' होता है॥ १॥

कुछ वैयाकरणों के मत में जाति का लक्षण पूर्वलक्षण से भिन्न है, उसका कथन दूसरी कारिका में किया गया है। किसी सत्त्व (द्रव्य) के प्रादुर्भाव से जिसका प्रादुर्भाव होता है और सत्त्व के विनाश से जिसका तिरोभाव होता है, उसे जाति कहते हैं। और (युगपद्गुणै:) जाति गुणों के साथ ही द्रव्य से सम्बद्ध हो जाती है। जैसे—गुणरहित द्रव्य नहीं होता, वैसे ही जातिरहित भी नहीं होता है और (असर्वलिङ्गां) कवि (क्रान्तदर्शी विद्वान्) लोग असर्वलिङ्गाम्=जिसके सब लिङ्ग न हों, प्रत्युत नियतलिंग हों, उस बह्वर्थाम्=एक तरह की समस्त व्यक्तियों में व्यापकरूप से रहनेवाले तत्त्व को जाति कहते हैं॥ २॥

इन दोनों जातिलक्षणों में क्या अन्तर है? प्रथम कारिका में कथित (आकृतिग्रहणा जाति:) लक्षण के अनुसार कौमार, यौवन और जरा इन तीन अवस्थाओं के वाचक शब्दों की भी जाति संज्ञा हो जाती है और उनके अनुसार कुमारी, युवति और वृद्धा इन तीनों के जातिवाचक होने से (जातेश्च) सूत्र से पुंवद्भाव का प्रतिषेध हो जाता है। जैसे—कुमारी भार्याऽस्य स कुमारीभार्य:। युवतिभार्य:। वृद्धाभार्य:। यहाँ पूर्वपद में पुंवद्भाव नहीं हुआ है और द्वितीयाकारिका में कथित जाति के लक्षण के अनुसार आकृतिग्रहण न होने से द्रव्य के प्रादुर्भाव-तिरोभाव होने तक एक ही जाति रहती है, अवस्थाविशेषों में जात्यन्तर नहीं होती।

लिए ब्राह्मणादि को विशेष जाति में वैसे ही स्वीकार किया है, जैसे—शास्त्रीय कार्यों के लिए गोत्रवाची तथा चरणवाची शब्दों की भी जाति संज्ञा मानी है। महर्षि ने 'सामान्यं विशेष इति बुद्ध्यपेक्षम्' (वै० १।२।३) सूत्र की व्याख्या में भी यही बात स्पष्ट कही है—"सामान्य और विशेष, बुद्धि की अपेक्षा से सिद्ध होते हैं। जैसे—मनुष्य व्यक्तियों में मनुष्यत्व सामान्य और पशुत्वादि से विशेष तथा स्त्रीत्व और पुरुषत्व इनमें ब्राह्मणत्व, क्षत्रियत्व, वैश्यत्व, शूद्रत्व भी विशेष हैं। ब्राह्मणादि व्यक्तियों में ब्राह्मणत्व सामान्य और क्षत्रियत्वादि से विशेष है।" (सत्यार्थप्रकाश—तृतीय समुल्लास)

इनके अनुसार यौवनादि अवस्था वाचक शब्दों की जातिसंज्ञा न होने से (जातेश्च) सूत्र से पुंवद्भाव का प्रतिषेध नहीं होता। पुंवद्भाव होता ही है। जैसे—कुमारीभार्याऽस्य स कुमारभार्यः। युवभार्य्यः। वृद्धभार्य्यः। इनमें पुंवद्भाव होने से स्त्रीप्रत्ययों की निवृत्ति हो जाती हैं॥ ६३ ॥

पाककर्णपर्णपुष्पफलमूलवालोत्तपदाच्च ॥ ६४ ॥

जातेरयोपधादित्यनुवर्त्तते। पाक.....पदात् —५।१। च [अ०] स्त्रियां वर्त्तमानात् पाकाद्युत्तरपदादयोपधाज्जातिवाचिनः प्रातिपदिकान् ङीष् प्रत्ययो भवति। पायसपाकी। ओदनपाकी। श्वकर्णी। अश्वकर्णी। शालपर्णी। प्रष्ठपर्णी। आम्रपुष्पी। बदर्य्या इव फलमस्या बदरीफली। दर्भस्येव मूलमस्या दर्भमूली। अश्ववाली। जातेरिति किम्। शोभनपाका। विशालपाका। अयोपधादिति किम्। धान्यपाका।

वा० — सदच्काण्डप्रान्तशतैकेभ्यः पुष्पात् प्रतिषेधः ॥ १ ॥

सदादिभ्यः परस्मात् पुष्पशब्दान् ङीष् प्रत्ययो न भवति। सत्पुष्पा। प्राक्पुष्पा। प्रत्यक्पुष्पा। काण्डपुष्पा। प्रान्तपुष्पा। शतपुष्पा। एकपुष्पा ॥ १ ॥

वा० — संभस्त्राजिनशणपिण्डेभ्यः फलात् प्रतिषेधः ॥ २ ॥

समादिभ्यः परस्मात् फलशब्दान् ङीष् प्रत्ययो न भवति। सम्फला। भस्त्रफला। अजिनफला। शणफला। पिण्डफला ॥ २ ॥

वा० — श्वेताच्च ॥ ३ ॥

फलादित्यनुवर्त्तते। श्वेत शब्दात् परस्मात् फल शब्दान् ङीष् प्रत्ययो न भवति। श्वेतफला ॥ ३ ॥

वा० — त्रेश्च ॥ ४ ॥

त्रिफला ॥ ४ ॥

वा० — मूलान् नञः ॥ ५ ॥

नञ्पूर्वान् मूलशब्दान् ङीष् प्रत्ययो न भवति। अमूला ॥ ५ ॥ सर्वत्र ङीषि प्रतिषिद्धे टाबेव भवति ॥ ६४ ॥

भाषार्थ—यहाँ 'जातेरयोपधात्' पदों की अनुवृत्ति आती है। स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान जिन प्रातिपदिकों के उत्तरपद में पाक, कर्ण, पर्ण, पुष्प, फल, मूल तथा वाल शब्द हों उन यकारोपधवर्जित जातिवाची प्रातिपदिकों से 'ङीष्' प्रत्यय होता है। जैसे—पायसपाकी। ओदनपाकी। श्वकर्णी। अश्वकर्णी। शालपर्णी। प्रष्ठपर्णी। आम्रपुष्पी। शङ्खपुष्पी। बदर्य्या इव फलमस्या बदरीफली। दर्भस्येव मूलमस्या दर्भमूली। अश्ववाली। यहाँ 'जातेः' का ग्रहण इसलिए है कि 'शोभनापाका। विशालपाका। यहाँ जातिवाचक न होने से 'ङीष्' नहीं हुआ और 'अयोपधात्' का ग्रहण इसलिए है कि—धान्यपाका। यहाँ यकारोपध होने से 'ङीष्' नहीं हुआ।

वा० — सदच्काण्डप्रान्तशतैकेभ्यः पुष्पात् प्रतिषेधः ॥ १ ॥

सत्, अञ्चु, काण्ड, प्रान्त, शत, एक इन प्रातिपदिकों से परे जो स्त्रीलिङ्ग

में वर्त्तमान पुष्प प्रातिपदिक हों, उससे 'ङीष्' प्रत्यय नहीं होता है। इस सूत्र से प्राप्त 'ङीष्' का निषेध किया है। जैसे—सत्पुष्पा। प्राक्पुष्पा। प्रत्यक्पुष्पा। काण्डपुष्पा। प्रान्तपुष्पा। शतपुष्पा। एकपुष्पा॥ १॥

वा०—संभस्त्राजिनशणपिण्डेभ्यः फलात् प्रतिषेधः॥ २॥

सम्, भस्त्रा, अजिन्, शण, पिण्ड इन शब्दों से परे स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान फल प्रातिपदिक से 'ङीष्' प्रत्यय नहीं होता है। जैसे—सम्फला। भस्त्रफला। अजिनफला। शणफला। पिण्डफला॥ २॥

वा०—श्वेताच्च॥ ३॥

पूर्ववार्त्तिक से 'फलात्प्रतिषेधः' की यहाँ भी अनुवृत्ति है। श्वेत शब्द से परे स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान फल प्रातिपदिक से 'ङीष्' प्रत्यय नही होता है। जैसे—श्वेतफला॥ ३॥

वा०—त्रेश्च॥ ४॥

त्रिशब्द से परे स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान फल शब्द से 'ङीष्' प्रत्यय नहीं होता है। जैसे—त्रिफला॥ ४॥

वा०—मूलान् नञः॥ ५॥

नञ् से परे मूल प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीष्' प्रत्यय नहीं होता है। जैसे अमूला। इन सभी वार्त्तिकों के उदाहरणों में 'ङीष्' का निषेध होने पर सामान्य 'टाप्' प्रत्यय होता है॥ ६४॥

इतो मनुष्यजातेः॥ ६५॥

इतः —५।१।मनुष्यजातेः —५।१।जातेरित्यनुवर्त्तमाने पुनर्जातिग्रहण-मयोपधादिति निवृत्यर्थम्। इकारान्तान् मनुष्यजातिवाचिनः स्त्रियां वर्त्तमानात् प्रातिपदिकान् ङीष् प्रत्ययो भवति। अवन्ती। कुन्ती। दाक्षी। प्लाक्षी। औदमेयी।

वा०—इतो मनुष्यजातेरितीञ उपसंख्यानम्॥ १॥

इञ्प्रत्ययान्ताद् अमनुष्यजातिवाचिनोऽपि ङीष् यथा स्यात्। सुतङ्गमेन निवृत्ता सोतङ्गमी। मौनचित्ती। अत्र जातित्वमेव नास्त्यस्मादपूर्वो विधिः॥ १॥ ६५॥

भाषार्थ—यहाँ जाति की अनुवृत्ति आने पर भी पुनः 'जाति' पद का ग्रहण 'अयोपधात्' पद की निवृत्ति के लिये है। अन्यथा **'एकयोगनिर्दिष्टानां सह वा प्रवृत्तिः सह वा निवृत्तिः'** (१७) इस परिभाषा से 'अयोपधात्' की भी अनुवृत्ति आ सकती है। स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान मनुष्यजाति वाची इकारान्त प्रातिपदिकों से 'ङीष्' प्रत्यय होता है। जैसे—अवन्ती। कुन्ती। दाक्षी। प्लाक्षी। औदमेयी। इत्यादि।

वा०—इतो मनुष्यजोतेरितीञ उपसंख्यानम्॥ १॥

मनुष्य जाति से भिन्न इञ् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीष्' प्रत्यय कहना चाहिए। जैसे—सुतङ्गमेन निवृत्ता सौतङ्गमी। मौनिचित्ती। यहाँ चातुरर्थिक

ङ् प्रत्यय है, अतः जातिसंज्ञा न होने से यह अपूर्व विधान किया है॥ ६५॥

ऊङुतः॥ ६६॥

मनुष्यजातेरित्यनुवर्त्तते। ऊङ् —१।१। उतः —५।१। उकारन्तान् मनुष्यजातिवाचिनः स्त्रियां वर्त्तमानात् प्रातिपदिकाद् ऊङ् प्रत्ययो भवति। ब्रह्मबन्धूः। वीरबन्धूः। कुरूः। ङकारो 'नोङ्धात्वोरिति' विशेषणार्थः।

वा०—ऊङ्प्रकरणेऽप्राणिजातेश्चारज्ज्वादीनाम्॥ १॥

मनुष्यजातेरित्यनुवर्त्तनात् सूत्रेणाप्राप्तो विधीयते। अप्राणिजातिवाचिनोऽप्यूङ्प्रत्ययो भवति रज्ज्वादीन् वर्जयित्वा। अलाबूः। कर्कन्धूः। अप्राणिजातेरिति किमर्थम्। कृकवाकुः। अरज्ज्वादीनामिति किमर्थम्। रज्जुः। हनुः। अत्र मण्डूकप्लुतगत्याऽयोपधादित्यनुवर्त्तते। तेनेह न भवति। अध्वर्युरियम्॥ ६६॥

भाषार्थ—यहाँ 'मनुष्यजातेः' पद की अनुवृत्ति है। स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान मनुष्य जातिवाची उकारान्त प्रातिपदिकों से 'ऊङ्' प्रत्यय होता है। जैसे—ब्रह्मबन्धूः। वीरबन्धूः। कुरूः। प्रत्यय के ङकार का प्रयोजन 'नोङ्धात्वोः' (६।१।१७५) सूत्र में विशेषणार्थ है।

वा०—ऊङ् प्रकरणेऽप्राणिजातेश्चारज्ज्वादीनाम्॥ १॥

सूत्र में 'मनुष्यजातेः' पद की अनुवृति होने से सूत्र से 'ङीष्' प्रत्यय की प्राप्ति न होने से यह विधान किया है। स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान अप्राणि जातिवाची उकारान्त प्रातिपदिकों से 'ऊङ्' प्रत्यय होता है, रज्जुआदि प्रातिपदिकों को छोड़कर। जैसे—अलाबूः। कर्कन्धूः। यहाँ 'अप्राणिजातेः' का ग्रहण इसलिए है कि कृकवाकुः। यहाँ प्रत्यय न हो और 'अरज्ज्वादीनाम्' पद इसलिए है कि रज्जुः। हनुः। इत्यादि में 'ऊङ्' न हो। यहाँ मण्डूकप्लुति से अयोपधात्' की अनुवृत्ति है। इसलिये 'अध्वर्युरियम्' में ऊङ् नहीं होता है॥ ६६॥

बाह्वन्तात् संज्ञायाम्॥ ६७॥

बाह्वन्तात् —५।१। संज्ञायाम् —७।१। बाह्वन्तात् स्त्रियां वर्त्तमानात् प्रातिपदिकात् संज्ञायामभिधेयायाम् ऊङ्प्रत्ययो भवति। भद्रबाहूः। जालबाहूः। संज्ञायामिति किम्। चारुबाहुः॥ ६७॥

भाषार्थ—स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान बाहु शब्दान्त प्रातिपदिकों से संज्ञा विषय में 'ऊङ्' प्रत्यय होता है। जैसे—भद्रबाहूः। जालबाहूः। यहाँ 'संज्ञायाम्' का ग्रहण इसलिए है कि चारुबाहुः। यहाँ असंज्ञा में 'ऊङ्' प्रत्यय न होवे॥ ६७॥

पङ्गोश्च॥ ६८॥

संज्ञायामित्यनुवर्त्तते। पङ्गुशब्दात् संज्ञायां विषये ऊङ् प्रत्ययो भवति। पङ्गूः।

वा०—श्वसुरस्योकाराकारलोपश्च॥ १॥

श्वशुरशब्दाद् ऊङ्प्रत्ययस्तस्मिन्नुकाराकारयोर्लोपः। श्वश्रूः॥ ६८॥

भाषार्थ—यहाँ 'संज्ञायाम्' की अनुवृत्ति है। स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान 'पङ्गु' प्रातिपदिक से संज्ञाविषय में 'ऊङ्' प्रत्यय होता है। जैसे—पङ्गूः।

वा०—श्वशुरस्योकाराकरलोपश्च॥ १॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान श्वशुर शब्द से 'ऊङ्' प्रत्यय और श्वशुर शब्द के उकार तथा अकार का लोप हो जाता है। जैसे—श्वश्रूः॥ ६८॥

ऊरूत्तरपदादौपम्ये॥ ६९॥

ऊरूत्तरपदात्—५।१। औपम्ये —७।१। ऊरूशब्द उत्तरपदं यस्य तस्मात्।

औपम्ये गम्यमाने स्त्रियां वर्त्तमानाद् ऊरूत्तरपदात् प्रातिपदिकाद् ऊङ् प्रत्ययो भवति। करभोरूः। कदम्बोरूः। करभ इव कदम्ब इवेत्यौपम्यम्। औपम्य इति किम्। स्थूलोरूः॥ ६९॥

भाषार्थ—स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान ऊरूशब्द उत्तरपद में है जिनके, उन प्रातिपदिकों से उपमान अर्थ में 'ऊङ्' प्रत्यय होता है। जैसे—करभ इवोरू अस्याः स्त्रियाः सा करभोरूः। कदम्बोरूः। करभ की तरह अथवा कदम्ब की तरह ऊरू हैं जिसके, यह उपमान-भाव है। यहाँ 'औपम्ये' का ग्रहण इसलिए है कि—स्थूलोरुः। यहाँ 'ऊङ्' न होवे॥ ६९॥

संहितशफलक्षणवामादेश्च॥ ७०॥

ऊरूत्तरपदादित्यनुवर्त्तते। संहित.....वामादेः —५।१। च [अ०] संहित, शफ, लक्षण, वाम, इत्येतत्पूर्वाद् ऊरूत्तरपदात् स्त्रियां प्रातिपदिकाद् ऊङ् प्रत्ययो भवति। संहितोरूः। शफोरूः। लक्षणोरूः। वामोरूः।

वा०—सहितसहाभ्यां चेति वक्तव्यम्॥ १॥

सहितोरूः। सहोरूः॥ ७०॥

भाषार्थ—यहाँ 'ऊरूत्तरपदात्' की अनुवृत्ति आती है। स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान संहित, शफ, लक्षण, वाम, ये शब्द जिनके आदि में हो, ऐसे ऊरुत्तरपद प्रातिपदिकों से 'ऊङ्' प्रत्यय होता है। जैसे—संहितोरूः। शफोरूः। लक्षणोरूः। वामोरूः।

वा०—सहित-सहाभ्यां चेति वक्तव्यम्॥ १॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान सहित और सह शब्दों से परे ऊरू प्रातिपदिक हों तो उनसे 'ऊङ्' प्रत्यय कहना चाहिये। जैसे—सहितोरूः। सहोरूः॥ ७०॥

कद्रुकमण्डल्वोश्छन्दसि॥ ७१॥

कद्रु-कमण्डल्वोः —६।२। छन्दसि —७।१। स्त्रियां वर्त्तमानाभ्यां कद्रु-कमण्डलुशब्दाभ्यां छन्दसि विषये ऊङ्प्रत्ययो भवति। कद्रूः। कमण्डलूः। छन्दसीति किम्। कद्रुः। कमण्डलुः।

वा०—कद्रुकमण्डलुगुग्गुलुमधुजतुपतयालूनामिति वक्तव्यम्॥ १॥

कद्रूः। कमण्डलूः। गुग्गुलूः। मधूः। जतूः। पतयालूः। सूत्रेण द्वाभ्यां प्राप्तो

गुग्गुल्वादिभ्योऽपूर्वो विधिः॥७१॥

भाषार्थ—स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान कद्रु-कमण्डलु शब्दों से वैदिक प्रयोग विषय में 'ऊङ्' प्रत्यय होता है। जैसे---कद्रूः। कमण्डलूः। यहाँ 'छन्दसि' का ग्रहण इसलिए है कि कद्रुः। कमण्डलुः।.यहाँ भाषा में 'ऊङ्' न होवे।

वा०—कद्रु-कमण्डलु-गुग्गुलु-मधु-जतु-पतयालूनामिति वक्तव्यम्॥१॥

सूत्र से कद्रु और कमण्डलु शबदों से ऊङ् प्रत्यय होता है, वार्त्तिक से उनसे भिन्न स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान गुग्गुलादि प्रातिपदिकों से भी वैदिक प्रयोग विषय में 'ऊङ्' प्रत्यय होता है। जैसे—गुग्गुलूः। मधूः। जतूः। पतयालूः॥७१॥

संज्ञायाम्॥७२॥

छन्दसीति नानुवर्त्तते। भाषार्थ आरम्भः। संज्ञायां विषये कद्रु-कमण्डलुशब्दाभ्यां स्त्रीलिङ्ग ऊङ् प्रत्ययो भवति। कद्रूः। कमण्डलूः। संज्ञायामिति किम्। कद्रुः [कमण्डलुः]॥७२॥

भाषार्थ--यहाँ 'छन्दसि' की अनुवृत्ति नहीं है। लौकिक भाषा के लिए सूत्र का आरम्भ है। स्त्रीलिंग में वर्त्तमान कद्रु कमण्डलु शब्दों से संज्ञा के विषय में 'ऊङ्' प्रत्यय होता है। जैसे—कद्रूः। कमण्डलूः। यहाँ 'संज्ञायाम्' का ग्रहण इसलिए है कि कद्रुः। कमण्डलुः। यहाँ ऊङ् न हो॥७२॥

शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन्॥७३॥

जातिग्रहणमत्रानुवर्त्तते। शार्ङ्गरवाद्यञः —५।१। ङीन् —१।१। शार्ङ्गरवादिः प्रातिपदिकगणः। स्त्रियां वर्त्तमानेभ्यः शार्ङ्गरवादिभ्यो जातिवाचिभ्योऽञन्तेभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो ङीन् प्रत्ययो भवति। शार्ङ्गरवी। कापटवी। वैदी। और्वी। टिड्ढाणञिति सूत्रेणाञन्तान् ङीब् विधीयते। तत्राजातिवाचिनां ग्रहणं भवति। तत्र जातिबाच्यञन्तेभ्यो ङीष् प्राप्तः सोऽनेन बाध्यते। अञन्तानां गोत्रत्वाज्जातित्वम्॥

अथ शार्ङ्गरवादयः—शार्ङ्गरव। कापटव। गौगुलव। ब्राह्मण। गौतम। कामण्डलेय। ब्राह्मणकृतेय। आनिचेय। आनिषेय। आनिधेय। आकोशेय। वात्स्यायन। मौञ्जायन। कैकसेय। काव्य। शैव्य। एहि। पर्येहि। आश्मरथ्य। औदवान। आराल। अराल। चण्डाल। वतण्ड॥ भोगवद् गौरिमतोः संज्ञायाम्॥ संज्ञायामिति नियमार्थं गणसूत्रमिदम्। भोगवती। गौरिमती॥ नृनरयोर्वृद्धिश्च॥ ङीनि परतोऽनयोर्वृद्धिः। नारी॥ इति शार्ङ्गरवादिगणः॥ यथाविहितेषु ङीबादिषु प्राप्तेषु ङीन् विधीयते॥७३॥

भाषार्थ—यहाँ 'जाति' पद की अनुवृत्ति है। स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान जातिवाचक शार्ङ्गरवादि गणपठित प्रातिपदिकों से और अञ् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से 'ङीन्' प्रत्यय होता है। जैसे—शार्ङ्गरवी। कापटवी। अञन्त—वैदी। और्वी। 'टिड्ढाण्' (४।१।१५) सूत्र से अञ् प्रत्ययान्तों से 'ङीप्' प्रत्यय होता है। उस सूत्र में जातिवाचकों से भिन्न अञन्तों का ग्रहण होता है। जातिवाचक अञन्तों से 'ङीष्'

प्रत्यय प्राप्त है, उसका यह ङीन् बाधक है जो अञन्त प्रातिपदिक गोत्र संज्ञक हैं उनकी जातिसंज्ञा होती है। यथाविहित ङीप् आदि प्रत्ययों की प्राप्ति में यह 'ङीन्' का विधान किया है॥७३॥

यङश्चाप्॥७४॥

यङः—५।१। चाप्—१।१। ञ्यङ्-ष्यङोः सामान्येन ग्रहणम्। स्त्रियां वर्त्तमानाद् यङन्तात् प्रातिपदिकाच् चाप् प्रत्ययो भवति। चित्करणमन्तोदात्तार्थम्। ञ्यङ्—आम्बष्ठ्या। सौवीर्य्या। ष्यङ्—कारीषगन्ध्या। वाराह्या।

वा०—षाच्च यञश्चाप्॥१॥

षकारान्तात् परो यो यञ् तदन्तादपि चाप् प्रत्ययः स्यात्। शार्कराक्ष्या। पौतिभाष्या। गौकक्ष्या। गर्गादिषु पाठादेते यञन्ताः शब्दाः॥७४॥

भाषार्थ—इस सूत्र में ञ्यङ् और ष्यङ् प्रत्ययों का सामान्यरूप से ग्रहण किया गया है। स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान यङन्त प्रातिपदिकों से 'चाप्' प्रत्यय होता है। 'चाप्' प्रत्यय में चकार अन्तोदात्त स्वर के लिए है। जैसे—ञ्यङ्—आम्बष्ठ्या। सौवीर्य्या। ष्यङ्-कारीषगन्ध्या। वाराह्या।

वा०—षाच्च यञश्चाप्॥१॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान षकार से परे जो यञ् प्रत्यय, तदन्त प्रातिपदिकों से 'चाप्' प्रत्यय होता है। जैसे—शार्कराक्ष्या। पौतिभाष्या। गौकक्ष्या। ये समस्त शब्द गर्गादि गण में पठित होने से यञन्त हैं॥७४॥

आवट्याच्च॥७५॥

आवट्यात्—५।१। च [अ०]। अवटशब्दो गर्गादिषु पठ्यते तस्माद् यञन्तः। तस्माद् यञश्चेति ङीपि प्राप्ते आरम्भः। स्त्रियां वर्त्तमानादावट्यशब्दाच् चाप् प्रत्ययो भवति। आवट्या॥७५॥

भाषार्थ—अवट शब्द गर्गादि गण में पठित है, अतः यह 'यञ्' प्रत्ययान्त है। और 'यञश्च' सूत्र से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीप्' प्रत्यय की प्राप्ति में यह अपवाद विधान किया है। स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान आवट्य शब्द से 'चाप्' प्रत्यय होता है। जैसे—आवट्या॥७५॥

तद्धिताः॥७६॥

प्रत्ययाधिकारस्तृतीयाध्यायस्यादौ कृतस्तस्य संज्ञया विशेषणमेतत्। तद्धित इत्यधिकारसूत्रमापंचमाध्यायपरिसमाप्तेः। इतोऽग्रे ये प्रत्यया वक्ष्यन्ते तद्धितसंज्ञा तेषां भवतीति वेद्यम्। बहुवचननिर्देशाद् वार्तिकोपदिष्टस्यापि प्रत्ययमात्रस्य तद्धितसंज्ञा भवति॥७६॥

भाषार्थ—तृतीय अध्याय के आरम्भ में 'प्रत्ययः' का अधिकार किया है, उसका तद्धित संज्ञा के रूप में विशेषण है। तद्धित संज्ञा का अधिकार पंचमाध्याय पर्यन्त है। इससे आगे जिन प्रत्ययों का विधान किया गया है, उनकी तद्धित संज्ञा जाननी चाहिए। 'तद्धिताः' सूत्र में बहुवचन का निर्देश होने से वार्तिकोपदिष्ट प्रत्ययों

को भी तद्धितसंज्ञा होती है।*

यूनस्तिः॥ ७७॥

यूनः—५।१। तिः—१।१। स्त्रियां वर्त्तमानाद् 'युवन्' प्रातिपदिकात् तद्धितसंज्ञकस्तिः प्रत्ययो भवति। युवतिः। नकारान्तत्वान् ङीप् प्राप्तस्तस्यापवादः॥ ७७॥

भाषार्थ—स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान 'युवन्' प्रातिपदिक से 'ति' प्रत्यय होता है और उसकी तद्धित संज्ञा होती है। जैसे—युवतिः। युवन् शब्द के नकारान्त होने से 'ङीप्' प्रत्यय प्राप्त है, उसका यह सूत्र अपवाद है॥ ७७॥

अणिञोरनार्षयोर्गुरूपोत्तमयोः ष्यङ् गोत्रे॥ ७८॥

अणिञोः —६।२।अनार्षयोः —६।२।गुरूपोत्तमयोः —६।२।ष्यङ् —१।१।गोत्रे—७।१ ऋषेरपत्यमार्षौ, न आर्षौ, अनार्षौ। ऋषेरपत्यवाचिनौ न भवतः। उत्तमस्य तृतीयप्रभृतेरक्षरस्य समीपमुपोत्तमं गुरुरुपोत्तमं ययोस्तौ। गोत्रे विहितौ यावणिञौ तदन्तयोरनार्षयोर्गुरूपोत्तमयोः प्रातिपदिकयोः स्थाने ष्यङादेशो भवति।'निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति'।इत्यणिञोः प्रत्यययोरेवादेशौ। करीषस्येव गन्धोऽस्य करीषगन्धिः।तस्यापत्यमित्यण्।तस्याणोऽनेन ष्यङादेशः। कारीषगन्ध्या।कौमुदगन्ध्या।वराहस्यापत्यमित्यत इञ्।तस्येञः स्थाने ष्यङादेशः। वाराह्या।वालाक्या।अणिञोरिति किम्।ऋतभागस्यापत्यमिति विदादित्वादञ्। तस्य ष्यङ् न भवति। आर्त्तभागी। टिड्ढाणञिति ङीबेव भवति। अनार्षयोरिति किम्।वसिष्ठस्यापत्यं कन्या।इति-ऋष्यन्धकाण्।तस्य ष्यङ् न भवत्यार्षत्वात्। वासिष्ठी। वैश्वामित्री। अजीगर्त्तस्य गोत्रापत्यमिति बाह्वादित्वाद् इञ्। तस्य ष्यङ् न भवति। आजीगर्ती। इतो मनुष्यजातेरिति ङीष्। गुरूपोत्तमयोरिति किम्। उपगोरपत्यं कन्या औपगवी। अत्र गकारस्य ह्रस्वत्वात् ष्यङ् न भवति। गोत्रे इति किम्। कन्यकुब्जे जाता कान्यकुब्जी।

**का०— प्रकर्षे चेत् तमं कृत्वा दाक्ष्या नोपोत्तमं गुरु।
आम्विधिः केन ते न स्यात् प्रकर्षे यद्ययं तमः॥ १॥
उद्गतस्य प्रकर्षोऽयं गतशब्दोऽत्र लुप्यते।
नाव्ययार्थप्रकर्षोऽस्ति धात्वर्थोऽत्र प्रकृष्यते॥ २॥
उद्गतोऽपेक्षते किंचित् त्रयाणां द्वौ किलोद्गतौ।
चतुष्प्रभृतिकर्त्तव्यो वाराह्यायां न सिध्यति॥ ३॥
भिद्यतेऽस्य स्वरस्तेन विधिश्चामो न लक्ष्यते।
शब्दान्तरमिदं विद्याद् दृष्टमभ्यन्तरं त्रिषु॥ ४॥**

उच्छब्दात् प्रकर्ष आतिशायने तमप् क्रियते चेद् दाक्षिशब्द उपोत्तमं गुरु

---

* तद्धितसंज्ञा का कार्य 'कृततद्धितसमासाश्च' (१।२।४६) सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा करना है। (सं०)

नास्तीति ष्यङ् न भवति। प्रकर्षेऽर्थे यदि तमप् प्रत्ययो विधीयते तर्हि किमेत्तिङ व्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्ष इति तमबन्तादाम्प्रत्ययः कस्मात्कारणान्न भवति॥ १॥

उत्तम शब्द उदित्यव्ययम्। तदर्थस्याव्ययार्थस्यात्र प्रकर्षो नास्ति, किन्तु धातोर्गतशब्दस्यात्र प्रकर्षः स च द्रव्यप्रकर्षः। अद्रव्यप्रकर्षे चाम् विधीयतेऽतोऽत्राम् न भवति॥ २॥

उद्गतशब्दश्च सापेक्षः सोऽनुद्गतमपेक्षते। यत्र त्रयो वर्णाः तत्रैकोऽनुद्गतो द्वावुद्गतौ। द्वयोरुद्गतयोश्चैकस्य तृतीयस्य प्रकृष्टविभागे तमब्बाधकस्तरप् प्राप्नोति। यदि तरप् स्यात् तर्हि उत्तमशब्दाभावे वाराहिशब्दे ष्यङ् न प्राप्नोति। चतुष्प्रभृत्तिषु द्वयोरेकस्य विभागाभावात् तमब् भविष्यति चतुष्प्रभृतीनामभावाद् वाराहिशब्दे न प्राप्नोति॥ ३॥

अस्योत्तमशब्दस्य तमबन्तस्यानुदात्त इष्टस्तदन्य एव स्वरः स्यात्। अर्थादन्तोदात्त इष्यते तमबन्तत्वादाद्युदात्तः प्राप्नोति। आम्विधिस्तमबन्तादाम्-विधिर्न लक्ष्यते न दृश्यते। एवमुच्छब्दात् तमपि कृते बहवो दोषाः सन्ति। तस्मात् कारणादन्योऽयमुत्तमशब्दस्त्रिप्रभृतिषु रूढिर्वर्त्तते इति सिद्धान्तः॥ ४॥ ७८॥

भाषार्थ—ऋषि के अपत्य को आर्ष कहते हैं। अनार्ष शब्द से ऋषि के अपत्यों का निषेध किया है। तीन या तीन से अधिक अक्षरोंवाले शब्द के अन्तिम अक्षर को उत्तम कहते हैं। उत्तम के समीपवाले अक्षर को 'उपोत्तम' कहते हैं। गुरु अक्षर उपोत्तम है जिसमें उसे गुरूपोत्तम कहते हैं। स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान गोत्र में विहित जो अण्-इञ् प्रत्यय, तदन्त अनार्ष गुरूपोत्तम प्रातिपदिकों के स्थान में ष्यङ् आदेश होता है। 'ङित् होने से अन्त्य अल् के स्थान में यह ष्यङ् आदेश होता है। अथवा **निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति**' (१२) इस नियम से अण्-इञ् प्रत्ययों को ही यह आदेश होता है। जैसे—करीषस्येव गन्धोऽस्य करीषगन्धिः, तस्यापत्यं स्त्री कारीषगन्ध्या। यहाँ अपत्यार्थक 'अण्' के स्थान में 'ष्यङादेश' हुआ है। इसी प्रकार—कौमुदगन्ध्या। इञ् का उदाहरण वराहस्यापत्यं वाराह्या। यहाँ 'अत इञ्' (४।१।९५) 'इञ्' प्रत्यय और 'इञ्' के स्थान में 'ष्यङादेश' हुआ है। इसी प्रकार बालाक्या आदि प्रयोग जानने चाहिएँ।

इस सूत्र में 'अणिञोः' का ग्रहण इसलिए है कि ऋतभागस्यापत्यं स्त्री आर्त्तभागी। यहाँ विदादि से 'अञ्' प्रत्यय है, अतः उसको 'ष्यङ् आदेश' नहीं हुआ है। 'टिड्ढाण०' (४।१।१५) सूत्र से 'ङीप्' ही होता है। 'अनार्षयोः' का ग्रहण इसलिए है कि वसिष्ठस्यापत्यं कन्या वासिष्ठी। वैश्वामित्री। यहाँ ऋषिवाची होने से 'ऋष्यन्धक०' (४।१।११४) से 'अण्' प्रत्यय है। उसको 'ष्यङ् आदेश नहीं होता है। इसी प्रकार—अजीगर्त्तस्य गोत्रापत्यं आजीगर्त्ती। यहाँ बाह्वादि से 'इञ्' होने से 'ष्यङ् आदेश' नहीं हुआ। 'इतो मनुष्यजातेः' (४।१।६५) सूत्र से 'ङीष्' प्रत्यय हुआ है। और 'गुरूपोत्तमयोः' पद का ग्रहण इसलिए है कि—उपगोरपत्यं कन्या औपगवी। यहाँ उपोत्तम अक्षर ह्रस्व होने से 'ष्यङ् आदेश' नहीं हुआ और

...त्र पद का ग्रहण इसलिए है—कान्यकुब्जे जाता कान्यकुब्जी। यहाँ 'अण्' प्रत्यय जातार्थ में है, गोत्र में नहीं है।

प्रश्न—उत्तम शब्द को अव्युत्पन्न और अन्त्य के लिए मानकर यह शङ्का उत्पन्न होती है—दक्षस्यापत्यं गोत्रं स्त्री दाक्षी, प्लाक्षी। यहाँ 'इञ्' के स्थान में 'ष्यङ् आदेश' क्यों नहीं होता?

उत्तर—यहाँ उत्तम शब्द अव्युत्पन्न नहीं है, किन्तु 'अतिशायने तमबिष्ठनौ सूत्र से 'तमप्' प्रत्यय है। और यह तमप् तीन अथवा तीन से अधिक में प्रकृष्टता को बताता है। इसलिए 'दाक्षी, प्लाक्षी में तीन अक्षरों से कम होने से 'ष्यङ्' आदेश नहीं होता है।

प्रश्न— प्रकर्षे चेत्तमं कृत्वा दाक्ष्या नोपोत्तमं गुरु।
आम्विधिः केन ते न स्यात् प्रकर्षे यद्ययं तमः॥ १॥

यदि 'उत्तम' शब्द में 'उत्' शब्द से प्रकर्ष (आतिशयन) अर्थ में 'तमप्' प्रत्यय मानकर 'दाक्षी' शब्द में उपोत्तम गुरु न होने से 'ष्यङ्' नहीं होता, तो तमप् प्रत्ययान्त से 'किमेत्तिङव्ययघादामु०' (५।४।११) सूत्र से 'आमु' प्रत्यय क्यों नहीं होता?

उत्तर— उद्गतस्य प्रकर्षोऽयं गतशब्दोऽत्र लुप्यते।
नाव्ययार्थप्रकर्षोऽस्ति धात्वर्थोऽत्र प्रकृष्यते॥ २॥

उत्तम शब्द से 'आम्' प्रत्यय इसलिए नहीं होता, क्योंकि आम् प्रत्यय अद्रव्यप्रकर्ष में विहित है। और उत्तम शब्द में 'उत्' अव्यय है। 'अतिशयेनोद्गतम् उत्तमम्' यह उत्तम शब्द का अर्थ है। इसमें उत् अव्ययार्थ का प्रकर्ष न होकर 'गत' शब्द का प्रकर्ष होने से धात्वर्थ का प्रकर्ष है। इस 'गत' शब्द का यहाँ लोप है और इस 'गत' शब्द में क्त प्रत्यय कर्म में होने से यहाँ द्रव्य का प्रकर्ष है और 'आमु' प्रत्यय अद्रव्यप्रकर्ष में होता है॥ २॥

प्रश्न— उद्गतोऽपेक्षते किञ्चित् त्रयाणां द्वौ किलोद्गतौ।
चतुष्प्रभृतिकर्त्तव्यो वाराह्यायां न सिध्यति॥ ३॥

'उत्तम' शब्द में आपने 'गत' शब्द को लोप मानकर 'आम्' प्रत्यय के न होने में जो युक्ति दी है, उसमें यह एक अन्य दोष आता है—'उद्गत' शब्द सापेक्ष होने से अनुद्गत की अपेक्षा करता है। जिस शब्द में तीन वर्ण हैं, उनमें एक अक्षर को अनुद्गत मानकर दो उद्गतों में अतिशायन अर्थ में तरप् प्रत्यय होना चाहिये। तमप् नहीं और यदि तरप् प्रत्यय माना जाए तो उत्तम शब्द का अभाव प्राप्त होता है अर्थात् 'उत्तर' शब्द का प्रयोग होना चाहिये। और सूत्र में उत्तम शब्द का प्रयोग होने से कम से कम चार अक्षरोंवाले शब्द में 'ष्यङ्' प्रत्यय होना चाहिये। क्योंकि एक सापेक्ष अनुद्गत और तीन या तीन से अधिक उद्गतों के अतिशय अर्थ में 'तमप्' प्रत्यय होगा। अनुद्गत की अपेक्षा अन्य उद्गत यदि दो हैं अथवा एक है, उनमें 'तमप्' प्रत्यय सम्भव ही नहीं है और कम से कम

चार अथवा उससे अधिक अक्षरोंवाले शब्द में 'ष्यङ् आदेश होना चाहिए तो 'वाराहि' शब्द में तीन अक्षर ही होने से 'ष्यङ् आदेश' प्राप्त नहीं होता।

उत्तर— भिद्यतेऽस्य स्वरस्तेन विधिश्चामो न लक्ष्यते।
शब्दान्तरमिदं विद्याद् दृष्टमभ्यन्तरं त्रिषु॥

पूर्वोक्त दोष का परिहार इस प्रकार है—'उत्तम' शब्द में आतिशायिक 'तमप्' प्रत्यय मानने से स्वर में दोष आता है। क्योंकि 'तमप्' प्रत्यय पित् है और 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' (३।१।४) सूत्र से यह अनुदात्त है। प्रत्यय अनुदात्त होने से 'उत्तम' शब्द में आद्युदात्त स्वर प्राप्त होता है, वह भी कहीं प्रयोग में दिखाई नहीं देता (और जो ऊपर द्रव्यप्रकर्ष मानकर आम् प्रत्यय का अभाव दिखाया है, उसमें दोष होने से वह पक्ष निरस्त हो गया है) इसलिये 'उत्तम' शब्द में तमप् प्रत्ययान्त व्युत्पन्न मानने से अनेक दोष हैं। यह उत्तम शब्द तो आतिशायिक का समानार्थक अव्युत्पन्न है, उससे भिन्न ही है, जो लोक में तीन या तीन से अधिक अक्षरों में अन्त्याक्षर के लिए प्रसिद्ध है। इस पक्ष को मानने से कोई दोष नहीं आता है॥७८॥

गोत्रावयवात्॥७९॥

गोत्रावयवात्—५।१। अणिञोरनार्षयोरित्यनुवर्त्तते।

भा०—कुलाख्या लोके गोत्राभिमता गोत्रावयवा इत्युच्यन्ते॥

गोत्रे आदिपुरुषाः श्रुतिशीलसम्पन्नाः श्रेष्ठतमा यशस्विनो गोत्रस्यावयवा भवन्ति। पूर्वसूत्रे गुरूपोत्तमयोरित्युच्यते। अगुरूपोत्तमार्थोऽयमारम्भः। गोत्रावयवात् प्रातिपदिकाद् गोत्रे विहितयोरण्-इञोः स्थाने ष्यङादेशो भवति। पुणिकस्यगोत्रापत्यं स्त्री पौणिक्या। भौणिक्या। मुखरस्यापत्यं मौखर्य्या॥७९॥

भाषार्थ—पूर्वसूत्र से 'अणिञोरनार्षयोः' पदों की अनुवृत्ति है। पूर्व सूत्र में गुरूपोत्तम में ष्यङादेश कहा है। यह उससे भिन्न के लिए सूत्र बनाया है और इस सूत्र में 'अवयव' शब्द अप्रधान अर्थ में है। अवराध्यायादि में जो पढ़े हैं, वे मुख्य गोत्र हैं और जो गोत्र में आदि पुरुष वेदों के विद्वान्, धर्मात्मा, श्रेष्ठाचारवाले होने से यशस्वी पुरुष हुए हैं, वे गोत्र के अवयव कहलाते हैं। स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान गोत्रावयव प्रातिपदिकों से गोत्र में विहित अण्-इञ् प्रत्ययों के स्थान में 'ष्यङ् आदेश' होता है। जैसे—पुणिकस्य गोत्रापत्यं स्त्री पौणिक्या। भौणिक्या। मुखरस्यापत्यं मौखर्य्या॥७९॥

क्रौड्यादिभ्यश्च॥८०॥

अगुरूपोत्तमार्थोऽयमपि योगः। क्रौड्यादिभ्यः—५।३।च।अ०।स्त्रियां वर्त्तमानेभ्यः क्रौड्यादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः ष्यङ् प्रत्ययो भवति। क्रोडस्य गोत्रापत्यं स्त्री क्रौड्या। लाड्या। व्याड्या।

अथ क्रौड्यादयः—क्रौडि। लाडि। व्याडि। अपिशलि। आपक्षिति। चौपयत। चौटयत। शैकयत। वैल्वयत। वैकल्पयत। सौधातकि।

॥ सूत* युवत्याम्॥ सूतस्यापत्यं युवतिः सौत्या ॥ भोज* क्षत्रिये॥ भोजस्यापत्यं क्षत्रिया भौज्या। यौतकि। कौटि। भौरिकि। शाल्मलि। शालास्थलि। कपिस्थलि। गौकक्ष्य। गौलक्ष्य॥ इति क्रौड्यादयः। केषांचिन्मते रौड्यादिगणः॥८०॥

भाषार्थ—यह सूत्र भी गुरूपोत्तम से भिन्न के लिए है। स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान क्रौडि आदि प्रातिपदिकों से 'ष्यङ्' प्रत्यय होता है। जैसे—क्रोडस्य गोत्रापत्यं स्त्री क्रौड्या। लाड्या। व्याड्या। इत्यादि॥८०॥

दैवयज्ञि-शौचिवृक्षि-सात्यमुग्रि-काण्ठेविद्धिभ्योऽन्यतरस्याम्॥८१॥

दैवयज्ञि—विद्धिभ्यः—५।३।अन्यतरस्याम्[अ०]प्राप्ताप्राप्तविभाषयेम्। गोत्रग्रहणमत्र नानुवर्त्तते। गोत्रे पूर्वसूत्रेण प्राप्तः ष्यङ् अगोत्रेऽप्राप्त एव विकल्प्यते। दैवयज्ञ्यादयः सर्व इञन्ताः। दैवयज्ञि, शौचिवृक्षि, सात्यमुग्रि, काण्ठेविद्धि, इत्येतेभ्य इञन्तेभ्यो विकल्पेन ष्यङ् प्रत्ययो भवति। पक्षे 'इतो मनुष्यजाते' रिति ङीष्। दैवयज्ञ्या। दैवयज्ञी। शौचिवृक्ष्या। शौचिवृक्षी। सात्यमुग्र्या। सात्यमुग्री। काण्ठेविद्ध्या। काण्ठेविद्धी॥८१॥

भाषार्थ—यहाँ 'गोत्रे' पद की अनुवृत्ति नहीं है। यह प्राप्ताप्राप्तविभाषा है। गोत्र में पूर्वसूत्र से 'ष्यङ्' प्राप्त है और अगोत्र में अप्राप्त है, दोनों में यह विकल्प करता है। दैवयज्ञि आदि सब शब्द इञ्-प्रत्ययान्त है। दैवयज्ञि, शौचिवृक्षि, सात्यमुग्रि, काण्ठेविद्धि, इन इञन्त प्रातिपदिकों से स्त्रीलिङ्ग में विकल्प से 'ष्यङ्' प्रत्यय होता है। पक्ष में 'इतो मनुष्यजातेः' (४।१।६५) सूत्र से 'ङीष्' होता है। जैसे—दैवयज्ञ्या। दैवयज्ञी। शौचिवृक्ष्या। शौचिवृक्षी। सात्यमुग्र्या। सात्यमुग्री। काण्ठेविद्ध्या। काण्ठेविद्धी॥८१॥

समर्थानां प्रथमाद्वा॥८२॥

समर्थानाम्—६।३।प्रथमात्—५।१।वा।अ०।समर्थानामिति निर्द्धारणे षष्ठी। समर्थानां मध्ये प्रथमं यत्समर्थम्। अभिधाने कार्यविधाने यच्छक्तं तत् समर्थम्। 'समर्थानां प्रथमाद्वेति' सर्वं सूत्रमधिक्रियते। आपंचमाध्यायपरिसमाप्तेरयमधिकारः।तस्यापत्यम्।उपगोरपत्यमौपगवः।समर्थानां प्रथमादिति किम्।कम्बल उपगोर्देवदत्तस्यापत्यम् अत्र देवदत्तादुत्पत्तिर्माभूत्। वेति किम्। वाक्यमपि यथास्यात्॥८२॥

भाषार्थ—'समर्थानाम्' पद में निर्धारण में षष्ठी विभक्ति है। जो अर्थ के कहने में शक्त है, उसे समर्थ कहते हैं। 'समर्थानाम्, प्रथमात्, वा' इन तीन पदों का अधिकार किया जाता है और यह अधिकार पंचमाध्याय की समाप्ति तक जावेगा। इससे आगे जो जो प्रत्यय कहेंगे वे समर्थों की प्रथम प्रकृति से विकल्प करके होंगे। जैसे—'तस्यापत्यम्' (४।१।९२) का उदाहरण है—उपगोरपत्यम् औपगवः।

---

* सूतात् युवत्याम्, इति गणपाठः (वैदिक यन्त्रालय अजमेर २०१३ वि०) —**सम्पादक**

यहाँ 'समर्थानां प्रथमात्' पद इसलिए पढ़े हैं कि—'कम्बल उपगोर्देवदत्तस्यापत्यम्' यहाँ असमर्थ देवदत्त से प्रत्यय न होवे। और 'वा' इसलिए हैं कि पक्ष में वाक्य भी बना रहे॥ ८२॥

प्रागदीव्यतोऽण्॥ ८३॥

प्रागदीव्यतः —५।१। अण् —१।१। तेन दीव्यति इति चुतर्थपादादौ सूत्रम्। तस्माद् 'दीव्यति' शब्दात्पूर्वं येभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः कश्चित् प्रत्ययो न विधीयते तत्राण् उपतिष्ठते। तस्यापत्यम्। औपगवः। कापटवः। एवं सर्वत्र।

भा०—दीव्यतिशब्दे च दीव्यच्छब्दोऽस्ति तस्मादेषा पंचमी। किं पुनः कारणं विकृतनिर्देशः क्रियते। एतज् ज्ञापयत्याचार्यो भवत्येषा परिभाषा—एकदेश विकृतमनन्यवद् भवतीति। तद्यथा शुनः कर्णे पुच्छे वा छिन्ने श्वा श्वैव भवति नाश्वो न गर्दभः। किमेतस्य ज्ञापने प्रयोजनम्। एकदेशविकृतेषूपसंख्यानं चोदितं तन्न वक्तव्यं भवति॥ ८३॥

भाषार्थ—चतुर्थाध्याय के चतुर्थपाद के प्रारम्भ में 'तेन दीव्यति०' (४।४।२) सूत्र है, उस दीव्यति शब्द से पूर्व जिन प्रातिपदिकों से किसी प्रत्यय का विधान नहीं किया, वहाँ अपवादों को छोड़कर 'अण्' प्रत्यय होता है। जैसे—'तस्यापत्यम्' (४।१।९२) सूत्र से यथाविहित प्रत्यय विधान किया है, वहाँ 'अण्' प्रत्यय उपस्थित होता है। उपगोरपत्यम् औपगवः। कापटवः। इत्यादि। इसी प्रकार सर्वत्र समझना चाहिए।

'तेन दीव्यति' सूत्र के 'दीव्यति' शब्द में 'दीव्यत्' शब्द से पंचमी विभक्ति लगाकर सूत्रकार ने निर्देश किया है। यहाँ विकृतनिर्देश करने का कारण यह है कि सूत्ररचयिता आचार्य यह समझाना चाहते हैं—एक देश विकृत होने पर भी अनन्यभाव ही रहता है, भिन्नता नहीं होती। जैसे—कुत्ते का कान या पूँछ कट जाने पर भी कुत्ता कुत्ता ही रहता है, घोड़ा या गधा नहीं। इस ज्ञापन का प्रयोजन यह है—'एकदेशविकृतेषूपसंख्यानम्' यह पृथक् से कहने की आवश्यकता नहीं है॥ ८३॥

अश्वपत्यादिभ्यश्च॥ ८४॥

अश्वपत्यादिभ्यः—५।३। च [अ०]। पत्युत्तरपदाण् ण्यः प्राप्तः तस्यायमपवादः। प्रागदीव्यतो येऽर्थास्तेष्वश्वपत्यादिभ्यो गणपठितेभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽण् प्रत्ययो भवति। अश्वपतेरपत्यम्, अश्वपतिर्देवताऽस्य, अश्वपतीनां समूह इत्याद्यर्थेष्वण्। आश्वपतम्। शातपतम्।

अथाश्वपत्यादयः—अश्वपति। ज्ञानपति। शतपति। धनपति। गणपति। स्थानपति। यज्ञपति। राष्ट्रपति। कुलपति। गृहपति। पशुपति। धान्यपति। धर्मपति। धन्वपति। बन्धुपति। सभापति। प्राणपति। क्षेत्रपति। अधिपति। इत्यश्वपत्यादयः॥ ८४॥

भाषार्थ—अगले सूत्र से पति जिनके उत्तरपद में हो, उन प्रातिपदिकों से

'ण्य' प्रत्यय कहा है, उसका यह अपवाद है। 'तेन दीव्यति०' (४।४।२) सूत्र में पहले जो जो अर्थ कहे हैं, वे प्राग्दीव्यतीय अर्थ हैं, उनमें अश्वपति आदि गण पठित प्रातिपदिकों से 'अण्' प्रत्यय होता है। जैसे—अश्वपतेरपत्यम्, अश्वपतिर्देवताऽस्य, अश्वपतीनां समूहो वा आश्वपतम्। इसी प्रकार—शातपतम्, धानपतम्, गाणपतम्, इत्यादि जानने चाहिएँ॥८४॥

दित्यादित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः॥८५॥

प्राग्दीव्यत इत्यनुवर्त्तते। दित्य......पदात्—५।१। ण्यः—१।१। दिति, अदिति, आदित्य, पत्युत्तरपद, इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु ण्यः प्रत्ययो भवति। दितेरपत्यं दैत्यः। आदित्यः। आदित्यम्। पत्युत्तरपदात्—प्राजापत्यम्। सैनापत्यम्। वानस्पत्यम्। माहीपत्यम्।

वा०—ण्यप्रकरणे वाङ्मतिपितृमतां छन्दस्युपसंख्यानम्॥१॥

वाक्, मति, पितृमत्, इत्येभ्यः प्रातिपदिकेभ्यश्छन्दसि प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु ण्यः प्रत्ययो भवति। वाच्यम्। मात्यः। पैतृमत्यः॥१॥

वा०—पृथिव्या ञाञौ॥२॥

पृथिवीशब्दात् प्राग्दीव्यतीयेषु ञ-अञ्-प्रत्ययौ भवतः। पार्थिवा। पार्थिवी॥२॥

वा०—देवाद् यञञौ॥३॥

देवशब्दाद् यञ्-अञ्-प्रत्ययौ भवतः। दैव्यम्। दैवम्॥३॥

वा०—बहिषष्टिलोपो यञ् च॥४॥

बहिः शब्दोऽव्ययम्। बहिःशब्दाद् यञ् प्रत्ययस्तस्मिन् टिलोपश्च भवति। बहिर्भवो बाह्यः॥४॥

वा०—ईकक् च॥५॥

बहिःशब्दाद् ईकक् टिलोपश्च। बाहीकः॥५॥

वा०—इकञ् छन्दसि च वक्तव्यः॥६॥

बाहीकमस्तु भद्रं वः। लोकवेदयोः स्वरभेदः॥६॥

वा०—स्थाम्नोऽकारः॥७॥

स्थामन्शब्दान्तात् प्राग्दीव्यतीयेष्वकारप्रत्ययो भवति। अश्वस्येव स्थाम-बलं यस्येति बहुव्रीहिः। अश्वत्थामा। पृषोदरादित्वात् सकारस्य तकारः। तस्यापत्यम् अश्वत्थामः। 'नस्तद्धित' इति टिलोपः॥७॥

वा०—लोम्नोऽपत्येषु बहुषु॥८॥

लोमन्शब्दान्ताद् बहुष्वपत्येषु अकारप्रत्ययो भवति। उडुलोमाः। शरलोमाः। बहुष्विति किमर्थम्। औडुलोमि। शारलोमिः। बाह्वादित्वाद् इञ्॥८॥

वा०—सर्वत्र गोरजादिप्रसङ्गे यत्॥९॥

पूर्ववार्त्तिकेऽपत्यग्रहणं कृतम्। तन्निवारणार्थं सर्वत्र ग्रहणं प्राग्दी-

व्यतीयेष्वेवेति। गोशब्दाद् अजादिप्रसंगे सर्वत्र प्राग्दीव्यतीयेषु यत् प्रत्ययो भवति। गवि भवं गव्यम्। गोः स्वं गव्यम्। गौर्देवता अस्य स्थालीपाकस्य गव्यः स्थालीपाकः॥ ८५॥

भाषार्थ—यहाँ 'प्राग्दीव्यतः' पद की अनुवृत्ति है। दिति, अदिति, आदित्य और पत्युत्तरपद प्रातिपदिकों से प्राग्दीव्यतीय अर्थों में तद्धित संज्ञक 'ण्य' प्रत्यय होता है। जैसे—दितेरपत्यं दैत्यः। आदित्यः। आदित्यम्। पत्युत्तरपद—प्राजापत्यम्। सैनापत्यम्। वानस्पत्यम्। माहीपत्यम्। इत्यादि॥

वा०—ण्यप्रकरणे वाङ्मतिपितृमतां छन्दस्युपसंख्यानम्॥ १॥

वाक्, मति, पितृमत्, इन प्रातिपदिकों से प्राग्दीव्यतीय अर्थों में वैदिक प्रयोग विषय में 'ण्य' प्रत्यय होता है। जैसे—वाच्यम्। मात्यम्। पैतृमत्यम्॥ १॥

वा०—पृथिव्या ञाञौ॥ २॥

पृथिवी प्रातिपदिक से प्राग्दीव्यतीय अर्थों में ञ और अञ् प्रत्यय होते हैं। जैसे—ञ-पार्थिवा। अञ्-पार्थिवी। ञ और अञ् प्रत्ययों में यह भेद है कि ञ प्रत्ययान्त में ङीप् नहीं होता॥ २॥

वा०—देवाद् यञञौ॥ ३॥

देव प्रातिपदिक से प्राग्दीव्यतीय अर्थों में यञ् और अञ् प्रत्यय होते हैं। जैसे—यञ्-दैव्यम्। अञ्—दैवम्॥ ३॥

वा०—बहिषष्टिलोपो यञ् च॥ ४॥

बहिष् शब्द अव्यय है। बहिष् प्रातिपदिक से प्राग्दीव्यतीय अर्थों में 'यञ्' प्रत्यय और प्रातिपदिक के टिभाग का लोप हो जाता है। जैसे—बहिर्भवो बाह्यः॥ ४॥

वा०—ईकक् च॥ ५॥

बहिष् शब्द से प्राग्दीव्यतीय अर्थों में 'ईकक्' प्रत्यय और बहिष् के टिभाग का लोप होता है। जैसे—बाहीकः॥ ५॥

वा०—ईकञ् छन्दसि च वक्तव्यः॥ ६॥

बहिष् प्रातिपदिक से वैदिक प्रयोग विषय में प्राग्दीव्यतीय अर्थों में 'ईकञ्' प्रत्यय और बहिष् के टिभाग का लोप होता है। जैसे—बाहीकमस्तु भद्रं वः। ईकक् और ईकञ् प्रत्ययों में स्वर का ही भेद है। लोक में अन्तोदात्त और वेद में आद्युदात्त स्वर होता है॥ ६॥

वा०—स्थाम्नोऽकारः॥ ७॥

स्थामन् शब्दान्त प्रातिपदिक से प्राग्दीव्यतीय अर्थों में अकार प्रत्यय होता है। जैसे—अश्वस्येव स्थामबलं यस्येति बहुव्रीहिः। अश्वत्थामा। पृषोदरादि मानकर सकार के स्थान में तकारादेश हुआ है। तस्यापत्यम् अश्वत्थामः। 'नस्तद्धिते' (६।४।१४४) सूत्र से टिभाग का लोप हुआ है॥ ७॥

वा०—लोम्नोऽपत्येषु बहुषु॥ ८॥

लोमन् शब्दान्त प्रातिपदिकों से बहुत अपत्य वाच्य हों तो अकार प्रत्यय होता

हैं। जैसे—उडुलोम्नोऽपत्यानि उडुलोमाः। शरलोमाः। यहाँ 'बहुषु' पद का ग्रहण इसलिए है कि—उडुलोम्नोऽपत्यम् औडुलोमिः। शारलोमिः। यहाँ बाह्वादि सूत्र से 'इञ्' प्रत्यय हुआ है॥८॥

वा०—सर्वत्र गोरजादिप्रसङ्गे यत्॥९॥

पूर्ववार्त्तिक में 'अपत्य' अर्थ का ग्रहण है, उसी में 'यत्' प्रत्यय न हो, इसलिए 'सर्वत्र' शब्द का पाठ है। सर्वत्र=समस्त प्राग्दीव्यतीय अर्थों में गो प्रातिपदिक से अजादि (स्वरादि) प्रत्ययों की प्राप्ति में 'यत्' प्रत्यय होता है। जैसे—गवि भवं गव्यम्। गोः स्वं गव्यम्। गौर्देवता अस्य स्थालीपाकस्य गव्यः स्थालीपाकः॥८५॥

उत्सादिभ्योऽञ्॥८६॥

प्राग्दीव्यत इत्यनुवर्तते। उत्सादिभ्यः—५।१। अञ्—१।१। उत्सादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः प्राग्दीव्यतीयार्थेष्वञ् प्रत्ययो भवति। अणप्रत्ययस्य तदपवादानां च बाधकः। औत्सः। औदयानः।

अथोत्सादिगणः—उत्स। उदयान। विकर। विमद। विनोद। महानद। महानस। महाजन। महाप्राण। तरुण। तलुन॥ बस्कयाऽसे॥ वष्कय शब्दाद् असे=असमासेऽञ् प्रत्ययः। धेनुपृथिवी। पंक्ति। जगती। त्रिष्टुप्। अनुष्टुप्। जनपद। भरत। उशीनर। ग्रीष्म। पीलु। कुल। कुण। उदस्थान, देशे। पृष, दंशे। भल्लकीय। रथन्तर। मध्यन्दिन। बृहत्। महत्। सत्वन्। कुरु। पंचाल। इन्द्रावसान। उष्णिक्। ककुप्। सुवर्ण। सुपर्ण। देव॥ इत्युत्सादयः॥*

वा०—अञ्प्रकरणे ग्रीष्मादच्छन्दसि॥१॥

छन्दः शब्देनात्र वृत्तमुच्यते न तु वेदपर्यायः। गायत्र्यादि छन्दोऽभिधेयादन्यत्र ग्रीष्मशब्दात् प्राग्दीव्यतीयेष्वञ् प्रत्ययो भवति। ग्रैष्मम्। अच्छन्दसीति किमर्थम्। ग्रीष्मो देवताऽस्य ग्रैष्मी त्रिष्टुप्। अत्राणेव। उत्सादिभ्यो यदा गोत्राऽपत्येऽञ् तदा गोत्रस्य जातित्वादञन्तेभ्यः स्त्रियां ङीन्। यदाऽन्ये प्राग्दीव्यतीयास्तदा 'टिड्ढाणञ्' इति ङीप् प्रत्ययो भवति॥८६॥

भाषार्थ—यहाँ 'प्राग्दीव्यतः' पद की अनुवृत्ति है। उत्सादि गणपठित प्रातिपदिकों से प्रागदीव्यतीय अर्थों में तद्धित संज्ञक 'अञ्' प्रत्यय होता है। यह सूत्र सामान्य अण् प्रत्यय का और उसके अपवादों का बाधक है। जैसे—औत्सः। औदपानः।

वा०—अञ् प्रकरणे ग्रीष्मादच्छन्दसि॥१॥

यहाँ छन्दस् शब्द से वृत्त (गायत्र्यादि) का ग्रहण है वेद का नहीं। गायत्र्यादि छन्द वाच्य न हों तो ग्रीष्म प्रातिपदिक से प्राग्दीव्यतीय अर्थों में अञ् प्रत्यय होता है। जैसे—ग्रैष्मम्। यहाँ 'अच्छन्दसि' का ग्रहण इसलिए है—ग्रीष्मो देवताऽस्य ग्रैष्मी त्रिष्टुप्। यहाँ 'अण्' प्रत्यय ही होता है। उत्सादि शब्दों से जब गोत्रापत्य में अञ् प्रत्यय होगा, तब जातिसंज्ञा होने से अञ् प्रत्ययान्त से स्त्रीलिंग में ङीन्

* ऋषिदयानन्द ने (ऋ० ९५।३) मन्त्र भाष्य में इस गण को आकृतिगण माना है। —सं०

होता है। और जब दूसरे प्राग्दीव्यतीय अर्थ होंगे, तब 'टिड्ढाणञ्' (४।१।१५) सूत्र से ङीप् प्रत्यय होता है॥८६॥

स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्-स्नञौ भवनात्॥ ८७॥

स्त्रीपुंसाभ्याम्—५।२। नञ्-स्नञौ—१।२। भवनात्—५।१। भवनादिति सापेक्षं तत्र प्रागित्यपेक्षते। 'धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्' इति पंचमाध्यायस्य द्वितीयपादादौ सूत्रात् प्राग्येऽर्थास्तेषु स्त्रीपुंसाभ्यां शब्दाभ्यां यथासंख्यं नञ्स्नञौ प्रत्ययौ भवतः। स्त्रीणां समूहः स्त्रैणम्। पुंसां समूहः पौंस्नम्। स्त्रियां जातः स्त्रैणः। पौंस्नः। स्त्रीषु भवं स्त्रैणम्। पौंस्नम्। स्त्रीभ्य आगतं स्त्रैणम्। पौंस्नम्। स्त्रिया प्रोक्तं स्त्रैणम्। पौंस्नम्। स्त्रिया पुंवदिति ज्ञापकाद् वतिः प्रत्ययस्तु भवत्येव। योगापेक्षं ज्ञापकं भवति। तेन स्त्रीवदित्यपि सिध्यति॥८७॥

भाषार्थ—सूत्र में 'भवनात्' पद सापेक्ष होने से 'प्राक्' शब्द की अपेक्षा रखता है। 'धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्' इस पंचमाध्याय के द्वितीय पाद के प्रथम सूत्र से पूर्व जो अर्थ निर्देश किये हैं, उनमें स्त्री और पुंस् प्रातिपदिकों से यथासंख्य करके 'नञ्' और 'स्नञ्' प्रत्यय होते हैं। जैसे—स्त्रीणां समूहः स्त्रैणम्। पुंसां समूहः पौंस्नम्। स्त्रियां जातः स्त्रैणः। पौंस्नः। स्त्रीषु भवं स्त्रैणम्। पौंस्नम्। स्त्रीभ्य आगतं स्त्रैणम्। पौंस्नम्। स्त्रिया प्रोक्तं स्त्रैणम्। पौंस्नम्। 'स्त्रियाः पुंवत्०' (अ० ६।३।३३) इस सूत्रकार के ज्ञापक से 'वति' प्रत्यय तो होता है। और 'योगापेक्षं ज्ञापकम्' इस नियम से 'पुंवत्' की भाँति स्त्री शब्द से भी वति प्रत्यय होकर 'स्त्रीवत्' रूप सिद्ध होता है॥८७॥

द्विगोर्लुगनपत्ये॥ ८८॥

प्रागदीव्यत इत्यनुवर्त्तते। द्विगोः-६।१। लुक्-१।१। अनपत्ये-७।१। द्विगोरिति निमित्तनिमित्तिसम्बन्धे षष्ठी। द्विगुर्निमित्ती, प्राग्दीव्यतीय-स्तद्धित-प्रत्ययो निमित्तम्।

वा०—अजादिग्रहणं च कर्त्तव्यम्॥१॥

अनेन वार्त्तिकेनाजादिग्रहणं तद्धितप्रत्ययविशेषणार्थम्। अपत्यादितरेषु प्रागदीव्यतीयार्थेषु विहितस्य द्विगोर्निमित्तस्याजादि तद्धितप्रत्ययस्य लुग् भवति। पंच मनाय्यो देवता अस्य पंचमनुः। पंच वरुणान्यो देवता अस्य पंचवरुणः। पंचसु कपालेषु संस्कृतः पुरोडाशः पंचकपालः। अत्र सर्वत्र देवतायां संस्कृते च विहितस्याणो लुक्। अनपत्य इति किम्। द्वयोर्देवदत्तयोरपत्यं द्वैदेवदत्तिः। प्राग्दीव्यत इति किम्। द्वावध्यायौ प्रयोजनमस्य द्वैयध्यायकः। अजादिग्रहणं किमर्थम्। पंचगर्गरूप्यम्। पंचगर्गमयम्। द्विगोर्निमित्तं तद्धितः क्व भवति। यत्र तद्धितार्थे द्विगुः। यत्र च समाहारे तत्राऽनेन लुङ् न भवति। पंचानां कपालानां समाहारः पंचकपालं तत्र भवः पांचकपालः॥८८॥

भाषार्थ—यहाँ 'प्राग्दीव्यतः' पद की अनुवृत्ति है। सूत्र के 'द्विगोः' पद में

निमित्तनिमित्ती सम्बन्ध में षष्ठी विभक्ति है। द्विगु निमित्ती है और प्राग्दीव्यतीय तद्धित प्रत्यय निमित्त है।

वा०—अजादिग्रहणं च कर्त्तव्यम्॥ १॥

इस वार्त्तिक का प्रयोजन यह है कि जिस तद्धितप्रत्यय का लुक् हो वह अजादि होना चाहिए। अपत्यार्थ से भिन्न प्राग्दीव्यतीय अर्थों में विहित द्विगुसमास का निमित्त अर्थात् जिसको मानकर द्विगु समास हुआ हो, उस अजादि तद्धित प्रत्यय का लुक् होता है। जैसे—पंच मनाय्यो देवता अस्य पंचमनुः। पंच वरुणान्यो देवता अस्य पंचवरुणः। पंचसु कपालेषु संस्कृतः पुरोडाशः पंचकपालः। यहाँ इन सभी उदाहरणों में देवता और संस्कृत अर्थ में विहित 'अण्' प्रत्यय का लुक् हुआ है। यहाँ 'अनपत्ये' का ग्रहण इसलिए है कि द्वयोर्देवदत्तयोरपत्यं द्वैदेवदत्तिः। यहाँ अपत्यार्थ 'इञ्' का लुक् न हो। 'प्राग्दीव्यतः' का प्रयोजन यह है कि द्वावध्यायौ प्रयोजनमस्य द्वैयध्यायकः। और 'अजादिग्रहण' इसलिए है कि—पंचगर्गरूप्यम्। पंचगर्गमयम्। यहाँ अजादि प्रत्यय न होने से लुक् नहीं हुआ। द्विगु समास का निमित्त तद्धित कहाँ होता है। जहाँ तद्धितार्थ में द्विगु समास हो और जहाँ समाहार में द्विगु समास होता है वहाँ इस सूत्र से लुक् नहीं होता। जैसे—पंचानां कपालानां समाहारः पंचकपालम्। तत्र भवः पांचकपालः॥ ८८॥

गोत्रेऽलुगचि॥ ८९॥

अनपत्ये प्राग्दीव्यत इत्यनुवर्त्तते। गोत्रे—७। १। अलुक्—१। १। अचि—७। १। 'यस्कादिभ्यो गोत्र' इत्यादिप्रकरणे द्वितीयाध्यायस्य चतुर्थपादे विहितस्य लुकोऽयं प्रतिषेधः। अचीति विषयसप्तमी। अजादिप्राग्दीव्यतीयप्रत्ययोत्पत्तिविषये गोत्रे विहितानां प्रत्ययानां लुग् न भवति। गर्गाणां छात्रा गार्गीयाः। वात्सीयाः। अत्र गार्ग्य-वात्स्यशब्दाभ्यां छः। तस्मिन् यस्येति चेत्यकारलोपः। 'आपत्यस्य च तद्धितेऽनातीति' यकारलोपः॥ ८९॥

भाषार्थ—यहाँ 'अनपत्ये, प्राग्दीव्यतः' पदों की अनुवृत्ति आती है। इस सूत्र में 'यस्कादिभ्यो गोत्रे' (अ० २।४।६३) सूत्र से विहित लुक् का प्रतिषेध किया है। 'अचि' पद में विषयसप्तमी है। प्रागदीव्यतीय अजादि प्रत्यय की उत्पत्ति की विवक्षा में गोत्र में विहित प्रत्ययों का लुक् नहीं होता है। जैसे—गर्गाणां छात्रा गार्गीयाः। वात्सीयाः। यहाँ गोत्र प्रत्ययान्त गार्ग्य और वात्स्य शब्दों से 'छ' प्रत्यय हुआ है। 'छ' प्रत्यय के परे होने पर 'यस्येति च' (६।४।१४८) सूत्र से अकार लोप और 'आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति' (६।४।१५१) सूत्र से यकार का लोप हुआ है॥ ८९॥

यूनि लुक्॥ ९०॥

प्राग्दीव्यत इत्यनुवर्त्ततेऽचीति च। यूनि—७। १। लुक्—१। १। अजादिप्रागदीव्यतीयप्रत्ययविषये यूनि विहितस्य प्रत्ययस्य लुग् भवति। फाण्टाहृतस्य गोत्रापत्यं फाण्टाहृतिः। तस्य युवापत्यम्। फाण्टाहृतिमिमताभ्यां

ण-फिञाविति णः। फाण्टाहृतस्य छात्रा इति शैषिकप्रत्ययार्थे विवक्षिते बुद्धिस्थे यूनि विहितस्य णप्रत्ययस्य लुक्। तस्मिन् सति प्रकृतेरिञन्तत्वाद् इञश्चेत्यण्। फाण्टाहृताः। भागवित्तस्य गोत्रापत्यं भागवित्तिः। भागवित्तेर्युवापत्यं भागवित्तिकः। 'वृद्धाद् ठक् सौवीरेषु बहुल' मिति ठक्। शैषिकविवक्षायां यूनि विहितस्य ठको लुक्। तत इञन्तादण्। भागवित्तिकस्य यूनश्छात्रा भागवित्ताः। तिकस्य गोत्रापत्यं तैकायनिः। तैकायनेर्युवापत्यम्। फेश्छचेति छः। तैकायनीयः। तस्य यूनश्छात्रास्तैकायनीयाः। यूनि विहितस्य छप्रत्ययस्य लुक्। कपिंजलादस्यापत्यं कापिंजलादिः। तस्य युवापत्यम्। कुर्वादित्वाण् ण्यः। कापिंजलाद्यः। तस्य यूनश्छात्रा इति यूनि विहितस्य ण्यप्रत्ययस्य लुक्, तत इञन्तादण्। कापिंजलादाः। ग्लुचुकस्य गोत्रापत्यम्। प्राचामवृद्धात् फिन् बहुलमिति फिन्। ग्लुचुकायनिः। तस्य युवापत्यमित्यण्। ग्लौचुकायनस्य यूनश्छात्रा इति यूनि विहितस्याणो लुक्। ततोऽवृद्धत्वादणेव ग्लौचुकायनाः। अचीति किम्। फाण्टाहृतादागतं फाण्टाहृतरूप्यम्। फाण्टाहृतमयम्। प्राग्दीव्यत इति किम्। भागवित्तिकाय हितम्। भागवित्तिकीयम्। अत्र युवप्रत्ययस्य लुङ् न भवति॥ ९०॥

भाषार्थ—इस सूत्र में 'प्राग्दीव्यतः, अचि' पदों की अनुवृत्ति आती है। जब प्राग्दीव्यतीय अजादि प्रत्यय की विवक्षा होवे, तब युवापत्य अर्थ में विहित तद्धित संज्ञक प्रत्यय का लुक् होता है। और लुक् होने के पश्चात् जो भी प्रत्यय प्राप्त होगा, वही होगा। जैसे—फाण्टाहृतस्य गोत्रापत्यं फाण्टाहृतिः। तस्य युवापत्यम्, इस अर्थ में फाण्टाहृतिमिमताभ्यां णफिञौ (४।१।१५०) सूत्र से ण प्रत्यय होकर 'फाण्टाहृताः' प्रयोग बना। तत्पश्चात् 'फाण्टाहृतस्य यूनः छात्राः' उस शैषिक अर्थ की विवक्षा में (बुद्धिस्थ करने पर ही) युवापत्य अर्थ में विहित 'ण' प्रत्यय का लुक् इस सूत्र से हो जायेगा। और ण प्रत्यय के लुक् होने पर इञ्-प्रत्ययान्त फाण्टाहृति शब्द से 'इञश्च' (४।२।१११) सूत्र से 'अण्' होकर 'फाण्टाहृताः' प्रयोग बनेगा। इसी प्रकार भागवित्तस्य गोत्रापत्यं भागवित्तिः। भागवित्तेर्युवापत्यं भागवित्तिकः 'वृद्धाट्ठक् सौवीरेषु बहुलम्' (४।१।१४८) सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय हुआ है। और फिर शैषिक प्रत्यय की विवक्षा में युवापत्य में विहित ठक् का लुक् होने पर इञन्त से 'अण्' प्रत्यय हुआ है। भागवित्तिकस्य यूनश्छात्रा भागवित्ताः। तिकस्य गोत्रापत्यं तैकायनिः। तैकायनेर्युवापत्यं 'फेश्छ च' (४।१।१४९) सूत्र से 'छ' प्रत्यय होकर—तैकायनीयः। तस्य यूनश्छात्रास्तैकायनीयाः। यहाँ शैषिक प्रत्यय की विवक्षा में युवापत्य में विहित 'छ' प्रत्यय का लुक् होने पर 'वृद्धाच्छः' (४।२।११३) सूत्र से वृद्ध प्रातिपदिक से 'छ' प्रत्यय हुआ है। कपिञ्जलादस्यापत्यं कापिञ्जलादिः। तस्य युवापत्यं कापिञ्जलाद्यः। यहाँ कुर्वादि होने से ण्य प्रत्यय हुआ। तत्पश्चात् 'तस्य यूनश्छात्राः' शैषिक प्रत्यय की विवक्षा में ण्य प्रत्यय का लुक् होने पर इञन्त होने से 'अण्' प्रत्यय होकर 'कापिञ्जलादाः' रूप बनेगा। ग्लुचुकस्य गोत्रापत्यं ग्लुचुकायनिः। यहाँ 'प्राचामवृद्धात् फिन् बहुलम्' (४।१।१६०)

सूत्र से 'फिन्' प्रत्यय हुआ। तस्य युवापत्यं ग्लौचुकायनः। यहाँ युवापत्य में 'अण्' प्रत्यय हुआ। तत्पश्चात् शैषिक प्रत्यय की विवक्षा में—ग्लौचुकायनस्य यूनश्छात्राः, युवापत्य में विहित अण् का लुक् और वृद्धसंज्ञा न होने से सामान्य 'अण्' प्रत्यय होकर 'ग्लौचुकायनाः' रूप बनेगा। यहाँ सूत्र में 'अचि' ग्रहण इसलिए है—फाण्टाहृतादागतं फाण्टाहृतरूप्यम्। फाण्टाहृतमयम्। यहाँ अजादि प्रत्यय न होने से लुक् नहीं हुआ। और 'प्राग्दीव्यतः' का ग्रहण इसलिए है कि—भागवित्तिकाय हितं भागवित्तिकीयम्। यहाँ प्राग्दीव्यतीय प्रत्यय न होने से युव प्रत्यय का लुक् नहीं हुआ॥ ९०॥

फक्फिञोरन्यतरस्याम्॥ ९१॥

यूनि लुगित्यनुवर्त्तते। अचीति च। फक्फिञोः—६।२। अन्यतरस्याम् [अ०]। प्राप्तविभाषेयम्। पूर्वसूत्रेण नित्ये प्राप्ते विभाषा। अजादि-प्रागद्दीव्यतीयप्रत्ययविवक्षायां यूनि विहितयोः फक्-फिञोर्विकल्पेन लुग् भवति। गार्ग्यस्य युवापत्यं गार्ग्यायणः। तस्य यूनश्छात्रा गार्गीयाः। गार्ग्यायणीयाः। वात्सीयाः। वात्स्यायनीयाः। अत्र यञन्ताद् यूनि विहितस्य फको लुक्। यस्कस्य गोत्रापत्यमिति शिवादित्वादण्। यास्कस्य युवापत्यमित्यणो द्व्यच इति फिञ् यास्कायनिः। तस्य यूनश्छात्रा यास्कीयाः। यास्कायनीयाः॥ ९१॥

भाषार्थ—यहाँ 'यूनि लुक्, अचि' पदों की अनुवृत्ति आती है। पूर्वसूत्र से नित्यलुक् प्राप्त होने से यह प्राप्तविभाषा सूत्र है। प्राग्दीव्यतीय अर्थ में अजादि प्रत्यय की विवक्षा में युवापत्य में विहित फक् और फिञ् प्रत्ययों का विकल्प से लुक् होता है। जैसे—गर्गस्य गोत्रापत्यं गार्ग्यः। तस्य युवापत्यं गार्ग्यायणः। तस्य यूनश्छात्रा गार्गीयाः। गार्ग्यायणीयाः। वात्सीयाः। वात्स्यायनीयाः। यहाँ यञन्त से युवापत्य में विहित 'फक्' प्रत्यय का शैषिक की विवक्षा में लुक् हो गया। फिञ्—यस्कस्य गोत्रापत्यं यास्कः। यहाँ शिवादि होने से 'अण्' प्रत्यय हुआ है। यास्कस्य युवापत्यं यास्कायनिः। यहाँ 'अणो द्व्यचः' (४।१।१५६) सूत्र से फिञ्। तत्पश्चात् युवापत्य में तस्य यूनश्छात्रा यास्कीयाः। यास्कायनीयाः। यहाँ विकल्प से 'फिञ्' का लुक् हुआ है॥ ९१॥

तस्यापत्यम्॥ ९२॥

समर्थानां प्रथमाद्वेत्यनुवर्त्तते। तस्य —६।१। अपत्यम् —१।१। तस्येति प्रकृत्यर्थ-विशेषण-सम्बन्धे षष्ठी। अपत्येन सह कार्यकारण-सम्बन्धः। अपत्यमित्युत्पन्नस्य कार्यस्य ग्रहणम्। न तु लिङ्गप्रधाननिर्देशस्त्रिलिङ्गस्य ग्रहणं भवति। अपत्यमत्र प्रत्ययार्थः। समर्थानां प्रथमासमर्थात् षष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकादपत्ये प्रत्ययार्थे यस्माद् यः प्राप्नोति तस्मात् स प्रत्ययो भवति। अश्वपतेरपत्यम् आश्वपतम्। दैव्यः। औत्सः। स्त्रैणः। पौंस्नः। उपगोरपत्यमौपगवः।

का०— तस्येदमित्यपत्येऽपि बाधनार्थं कृतं भवेत्।
उत्सर्गः शेष एवासौ वृद्धान्यस्य प्रयोजनम्॥ १॥

तस्येदमिति सामान्यसम्बन्धेऽपत्येऽप्यण् भविष्यति। पुनरणप्रत्ययस्य ये बाधकास्तेषां बाधनार्थं सूत्रमिदम्। तस्येदमिति सामान्यसम्बन्धः शैषिकेषु वर्त्तते। तत्रापत्यसम्बन्धेऽपि वृद्धेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यश्छः प्रत्ययः स्यात्तद् बाधनार्थं सूत्रमिदम्। भानोरपत्यं भानवः। श्यामगोरपत्यं श्यामगवः। यद्ययं संदेहः स्याद् अशैषिकोऽयं योगः शैषिकं कथं बाधेतेति। 'उत्सर्गः शेष एवासौ'। असौ तस्यापत्यमित्युत्सर्गः शेष एव वृद्धेभ्यश्छं बाधित्वाऽपत्येऽण् स्यादिति सूत्रस्यास्य प्रयोजनम्॥ ९२॥

भाषार्थ—यहाँ 'समर्थानां प्रथमाद्वा' की अनुवृत्ति है। 'तस्य' पद में प्रकृत्यर्थ विशेषण सम्बन्ध में षष्ठी विभक्ति है। प्रकृत्यर्थ का अपत्य के साथ कार्य कारण सम्बन्ध है। 'अपत्यम्' पद से यहाँ उत्पन्न कार्य का ग्रहण है।

'तस्य' पद में लिङ्ग का प्रधानता से निर्देश नहीं है, किन्तु तीनों लिङ्गों का ग्रहण होता है। 'अपत्यम्' इससे प्रत्ययार्थ का निर्देश किया गया है। समर्थों में प्रथम षष्ठी समर्थ प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में यथाविहित 'अण्' आदि प्रत्यय होते हैं। जैसे—अश्वपतेरपत्यम् आश्वपतम्। दैत्यः। औत्सः। स्त्रैणः। पौस्नः। उपगोरपत्यम् औपगवः।

का०— तस्येदमित्यपत्येऽपि बाधनार्थं कृतं भवेत्।
उत्सर्गः शेष एवासौ वृद्धान्यस्य प्रयोजनम्॥ १॥

'तस्येदम्' (अ० ४।३।११९) सूत्र से सामान्य सम्बन्ध में प्रत्यय का विधान किया है। उसी सूत्र से अपत्यार्थ में भी 'अण्' प्रत्यय हो जायेगा, फिर इस सूत्र को किसलिए बनाया है? इसका उत्तर यह है—बाधनार्थं कृतं भवेत्। अर्थात् 'तस्येदम्' (४।३।११९) सूत्र सामान्य सम्बन्ध का बोधक होने से शैषिकाधिकार में भी प्रवृत्त होता है। और शैषिकाधिकार में जो जो सूत्र अण् प्रत्यय के अपवाद हैं, उनकी प्राप्ति में भी 'अण्' प्रत्यय ही हो, इसलिये यह सूत्र बनाया है। जैसे—भानोरपत्यं भानवः। श्यामगोरपत्यं श्यामगवः। इन वृद्धसंज्ञक प्रातिपदिकों से 'छ' प्रत्यय न हो, 'अण्' ही हो, इसीलिये यह सूत्र बनाया है।

यदि यहाँ कोई ऐसा प्रश्न करे कि यह 'तस्यापत्यम्' (४।१।९२) शेषाधिकार में न होने से अशैषिक है, फिर यह शेषाधिकार के प्रत्ययों का बाधक कैसे हो सकता है? इसका उत्तर यह है कि—'उत्सर्गः शेषः एवासौ', अर्थात् यह 'तस्यापत्यम्' सूत्र सामान्य सूत्र है। प्रकृतिविशेष से सम्बद्ध न होने से विशेष प्रकृतियों से विहित प्रत्ययों का सामान्यसूत्र शेष ही रहता है। और 'वृद्धान्यस्य प्रयोजनम्' अर्थात् जो वृद्ध संज्ञक भानु आदि प्रातिपदिक हैं, उन से 'छ' प्रत्यय का अपत्यार्थ में बाधन करके 'अण्' प्रत्यय करना ही इस सूत्र का प्रयोजन है॥ ९२॥

एको गोत्रे॥ ९३॥

पौत्रप्रभृतेरपत्यस्य गोत्रसंज्ञां वक्ष्यति। अपत्यं च प्रत्ययार्थः। गोत्रसंज्ञा च

समुदायस्य। तत्रैकैकस्य विवक्षायामेकैकोऽपत्येन युज्यते। एवं येषामसंख्यातानां गोत्रसंज्ञा सर्वे तेऽपत्ययुक्ता भवन्ति। तत्र सर्वेभ्य उत्पादयितृभ्यो गोत्रे प्रत्ययो मा भूदिति सूत्राशयः। एकः —१।१। गोत्रे —७।१। एकशब्दोऽत्र पुरुषविशेषणो मुख्यवाची। यत आरभ्य गोत्रस्य प्रवृत्तिस्तत्र गोत्रादौ यस्मात् पुरुषाद् गोत्रारम्भो भवति स गोत्र एकः प्रथमो वा। एकः प्रथमो मुख्यः श्रेष्ठतमः प्रथमादिपुरुषो गोत्रे प्रत्ययमुत्पादयेन्न तु यावन्तो गोत्रे भवन्ति तेभ्यः। यथा—वसिष्ठशब्दः परमप्रकृतिस्तस्मादेव गोत्रप्रत्ययः स्यात्। तेन वसिष्ठ-शब्देनासंख्यातान्यपत्यानि गृहीतानि भवन्ति। वसिष्ठकुले तस्य पौत्रादयो मुख्याः श्रेष्ठतमा अपि स्युस्तथापि गोत्रे प्रत्ययोत्पत्तिर्वसिष्ठादेव। अनन्तरापत्ये त्वन्येभ्योऽपि भवतीत्येको गोत्र इति सूत्रेण नियमः क्रियते। एवं प्रकृतिनियमे यदि प्रत्ययान्तेभ्यः पुनर्गोत्रे प्रत्ययः स्यात् तर्हि प्रकृतिनियमे प्रत्ययान्तस्य प्रकृत्यन्तरत्वान्न भविष्यति। गर्गस्य गोत्रापत्यं गार्ग्यः। गोत्रनियमः किमर्थः। गर्गस्यानन्तरापत्यं पुत्रो गार्गिः। अदन्तत्वाद् इञ् यथा स्यात्॥ ९३॥

भाषार्थ—'अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम्' (४।१ १६२) सूत्र से गोत्रसंज्ञा का विधान आगे किया है और अपत्य प्रत्यय का अर्थ है। अपत्य समुदाय की गोत्र संज्ञा की है। एक एक अपत्य की विवक्षा में पृथक् पृथक् प्रत्ययों की प्राप्ति होती है। इस प्रकार जिन असंख्यातों की गोत्र संज्ञा होगी, वे सभी अपत्ययुक्त होते हैं, इसलिये सभी उत्पादकों से गोत्र में प्रत्यय न हो, एक मूलप्रकृति से ही गोत्र में प्रत्यय हो, यह सूत्र का प्रयोजन है। यहाँ सूत्र में एक शब्द मुख्यवाची है, अतः मुख्यपुरुष का विशेषण है। जिस पुरुष से सर्वप्रथम गोत्र का आरम्भ होता है, वह प्रथम मुख्य पुरुष है। गोत्र अर्थ में जो प्रथम मुख्य आदिपुरुष हो, उसी से प्रत्यय हो, न कि गोत्र में जितने भी उत्पादक हों उन सब से। जैसे—वसिष्ठ शब्द प्रथम परम प्रकृति है, गोत्र अर्थ में उसी से प्रत्यय हो। उस वसिष्ठ शब्द से असंख्य अपत्यों का ग्रहण होता है। वसिष्ठ के कुल में पौत्रादि कितने भी श्रेष्ठतम अपत्य हों, फिर भी गोत्र में प्रत्ययोत्पत्ति वसिष्ठ से ही होगी। अनन्तरापत्य में तो दूसरी प्रकृतियों से भी प्रत्यय होते हैं। यह सूत्र इस नियम को बताता है।

यदि यहाँ कोई यह प्रश्न करे कि आपने प्रथमप्रकृति का नियम बनाया है। क्या प्रत्यय करने के बाद प्रकृत्यन्तर होने से गोत्र में प्रत्यय हो सकता है? क्योंकि आपने भिन्न प्रकृति का निषेध तो नहीं किया है। इसका उत्तर यह है कि जो प्रत्ययान्त प्रकृत्यन्तर होगी, वह प्रथम प्रकृति न होने से गोत्र में प्रत्ययोत्पन्न नहीं कर सकती। जैसे—गर्गस्य गोत्रापत्यं गार्ग्यः। गोत्र का नियम किसलिए किया है? गर्गस्यानन्तरापत्यं पुत्रो गार्गिः। यहाँ अदन्त होने से 'इञ्' प्रत्यय हुआ है॥ गोत्र में विहित यञ् नहीं॥ ९३॥

गोत्राद् यून्यस्त्रियाम्॥ ९४॥

अयमपि नियामको योगः। गोत्रात् —५।१। यूनि—७।१। अस्त्रियाम् —७।१। प्रथमाप्रकृतिर्गोत्रे प्रत्ययमुत्पादयति। तस्माद् गोत्रप्रत्ययान्ताद्

द्वितीयस्याः प्रकृतेर्यूनि प्रत्ययान्तरं भवति। अस्त्रियाम्=स्त्रीलिंगे युवापत्ये गोत्रप्रत्ययान्ताद् यूनि प्रत्ययो न भवति। गार्ग्यस्य युवापत्यं गार्ग्यायणः। वात्स्यायनः। दाक्षायणः। औपगविः। अस्त्रियामिति किमर्थम्। गार्गी। वात्सी। दाक्षी। औपगवी। युवसंज्ञा च गोत्रान्तर्हिता भवति। अर्थात् सामान्येन गोत्रसंज्ञा विशेषत्वेन युवसंज्ञा च। एतत् संज्ञाद्वयं वक्ष्यते, तत्र व्याख्यास्यामः॥ ९४॥

भाषार्थ—यह सूत्र नियमार्थ है। गोत्र अर्थ में प्रथम मुख्य प्रकृति से प्रत्यय होता है। और गोत्र प्रत्ययान्त द्वितीय प्रकृति से ही युवापत्य में दूसरा प्रत्यय होवे, परन्तु स्त्रीलिंग युवापत्य में गोत्रप्रत्ययान्त से प्रत्यय न होवे। जैसे—गार्ग्यस्य युवापत्यं गार्ग्यायणः। वात्स्यायनः। दाक्षायणः। औपगविः। यहाँ 'अस्त्रियाम्' का ग्रहण इसलिये किया है कि [गर्गस्यापत्यं चतुर्थस्त्री] गार्गी। वात्सी। दाक्षी। औपगवी। यहाँ गोत्र प्रत्ययान्त से स्त्री प्रत्यय हुआ है। इनमें 'अत इञ्' (४।१।९५) सूत्र से 'इञ्' और 'इतो मनुष्यजातेः' (४।१।६५) सूत्र से ङीष् प्रत्यय हुआ है। गोत्र और युव संज्ञाओं में गोत्र संज्ञा सामान्य रूप से है और युव संज्ञा विशेष रूप से है। अतः युव संज्ञा गोत्र संज्ञा के अन्तर्हित ही है। इन दोनों संज्ञाओं का व्याख्यान इसी पाद में आगे किया जाएगा॥ ९४॥

अत इञ्॥ ९५॥

तस्यापत्यमित्यनुवर्त्तते। अण् उत्सर्गस्तस्यायमपवादः। अतः —५।१। इञ्—१।१। समर्थानां प्रथमात् षष्ठीसमर्थाददन्तात् प्रातिपदिकाद् अपत्यमात्रे इञ् प्रत्ययो विकल्पेन विधीयते। पक्षे विकल्पाधिकारेण सर्वत्र वाक्यमेवभवति। देवदत्तस्यापत्यं दैवदत्तिः। याज्ञदत्तिः। दाक्षिः। प्लाक्षिः। औपगविः। यथा-सम्भवमपत्यानि योजनीयानि। क्वचिदनन्तरापत्ये क्वचिद् गोत्रापत्ये क्वचिद् युवापत्येऽपीञ् भवत्येव। तपरकरणं किमर्थम्। कीलालपाः। सोमपाः। इत्यादिभ्यो मा भूत॥ ९५॥

भाषार्थ—यहाँ 'तस्यापत्यम्' (४।१।९२) की अनुवृत्ति है। यह सूत्र सामान्य 'अण्' प्रत्यय का अपवाद है। समर्थों में प्रथम षष्ठीसमर्थ अदन्त प्रातिपदिकों से अपत्य मात्र में विकल्प से 'इञ्' प्रत्यय होता है। पक्ष में विकल्प के अधिकार से सब सूत्रों में वाक्य ही रहता है, यह जानना चाहिए। जैसे—देवदत्तस्यापत्यं दैवदत्तिः। याज्ञदत्तिः। दाक्षिः। प्लाक्षिः। औपगविः। इन उदाहरणों में यथासम्भव गोत्र, युवापत्यादि अर्थ लगाने चाहिएँ। कहीं अनन्तरापत्य में, कहीं गोत्रापत्य में और कहीं युवापत्य में भी 'इञ्' प्रत्यय होता है। सूत्र में तपरकरण किसलिये किया है? कीलालपाः। सोमपाः। इत्यादि से 'इञ्' प्रत्यय न होवे॥ ९५॥

बाह्वादिभ्यश्च॥ ९६॥

बाह्वादिभ्यः —५।३। च [अ०] समर्थानां प्रथमेभ्यः षष्ठीसमर्थेभ्यो गणपठितेभ्यो बाह्वादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽपत्यमात्रे विकल्पेन इञ् प्रत्ययो भवति। बाहोरपत्यं बाहविः। औपबाहविः। बाह्वदिषु यानि प्रातिपदिकानि

नकारान्तानि पठ्यन्ते तेभ्यः पूर्वसूत्रेणाप्राप्त इञ् विधीयते। यानि ह्यकारान्तानि तेभ्य ऋष्यन्धकेत्यण् प्राप्तः स बाध्यते।

अथ बाह्वादिगणः—बाहु। उपबाहु। उपचाकु। विवाकु। शिवाकु। बटाकु। उपबिन्दु। वृक। वृषली। चूडाला। बलाका। मूषिका। कुशला। भगला। छगला। ध्रुवका। धुवका। सुमित्रा। दुर्मित्रा। पुष्करसत्। अनुहरत्। देवशर्म्मन्। अग्निशर्म्मन्। कुनामन्। सुनामन्। पंचन्। सप्तन्। अष्टन्। अमितौजसः सलोपश्च॥ सुधावत्। उदञ्चु। शिरस्। भाष। शराविन्। मरीचि। क्षेमभद्रिन्। क्षेमवृद्धिन्। शङ्खलातोदिन्। खरनादिन्। नगरमर्दिन्। प्राकारमर्दिन्। लोमन्। अजीगर्त्त। कृष्णा। सलक। युधिष्ठिर। अर्जुन। साम्ब। गुद। प्रद्युम्न। राम॥ उदङ्कः संज्ञायाम्॥ संभूयोऽम्भसोः सलोपश्च॥ निवाकु। अवाकु। चूडा। वृकला। भद्रशर्म्मन्। सुशर्म्मन्। सुधावन्। आकृतिगणोऽयं बाह्वादिः[१]। तेनान्येभ्योऽपीञ् दृश्यते। जाम्बिः। ऐन्द्रशर्मिः। आजधेनविः। आजबन्धविः। औडुलौमिः॥ इति बाह्वादिगणः॥

वा०— बाह्वादिप्रभतिषु येषां दर्शनं गोत्रभावे लौकिके ततोऽन्यत्र तेषां प्रतिषेधः॥ १॥

इत आरभ्यापत्याधिकारे सर्वत्र वार्तिकस्यास्य प्रवृत्तिः। येभ्योऽपत्ये प्रत्यया विधीयन्ते तेषु बाह्वादिप्रभृतिषु प्रातिपदिकेषु येषां प्रातिपदिकानामादितो लोकप्रसिद्धे गोत्रभावे गोत्रे प्रथमप्रकृतौ प्रधानपुरुषे प्रत्यया विधीयन्ते। आदिः प्रधानो बाहुशब्दस्तस्यापत्यं बाहविः। बाहविगोत्रेऽन्यस्य कस्यचिद् बाहुर्नाम स्यात् तस्मादणेव स्यादिति वार्तिकाशयः। बाहवः। एवं नडस्यापत्यं नाडायनः। यो हि नडो नाम तस्यापत्यं नाडिः॥ १॥

वा०—सम्बन्धिशब्दानां तत्सदृशात् प्रतिषेधः॥ २॥

इतोऽग्रे सम्बन्धिशब्देभ्यो ये प्रत्यया विधीयन्ते ते संबन्धिशब्दा यदि संज्ञावाचिनः स्युस्तर्हि तेभ्य औत्सर्गिकावेवाण्-इञौ प्रत्ययौ भवतः। यथा श्वशुरस्य सम्बन्धिनोऽपत्यं श्वशुर्य्यः। यो हि श्वशुरो नाम श्वाशुरिस्तस्य भवति। भ्रातुरपत्यं भ्रातृव्यः। यो हि भ्राता नाम भ्रात्रस्तस्य भवति॥ ९६॥

भाषार्थ—समर्थों में प्रथम षष्ठीसमर्थ बाहु आदि गणपठित प्रातिपदिकों से अपत्यमात्र में विकल्प से 'इञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—बाहोरपत्यं बाहविः। औपबाहविः। बाह्वादिगण में जो नकारान्त प्रातिपदिक हैं उनसे पूर्वसूत्र से अप्राप्ति में 'इञ्' प्रत्यय का विधान किया है। और जो अकारान्त शब्द पढ़े हैं, उनसे 'ऋष्यन्धक०' (४।१।११४) सूत्र से जो 'अण्' प्रत्यय प्राप्त है, उसके बाधन के लिये 'इञ्' का विधान किया है।

वा०— बाह्वादिप्रभृतिषु येषां दर्शनं गोत्रभावे लौकिके ततोऽन्यत्र तेषां प्रतिषेधः॥ १॥

---

१. यह बाह्वादि आकृतिगण है। महर्षिदयानन्द ने (४।१।१५३) सूत्रभाष्य में और महाभाष्य के टीकाकार कैय्यट ने (उदीचामिञ्) सूत्रभाष्य में आकृतिगण माना है॥ (सं०)

यहाँ से लेकर अपत्याधिकार के समस्त सूत्रों में इस वार्त्तिक की प्रवृत्ति होती है। इस वार्त्तिक का अभिप्राय यह है कि इस सूत्र से लेकर अपत्याधिकार में जिन प्रातिपदिकों से अपत्य विधान किये हैं, वे लोकप्रसिद्ध गोत्रों में प्रथम मुख्य प्रधानपुरुष मूल प्रकृति से ही होते हैं। जैसे—मूलप्रकृति 'बाहु' शब्द से प्रत्यय हुआ—बाहोरपत्यं बाहविः। और उस बाहविगोत्र में उत्पन्न कालान्तर में किसी व्यक्ति का यदि बाहुनाम है, तो उससे 'इञ्' प्रत्यय नहीं होगा, अण् ही होगा। जैसे—बाहवः। इसी प्रकार—नडस्यापत्यं नाडायनः। कालान्तर में उस गोत्र में यदि किसी का नाम नड है तो उससे सामान्य इञ् ही होगा—यो हि नडो नाम तस्यापत्यं नाडिः।

वा०—सम्बन्धि-शब्दानां तत्सदृशात् प्रतिषेधः॥ २॥

इससे आगे के सूत्रों में सम्बन्धी वाचक शब्दों से जो प्रत्यय कहे गये हैं, वे सम्बन्धीवाचक शब्द यदि संज्ञावाची हों तो उनसे वे प्रत्यय न हों उनसे सामान्य अण्-इञ् प्रत्यय ही हों जैसे—'राजश्वशुराद् यत्' (४।१।१३७) सूत्र से—श्वशुरस्य सम्बन्धिनोऽपत्यं श्वशुर्य्यः। यहाँ श्वशुर शब्द से 'यत्' प्रत्यय हुआ। किन्तु यदि किसी व्यक्ति का 'श्वशुर' नाम ही हो, उससे यत् नहीं होगा। जैसे—श्वशुरो नाम कश्चित्। तस्यापत्यं श्वाशुरिः। यहाँ सामान्य 'इञ्' प्रत्यय ही होवे। इसी प्रकार—'भ्रातुर्व्यच्च' (४।१।१४४) सूत्र से 'भातुरपत्यं भ्रातृव्यः' व्यत् प्रत्यय हो गया। और जिसका 'भ्राता' नाम ही हो, उससे 'अण्' प्रत्यय होकर 'भ्रातुरपत्यं भ्रात्रः' ही रूप होगा॥ ९६॥

सुधातुरकङ् च॥ ९७॥

सुधातुः—६।१।अकङ्—१।१।च [अ०] सुधातृशब्दादपत्यसामान्ये इञ् प्रत्ययस्तत्संनियोगेन सुधातृशब्दस्याकङादेशश्च भवति। ङित्वाद् अन्त्यस्य ऋकारस्य स्थाने भवति। सुधातुरपत्यं सौधातकिः॥

वा०—व्यास-वरुड-निषाद-चण्डाल-बिम्बानामिति वक्तव्यम्॥ १॥

व्यासादिभ्य इञ् तस्मिँश्चैतेषामकङादेशः वैयासकिः शुकः। वारुडकिः। नैषादकिः। चाण्डालकिः। बैम्बकिः॥ ९७॥

भाषार्थ—समर्थों में प्रथम षष्ठी समर्थ 'सुधातृ' प्रातिपदिक से अपत्य सामान्य अर्थ में 'इञ्' प्रत्यय होता है और प्रत्यय-संनियोग से सुधातृ शब्द को 'अकङ्' आदेश होता है। आदेश के ङित् होने से 'ङिच्च' (१।१।५२) सूत्र से अन्त्य ऋकार के स्थान पर 'अकङ्' आदेश होता है। जैसे—सुधातुरपत्यं सौधातकिः।

वा०—व्यास वरुड-निषाद-चण्डाल-बिम्बानामिति वक्तव्यम्॥ १॥

व्यास आदि प्रातिपदिकों से अपत्यसामान्य में 'इञ्' प्रत्यय और 'अकङ्' आदेश होवे। जैसे—वैयासकिः शुकः। वारुडकिः। नैषादकिः। चाण्डालकिः। बैम्बकिः। इन शब्दों के अदन्त होने से ही इञ् प्रत्यय प्राप्त था, आदेश के लिए वार्त्तिक में पाठ किया है॥ ९७॥

गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्च्फञ्॥ ९८॥

तस्यापत्यमित्यनुवर्त्तते। गोत्रे —७।१। कुञ्जादिभ्यः —५।३। च्फञ् —१।१। कृतसंज्ञो गोत्रशब्दोऽत्र गृह्यते। कुञ्जादीनामदन्तत्वादिञ् प्राप्तस्तस्यायमपवादः। कुञ्जादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो गोत्रेऽभिधेये च्फञ् प्रत्ययो भवति। च्फञन्तात् स्वार्थे ञ्यप्रत्ययो विधीयते। तस्य च तद्राजसंज्ञा भवति। तद्राजसंज्ञकस्य प्रत्ययस्य बहुवचने लुक्। कुञ्जस्य गोत्रापत्यं कौञ्जायन्यः। कौञ्जायन्यौ। कौञ्जायनाः। ब्राध्नायन्यः। ब्राध्नायन्यौ। ब्राध्नायनाः। गोत्र इति किम्। कुञ्जस्यानन्तरापत्यं कौञ्जिः। पूर्वमुक्तं वार्त्तिकं चात्र प्रवर्त्तते। तेन कुञ्जादिभ्यः परमप्रकृतिभ्य आदिपुरुषेभ्य एव च्फञ् भवति। अन्यत्र सामान्यात् कुञ्जसंज्ञकाद् औत्सर्गिक एव। कुञ्जस्यापत्यं कौञ्जिः। च्फञ्-प्रत्यये चकारः स्वरार्थः। ञकारोऽनुबन्धो वृद्ध्यर्थश्च।

अथ कुञ्जादयः—कुञ्ज। ब्रध्न। शङ्ख। भस्मन्। गण। लोमन्। शठ। शाक। शाकट। शुण्डा। शुभ। विपाश। स्कन्द। स्कम्भ। शुम्भ। शिव। शुभंया। इति कुञ्जादिगणः॥ ९८॥

भाषार्थ—यहाँ 'तस्यापत्यम्' (४।१।९२) सूत्र की अनुवृत्ति आती है। कुञ्जादि शब्दों के अदन्त होने से यह सूत्र 'इञ्' का अपवाद है। यहाँ गोत्र शब्द से पारिभाषिक गोत्र का ग्रहण है। समर्थों में प्रथम षष्ठी समर्थ गणपठित कुञ्जादि प्रातिपदिकों से गोत्रापत्य अर्थ में 'च्फञ्' प्रत्यय होता है। च्फञ्-प्रत्ययान्तों से स्वार्थ में 'व्रातच्फञो०' (५।३।११३) सूत्र से 'ञ्य' प्रत्यय का विधान किया है। और तद्राज संज्ञा होने से उस 'ञ्य' प्रत्यय का बहुवचन में लुक् हो जाता है। जैसे—कुञ्जस्य गोत्रापत्यं कौञ्जायन्यः। कौञ्जायन्यौ। कौञ्जायनाः। ब्राध्नायन्यः। ब्राध्नायन्यौ। ब्राध्नायनाः। इत्यादि।

यहाँ 'गोत्रे' इसलिए कहा है कि कुञ्जस्यानन्तरापत्यं कौञ्जिः। यहाँ अनन्तरापत्यं में 'च्फञ्' प्रत्यय न हो। यहाँ पूर्वोक्त 'बाह्वादिभ्यश्च' (४।१।९६) सूत्र में कथित 'येषां दर्शनं गोत्रभावे०' वार्त्तिक की प्रवृत्ति होती है, इसलिए कुञ्जादि प्रथम प्रकृतियों=आदि पुरुषों से ही 'च्फञ्' प्रत्यय होता है। गोत्र प्रवर्त्तकों से अन्यत्र संज्ञावाचक कुञ्जादि से सामान्य प्रत्यय ही होता है। जैसे—कुञ्जस्यापत्यं कौञ्जिः। 'च्फञ्' प्रत्यय में चकार स्वरार्थ है और ञकार अनुबन्ध वृद्धि के लिए है॥ ९८॥

नडादिभ्यः फक्॥ ९९॥

गोत्रग्रहणमनुवर्त्तते। नडादिभ्यः —५।३। फक् —१।१। समर्थानां प्रथमेभ्यः षष्ठीसमर्थेभ्यो नडादिगणप्रातिपदिकेभ्यो गोत्रेऽभिधेये फक् प्रत्ययो भवति। नडस्य गोत्रापत्यं नाडायनः। चारायणः। गोत्र इति किम्। नडस्यानन्तरापत्यं नाडिः पुत्रः। चारिः पुत्रः॥

अथ नडादयः—नड। चर। बक। मुञ्ज। इतिक। उपक। एक। लमक॥

शलंकु शलंकञ्च॥ समल। सप्तल। वाजष्य। तिक॥ अग्निशर्म्मन् वृषगणे॥ प्राण। नर। सायक। दास। मित्र। द्वीप। पिङ्गर। पिङ्गल। किङ्कर। किङ्कल। कानूर। कातर। कातल। काश्य। काश्यप। काव्य। अज। अमुष्य॥ कृष्णारणौ ब्राह्मणवसिष्ठयोः॥ अमित्र। लिगु। चित्र। कुमार॥ क्रोष्टु: क्रोष्टं च॥ लोह। दुर्ग। स्तम्भ। शिंशपा। अग्र। तृण। शकट। सुमनस्। सुमत। मिमत। ऋक्। जत्। जलंधर। अध्वर। युगन्धर। हंसक। दण्डिन्। हस्तिन्। पिण्डि। पञ्चाल। चमसिन्। सुकृत्य। स्थिरक। ब्राह्मण। चटक। बदर। अश्वल। अश्वक। खरप। लङ्क। इन्ध। अस्त्र। कामुक। ब्रह्मदत्त। उदुम्बर। शोण। अलोह। दण्ड। वानव्य। शावक। नाव्य। अन्वजत्। अन्तजन। इत्वरा। अंशक॥ इति नडादयः॥ ९९॥

भाषार्थ—यहाँ 'गोत्रे' पद की अनुवृत्ति है। समर्थों में प्रथम षष्ठी समर्थ गणपठित नडादि प्रातिपदिकों से गोत्रापत्य अर्थ में 'फक्' प्रत्यय होता है। यह सूत्र भी 'इञ्' प्रत्यय का अपवाद है। जैसे—नडस्य गोत्रापत्यं नाडायनः। चारायणः। इत्यादि। यहाँ 'गोत्रे' का ग्रहण इसलिए है कि—नडस्यानन्तरापत्यं नाडिः पुत्रः। चारिः पुत्रः। यहाँ अनन्तरापत्य में 'फक्' प्रत्यय न होवे॥ ९९॥

हरितादिभ्योऽञः॥ १००॥

गोत्रग्रहणमनुवर्त्तते। तेनाञन्तं विशिष्यते। हरितादिभ्यः —५।३। अञः —५।१। विदाद्यन्तर्गता हरितादयः। तत्र विदादित्वाद् गोत्रेऽञ् प्रत्ययः। समर्थानां प्रथमेभ्यः षष्ठी समर्थेभ्यो गोत्रे विहितो योऽञ् प्रत्ययस्तदन्तेभ्यो हरितादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो युवापत्ये फक् प्रत्ययो भवति। अदन्तत्वादिञ् प्राप्तः स बाध्यते। हरितस्य युवापत्यं हारितायनः। कैन्दासस्यापत्यं कैन्दासायनः।

जयादित्येनात्र लिखितं गोत्रग्रहणमुत्तरार्थं तच्चिन्त्यम्॥ १००॥

भाषार्थ—यहाँ 'गोत्रे' पद की अनुवृत्ति है। और उससे अञन्त को विशेषित किया गया है। हरितादिगण विदादिगण के अन्तर्गत पठित है, इसलिए हरितादि शब्दों से विदादि में पाठ होने से गोत्र में अञ् प्रत्यय हुआ है। समर्थों में प्रथम षष्ठी समर्थ हरितादि शब्दों से गोत्रापत्य में जो 'अञ्' प्रत्यय विहित किया है, तदन्त हरितादि प्रातिपदिकों से युवापत्य अर्थ में फक् प्रत्यय होता है। अदन्त होने से जो 'इञ्' प्रत्यय प्राप्त था, उसका यह अपवाद है। जैसे—हरितस्य युवापत्यं हारितायनः। किन्दासस्य युवापत्यं कैन्दासायनः। इत्यादि॥

इस सूत्र पर जयादित्य का यह लिखना कि 'गोत्र ग्रहण उत्तरार्थ है; चिन्त्य है॥ १००॥

यञिञोश्च॥ १०१॥

यञिञोः —६।२। च [अ०] गोत्रे विहितौ यौ यञ्-इञ्प्रत्ययौ तदन्तेभ्यः समर्थानां प्रथमेभ्यः षष्ठी समर्थेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो युवापत्ये फक् प्रत्ययो भवति। गार्ग्यस्य युवापत्यं गार्ग्यायणः। वात्स्यायनः। इञन्तात्—दाक्षायणः। प्लाक्षायणः। गोत्रग्रहणेन यञिञौ विशेष्येते तस्मादिह न भवति। द्वैप्यस्यापत्यं

द्वैप्यिः। सौतङ्गमेरपत्यं सौतङ्गमः॥ १०१॥

भाषार्थ—गोत्रापत्य अर्थ में जो यञ्-इञ् प्रत्ययों का विधान किया है, तदन्त समर्थों में प्रथम षष्ठी समर्थ प्रातिपदिकों से युवापत्य अर्थ में 'फक्' प्रत्यय होता है। जैसे—यञन्त से—गार्ग्यस्य युवापत्यं गार्ग्यायणः। वात्स्यायनः। इञन्त से—दाक्षायणः। प्लाक्षायणः। इत्यादि।

इस सूत्र में गोत्र शब्द से यञ्-इञ् प्रत्ययों को इसलिए विशेषित किया है कि गोत्र में विहित यञन्त- इञन्त शब्दों से ही 'फक्' प्रत्यय होवे, यहाँ न हो—द्वैप्यस्यापत्यं द्वैप्यिः। सौतङ्गमेरपत्यं सौतङ्गमः। यहाँ 'द्वैप्य' में यञ् और 'सौतङ्गमि' में इञ् प्रत्यय तो है, किन्तु गोत्रापत्य में नहीं है॥ १०१॥

शरद्वच्छुनकदर्भाद् भृगुवत्साग्रायणेषु॥ १०२॥

गोत्र इत्यनुवर्त्तते। शर.....दर्भात् ।५।१। भृगु.....ग्रायणेषु ।७।३। शरद्वत्-शुनकशब्दौ विदादिषु पठ्येते तेन सामान्ये गोत्रापत्येऽञ् प्राप्त-स्तस्यविशेषत्वेनापवादः। दर्भशब्दाच्चेञ् प्राप्तः स बाध्यते। समर्थानां प्रथमेभ्यः षष्ठीसमर्थेभ्यः शरद्वत्, शुनक, दर्भ, इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो भृगु, वत्स, आग्रायण, इत्येतेषु गोत्रापत्येष्वभिधेयेषु यथासंख्यं फक् प्रत्ययो भवति। शरद्वतो गोत्रापत्यं शारद्वतायनो भार्गवश्चेत्। शारद्वतोऽन्यत्र। शुनकस्य गोत्रापत्यं शौनकायनो वात्स्यः। शौनकोऽन्यत्र। दर्भस्य गोत्रापत्यं दार्भायणाग्रायणश्चेत्। दार्भिरित्यन्यत्र। उत्सर्गावञ्-इञावेव भवतः॥ १०२॥

भाषार्थ—यहाँ भी 'गोत्रे' पद की अनुवृत्ति है। सूत्रपठित शरद्वत् और शुनक शब्दों का विदादिगण में पाठ होने से सामान्य गोत्रापत्य में 'अञ्' प्रत्यय प्राप्त है और दर्भ शब्द से अदन्त होने से इञ् प्रत्यय प्राप्त है, यह सूत्र दोनों का अपवाद है। समर्थों में प्रथम षष्ठी समर्थ शरद्वत्, शुनक और दर्भ प्रातिपदिकों से क्रम से भृगु, वत्स, आग्रायण इन अपत्यविशेष अर्थ वाच्य हो तो 'फक्' प्रत्यय होता है। जैसे—शरद्वतो गोत्रापत्यं शारद्वतायनो भार्गवः। भृगु से अन्यत्र शारद्वतः। शुनकस्य गोत्रापत्यं शौनकायनो वात्स्यः। वत्स गोत्र से अन्यत्र शौनकः। दर्भस्य गोत्रापत्यं दार्भायण आग्रायणः। आग्रायण गोत्र से अन्यत्र—दार्भिः। यहाँ सामान्य 'अञ्' और इञ्' प्रत्यय ही होते हैं॥ १०२॥

द्रोण-पर्वत-जीवन्तादन्यतरस्याम्॥ १०३॥

गोत्र इत्यनुवर्त्तते। द्रोण—जीवन्तात् —५।१। अन्यतरस्याम् [अ०] अप्राप्तविभाषेयम्। द्रोणादीनामदन्तत्वाद् इञ् प्राप्तः। फग् विकल्प्यते। समर्थानां प्रथमेभ्यः षष्ठी समर्थेभ्यो द्रोणादिप्रातिपदिकेभ्यो गोत्राऽपत्येऽभिधेये विकल्पेन फक् प्रत्ययो भवति। पक्षे इञ् भवति। महाविभाषाऽनुवर्त्तते तेन वाक्यमपि भविष्यति। द्रोणस्य गोत्रापत्यं द्रौणायनः। द्रौणिः। पार्वतायनः। पार्वतिः। जैवन्तायनः। जैवन्तिः। अस्मिन् प्रकरणे वार्त्तिकेन प्रतिपादनादादिपुरुषेभ्य एव द्रोणादिभ्यः फग् विधीयते। महाभारते यो द्रोणो बभूव तस्मान्न

भविष्यति॥ १०३ ॥

भाषार्थ—यहाँ 'गोत्रे' पद की अनुवृति है। इस सूत्र में अप्राप्त विभाषा है। द्रोणादि शब्दों से अदन्त होने से 'इञ्' प्रत्यय प्राप्त था, उसमें 'फक्' प्रत्यय का विकल्प किया है। समर्थों में प्रथम षष्ठीसमर्थ द्रोण, पर्वत और जीवन्त प्रातिपदिकों से गोत्रापत्य अर्थ में विकल्प से 'फक्' प्रत्यय होता है। पक्ष में यथाप्राप्त 'इञ्' ही होता है। महाविभाषा का अधिकार होने से वाक्य भी होता है। जैसे—द्रोणस्य गोत्रापत्यं द्रौणायनः। द्रौणिः। पार्वतायनः। पार्वतिः। जैवन्तायनः। जैवन्तिः।

इस प्रकरण में पूर्वोक्त (४।१।९६) वार्त्तिक के अनुसार गोत्र प्रवर्त्तक आदिपुरुष द्रोणादि से ही 'फक्' प्रत्यय का विधान किया है। महाभारत में जो 'द्रोण' हुए हैं, उससे फक् नहीं होता है॥ १०३ ॥

अनृष्यानन्तर्ये विदादिभ्योऽञ्॥ १०४॥

अनृष्यानन्तर्ये —७।१। विदादिभ्यः —५।३। अञ् —१।१। अनन्तर-शब्दः समीपवाची तस्मात् स्वार्थे ष्यञ् प्रत्ययः। अनन्तरमेवानन्तर्य्यम्। अनृषीणामानन्तर्यमनृष्यानन्तर्यम्। समर्थानां प्रथमेभ्यः षष्ठी समर्थेभ्यो विदादिप्रातिपदिकेभ्यो गोत्रापत्येऽभिधेयेऽञ् प्रत्ययो भवति। विदस्य गोत्रापत्यं वैदः। और्वः। पौत्रप्रभृतेरपत्यस्य गोत्रसंज्ञा, तच्च गोत्रग्रहणमिहानुवर्त्तते। तेन ऋषिवाचिभ्यो विदादिभ्य आनन्तर्य्ये स्वयमेव न भविष्यति, पुनरनर्थक-त्वादेतज्ज्ञाप्यते विदादिषु येऽनृषिवाचिनः शब्दाः पठ्यन्ते तेभ्योऽनन्तरापत्य एव प्रत्ययो भवति। पुत्र। दुहितृ। ननान्दृ। पुत्रस्यानन्तरापत्यं पौत्रः। दौहित्रः। नानान्द्रः। गोत्र इति किम्। विदस्यानन्तरापत्यं वैदः। ऋष्यन्धकेत्यण्। स्वरे विशेषः।

अथ विदादयः—विद। उर्व। कश्यप। कुशिक। भरद्वाज। उपमन्यु। किलात। किलालप। किन्दर्भ। किदर्भ। विश्वानर। ऋषिषेण। ऋतभाग। हर्य्यश्व। प्रियक। आपस्तम्ब। कूचवार। शरद्वत्। शुनक। धेनु। गोपवन। शिग्रु। बिन्दु। भाजन। भोजक। भोगक। अश्वावतान। श्यामाक। श्य माक। शमिक। श्याबली। श्यापर्ण। हरित। किन्दास। बह्यस्क। अर्कलूष। बध्योष। बध्योग। विष्णुवृद्ध। प्रतिबोध। रथन्तर। रथीतर। गविष्ठिर। निषाद। मठर। शबर। अलस। मृडाकु। सृपाकु। मृद। पुनर्भू। पुत्र। दुहितृ। ननान्दृ। परस्त्री परशुं च। शम्बक॥ इति विदादयः॥ १०४॥

भाषार्थ—'अनन्तर' शब्द समीपवाची है, उससे स्वार्थ में 'ष्यञ्' प्रत्यय होने से 'अनन्तरमेवानन्तर्य्यम्' रूप बना है। और 'अनृषीणामानन्तर्यम् अनृष्यानन्तर्यम्' यह षष्ठी तत्पुरुष समास है। समर्थों में प्रथम षष्ठी समर्थ गणपठित विदादि प्रातिपदिकों से गोत्रापत्य अर्थ में 'अञ्' प्रत्यय होता है, परन्तु विदादिगण में अनृषिवाची=ऋषिवाची शब्दों से भिन्न पुत्रादि शब्द पठित हैं, उनसे अनन्तरापत्य अर्थ में ही 'अञ्' प्रत्यय होवे। जैसे—विदस्य गोत्रापत्यं वैदः। और्वः। इत्यादि।

पौत्रप्रभृति अपत्य की गोत्र संज्ञा ही है। और इस सूत्र में भी गोत्र शब्द की अनुवृत्ति होने से ऋषिवाची विदादि शब्दों से अनन्तरापत्य अर्थ में स्वयं ही प्रत्यय नहीं हो सकता, फिर 'अनृष्याः' इस निषेध करने से यह बताया गया है कि विदादिगण में जो अनृषिवाची शब्द पठित हैं, उनसे अनन्तरापत्य में ही प्रत्यय होता है। जैसे—पुत्रस्यानन्तरापत्यं पौत्रः। दौहित्रः। नानान्द्रः। यहाँ गोत्र ग्रहण इसलिए है कि विदस्यानन्तरापत्यं वैदः। यहाँ 'अञ्' न हो। यहाँ 'ऋष्यन्धक०' (४।१।११४) सूत्र से 'अण्' प्रत्यय हुआ है। प्रत्ययान्तर होने से स्वर में भेद हो गया है॥१०४॥

गर्गादिभ्यो यञ्॥१०५॥

गोत्र इत्यनुवर्त्तते। गर्गादिभ्यः ।५।३। यञ् ।१।१। समर्थानां प्रथमेभ्यः षष्ठीसमर्थेभ्यो गणोपदिष्टगर्गादिप्रातिपदिकेभ्यो गोत्रापत्ये यञ् प्रत्ययो भवति। गर्गस्य गोत्रापत्यं गार्ग्यः। वात्स्यः। गोत्र इति किम्। गार्गो, वात्सः। ऋष्यन्धकेत्यण्।

अथ गर्गादयः—गर्ग। वत्स॥ वाजाऽसे॥ असेऽसमासे। अर्थात्तदन्तविधिः प्रतिषिध्यते। तेनेह न भवति—सुवाजस्य गोत्रापत्यं सौवाजिः। संस्कृति। अज। व्याघ्रपात्। शत। विदभृत्। प्राचीनयोग। अगस्ति। पुलस्ति। चमस। रेभ। अग्निवेश। पाख। पट। शंख। शठ। शक। एक। धूम। अवट। मनस। धनञ्जय। वृक्ष। विश्वावसु। जनमान। जरमाण। लोहित। संशित। बभ्रु। बल्गु। मण्डु। गण्डु। शंकु। शंक। मक्षु। अलिंगु। लिंगु। गुहलु। गुलु। मन्तु। जिगीषु। मनु। तन्तु। मनायी। सूनु। भूत। कथक। कन्थक। ऋक्ष। तृक्ष। वरुक्ष। तलुक्ष। तनु। तण्ड। वतण्ड। कपि। कत। कुरुकत। अनडुह। कण्व। शकल। गोकक्ष। अगस्त्य। कुण्डिनी। यज्ञवल्क। पर्णवल्क। उभय। जात। विरोहित। वृषगण। रहूगण। शण्डिल। वण। कचुलुक। मुद्गल। मुसल। जमदग्नि। पराशर। जतूकर्ण। मंत्रित। संहित। अश्मरथ। शर्कराक्ष। पूतिमाष। स्थूण। अररक। एराका। एलाका। पिङ्गल। कृश। गोलुन्द। उलूक। तितिक्ष। भिषज्। भडित। भण्डित। दल्भ। चिकित। चिकित्सित। देवहू। इन्द्रहू। एकलू। पिप्पलू। बृहदग्नि। वृदग्नि। सुलोभिन। सुलोहित। उकत्थ। कुटीपू। कुटीगु॥ इति गर्गादिगणः॥१०५॥

भाषार्थ—यहाँ भी 'गोत्रे' पद की अनुवृत्ति है। समर्थों में प्रथम षष्ठी समर्थ गणपठित गर्गादि प्रातिपदिकों से गोत्रापत्य अर्थ में 'यञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—गर्गस्य गोत्रापत्यं गार्ग्यः। वात्स्यः। यहाँ गोत्रग्रहण इसलिए है कि—गर्गस्यानन्तरापत्यं गार्गः। वात्सः। यहाँ 'यञ्' प्रत्यय न हो। यहाँ 'ऋष्यन्धक०' (४।१।११४) सूत्र से अण् प्रत्यय हुआ है॥१०५॥

मधु-बभ्र्वोर्ब्राह्मणकौशिकयोः॥१०६॥

गोत्र इत्यनुवर्त्तते। मधु-बभ्र्वोः —६।२। ब्राह्मणकौशिकयोः —७।२।

बभ्रुशब्दो गर्गादिषु लोहितादिकतन्तेषु पठ्यते। तस्मान्नियमार्थं यञ् विधानम्। गणे पठनस्यैतत् प्रयोजनम्। गोत्रापत्ये स्त्रीलिङ्गे लोहितादिकतन्तत्वात् ष्फप्रत्ययो यथा स्यात्। बाभ्रव्यायणी। समर्थानां प्रथमाभ्यां षष्ठीसमर्थाभ्यां मधु-बभ्रुशब्दाभ्यां ब्राह्मण-कौशिकयोर्गोत्रापत्याभिधेययोर्यञ् प्रत्ययो भवति। माधव्यो ब्राह्मणश्चेत्। माधव इत्यन्यत्र। बाभ्रव्यः कौशिकश्चेत्। बाभ्रव इत्यन्यत्र। गोत्र इति किम्। बाभ्रवः। माधवः॥ १०६ ॥

भाषार्थ—यहाँ भी 'गोत्रे' पद की अनुवृत्ति है। 'बभ्रु' शब्द गर्गादिगण के अन्तर्गत लोहितादि में पढा है। उससे 'यञ्' प्रत्यय प्राप्त ही था, पुनः 'यञ्' का विधान नियम करने के लिए है। और गर्गादि के अन्तर्गत लोहितादि में इस शब्द के पाठ का यह प्रयोजन है—गोत्रप्रत्ययान्त इस शब्द से स्त्रीलिङ्ग में 'ष्फ' प्रत्यय हो जाये। जैसे—ब्राभ्रव्यायणी।

समर्थों में प्रथम षष्ठी समर्थ मधु और बभ्रु प्रातिपदिकों से क्रम से ब्राह्मण-कौशिक गोत्रापत्य वाच्य हों तो 'यञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—मधोर्गोत्रापत्यं माधव्यो ब्राह्मणः। जो ब्राह्मण न हो तो—माधवः। बाभ्रव्यः कौशिकः। कौशिक गोत्र से अन्यत्र—बाभ्रवः। यहाँ 'गोत्रे' का ग्रहण इसलिए है कि—बाभ्रवः। माधवः। गोत्रापत्य से अन्यत्र 'यञ्' न होवे॥ १०६ ॥

कपिबोधादाङ्गिरसे॥ १०७॥

कपिबोधात् —५।१।आङ्गिरसे —७।१।कपिशब्दो गर्गादिषु लोहिताद्यन्तर्गणे पठ्यते तस्मान्नियमार्थ आरम्भः। गणे पाठः पूर्ववल्लोहितादिकार्य्यार्थः। काप्यायनी। समर्थानां प्रथमाभ्यां षष्ठीसमर्थाभ्यां कपिबोधप्रातिपदि-काभ्यामाङ्गिरसे गोत्रापत्येऽभिधेये यञ् प्रत्ययो भवति। काप्यः। बौध्यः। आङ्गिरस इति किम्। कापेयः। बौधिः॥ १०७॥

भाषार्थ—'कपि' शब्द गर्गादिगण के अन्तर्गत लोहितादिगण में पठित है, उससे यञ् सिद्ध होने पर भी यह नियमार्थ सूत्र बनाया है। और गर्गादिगण में पाठ करने का प्रयोजन पूर्वसूत्र की भाँति स्त्रीलिङ्ग में लोहितादि कार्य करने के लिए है। जैसे—काप्यायनी। समर्थों में प्रथम षष्ठी समर्थ कपि और बोध प्रातिपदिकों से आङ्गिरस गोत्रापत्य विशेष अर्थ में 'यञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—कपेर्गोत्रापत्यं काप्यः। बौध्यः। यहाँ 'आङ्गिरसे' का ग्रहण इसलिए है कि इससे अन्यत्र—कापेयः। बौधिः॥ १०७॥

वतण्डाच्च॥ १०८॥

आङ्गिरस इत्यनुवर्त्तते। वतण्डात् —५।१। च [अ०] वतण्डशब्दो गर्गादिषु शिवादिषु च पठ्यते। तस्मात् पुनर्यञ् विधानं स्त्रीलिङ्गे लुगर्थम्। वक्ष्यमाणसूत्रेण स्त्रीलिङ्गे आङ्गिरसगोत्रे लुग् यथा स्यात्। अस्य सूत्रस्य योगविभागः किमर्थः। वतण्डाल् लुक् स्त्रियामित्युच्यमाने शिवा-दिविशेषपाठादन्यस्मिन् गोत्रे शिवाद्यणेव स्यात्। कुतः। वतण्डस्य ऋषित्वादणि

सिद्धे पुनः शिवादिषु पाठस्य यञ्समुच्चयार्थत्वात्। तेनाङ्गिरसादन्ये सामान्यगोत्रे यञ्-अणौ द्वावपि भवतः। वातण्ड्यः। वातण्डः। समर्थानां प्रथमात् षष्ठीसमर्थाद् वतण्डप्रातिपदिकादाङ्गिरसे गोत्रापत्ये विकल्पेन यञ् प्रत्ययो भवति। वतण्डस्य गोत्रापत्यं वातण्ड्यः। आङ्गिरस इति किम्। वातण्ड्यः। वातण्डः। अन्यत्सर्वं पूर्वं लिखितमेव॥ १०८॥

भाषार्थ—यहाँ 'आङ्गिरसे' पद की अनुवृत्ति है। वतण्ड शब्द गर्गादि और शिवादिगण में पढ़ा है। उससे पुनः 'यञ्' का विधान स्त्रीलिङ्ग में लुक् करने के लिए है। इससे अग्रिम सूत्र से आङ्गिरस गोत्रापत्य में स्त्रीलिङ्ग वाच्य हो तो लुक् का जो विधान किया है, यह फिर यञ् के विधान से सिद्ध होता है। यदि लुक् करना ही सूत्र बनाने का प्रयोजन है तो योगविभाग किसलिए किया है? 'वतण्डाल् लुक् स्त्रियाम्' ऐसा एक सूत्र ही क्यों नहीं बनाया? इस शङ्का का समाधान यह है—एक सूत्र बनाने पर आङ्गिरस गोत्र से अन्यत्र शिवादिगण में विशेष पाठ होने से 'अण्' प्रत्यय ही प्राप्त होता। क्योंकि 'वतण्ड' शब्द के ऋषिवाची होने से 'ऋष्यन्धक०' (४।१।११४) सूत्र से ही अण् प्रत्यय प्राप्त था। फिर शिवादिगण में पाठ करने का प्रयोजन 'यञ्' प्रत्यय के समुच्चयार्थ है। इसलिए आङ्गिरस गोत्र से अन्यत्र सामान्य गोत्र में 'यञ्' और 'अण्' दोनों ही प्रत्यय हो जाते हैं—वातण्ड्यः। वातण्डः। समर्थों में प्रथम षष्ठी समर्थ वतण्ड प्रातिपदिक से आङ्गिरस गोत्रापत्य विशेष अर्थ में विकल्प से 'यञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—वतण्डस्य गोत्रापत्यं वातण्ड्यः। यहाँ आङ्गिरस गोत्रविशेष में प्रत्यय हुआ है। इससे अन्यत्र वातण्ड्यः। वातण्डः॥ १०८॥

लुक् स्त्रियाम्॥ १०९॥

आङ्गिरस इत्यनुवर्त्तते। लुक् ।१।१। स्त्रियाम् ।७।१। प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपो भवन्तीति यञ्-प्रत्ययस्य लुग् भविष्यति। आङ्गिरस्यां गोत्रापत्यस्त्रियामभिधेयायां वतण्डप्रातिपदिकात् परस्य यञ्-प्रत्ययस्य लुग् भवति। वतण्डस्य गोत्रापत्यं कन्या वतण्डी। वतण्डशब्दस्य शार्ङ्गरवादिपाठान् ङीन् प्रत्ययः। आङ्गिरस इति किम्। वातण्ड्यायनी। वातण्डी॥ १०९॥

भाषार्थ—यहाँ भी 'आङ्गिरसे' पद की अनुवृत्ति है। 'प्रत्ययस्य लुक्०' (१।१।६०) सूत्र से प्रत्यय के अदर्शन की ही लुक् संज्ञा की है, इसलिए 'यञ्' प्रत्यय का ही लुक् होता है। गोत्रापत्य आङ्गिरसी स्त्रीवाच्य हो तो वतण्ड प्रातिपदिक से विहित 'यञ्' प्रत्यय का लुक् होता है। जैसे—वतण्डस्य गोत्रापत्यं कन्या वतण्डी। यहाँ 'यञ्' प्रत्यय के लुक् होने पर शार्ङ्गरवादिगण में पाठ होने से 'ङीन्' प्रत्यय हुआ है। 'आङ्गिरस' गोत्र से अन्यत्र—वातण्डयायनी। वातण्डी। यहाँ लोहितादि में पाठ से 'ष्फ' और शिवादि में पाठ से 'अण्' प्रत्यय है॥ १०९॥

अश्वादिभ्यः फञ्॥ ११०॥

गोत्र इत्यनुवर्त्तते। आङ्गिरस इति निवृत्तम्। अश्वादिभ्यः —५।३। फञ्

—१।१। अश्वादिषु यत् किंचित् प्रातिपदिकं प्रत्ययान्तं पठ्यते तस्माद् युवापत्ये प्रत्ययो विज्ञेयः पठनसामर्थ्यात्। समर्थानां प्रथमेभ्यः षष्ठीसमर्थेभ्योऽश्वादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो गोत्रापत्ये विकल्पेन फञ् प्रत्ययो भवति। अश्वस्य गोत्रापत्यमाश्वायनः। आश्मायनः। गोत्र इति किम्। आश्विः।

अथाश्वादयः—अश्व। अश्मन्। शङ्ख। शूद्रक। विद। पुट। खर्जूर। खर्जूल। खर्जार। पिञ्जूर। पिञ्जूल। भडिल। भण्डिल। भडित। भण्डित। वस्त। प्रकृत। प्रहृत। रामोद। क्षत्र। क्षान्त ग्रीवा। काश। तीक्ष्ण। गोलाङ्क्य। अर्क। स्वन। ध्वन। स्फुट। पाद। चक्र। कुल। पूल। शुविष्ठ। पविन्द। पवित्र। गोमिन्। श्याम। धूम। धूम्र। वाग्मिन्। विश्वानर। कुट। शपाऽऽत्रेये॥ शपशब्दादात्रेये गोत्रापत्ये फञ्। जन। जड। खड। नत्त। तड। नड। ग्रीष्म। अर्ह। कित। विशम्य। विशाला। गिरि। चमल। चुप। चुनम। दासक। बैल्व। धर्म। प्राच्य। आनडुह्य। पुंसिजात। अर्जुन। सुमनस्। दुर्मनस्। मनस। काण। चुम्प। वीक्ष्य। आत्रेय भारद्वाजे। कुत्स। आतव। कितव। वद। धन्य। शिव। खदिर। दधिर। भरद्वाजात्रेये। पथ। कन्थु। श्रुव। सूनु। कर्कटक। रुक्ष। तरुक्ष। तलुक्ष। प्रचुल। बिलम्ब। विष्णुजा॥ इत्यश्वादिगणः॥ ११०॥

भाषार्थ—यहाँ 'गोत्रे' पद की अनुवृत्ति है। और 'आङ्गिरसे' पद निवृत्त हो गया है। इस अश्वादिगण में जो प्रत्ययान्त प्रातिपदिक पढ़े हैं, उनसे युवापत्य में और अन्यों से गोत्रापत्य में प्रत्यय होता है। समर्थों में प्रथम षष्ठी समर्थ अश्वादि प्रातिपदिकों से गोत्रापत्य अर्थ में विकल्प से 'फञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—अश्वस्य गोत्रापत्यम् आश्वायनः। आश्मायनः। इत्यादि॥ यहाँ 'गोत्रे' ग्रहण इसलिए है कि—अश्वस्यानन्तरापत्यम् आश्विः। यहाँ 'फञ्' न होवे।

यहाँ विकल्प से महाविभाषा का ग्रहण है। उससे पक्ष में वाक्य का भी प्रयोग होता है॥ ११०॥

भर्गात् त्रैगर्त्ते॥ १११॥

गोत्र इत्यनुवर्त्तते। भर्गात् —५।१। त्रैगर्त्ते —७।१। समर्थानां प्रथमात् षष्ठीसमर्थाद् भर्गप्रातिपदिकात् त्रैगर्त्ते गोत्रापत्ये विकल्पेन फञ् प्रत्ययो भवति। भर्गस्य गोत्रापत्यं भार्गायणस्त्रैगर्त्तश्चेत्। त्रैगर्त्त इति किमर्थम्। भार्गिः॥ १११॥

भाषार्थ—यहाँ 'गोत्रे' की अनुवृत्ति है। समर्थों में प्रथम षष्ठी समर्थ 'भर्ग' प्रातिपदिक से त्रैगर्त्त गोत्रापत्य अर्थ में विकल्प से 'फञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—भर्गस्य गोत्रापत्यं भार्गायणस्त्रैगर्त्तः। 'त्रैगर्त्ते' का ग्रहण इसलिए है कि त्रिगर्त्त गोत्र से अन्यत्र 'फञ्' न हो—भार्गिः। यहाँ 'इञ्' प्रत्यय ही हो॥ १११॥

शिवादिभ्योऽण्॥ ११२॥

गोत्र इति निवृत्तम्। शिवादिभ्यः —५।३। अण् —१।१। समर्थानां प्रथमेभ्यः षष्ठीसमर्थेभ्यः शिवादिभ्यो गणप्रातिपदिकेभ्यः सामान्यापत्ये विकल्पेनाण् प्रत्ययो भवति। शिवस्यापत्यं शैवः। प्रौष्ठः। शिवादिभ्यः

प्रातिपदिकेभ्यो यथासम्भवं प्राप्ता इञादयः प्रत्यया बाध्यन्ते। यानि प्रातिपदिकानि शिवादिषु पठ्यन्तेऽन्यगणेऽपि तेभ्यो विधानसामर्थ्याद् द्वौ वा त्रयो वा प्रत्यया भवन्ति। यथा गङ्गाशब्दः शिवादिषु तिकादिषु च पठ्यते। विधानसामर्थ्यादुभौ भवतः। गाङ्गः। गाङ्गायनिः। प्राग्दीव्यतोऽणिति सूत्रेणाण एवाधिकारः कृतः शिवादिभ्य इत्युच्यमानेऽधिकारादणेव स्यात् पुनरण् ग्रहणस्यैतत् प्रयोजनम्—ऋषिषेणशब्दः शिवादिषु पठ्यते। तस्मात् सेनान्ताण्ण्यः प्राप्तः। उदीचामिञ् इतीञ् प्राप्तः। तौ द्वावपि बाधित्वाणेव यथा स्यात्। असत्यण्ग्रहणे पुरस्तादपवादन्यायेन ण्यप्रत्ययस्यैव बाधनं स्यात्। परत्वाद् विधानसामर्थ्याद् उदीचां मते इञ् स्यादेव। पुनरण्-ग्रहणाद् उदीचां मतेऽप्यणेव भवति॥

अथ शिवादयः—शिव। प्रोष्ठ। प्रोष्ठिक। चणु। चण्ड। जम्भ। भण्डा। मुनि। सन्धि। भूरि। दण्ड। ककुभ। कुठार। भ्रम। अनभिम्लान। कोहित। सुख। ककुत्स्थ। कहोड। कोहड। कहूय। कहय। रोध। कुपिञ्जल। खंजन। वतण्ड। तृण। कर्ण। क्षीर। ह्रद। जलह्रद। परिल। पषिक। पार्षिका। पिष्ट। हेहय। खंजार। खंजाल। सुरोहिका। पर्ण। कहूष। परिषिक। जटिलिक। गोफिलिक। कपिलिक। बधिरिका। मंजीरक। वृष्णिक। खंजरि। कर्मार। रेख। लेख। आलेखन। विश्रवण। रवण। वर्त्तनाक्ष। ग्रीवाक्ष। विटप। पिटक। पिटाक। तृक्षाक। ऋक्षाक। नभाक। ऊर्णनाभ। जरत्कारु॥ पृथा उत्क्षेपे॥ पुरोहितिका। सरोहितिका। सुरोहितिका। उत्क्षिप। रोहितिक। आर्य्य। श्वेत। सुपिष्ट। खर्जूरकर्ण। मसूरकर्ण। तूनकर्ण। मयूरकर्ण। खडरक। तक्षन्। ऋषिषेण। गङ्गा। विपाशा। यस्क। लह्य। द्रुह्य। अयःस्थूण। तृणकर्ण। पर्ण। भलन्दन। विरूपाक्ष। भूमि। इला। सपत्नी। द्व्यचो नद्याः॥ नदीसंज्ञकाद् द्व्यच्प्रातिपदिकाड्ढक् प्राप्तः स बाध्यते॥ त्रिवेणी त्रिवणं च॥ त्रिवेणीशब्दो नदीनामकस्तस्मादण् प्राप्तः स बाध्यते। कबोध। परल। ग्रीवाक्ष। गोभिलिक। राजल। तडाक। वडाक॥ इति शिवादयः॥ ११२॥

भाषार्थ—यहाँ 'गोत्रे' की अनुवृत्ति नहीं है। समर्थों में प्रथम षष्ठी समर्थ गणपठित शिवादि प्रातिपदिकों से सामान्य अपत्य अर्थ में विकल्प से 'अण्' प्रत्यय होता है। जैसे—शिवस्यापत्यं शैवः। प्रौष्ठः। शिवादि प्रातिपदिकों से जो इञादि प्रत्यय प्राप्त होते हैं, उनका यह अपवाद है, और जो शब्द शिवादिगण में तथा दूसरे गणों में भी पढ़े हैं, उनसे विधानसामर्थ्य से यथाप्राप्त दोनों अथवा तीनों प्रत्यय भी होते हैं। जैसे—गङ्गा शब्द शिवादि और तिकादिगण में पढ़ा है, अतः उससे दोनों प्रत्यय होते हैं—गाङ्गः। गाङ्गायनिः।

इस सूत्र में अण् का ग्रहण क्यों किया? जबकि 'प्राग्दीव्यतोऽण्' (४।१।८३) सूत्र से अण् का अधिकार किया है। यदि 'शिवादिभ्यः' इतना ही सूत्र बनाते तो अधिकार प्राप्त 'अण्' ही होता, फिर 'अण्' ग्रहण करने का प्रयोजन यह है—यह बाधकों का भी बाधक है। जैसे शिवादिगण में ऋषिषेण शब्द पढ़ा है, उससे सेनान्त होने से 'ण्य' प्राप्त है। और 'उदीचामिञ्' (४।१।१५३) सूत्र से 'इञ्'

प्राप्त है। उन दोनों ही प्रत्ययों का बाधन होकर 'अण्' प्रत्यय ही हो, इसलिए सूत्र में 'अण्' का ग्रहण किया है। यदि 'अण्' का ग्रहण नहीं करते तो 'पुरस्तादपवादा अनन्तरान् विधीन् बाधन्ते नोत्तरान्' इस न्याय से यह 'अण्' 'ण्य' का ही बाधक होता, उत्तरदेशीय आचार्यों के मत से प्राप्त 'इञ्' का नहीं। यहाँ फिर 'अण्' के ग्रहण करने से उनके मत में भी 'अण्' ही होता है॥ ११२॥

अवृद्धाभ्यो नदीमानुषीभ्यस्तन्नामिकाभ्यः॥ ११३॥

अण्ग्रहणमनुवर्त्तते। अवृद्धाभ्यः —५।३। नदीमानुषीभ्यः —५।३। तन्नामिकाभ्यः —५।३। वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद्वृद्धम्। तस्माद् वृद्धादितराभ्यः। नदीशब्देनात्र संज्ञाया ग्रहणं नास्ति किन्तु तद्वाचिनामेव। समर्थानां प्रथमानि षष्ठीसमर्थानि नदीनां मानुषीणां मनुष्य-स्त्रीणां यानि नामधेयानि तेभ्योऽपत्यसामान्ये विकल्पेनाण् प्रत्ययो भवति। स्त्रीभ्यः सामान्येन ढक् प्राप्तस्तस्यायमपवादः। यमुनाया अपत्यं यामुनः। इरावत्या अपत्यमैरावतः। वीरणावत्या अपत्यं वैरणावतः। पौष्करावतः। मानुषीनामिकाभ्यः— देवदत्ताया अपत्यं दैवदत्तः। सात्यभामः। याशोदः। गौमतः। अवृद्धाभ्य इति किम्। भागीरथ्या अपत्यं भागीरथेयः। द्रौपद्या अपत्यं द्रौपदेयः। वासवदत्ता काचिन्मनुष्यस्त्री तस्या अपत्यं वासवदत्तेयः। नारायणेयः। नदीमानुषीभ्य इति किम्। सौपर्णेयः। वैनतेयः। तन्नामिकाभ्य इति किम्। सुलोचनाया अपत्यं सौलोचनेयः। अत्र यानि द्व्यच्कानि नदीमानुषीवाचीनि प्रातिपदिकानि तत्र 'द्व्यच' इति ढकि प्राप्ते 'द्व्यचो नद्या' इति नदीवाचिभ्यस्तु ढकोऽपवादः शिवादित्वादणेव भवति। मानुषीवाचिभ्यो द्व्यच्केभ्यस्तन्नामिकाणं बाधित्वा ढग् भवत्येव॥ ११३॥

भावार्थ—यहाँ अण् प्रत्यय की अनुवृत्ति है। वृद्ध संज्ञा 'वृद्धिर्यस्या०' (१।१।७३) सूत्र से ही है, उससे भिन्न अवृद्ध हैं। नदी शब्द से यहाँ नदी संज्ञा का ग्रहण नहीं है, किन्तु नदी के पर्यायवाचियों का ही ग्रहण है। समर्थों में प्रथम षष्ठी समर्थ अवृद्ध=जो वृद्ध संज्ञक नहीं है, उन नदी नामों और मनुष्य-स्त्री के नाम शब्दों से अपत्य सामान्य अर्थ में विकल्प से 'अण्' प्रत्यय होता है। स्त्रीवाचक शब्दों से 'स्त्रीभ्यो ढक्' (४।१।१२०) सूत्र से सामान्य 'ढक्' प्रत्यय प्राप्त है, यह उसका अपवाद है। जैसे—यमुनाया अपत्यं यामुनः। इरावत्या अपत्यमैरावतः। वीरणावत्या अपत्यं वैरणावतः। पौष्करावतः। मनुष्यस्त्री—देवदत्ताया अपत्यं दैवदत्तः। सात्यभामः। याशोदः। गौमतः। यहाँ 'अवृद्धाभ्यः' इसलिए ग्रहण किया है—भागीरथ्या अपत्यं भागीरथेयः। द्रौपद्या अपत्यं द्रौपदेयः। वासवदत्ता कोई मनुष्य-स्त्री है। वासवदत्ताया अपत्यं वासवदत्तेयः। नारायणेयः। और 'नदीमानुषीभ्यः' का ग्रहण इसलिए है कि—सौपर्णेयः। वैनतेयः। यहाँ 'अण्' न हो। 'तन्नामिकाभ्यः' का ग्रहण इसलिए है कि सुलोचनाया अपत्यं सौलोचनेयः, यहाँ 'अण्' न हो। यहाँ यह भी ध्यान रखना है कि जो प्रातिपदिक दो अच् वाले हैं, और नदी नाम तथा मनुष्य-स्त्री-वाचक भी हैं, उनसे 'द्व्यचः' (४।१।१२१) सूत्र पर विप्रतिषेध

से 'ढक्' प्रत्यय होना चाहिए। किन्तु शिवादिगण में 'द्व्यचो नद्याः' (४।१।११२) इस विशेष वचन से 'ढक्' का अपवाद अण् प्रत्यय ही होता है। और मानुष-स्त्रीवाची द्व्यच् शब्दों से तो परत्व से 'ढक्' ही होता है।

ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च॥ ११४॥

अणित्यनुवर्त्तते। ऋष्य.....कुरुभ्यः —५।३। च। अ०। ऋष्यादयः शब्दाः सामान्यवाचिन एषां विशेषवाचिनां चात्रग्रहणम्। ऋषि, अन्धक, वृष्णि, कुरु, इत्येतद्वाचिभ्यः समर्थानां प्रथमेभ्यः षष्ठीसमर्थेभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽपत्यसामान्ये विकल्पेनाण् प्रत्ययो भवति। ऋषिः—वसिष्ठस्यापत्यं वासिष्ठः। वैश्वामित्रः। अन्धकेभ्यः—श्वफल्कस्यापत्यं श्वाफल्कः। चैत्रकः। रान्धसः। वृष्णिभ्यः—वसुदेवस्यापत्यं वासुदेवः। बालदेवः। कुरुभ्यः—नकुलस्यापत्यं नाकुलः। साहदेवः। युधिष्ठिरार्जुनशब्दौ बाह्वादिषु पठितौ तत्राणबाधक इञ् प्रत्ययो भवति। जातसेनो नाम ऋषिः। उग्रसेन नामान्धकः। विष्वक्सेनो नाम वृष्णिः। भीमसेनो नाम कुरुः। इति चतुर्भ्यः सेनान्तप्रातिपदिकेभ्योऽनेन सूत्रेणाण् प्राप्नोति। विप्रतिषेधे परं कार्यमिति सेनान्तलक्षणो ण्य प्रत्ययो भवति विप्रतिषेधेन। जातसेन्यः। औग्रसेन्यः। वैष्वक्सेन्यः। भैमसेन्यः। सेनान्तलक्षणकारिभ्यश्चेति ण्यः प्रत्ययः॥ ११४॥

भाषार्थ—यहाँ 'अण्' की अनुवृत्ति है। सूत्रोक्त ऋषि आदि शब्द सामान्य वाची हैं, इस सूत्र में इनके विशेष वाचियों से प्रत्यय होता है। समर्थों में प्रथम षष्ठी समर्थ ऋषि, अन्धक, वृष्णि, कुरु, इनके विशेषवाचि प्रातिपदिकों से अपत्य सामान्य अर्थ में विकल्प से 'अण्' प्रत्यय होता है। जैसे—ऋषिवाची—वसिष्ठस्यापत्यं वासिष्ठः। वैश्वामित्रः। अन्धक—श्वफल्कस्यापत्यं श्वाफल्कः। चैत्रकः। रान्धसः। वृष्णि—वसुदेवस्यापत्यं वासुदेवः। बालदेवः। कुरु—नकुलस्यापत्यं नाकुलः। साहदेवः।

युधिष्ठिर और अर्जुन शब्द बाह्वादिगण में पढ़े हैं, अतः 'अण्' का बाधक 'इञ्' प्रत्यय होता है। जातसेन नामक ऋषिवाची से, उग्रसेन नामक अन्धकवाची से, विष्वक्सेन नाम वृष्णिवाची से और भीमसेन नामक कुरुवाची से सेनान्त प्रातिपदिकों से इस सूत्र से 'अण्' तथा सेनान्त लक्षण 'ण्य' प्रत्यय प्राप्त है। विप्रतिषेधे परं कार्यम् (१।४।२) इस नियम से सेनान्तलक्षण 'ण्य' प्रत्यय ही होता है। जैसे—जातसेन्यः। औग्रसेन्यः। वैष्वक्सेन्यः। भैमसेन्यः। इनमें 'सेनान्तलक्षण-कारिभ्यश्च' (४।१।१५२) सूत्र से 'ण्य' प्रत्यय हुआ है॥ ११४॥

मातुरुत्संख्यासम्भद्रपूर्वायाः॥ ११५॥

मातुः —५।१। उत् —१।१। संख्यासम्भद्रपूर्वायाः —५।१। मातृ-शब्दादौत्सर्गिकोऽण् सिद्ध एव पुनर्वचनमुकारादेशार्थं संख्यासंभद्रपूर्वादिति नियमार्थं च। समर्थानां प्रथमात् षष्ठीसमर्थात् संख्या, सम्, भद्र, इति शब्दत्रयपूर्वान् मातृशब्दादपत्यसामान्ये विकल्पेनाण् प्रत्ययो भवति।

द्वयोर्मात्रोरपत्यं द्वैमातुरः। षाण्मातुरः। सम्पूर्वात्—साम्मातुरः। भाद्रमातुरः। संख्या सम्भद्रपूर्वाया इति स्त्रीलिङ्गविशेषणत्वात् सम्बन्धशब्दस्यैव ग्रहणम्। तेनेह न भवति—धान्यसंमातुरपत्यं धान्यसंमात्रः। संख्यासम्भद्रपूर्वाया इति किम्। सौमात्रः॥ ११५॥

भाषार्थ—'मातृ' शब्द से सामान्य 'अण्' सिद्ध ही था, फिर यहाँ विधान उकारादेश करने और संख्या संभद्रपूर्वक प्रत्यय हों, इस नियम के लिए हैं। समर्थों में प्रथम षष्ठी समर्थ संख्यावाची, सम् और भद्र, ये तीन शब्द जिससे पूर्व हों, उस मातृ प्रातिपदिक से अपत्य सामान्य अर्थ में विकल्प से 'अण्' प्रत्यय होता है। जैसे—द्वयोर्मात्रोरपत्यं द्वैमातुरः। षाण्मातुरः। सम्पूर्वक—साम्मातुरः। भद्रपूर्वक—भाद्रमातुरः। यहाँ 'संख्यासंभद्रपूर्वायाः' का स्त्रीलिङ्ग मातृशब्द का विशेषण होने से यहाँ सम्बन्धवाचक मातृ शब्द का ही ग्रहण है, इसलिए सम्बन्धवाचक न होने से यहाँ प्रत्यय नहीं होता—धान्यसंमातुरपत्यं धान्यसंमात्रः। 'संख्यासंभद्रपूर्वायाः' का ग्रहण इसलिए है कि—सौमात्रः। यहाँ केवल सामान्य 'अण्' ही हो॥ ११५॥

कन्यायाः कनीन च॥ ११६॥

कन्यायाः —५।१। कनीन —१।१। च [अ०]।भा०—या चेदानीं प्रागभिसम्बन्धात् पुंसा सह सम्प्रयोगं गच्छति तस्यां कन्या शब्दो वर्त्तते। कन्यायाः कन्योक्तायाः कन्याभिमतायाः सुदर्शनाया यदपत्यं स कानीन इति।' प्रागभिसम्बन्धाद् विधिपूर्वकेण ब्राह्मादिविवाहेन विनैव पुरुषेण सह व्यभिचारं कृत्वा पुत्रमुत्पादयति तस्यां कन्या शब्दो वर्त्तते। समर्थानां प्रथमात् षष्ठीसमर्थात् कन्या प्रातिपदिकादपत्यसामान्ये विकल्पेनाण् प्रत्ययो भवति। अणि परतः कन्याशब्दस्य कनीनादेशश्च। कन्याया अपत्यं कानीनः॥ ११६॥

भाषार्थ—जिसका विवाह न हुआ हो, उसको कन्या कहते हैं, उसका अपत्य कैसे सम्भव है? इसका समाधान महाभाष्य में यह लिखा है—जो विवाह होने से पूर्व ही किसी पुरुष के साथ व्यभिचार से गर्भधारण कर लेवे, उसके अर्थ में यह कन्या शब्द है। उस कन्या शब्द से व्यवहृत विवाह से पूर्व किसी पुरुष से सम्पर्क करनेवाली सुदर्शना (जिसका भेद छिपा न रहा हो) का जो अपत्य है, वह कानीन कहलाता है। विधिपूर्वक ब्राह्मादि विवाह के विना ही पुरुष के साथ व्यभिचार करके जो सन्तान उत्पन्न करती है, उसके लिए यहाँ कन्या शब्द का प्रयोग हुआ है। समर्थों में प्रथम षष्ठी समर्थ 'कन्या' प्रातिपदिक से अपत्यसामान्य अर्थ में विकल्प से अण् प्रत्यय होता है। और प्रत्यय संनियोग से 'कन्या' शब्द को कनीन आदेश होता है। जैसे—कन्याया अपत्यं कानीनः॥ ११६॥

विकर्णशुङ्गच्छगलाद् वत्सभरद्वाजात्रिषु॥ ११७॥

विकर्ण.....गलात् —५।१। वत्स.....जात्रिषु —७।३। विकर्णादीना-मदन्तत्वादिञ् प्राप्तस्तस्यापवादः। समर्थानां प्रथमेभ्यः षष्ठीसमर्थेभ्यो विकर्ण, शुङ्ग, छगल, इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो वत्स, भरद्वाज, अत्रि, इत्येतेषामपत्येषु

यथासंख्यं विकल्पेनाण् प्रत्ययो भवति। विकर्णस्यापत्यं वैकर्णो वात्स्यः। वैकर्णिरित्यन्यत्र। शौङ्गो भारद्वाजश्चेत्। शौङ्गिरन्यत्र। छागल आत्रेयश्चेत्। छागलिरित्यन्यत्र॥ ११७॥

भाषार्थ—'विकर्ण' आदि शब्दों से अदन्त होने से 'इञ्' प्रत्यय होता है, यह उसका अपवाद है। समर्थों में प्रथम षष्ठी समर्थ विकर्ण, शुङ्ग, छगल, इन प्रातिपदिकों से यथासंख्य करके वत्स, भरद्वाज, अत्रि, अपत्य अर्थों में विकल्प से 'अण्' प्रत्यय होता है। जैसे—विकर्णस्यापत्यं वैकर्णो वात्स्यः। वत्स से अन्यत्र-वैकर्णिः। शौङ्गो भारद्वाजः। भरद्वाज से अन्यत्र शौङ्गिः। छागल आत्रेयः। अत्रि से अन्यत्र—छागलिः। यहाँ सर्वत्र पक्ष में 'इञ्' प्रत्यय हुआ है॥ ११७॥

पीलाया वा॥ ११८॥

पीलायाः —५।१।वा [अ०]। अप्राप्तभिभाषेयम्। पीलाशब्दो मानुषी-तन्नामकः। तस्मात्तन्नामिकाणोऽपवादो द्व्यच इति ढक् प्राप्तस्तस्याप्वादोऽण् विकल्प्यते। समर्थानां प्रथमात् षष्ठीसमर्थात् पीलाशब्दादपत्यसामान्ये विकल्पेनाण् प्रत्ययो भवति। महाविभाषाऽनुवर्तते तया वाक्यमपि भवति। पीलाया अपत्यं पैलः। पैलेयः॥ ११८॥

भाषार्थ—यह अप्राप्तविभाषा है। पीला शब्द मनुष्य-स्त्री नाम होने से 'अण्' प्राप्त है और उसका अपवाद 'द्व्यचः' (४।१।१२१) सूत्र से 'ढक्' प्राप्त है, यह उसका अपवाद 'अण्' का वैकल्पिक विधान करता है। समर्थों में प्रथम षष्ठी समर्थ 'पीला' प्रातिपदिक से अपत्यसामान्य अर्थ में विकल्प से 'अण्' प्रत्यय होता है। महाविभाषा का अधिकार है, उससे वाक्य भी होता है। जैसे—पीलाया अपत्यं पैलः। पक्ष में ढक्—पैलेयः॥ ११८॥

ढक् च मण्डूकात्॥ ११९॥

अण् वेत्यनुवर्त्तते। ढक् —१।१। च [अ०]। मण्डूकात् —५।१। समर्थानां प्रथमात् षष्ठीसमर्थान् मण्डूकप्रातिपदिकाड् ढक् प्रत्ययश्चकारग्रहणाद् विकल्पेनाण् प्रत्ययः [अपत्यसामान्ये] पक्षेऽदन्तत्वादिञ् च भवति। महा-विभाषाऽनुवर्त्तते तया वाक्यमपि। मण्डूकस्यापत्यं माण्डूकेयः। माण्डूकः। माण्डूकिः। अनुवृत्त्याऽणो विकल्पत्वाद् रूपचतुष्टयम्॥ ११९॥

भाषार्थ—यहाँ 'अण् वा' पदों की अनुवृत्ति है। समर्थों में प्रथम षष्ठी समर्थ मण्डूक प्रातिपदिक से अपत्यसामन्य अर्थ में 'ढक्' प्रत्यय होता है और चकार से विकल्प से 'अण्' प्रत्यय होता है। पक्ष में अदन्त होने से 'इञ्' प्रत्यय होता है। महाविभाषा की अनुवृत्ति होने से वाक्य भी होता है। जैसे—मण्डूकस्यापत्यं माण्डूकेयः। माण्डूकः। माण्डूकिः। अनुवृत्ति से 'अण्' का विकल्प होने से [वाक्यसहित] चार रूप होते हैं॥ ११९॥

स्त्रीभ्यो ढक्॥ १२०॥

स्त्रीभ्यः —५।३। ढक् —१।१। स्त्रीग्रहणेन स्त्र्यधिकारविहितानां

टाबादीनां ग्रहणम्। ढगित्यनुवर्त्तमाने पुनर्ढग्ग्रहणमण्निवृत्त्यर्थम्। समर्थानां प्रथमेभ्यः षष्ठीसमर्थेभ्यः स्त्रीप्रत्ययान्तेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो विकल्पेनापत्यसामान्ये ढक् प्रत्ययो भवति। वासवदत्तेयः। नारायणेयः। जानकेयः। द्रौपदेयः। कैकेयः। गार्गेयः। वात्सेयः। स्त्रीप्रत्ययग्रहणं किम्। इह मा भूत्। उशिक्। औशिजः। दरद्। दारदः। इत्यादयोऽपि शब्दाः स्त्रीलिङ्गाः।

का०— वडवायावृषे वाच्येऽण् क्रुञ्चा कोकिलात् स्मृतः।
आरक् पुंसि ततोऽन्यत्र गोधाया ढ्रग् विधौ स्मृतः॥ १॥

वृषे बीजवति यूनि यौवनावस्थास्थितेऽश्वापत्येऽभिधेये वडवाशब्दाड्ढक् प्रत्ययो भवति। वाडवेयो बीजाश्वः। सामान्यापत्ये वडवाशब्दादणेव। वाडवः। क्रुञ्चा-कोकिलाशब्दाभ्यां स्त्रीभ्यां स्त्रीभ्यो ढक् प्राप्तस्तत्राण् विधीयते। क्रौञ्चः। कौकिलः। ततः क्रुञ्चाकोकिलाशब्दाभ्यामन्यत्र शब्दान्तरेभ्यः स्त्री प्रत्ययान्तेभ्यः पुंस्यभिधेये आरक् प्रत्ययो भवति। मूषिकाया अपत्यं पुमान् मौषिकारः। मृग्याः पुमान् मार्गारः । पुंसीति किम्। मौषिकेयी। मार्गेयी। गोधाशब्दाड् ढ्रक् प्रत्ययो विधावष्टाध्याय्यां स्मृतः। पुनः कथनं पुंस्यपत्ये यथा स्यात्। गोधायाः पुमान् गौधेरः। इह मा भूत्—गौधेयी॥ १॥ १२०॥

भाषार्थ—यहाँ 'स्त्री' शब्द से स्त्री-अधिकार में विहित 'टाप्' आदि प्रत्ययों का ग्रहण है और ढक् की पूर्वसूत्र से अनुवृत्ति होने पर भी दुबारा 'ढक्' का ग्रहण 'अण्' प्रत्यय की निवृत्ति के लिए है। समर्थों में प्रथम षष्ठी समर्थ स्त्री प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से अपत्य सामान्य में विकल्प से 'ढक्' प्रत्यय होता है। जैसे—वासवदत्ताया अपत्यं वासवदत्तेयः। नारायणेयः। जानकेयः। द्रौपदेयः। कैकेयः। गार्गेयः। वात्सेयः। स्त्री प्रत्यय का ग्रहण इसलिए किया है कि यहाँ 'ढक्' प्रत्यय न हो—उशिक्—औशिजः। दरद्—दारदः। इत्यादि शब्द स्त्रीलिंग हैं, स्त्री प्रत्ययान्त नहीं, उनसे सामान्य अण् ही होवे।

का०— वडवाया वृषे वाच्येऽण् क्रुञ्चा कोकिलात् स्मृतः।
आरक् पुंसि ततोऽन्यत्र गोधाया ढ्रग् विधौ स्मृतः॥ १॥

वडवा प्रातिपदिक से वृष=बीजवाले=गर्भधारण कराने में समर्थ युवावस्था में स्थित अश्वापत्य अर्थ वाच्य हो तो 'ढक्' प्रत्यय होता है। जैसे—वडवाया अपत्यं वृषो वाडवेयो बीजाश्वः। सामान्यापत्य अर्थ में 'वडवा' से 'अण्' ही होता है—वाडवः। क्रुञ्चा, कोकिला शब्दों से 'स्त्रीभ्यो ढक्' (४।१।१२०) सूत्र से ढक् प्रत्यय प्राप्त है, उसके अपवाद 'अण्' का विधान किया है। जैसे—क्रुञ्चाया अपत्यं क्रौञ्चः। कौकिलः। और अन्यत्र=क्रुञ्चा-कोकिला शब्दों से भिन्न स्त्री प्रत्ययान्त शब्दों से पुल्लिंग अपत्य अर्थ में 'आरक्' प्रत्यय होता है। जैसे—मूषिकाया अपत्यं पुमान् मौषिकारः। मृग्याः पुमान् मार्गारः। पुंसि इसलिए पढा हैं जिससे यहाँ न हो—मौषिकेयी। मार्गेयी और गोधा शब्द से विधि=अष्टाध्यायी में 'ढ्रक्' कहा है। यद्यपि 'गोधाया ढ्रक्' (४।१।१२९) पृथक् सूत्र ही है, पुनरपि

यहाँ कथन का प्रयोजन यह है कि पुल्लिंग में 'ढ्रक्' प्रत्यय हो—गोधायाः पुमान् गौधेरः, और यहाँ न हो—गौधेयी॥१२०॥

द्व्यचः॥ १२१॥

स्त्रीभ्यो ढगित्यनुवर्त्तते। द्व्यचः —५।१। तन्नामिकाणोऽपवादार्थ आरम्भः। अन्यथा स्त्रीभ्यो ढगिति सिद्ध एव ढक्। स्त्री प्रत्ययान्तेभ्यः समर्थानां प्रथमेभ्यः षष्ठीसमर्थेभ्यो द्व्यच्कप्रातिपदिकेभ्यो विकल्पेनापत्यसामान्ये ढक् प्रत्ययो भवति। दत्ताया अपत्यं दात्तेयः। गौप्तेयः दौर्गेयः। सीतेयः। कौन्तेयः। नदीनामिकाभ्यस्तु शिवादित्वादणेव तल्लिखितम्॥१२१॥

भाषार्थ—यहाँ 'स्त्रीभ्यो ढक्' सूत्र की अनुवृत्ति है। नदी और मानुषी-स्त्री नामों से जो 'अण्' प्रत्यय प्राप्त है, उसका यह अपवाद है। अन्यथा 'स्त्रीभ्यो ढक्' (४।१।१२८) से प्रत्यय सिद्ध था। समर्थों में प्रथम षष्ठी समर्थ स्त्री-प्रत्ययान्त द्व्यच्वाले प्रातिपदिकों से अपत्यसामान्य अर्थ में विकल्प से 'ढक्' प्रत्यय होता है। जैसे—दत्ताया अपत्यं दात्तेयः। गौप्तेयः। दौर्गेयः। सीतेयः। कौन्तेयः। द्व्यच् नदी नामों से तो शिवादिगण में पाठ होने से 'अण्' ही होता है, यह पहले लिखा गया है॥१२१॥

इतश्चानिञः॥ १२२॥

स्त्रीभ्य इति निवृत्तम्। द्व्यच् इत्यनुवर्त्तते। इतः —५।१। च [अ०] अनिञः —५।१। समर्थानां प्रथमात् षष्ठीसमर्थादनिञन्ताद् इकारान्तात् प्रातिपदिकादपत्यसामान्ये विकल्पेन ढक् प्रत्ययो भवति। दुलि—दुलेरपत्यं दौलेयः। वलि-वालेयः। अत्रि-आत्रेयः॥१२२॥

भाषार्थ—यहाँ 'स्त्रीभ्यः' पद की अनुवृत्ति नहीं है, 'द्व्यचः' की है। समर्थों में प्रथम षष्ठी समर्थ इञ् प्रत्यय से भिन्न इकारान्त प्रातिपदिकों से अपत्यसामान्य अर्थ में विकल्प से ढक् प्रत्यय होता है। जैसे—दुलि-दुलेरपत्यं दौलेयः। वलि-वालेयः। अत्रि आत्रेयः॥१२२॥

शुभ्रादिभ्यश्च॥ १२३॥

शुभ्रादिभ्यः —५।३। च [अ०] यथासंभवप्राप्ते इञादीनामपवादः। समर्थानां प्रथमेभ्यः षष्ठीसमर्थेभ्यः शुभ्रादिप्रातिपदिकेभ्योऽपत्यसामान्ये विकल्पेन ढक् प्रत्ययो भवति। शुभ्रस्यापत्यं शौभ्रेयः। वैष्टपुरेयः॥

अथ शुभ्रादयः—शुभ्र। विष्टपुर। ब्रह्मकृत। शतद्वार। शतावर। शलाथल। शलाका। शलाचल। शलाकाभ्रू। लेखाभ्रू। विमातृ। विधवा। विकसा। कृकसा। रोहिणी। रुक्मिणी। धर्मिणी। दिशा। शालूक। अजवस्ति। शकन्धि। शुक। विश। देव। तर। शकुनि। शुक्र। उग्र। शातल। बन्धकी। सृकण्डू। विश्रि। अतिथि। गोदन्त। कुशाम्ब। मकष्ट। शताहर। शान्ताहर। यवष्ठुरिक। सुनामन्॥ लक्षण-श्यामयोर्वासिष्ठे॥ गोधा। कृकलास। अणीव। प्रवाहण। भरत। भारत। मोरम। मृकण्डू। मघष्टु। मकष्टु। कर्पूर। इतर। अन्यतर। आलीढ।

सुदत्त। सुदक्ष। सुचक्षस्। सुवक्षस्। सुदामन्। कद्रु। कटु। तुद। अकशाप। कुमारिका। कुठारिका। किशोरिका। अम्बिका। जिह्वाशिन्। परिधि। वायुदत्त। शकल। ककल। शलाका। खद्वर। कुबेरिका। कुणिका। अशोक। गन्धपिङ्गला। शुद्धपिङ्गला खडोन्मत्ता। अनुदृष्टि। जरतिन्। बलीवर्दिन्। विग्रज। बीज। जीव। श्वन्। अश्मन्। अश्व। अजिर। स्थूल। मकथु। यमष्ठु। कष्ठु। सृकण्ड। मृकण्ड। गुद। रुद। कुशेरिका। शबल। उग्र। अजिन॥ इति शुभ्रादयः॥ १२३॥

भाषार्थ—यह सूत्र यथाप्राप्त इञादि प्रत्ययों का अपवाद है। समर्थों में प्रथम षष्ठीसमर्थ शुभ्रादि प्रातिपदिकों से अपत्य सामान्य अर्थ में विकल्प से 'ढक्' प्रत्यय होता हैं। जैसे—शुभ्रस्यापत्यं शौभ्रेयः। वैष्टपुरेयः, इत्यादि ॥१२३॥

विकर्ण-कुषीतकात् काश्यपे॥ १२४॥

विकर्णकुषीतकात् —५।१। काश्यपे —७।१। समर्थानां प्रथमाभ्यां षष्ठीसमर्थाभ्यां विकर्ण-कुषीतकप्रातिपदिकाभ्यां काश्यपेऽपत्यविशेषे विकल्पेन ढक् प्रत्ययो भवति। विकर्णस्यापत्यं वैकर्णेयः काश्यपः। कौषीतकेयः काश्यपः। काश्यप इति किमर्थम्। वैकर्णिः। कौषीतकिः। अदन्तत्वादिञ् भवति॥ १२४॥

भाषार्थ—समर्थों में प्रथम षष्ठी समर्थ विकर्ण, कुषीतक प्रातिपदिकों से काश्यप अपत्य विशेष अर्थ में विकल्प से 'ढक्' प्रत्यय होता है। जैसे—विकर्णस्यापत्यं वैकर्णेयः काश्यपः। कौषीतकेयः काश्यपः। यहाँ 'काश्यपे' ग्रहण इसलिये है कि काश्यप से अन्यत्र 'ढक्' न होने। जैसे—वैकर्णिः। कौषीतकिः। यहाँ अदन्त होने से 'इञ्' प्रत्यय होवे॥१२४॥

भ्रुवो वुक् च॥ १२५॥

ढगनुवर्त्तते। भ्रुवः —५।१। वुक् —१।१। च [अ०] समर्थानां प्रथमात् षष्ठीसमर्थाद् भ्रूप्रातिपदिकादपत्यसामान्ये विकल्पेन ढक् प्रत्ययो भवति। ढकि परतो भ्रूशब्दस्य वुगागमश्च। भ्रौवेयः। कस्याश्चित् स्त्रिया एतन्नाम न तु नेत्रावयवस्य॥ १२५॥

भाषार्थ—यहाँ ढक् प्रत्यय की अनुवृत्ति है। समर्थों में प्रथम षष्ठी समर्थ भ्रू प्रातिपदिक से अपत्यसामान्य अर्थ में विकल्प से 'ढक्' प्रत्यय होता है और 'ढक्' के सन्नियोग से 'भ्रू' शब्द को 'वुक्' का आगम होवे। जैसे—भ्रुवोऽपत्यं भ्रौवेयः। यह भ्रू किसी स्त्री का नाम है, नेत्र के अवयव का नहीं॥१२५॥

कल्याण्यादीनामिनङ्॥ १२६॥

कल्याण्यादीनाम् —६।३। इनङ् —१।१। समर्थानां प्रथमेभ्यः षष्ठीसमर्थेभ्यः कल्याण्यादिप्रातिपदिकेभ्योऽपत्यसामान्ये विकल्पेन ढक् प्रत्ययो भवति। [तत्संनियोगेन च इनङादेशः] कल्याण्यादीनि प्रातिपदिकानि स्त्रीप्रत्ययान्तानि तेभ्यो ढकि सिद्धे इनङादेशार्थ आरम्भः। ङित्करण-मन्त्यादेशार्थम्। कल्याण्या अपत्यं काल्याणिनेयः। सौभागिनेयः। दौर्भागिनेयः।

हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य चेत्युभयपदवृद्धिः॥

अथ कल्याण्यादयः—कल्याणी। सुभगा। दुर्भगा। अनुदृष्टि। अनुसृष्टि। अनुसृति। जरती। बलीवर्दी। ज्येष्ठा। कनिष्ठा। मध्यमा। परस्त्री॥ इति कल्याण्यादयः॥ १२६॥

भाषार्थ—समर्थों में प्रथम षष्ठीसमर्थ कल्याणी आदि प्रातिपदिकों से अपत्य सामान्य अर्थ में विकल्प से 'ढक्' प्रत्यय होता है। और प्रत्यय संनियोग से कल्याणी आदि को 'इनङ्' आदेश होता है। ये गणपठित कल्याणी आदि शब्द स्त्रीप्रत्ययान्त हैं, अतः 'स्त्रीभ्यो ढक्' (४।१।१२०) सूत्र से ही 'ढक्' प्रत्यय प्राप्त है, फिर यह सूत्र 'इनङ्' आदेश करने के लिए है। 'इनङ्' में ङित् करण अन्त्य अल् को आदेश करने के लिए है। जैसे—कल्याण्या अपत्यं काल्याणिनेयः। सौभागिनेयः। दौर्भागिनेयः। यहाँ 'हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च' (७।३।१९) सूत्र से उभयपदवृद्धि हुई है॥ १२६॥

कुलटाया वा॥ १२७॥

इनङित्यनुवर्त्तते। कुलटायाः —५।१। वा [अ०]। अप्राप्तविभाषेयम्। इनङ् आदेशो विभाष्यते। समर्थानां प्रथमात् षष्ठीसमर्थात् कुलटाप्रातिपदिकाड् ढक् प्रत्ययो भवति। ढकि परतो विकल्पेनेनङादेशश्च भवति। कुलटाया अपत्यं कौलटिनेयः। कौलटेयः। कुलान्यटतीति कुलटा। शकन्ध्वादित्वात् पररूपम्॥ १२७॥

भाषार्थ—यहाँ इनङ् आदेश की अनुवृत्ति है। यह अप्राप्तविभाषा है। इस सूत्र से 'इनङ्' का विकल्प किया है। समर्थों में प्रथम षष्ठी समर्थ 'कुलटा' प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में 'ढक्' प्रत्यय होता है और प्रत्ययसंनियोग से विकल्प से 'इनङ्' आदेश होता है। जैसे—कुलटाया अपत्यं कौलटिनेयः। कौलटेयः। 'कुलटा' का अर्थ है जो कुलों में घूमती फिरती है, ऐसी चरित्रहीन स्त्री। 'कुलटा' शब्द में शकन्ध्वादि मानकर पररूप है॥ १२७॥

चटकाया ऐरक्॥ १२८॥

चटकायाः —५।१। ऐरक् —१।१। स्त्रीभ्यो ढक् प्राप्तस्तस्यापवादः। समर्थानां प्रथमात् षष्ठीसमर्थाच् चटका-शब्दाद् [अपत्यसामान्ये] ऐरक् प्रत्ययो भवति। चटकाया अपत्यं चाटकैरः॥

वा०—चटकायाः पुल्लिङ्गनिर्देशः॥ १॥

चटकस्यापत्यं चाटकैरः। सूत्रे पुल्लिङ्गनिर्देशः कर्तव्य इति वार्त्तिकाशयः। तेन प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणं भवतीति स्त्रीलिङ्गस्यापि भविष्यति॥ १॥

वा०—स्त्रियामपत्ये लुक्॥ २॥

चटकस्यापत्यं स्त्री चटका॥ १२८॥

भाषार्थ—यह सूत्र 'स्त्रीभ्यो ढक्' (४।१।१२०) सूत्र से प्राप्त 'ढक्' का

अपवाद है। समर्थों में प्रथम षष्ठी समर्थ चटका प्रातिपदिक से अपत्य सामान्य अर्थ में 'ऐरक्' प्रत्यय होता है। जैसे—चटकाया अपत्यं चाटकैरः।

वा०—चटकायाः पुल्लिङ्गनिर्देशः॥ १॥

इस सूत्र में पुल्लिंग का निर्देश करना चाहिए। इससे चटका की भाँति चटक शब्द से भी प्रत्यय होता है। जैसे—चटकस्यापत्यं चाटकैरः। और 'प्रातिपदिक के ग्रहण में लिंगविशिष्ट का भी, इस पारिभाषिक नियम से स्त्रीलिंग 'चटका' शब्द से भी प्रत्यय हो जायेगा॥ १॥

वा०—स्त्रियामपत्ये लुक्॥ २॥

और यदि स्त्रीलिंग अपत्य हो तो 'ऐरक्' प्रत्यय का लुक् हो जावे। जैसे—चटकाया अपत्यं स्त्री चटका॥ १२८॥

गोधाया: ढ्रक॥ १२९॥

गोधायाः —५।१। ढ्रक् —१।१। समर्थानां प्रथमात् षष्ठीसमर्थाद् गोधा प्रातिपदिकादपत्यसामान्ये ढ्रक प्रत्ययो भवति। गोधाया अपत्यं गौधेरः। पुंसि ढ्रग् भवतीति कारिकायामुक्तम्। तत्र वचनं चतुर्थपादपूर्त्त्यर्थम्॥ १२९॥

भाषार्थ—यह भी 'ढक्' का अपवाद है। समर्थों में प्रथम षष्ठी समर्थ 'गोधा' प्रातिपदिक से अपत्य सामान्य अर्थ में 'ढ्रक' प्रत्यय होता है। जैसे—गोधाया अपत्यं गौधेरः। 'स्त्रीभ्यो ढक्' (४।१।१२०) सूत्रस्थ कारिका में 'पुंसि ढ्रक्' होता है, यह कहा है। वहाँ यह वचन कारिका के चतुर्थ पाद की पूर्ति के लिए है॥ १२९॥

आरग् उदीचाम्॥ १३०॥

गोधाया इत्यनुवर्त्तते। आरक् —१।१। उदीचाम् —६।३। उदीचामाचार्याणां मते गोधाशब्दादपत्यसामान्ये आरक् प्रत्ययो भवति। गोधाया अपत्यं गौधारः। गोधाशब्द आकारान्तस्तस्माद् रकिकृते गौधार इति सिद्ध एव पुनरारग् ग्रहणेनैतज्ज्ञाप्यतेऽन्येभ्योऽप्ययं भवतीति। जडस्यापत्यं जाडारः। पाण्डारः। इत्यादि सिद्धं भवति॥ १३०॥

भाषार्थ—यहाँ 'गोधायाः' पद की अनुवृत्ति है। उदीच्य आचार्यों के मत में समर्थों में प्रथम षष्ठी समर्थ गोधा प्रातिपदिक से अपत्य सामान्य अर्थ में आरक् प्रत्यय होता है। जैसे—गोधाया अपत्यं गौधारः। गोधा शब्द आकारान्त है, उससे 'रक्' प्रत्यय करने से ''गौधारः'' प्रयोग सिद्धि हो जाती है, फिर आरक् प्रत्यय में गौरव होने से इस बात का ज्ञापक है कि यह 'गोधा' से भिन्न शब्दों से भी होता है। जैसे—जडस्यापत्यं जाडारः। पाण्डारः। इत्यादि॥ १३०॥

क्षुद्राभ्यो वा॥ १३१॥

ढ्रगनुवर्त्तते। आरङ् निवृत्तः। क्षुद्राभ्यः —५।३। वा [अ०]।

भा०—'का क्षुद्रा नाम। अनियतपुंस्का अङ्गविहीना वा॥'

अनियतपुंस्का वेष्याः। अङ्गहीना भिन्नावयवाः। चार्थे वा शब्दः। अनियतपुंस्का अङ्गहीना चेति। स्त्रीप्रत्ययान्तेभ्यो ढक् प्राप्तस्तस्यापवादः।

समर्थानां प्रथमेभ्यः षष्ठीसमर्थेभ्यः क्षुद्राभ्यः स्त्रीलिङ्गप्रातिपदिकेभ्योऽपत्य-सामान्ये विकल्पेन द्रक प्रत्ययो भवति। नाटेरः। दासेरः। काणिकेरः। पौणिकेरः। मौद्गलिकेरः। नाटेयः। दासेयः। काणिकेयः। पौणिकेयः। मौद्गलिकेयः। पक्षे ढग् भवति। अत एव द्रक्यप्राप्तविभाषा॥ १३१ ॥

भाषार्थ—यहाँ 'द्रक्' प्रत्यय की अनुवृत्ति है, आरक् की नहीं।

भा०—क्षुद्रा किसे कहते हैं? जिनके पुरुष निश्चित नहीं हैं वे चरित्रहीन वेष्या स्त्रियाँ और अङ्गहीन 'विकलाङ्ग' स्त्रियाँ क्षुद्रा कहलाती हैं। यहाँ 'वा' शब्द चार्थ में है। स्त्री प्रत्ययान्त होने से 'ढक्' प्रत्यय प्राप्त था, उसका यह अपवाद है। समर्थों में प्रथम षष्ठी समर्थ क्षुद्रावाची स्त्रीलिंग प्रातिपदिकों से अपत्य सामान्य अर्थ में 'द्रक्' प्रत्यय विकल्प से होता है, पक्ष में 'ढक्' होता है। जैसे—नाटेरः। दासेरः। काणिकेरः। पौणिकेरः। मौद्गलिकेरः। ढक्—नाटेयः। दासेयः। काणिकेयः। पौणिकेयः। मौद्गलिकेयः। इस सूत्र में ('द्रक्' प्रत्यय) अप्राप्तविभाषा है॥ १३१ ॥

पितृष्वसुश्छण्॥ १३२ ॥

पितृष्वसुः —५।१। छण् —१।१। अणोऽपवादः। पितुः स्वसा पितृष्वसा। समर्थानां प्रथमात् षष्ठीसमर्थात् पितृष्वसृप्रातिपदिकादपत्य-सामान्ये छण् प्रत्ययो भवति। पितृष्वसुरपत्यं पैतृष्वस्त्रीयः। सम्बन्धिशब्दस्यैवात्र ग्रहणम्॥ १३२ ॥

भाषार्थ—यह सूत्र 'अण्' प्रत्यय का बाधक है। पिता की बहन को 'पितृष्वसा' कहते हैं। समर्थों में प्रथम षष्ठीसमर्थ 'पितृष्वसृ' प्रातिपदिक से अपत्य सामान्य अर्थ में 'छण्' प्रत्यय होता है। जैसे—पितृष्वसुरपत्यं पैतृष्वस्त्रीयः। यहाँ 'पितृष्वसा शब्द से सम्बन्धी शब्द का ही ग्रहण होता है॥ १३२ ॥

ढकि लोपः॥ १३३ ॥

पितृष्वसुरित्यनुवर्त्तते। ढकि —७।१। लोपः —१।१। पितृष्वसृशब्दस्य ढकि परतो लोपो भवति। अलोऽन्त्यस्येति ऋकारो लुप्यते। पितृष्वसुरपत्यं पैतृष्वसेयः। केन विहिते ढकि लोप उच्यते। ढकि लोपवचनं ज्ञापकमनेनैव पितृष्वसृ-शब्दाड्ढग्भवतीति॥ १३३ ॥

भाषार्थ—यहाँ 'पितृष्वसुः' पद की अनुवृत्ति है। 'ढक्' प्रत्यय के परे होने पर 'पितृष्वसृ' शब्द के अन्त्याक्षर का लोप होता है। 'अलोऽन्त्यस्य' (१।१।५२) सूत्र के नियम से अन्त्य ऋकार का लोप होता है। जैसे—पितृष्वसुरपत्यं पैतृष्वसेयः। यहाँ ढक् का किसी सूत्र से विधान न होने पर भी ढक् के परे लोप वचन ज्ञापक है कि 'पितृष्वसृ' शब्द से ढक् होता है॥ १३३ ॥

मातृष्वसुश्च॥ १३४ ॥

छण् ढकिलोपश्चानुवर्त्तते। मातृष्वसुः —५।१। च [अ०]। मातृष्वसृशब्दात् [अपत्यसामान्ये] छण्-ढकौ प्रत्ययौ भवतो ढकि परतो लोपश्च। मातृष्वसुरपत्यं मातृष्वस्त्रीयः। मातृष्वसेयः॥ १३४ ॥

भाषार्थ—यहाँ 'छण् ढकिलोप:' पदों की अनुवृत्ति आती है। मातृष्वसृ शब्द से अपत्य सामान्य अर्थ में 'छण्' और 'ढक्' प्रत्यय होते है और 'ढक्' के परे होने पर अन्त्याक्षर का लोप होता है। जैसे—मातृष्वसु पत्यं मातृष्वस्रीय:। मातृष्वसेय:॥ १३४॥

चतुष्पादभ्यो ढञ्॥ १३५॥

चतुष्पाद्भ्य: —५।३।ढञ् —१।१। चतुष्पादर्थेभ्य: प्रातिपदिकेभ्यो ढञ् प्रत्ययो [अपत्यसामान्ये] भवति। कामण्डलेय:। हैरण्यवाहेय:। भाद्रवाहेय:। जाम्बेय:। अणादिनामपवाद:॥ १३५॥

भाषार्थ—चतुष्पाद्वाची प्रातिपदिकों से अपत्य सामान्य अर्थ में 'ढञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—कामण्डलेय:। हैरण्यवाहेय:। भाद्रवाहेय:। जाम्बेय:। इत्यादि। यह सूत्र 'अण्' आदि का अपवाद है॥ १३५॥

गृष्ट्यादिभ्यश्च॥ १३६॥

ढञ्नुवर्त्तते। [गृष्ट्यादिभ्य—५।३।च—अ०प०।] गृष्ट्यादिभ्यो गण-प्रातिपदिकेभ्योऽपत्यसामान्ये ढञ् प्रत्ययो भवति। यथाप्राप्तानामणादीनामपवाद:। गार्ष्टेय:। हार्ष्टेय:। हालेय:।

अथ गृष्ट्यादय:—गृष्टि। हृष्टि। हलि। वलि। विश्रि। कुद्रि। अजवस्ति। मित्रयु। फलि। अलि। दृष्टि॥ १३६॥

भाषार्थ—यहाँ 'ढञ्' प्रत्यय की अनुवृत्ति है। गणपठित 'गृष्टि' आदि प्रातिपदिकों से अपत्यसामान्य अर्थ में 'ढञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—गृष्ट्या अपत्यं गार्ष्टेय:। हार्ष्टेय:। हालेय:। इत्यादि। यह यथाप्राप्त 'अण्' आदि का अपवाद है॥ १३६॥

राजश्वशुराद् यत्॥ १३७॥

राजश्वशुरात् —५।१।यत् —१।१। समर्थानां प्रथमाभ्यां षष्ठीसमर्थाभ्यां राजन्-श्वसुरशब्दाभ्यामपत्यसामान्ये यत् प्रत्ययो भवति। राज्ञोऽपत्यं राजन्य:। श्वशुर्य्य:॥

वा०—राज्ञोऽपत्ये जातिग्रहणम्॥ १॥

राजन्शब्दात् क्षत्रियजातौ यत् प्रत्ययो भवति। राजन्यो नाम क्षत्रियश्चेत्। यदा च कस्यचिद् वाची राजन् शब्दस्तदाऽणेव भवति। राज्ञोऽपत्यं वैश्य: शूद्रो वा राजन:॥ १३७॥

भाषार्थ—समर्थों में प्रथम षष्ठी समर्थ राजन् और श्वशुर प्रातिपदिकों से अपत्य सामान्य अर्थ में 'यत्' प्रत्यय होता है। जैसे—राज्ञोऽपत्यं राजन्य:। श्वशुर्य्य:।

वा०—राज्ञोऽपत्ये जातिग्रहणम्॥ १॥

सूत्र में जो 'राजन्' शब्द से 'यत्' प्रत्यय का विधान है, सो क्षत्रिय जातिवाची 'राजन्' शब्द का ग्रहण समझना चाहिए। जैसे—राजन्यो नाम क्षत्रिय:। और जब क्षत्रिय जातिवाचक न होकर जाति से भिन्न किसी व्यक्ति का वाची 'राजन्' शब्द

हो, तब अण् प्रत्यय ही होता है। जैसे—राज्ञोऽपत्यं वैश्यः शूद्रो वा राजनः॥ १३७॥

क्षत्राद् घः॥ १३८॥

क्षत्रात् —५।१। घः —१।१। क्षत्रप्रातिपदिकादपत्ये घः प्रत्ययो भवति। क्षत्रस्यापत्यं क्षत्रियः। जातिग्रहणमत्राप्यनुवर्त्तते तेनेह न भवति। क्षात्रिः॥ १३८॥

भाषार्थ—यह सूत्र 'इञ्' का बाधक है। 'क्षत्र' प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में 'घ' प्रत्यय होता है। जैसे—क्षत्रस्यापत्यं क्षत्रियः। यहाँ भी पूर्वसूत्रस्थ वार्त्तिक से जाति की अनुवृत्ति होती है। इसलिये जहाँ जाति न हो वहाँ 'घ' प्रत्यय नहीं होता, 'इञ्' ही होता है। जैसे—क्षात्रिः॥ १३८॥

कुलात् खः॥ १३९॥

उत्तरसूत्रे पूर्वपदप्रतिषेधादत्र कुलान्तादपि प्रत्ययो भवति केवलाच्च। [कुलत्—५।१। खः—१।१] कुलान्तात् प्रातिपदिकात् केवलाच्चापत्ये खः प्रत्ययो भवति। सम्पन्नकुलीनः। पण्डितकुलीनः। केवलात्कुलीनः॥ १३९॥

भाषार्थ—इससे अगले (उत्तर) सूत्र में अपूर्वपद=पूर्वपद का प्रतिषेध करने से इस सूत्र में पूर्वपदसहित और केवल कुल शब्द से प्रत्यय होता है। कुलान्त प्रातिपदिक तथा केवल कुल शब्द से अपत्य अर्थ में 'ख' अपत्य होता है। जैसे—सम्पन्नकुलस्यापत्यं सम्पन्नकुलीनः। पण्डितकुलीनः। केवल से—कुलीनः॥ १३९॥

अपूर्वपदादन्यतरस्यां यड्ढकञौ॥ १४०॥

कुलादित्यनुवर्त्तते। अपूर्वपदात् —५।१। अन्यतरस्याम्। यड्-ढकञौ —१।२। न विद्यते पूर्वपदं यस्य तस्मात्। अप्राप्तविभाषेयम्। पूर्वेण खः प्राप्तो यड्-ढकञौ विकल्प्येते। अपूर्वपदात् केवलात् कुलप्रातिपदिकादपत्यसामान्ये विकल्पेन यत्-ढकञौ प्रत्ययौ भवतः। पक्षे पूर्वेण ख एव। कुलस्यापत्यं कुल्यः। कौलेयकः। पक्षे-कुलीनः। पदग्रहणं किमर्थम्। बहुच्पूर्वादपि यथा स्यात्। बहुकुल्यः। बाहुकुलेयकः। बहुकुलीनः॥ १४०॥

भाषार्थ—यहाँ 'कुलात्' पद की अनुवृत्ति है। इस सूत्र में अप्राप्तविभाषा है। पूर्वसूत्र से 'ख' की प्राप्ति में 'यत्' और 'ढकञ्' का विकल्प से विधान किया है। पूर्वपदरहित केवल कुल प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में विकल्प करके यत् और 'ढकञ्' प्रत्यय होते हैं। पक्ष में पूर्वसूत्र से 'ख' ही होता है। जैसे—कुलस्यापत्यं कुल्यः। कौलेयकः। पक्ष में कुलीनः। इस सूत्र में 'पद' ग्रहण इसलिए है कि पूर्वपद का निषेध होवे और बहुच् प्रत्यय पूर्व हो तो प्रत्यय हो जायें। जैसे—बहुकुल्यः। बाहुकुलेयकः। बहुकुलीनः॥ १४०॥

महाकुलादञ्खञौ॥ १४१॥

अन्यतरस्यामित्यनुवर्त्तते। महाकुलात् —५।१। अञ्-खञौ —१।२। महाकुलात् प्रातिपदिकाद् विकल्पेन [अपत्यसामान्ये अञ्-खञौ प्रत्ययौ भवतः। पक्षे ख एव। माहाकुलः। माहाकुलीनः। महाकुलीनः॥ १४१॥

भाषार्थ—यहाँ 'अन्यतरस्याम्' पद की अनुवृत्ति है। महाकुल प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में विकल्प से अञ् और खञ् प्रत्यय होते हैं। पक्ष में 'ख' ही होता है। जैसे—माहाकुल:। माहाकुलीन:। महाकुलीन:॥ १४१॥

दुष्कुलाड् ढक्॥ १४२॥

अन्यतरस्यामित्यनुवर्त्तते। दुष्कुलात् —५।१। ढक् —१।१। दुष्कुलप्रातिपदिकाद् अपत्यसामान्ये विकल्पेन ढक् प्रत्ययो भवति। पक्षे ख एव। दुष्कुलस्यापत्यं दौष्कुलेय:। दुष्कुलीन:॥ १४२॥

भाषार्थ—यहाँ 'अन्यतरस्याम्' की अनुवृत्ति है। दुष्कुल प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में विकल्प करके 'ढक्' प्रत्यय होता है, पक्ष में 'ख' ही होता है। जैसे—दुष्कुलस्यापत्यं दौष्कुलेय:। दुष्कुलीन:॥ १४२॥

स्वसुश्छ:॥ १४३॥

स्वसु: —५।१। छ: —१।१। स्वसृशब्दादपत्ये छ: प्रत्ययो भवति। स्वसुरपत्यं स्वस्रीय:॥ १४३॥

भाषार्थ—स्वसृ प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में 'छ' प्रत्यय होता है। जैसे—स्वसुरपत्यं स्वस्रीय:॥ १४३॥

भ्रातुर्व्यच्च॥ १४४॥

चकारग्रहणाच्छप्रत्ययोऽप्यनुवर्त्तते। भ्रातु: —५।१। व्यत् —१।१। च [अ०] अणोऽपवाद:। भ्रातृप्रातिपदिकादपत्ये व्यत्-छौ प्रत्ययौ भवत:। भ्रातुरपत्यं भ्रातृव्य:। भ्रात्रीय:॥ १४४॥

भाषार्थ—इस सूत्र में चकार से 'छ' प्रत्यय की भी अनुवृत्ति है। यह सूत्र 'अण्' का अपवाद है। 'भ्रातृ' प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में 'व्यत्' प्रत्यय होता है और चकार से 'छ' प्रत्यय भी होता है। जैसे—भ्रातुरपत्यं भ्रातृव्य:। भ्रात्रीय:॥ १४४॥

व्यन् सपत्ने॥ १४५॥

भ्रातुरित्यनुवर्त्तते। व्यन् —१।१। सपत्ने —७।१ सपत्नशब्द: शत्रुपर्याय:। तस्मिन्नभिधेयेऽपत्याधिकारेऽपत्यं न सम्भवति। अपत्याधिकारे सूत्रस्यास्यैतत् प्रयोजनं भ्रातृग्रहणमनुवर्त्तेत। अन्यत्रग्रहणे द्विभ्रातृग्रहणं स्यात्। भ्रातृशब्दात् सपत्नेऽभिधेये व्यन् प्रत्ययो भवति। नित्करणमाद्युदात्तार्थम्। भ्रातृव्य: शत्रु: पाप्मा॥ १४५॥

भाषार्थ—यहाँ 'भ्रातु:' पद की अनुवृत्ति है। 'सपत्न' शब्द शत्रु का पर्यायवाची है। सपत्न (शत्रु) वाच्य हो तो 'भ्रातृ' प्रातिपदिक से 'व्यन्' प्रत्यय होता है। जैसे—भ्रातृव्य: शत्रु: पाप्मा वा। नित्करण आद्युदात्तार्थ है। यहाँ अपत्य के अधिकार में भ्राता का अपत्य (पुत्र) शत्रु नहीं होता, इसलिए अपत्याधिकार में इस सूत्र का यही प्रयोजन है कि दुबारा भ्रातृ शब्द का पाठ न करना पड़े, पूर्वसूत्र से ही अनुवृत्ति

हो जाए। इस सूत्र का दूसरी जगह पाठ करने से द्वितीय वार 'भ्रातृ' शब्द पढ़ना पड़ता है। और इस सूत्र में 'भ्रातृ' शब्द का प्रकृत्यर्थ मुख्य नहीं है, किन्तु प्रत्ययार्थ जो शत्रु है, वही मुख्य है॥ १४५ ॥

रेवत्यादिभ्यष्ठक्॥ १४६ ॥

रेवत्यादिभ्यः —५।३। ठक् —१।१। यथासम्भवं ढगादीनामपवादः। रेवत्यादिभ्यो गणप्रातिपदिकेभ्योऽपत्यसामान्ये ठक् प्रत्ययो भवति। रेवत्या अपत्यं रैवतिकः। आश्वपालिकः॥

अथ रेवत्यादयः—रेवती। अश्वपाली। मणिपाली। द्वारपाली। वृकवञ्चिन्। वृकबन्धु। वृकग्राह। कर्णग्राह। चामरग्राह। दष्डग्राह। कुक्कुटाक्ष। ककुदाक्ष॥ १४६ ॥

भाषार्थ—यह सूत्र यथासम्भव 'ढक्' आदि का अपवाद है। रेवती आदि गणपठित प्रातिपदिकों से अपत्यार्थ में ठक् प्रत्यय होता है। जैसे—रेवत्या अपत्यं रैवतिकः। आश्वपालिंकः, इत्यादि॥ १४६ ॥

गोत्रस्त्रियाः कुत्सने ण च॥ १४७॥

चकाराट् ठगनुवर्त्तते। गोत्रस्त्रियाः —५।१। कुत्सने —७।१। णः —१।१। च [अ०] कृत्रिमस्य गोत्रस्य ग्रहणम्। गोत्रं या स्त्री तद्वाचिनः प्रातिपदिकात् कुत्सितेऽपत्यमात्रेऽभिधेये णप्रत्ययो भवति। चाट् ठक् च। गार्ग्याः कुत्सितमपत्यं गार्गो जाल्मः। ग्लुचुकायन्याः कुत्सितमपत्यं ग्लौचुकायनः। गार्गिकः। ग्लौचुकायनिकः। गोत्रप्रत्ययान्ताद् युवापत्येऽत्र प्रत्ययविधानम्। णप्रत्यये णित्करणं 'ग्लौचुकायन' इत्यादिषु वृद्धिर्यथा स्यात्। गार्गा भार्याऽस्य गार्गाभार्या। इति पुंवद्भाव प्रतिषेधार्थं च। गोत्रग्रहणं किमर्थम्। वधूट्या अपत्यं वाधूटेयो जाल्मः। स्त्रिया इति किम्। औपगवस्य युवापत्यम् औपगवि जाल्मः। कुत्सनग्रहणं किमर्थम्। गार्गेयो माणवकः। इदं सूत्रं स्त्रीभ्यो ढगित्यस्यापवादः। तस्मात् कुत्सनाऽभावे ढक् प्रत्यय एव भवति॥ १४७॥

भाषार्थ—यहाँ चकार से ठक् की अनुवृत्ति है। यहां कृत्रिम (पारिभाषिक) गोत्र का ग्रहण है। गोत्र संज्ञक स्त्रीवाची प्रातिपदिक से कुत्सित (निन्दित) युवापत्य अर्थ में 'ण' प्रत्यय और चकार से 'ठक्' प्रत्यय होता है। जैसे—गार्ग्याः कुत्सितमपत्यं गार्गो जाल्मः। वात्सो जाल्मः। ग्लुचुकायन्याः कुत्सितमपत्यं ग्लौचुकायनः। ठक्—गार्गिकः। ग्लौचुकायनिकः। यहाँ गोत्र प्रत्ययान्त से युवापत्य में प्रत्यय का विधान किया है। 'ण' प्रत्यय में णित्करण इसलिये है कि 'ग्लौचुकायनः' इत्यादि में वृद्धि हो जावे और गार्गा भार्याऽस्येति गार्गाभार्यः। यहाँ पुंवद्भाव का प्रतिषेध 'वृद्धिनिमितस्य०' (अ० ६।३।३८) इस सूत्र से करने के लिए णित् किया है।

यहाँ 'गोत्र' ग्रहण इसलिये है कि—वधूट्या अपत्यं वाधूटेयो जाल्मः। यहाँ वधूटी शब्द गोत्र प्रत्ययान्त नहीं है। 'स्त्रियाः' का ग्रहण इसलिये है कि—औपगवस्य

युवापत्यम् औपगविर्जाल्मः। यहाँ न हो। यहाँ गोत्र प्रत्ययान्त तो है, स्त्रीवाची नहीं। और 'कुत्सन' का ग्रहण इसलिए है कि गार्गेयो माणवकः। यहाँ निन्दा न होने से सामान्य 'ढक्' हो गया है। यह सूत्र 'स्त्रीभ्यो ढक्' (४।१।१२०) सूत्र का बाधक है। अतः निन्दा के न होने पर उससे 'ढक्' ही होता है॥१४७॥

वृद्धाद् ठक् सौवीरेषु बहुलम्॥१४८॥

कुत्सन इत्यनुवर्त्तते। क्वचिदेकदेशोऽप्यनुवर्त्तते इति गोत्रग्रहणं च। वृद्धात् —५।१। ठक् —१।१। सौवीरेषु —७।३। बहुलम् —१।१। वृद्धसंज्ञकं सौवीरगोत्रे वर्त्तमानं यत् प्रातिपदिकं तस्मात् कुत्सने युवापत्येऽभिधेये बहुलं विकल्पेन ठक् प्रत्ययो भवति। पक्षे यस्माद् यः प्राप्तः स एव भवति। भागवित्तेरपत्यं भागवित्तिको जाल्मः। पक्षे-भागवित्तायनः। तार्णविन्दवस्यापत्यं तार्णविन्दविकः। पक्षे-तार्णविन्दविः। वृद्धग्रहणं स्त्रीनिवृत्त्यर्थम्। सौवीरेष्विति किम्। गार्ग्यायणो जाल्मः। कुत्सन इति किम्। भागवित्तायनो माणवकः॥१४८॥

भाषार्थ—'यहाँ कुत्सने' पद की अनुवृत्ति है। व्याकरण शास्त्र में समस्त पद का कहीं एक भाग भी अनुवर्त्तित हो जाता है, इस नियम से यहाँ 'गोत्र' पद भी आता है। कुत्सन (निन्दा) अर्थ में युवापत्य वाच्य हो तो वृद्धसंज्ञक सौवीर गोत्रवाची प्रातिपदिक से बहुल (विकल्प) से ठक् प्रत्यय होता है। पक्ष में जिससे जो प्रत्यय प्राप्त होता है, वही हो जाता है। जैसे—भागवित्तेर्युवापत्यं भागवित्तिको जाल्मः। पक्ष में भागवित्तायनः। तार्णविन्दवस्यापत्यं तार्णविन्दविकः। पक्ष में—तार्णविन्दविः। यहाँ विकल्प से क्रमशः 'फक्' और 'इञ्' प्रत्यय हुए हैं। यहाँ 'वृद्ध' का ग्रहण स्त्री की निवृत्ति के लिये है। 'सौवीर' का ग्रहण इसलिये है कि—गार्ग्यायणो जाल्मः। यहाँ 'ठक्' न हो। 'कुत्सन' की अनुवृत्ति इसलिये की है कि भागवित्तायनो माणवकः। यहाँ 'ठक्' प्रत्यय न होवे॥१४८॥

फेश्छ च॥१४९॥

कुत्सन इत्यनुवर्त्तते सौवीरेष्विति च। फेः —५।१। छ —१।१। च [अ०]। फेरिति फिञ्प्रत्ययस्यैव ग्रहणं वृद्धादित्यनुवर्त्तनात्। सौवीरगोत्रे वर्त्तमानात् फिञन्ताद् वृद्धप्रातिपदिकात् कुत्सने युवापत्येऽभिधेये छः प्रत्ययो भवति चकाराट्ठक्। तिकस्य गोत्रापत्यं तैकायनिः। तस्य युवापत्यं कुत्सितं तैकायनीयः। तैकायनिकः। यामुन्दायनेरपत्यं यामुन्दायनीयः। यामुन्दायनिकः। सौवीरेष्विति किम्। कैतवायनिः। कुत्सन इति किम्। कैतवायनिः। अत्र यूनि विहितस्याणप्रत्ययस्य 'ण्यक्षत्रियार्षेति' लुक्॥१४९॥

भाषार्थ—यहाँ 'कुत्सने' और 'सौवीरेषु' पदों की अनुवृत्ति है। 'फेः' से यहाँ फिञ् प्रत्यय का ही ग्रहण है 'फिन्' आदि का नहीं। क्योंकि यहाँ 'वृद्धात्' की अनुवृत्ति आती है। फिञ् प्रत्ययान्त वृद्धसंज्ञक सौवीर गोत्रवाची प्रातिपदिक से कुत्सन युवापत्य अर्थ में 'छ' प्रत्यय होता है, और चकार से 'ठक्'। जैसे—

तिकस्य गोत्रापत्यं तैकायनिः। 'तिकादिभ्यः फिञ्' (अ० ४।१।१५४) सूत्र से फिञ्। तस्य युवापत्यं तैकायनीयः। तैकायनिकः। यामुन्दायनेर्युवापत्यं यामुन्दायनीयः। यामुन्दायनिकः। 'सौवीरेषु' का ग्रहण इसलिये है कि कैतवायनिः। यहाँ 'छ' प्रत्यय न होवे। कुत्सने का ग्रहण इसलिए है कि कैतवायनिः। यहाँ युवापत्य में विहित औत्सर्गिक अण् प्रत्यय का 'ण्यक्षत्रियार्ष०' (अ० २।४।५८) से लुक् हुआ है॥ १४९॥

फाण्टाहृतिमिमताभ्यां णफिञौ॥ १५०॥

सौवीरेष्विति वर्त्तते। कुत्सन इति निवृत्तम्। फाण्टाहृतिमिमताभ्याम् —५।२। णफिञौ —१।२। फाण्टाहृतिशब्दो गोत्रप्रत्ययान्तस्तस्माद् यूनि प्रत्ययः। मिमतशब्दात्तु प्रथमः फिञ् गोत्र एव। मिमतशब्दस्याल्पचतरत्वात् पूर्वनिपातः सूत्रेषु प्रातिपदिकनिर्देशत्वात् क्वचिन्न भवति। सौवीरगोत्रे वर्तमानात् फाण्टाहृतिशब्दाद् युवापत्ये णः प्रत्ययो भवति, मिमतप्रातिपदिकात् सौवीरगोत्रेऽभिधेये फिञ् च। फाण्टाहृतिशब्दात् फक् प्राप्तस्स बाध्यते। मिमतशब्दो नडादिषु पठ्यते तस्मात् फक् च। फाण्टाहृतेरपत्यं फाण्टाहृतः। मिमतस्यापत्यं मैमतायनिः। सौवीर इति किम्। फाण्टाहृतायनः। मैमतायनः।

अत्र जयादित्येन लिखितमल्पाचतरस्य मिमतशब्दस्य पूर्वानिपातो न कृतस्तेन ज्ञायते यथासंख्यमिह न भवतीति। तदिदं महाभाष्याद् विरुद्धतरत्वाद्[१] अवमन्तव्यमेव। तद्यथा—

महा०—पुंवद्भावस्य प्रतिषेधार्थं णकारः कर्त्तव्यः। फाण्टाहृताभार्या अस्य फाण्टाहृताभार्यः। वृद्धिनिमित्तस्येति पुंवद्भावप्रतिषेधो यथा स्यात्। एतत्कथनस्यैतत् प्रयोजनं णप्रत्यये णित्करणं पुंवद्भावप्रतिषेधार्थम्। यदि च यथासंख्यमनिष्टं स्यात्तर्हि मिमतशब्दादपि णप्रत्ययः स्यात्। महाभाष्यकारेणेदं तूक्तं 'णित्करणानर्थक्यं वृद्धत्वात् प्रातिपदिकस्य।' तेन ज्ञायते फाण्टाहृतशब्दो वृद्धसंज्ञकस्तस्मादेव णप्रत्ययो भवतीति॥ १५०॥

भाषार्थ—यहाँ 'सौवीरेषु' पद की अनुवृत्ति है। 'कुत्सन' पद निवृत्त हो गया है। सूत्र में फाण्टाहृति शब्द गोत्र प्रत्ययान्त है उससे युवापत्य में प्रत्यय और मिमत शब्द से गोत्रापत्य में ही प्रत्यय का विधान है। 'मिमत' शब्द के अल्पाचतर होने पर भी सूत्र में पूर्वनिपात नहीं किया है। सूत्रों में प्रातिपदिकों का निर्देश होने से कहीं यह नियम चरितार्थ नहीं होता है। सौवीरगोत्रवाची फाण्टाहृति और मिमत प्रातिपदिकों से अपत्य अर्थ में यथासंख्य 'ण' और 'फिञ्' प्रत्यय होते हैं। 'फाण्टाहृति' शब्द से 'यञिञोश्च' (४।१।१०१) सूत्र से 'फक्' प्राप्त है और मिमत शब्द से नडादि[२] में पाठ होने से 'फक्' प्राप्त है। यह सूत्र दोनों का बाधक है। जैसे—फाण्टाहृतेर्युवापत्यं फाण्टाहृतः। मिमतस्य गोत्रापत्यं मैमतायनिः। 'सौवीरेषु'

---

१. अत्र कैय्यटोऽप्याह—**'यथासंख्यं सम्बन्धस्येष्टत्वान् न मिमतशब्दार्थं णत्वम्।'—अ०**

२. **नडादिभ्यः फक्** (४।१।९९) सम्पादक।

का ग्रहण इसलिये है कि—फाण्टाहृतायनः। मैमतायनः। यहाँ यथाप्राप्त 'फक्' प्रत्यय हो गया है।

इस सूत्र पर जयादित्य ने लिखा है कि सूत्र में अल्पाच्तर मिमत शब्द का पूर्वनिपात न करने से यहां यह बात जाननी चाहिये कि यहाँ यथासंख्य प्रत्यय नहीं होते हैं। यह उसकी बात महाभाष्य से विरुद्ध होने से मानने योग्य नहीं है। महाभाष्य का प्रमाण संस्कृत में द्रष्टव्य है। उस में यह स्पष्ट लिखा है—ण प्रत्यय में णित्करण निरर्थक है क्योंकि प्रातिपदिक में पहले ही वृद्धि होने से वृद्ध संज्ञा है। इसलिए णित् का प्रयोजन पुंवद्भाव का प्रतिषेध करना माना है। यदि सूत्र में यथासंख्यता न हो तो मिमत शब्द में वृद्धि करना भी प्रयोजन होने से महाभाष्य का प्रयोजनान्तर बताना असंगत रहता अथवा 'पुंवद्भाव प्रतिषेधार्थं तु' इसमें वार्तिक में 'तु' शब्द का प्रयोग न करके समुच्चयार्थक चकार का प्रयोग करना चाहिये था। और यथासंख्यता न मानने पर 'मिमत' शब्द में वृद्धि करना भी प्रयोजन होने से महाभाष्यकार का यह लेख—'**णित्करणानर्थक्यं वृद्धत्वात् प्रातिपदिकस्य**' निरर्थक ही हो जायेगा॥ १५०॥

कुर्वादिभ्यो ण्यः॥ १५१॥

सौवीरेष्विति निवृत्तम्। कुर्वादिभ्यः —५।३। ण्यः —१।१। समर्थानां प्रथमेभ्यः षष्ठीसमर्थेभ्यः कुरु इत्येवमादिप्रातिपदिकेभ्योऽपत्यमात्रे ण्यप्रत्ययो भवति। कुरोरपत्यं कौरव्यः। माङ्गुष्यः।

अथ कुर्वादयः—कुरु। गर्ग। गर्गर। मङ्गुष। अजमारक। अजमारी। रथकार। वावदूक। सम्राजः क्षत्रिये॥ कवि। मति। वाक्। विमति। कापिंजलादि। वामरथ पितृमथ। पितृमत्। इन्द्रजालि। एचि। वातकि। दामोष्णीषि। गणकारि। कैशोरि। कुट। शलाका। मुर। पुर। एडका। एरक। अभ्र। शुभ्र। दर्भ। केशिनी। वेनाच्छन्दसि। शूर्प्पणाय। श्यावनाय। श्यावरथ। श्यावपुत्र। सत्यंकार। वडभीकार। पथिकारिंन्। मूढ़। शकन्धु। शंकु। शाक। शाकिन्। कर्त्तृ। हर्त्तृ। इनपिण्डी। तक्षन्॥ इति कुर्वादयः॥

वा०—वामरथस्य कण्वादिवत् स्वरवर्जम्॥ १॥

वामरथशब्दः कुर्वादिषु पठ्यते तस्य कण्वादिवत् कार्य्यं भवति। कण्वादिभ्यो गोत्र इत्यण् यथा स्यात्। वामरथस्य छात्रा वामरथाः। अन्यथा वृद्धत्वाच्छः प्राप्तः। कण्वादयः शब्दा गर्गाद्यन्तर्गतास्तेभ्यो गोत्रे यञ् विधीयते। तत्र ञित्वादाद्युदात्तः स्वरो भवति। सोऽत्र मा भूत्। अर्थात् ण्यप्रत्ययस्यैव स्वर इष्यते॥ १५१॥

भाषार्थ—यहाँ 'सौवीरेषु' पद की अनुवृत्ति नहीं है। समर्थों में प्रथम षष्ठी समर्थ 'कुरु' आदि प्रातिपदिकों से अपत्यार्थ में 'ण्य' प्रत्यय होता है। जैसे—कुरोरपत्यं कौरव्यः। [मङ्गुषस्यापत्यं] माङ्गुष्यः। [गार्ग्यः। आजमारक्यः। इत्यादि।]

वा०—वामरथस्य कण्वादिवत् स्वरवर्जम्॥ १॥

कुर्वादिगण में वामरथ शब्द का पाठ है। उससे स्वर को छोड़कर कण्वादि की भाँति कार्य करने चाहिएँ। जैसे—वामरथस्यापत्यं वामरथ्यः। (यहाँ अपत्यार्थ में इस सूत्र से ण्य प्रत्यय हुआ)। वामरथ्यस्य छात्रा वामरथाः। यहाँ वृद्धसंज्ञक होने से 'वृद्धाच्छः' (४।२।११३) सूत्र से 'छ' प्रत्यय प्राप्त है, उसका बाधक 'कण्वादिभ्यो गोत्रे' (४।२।११०) सूत्र से 'अण्' प्रत्यय करना वार्तिक का प्रयोजन है। किन्तु कण्वादि के समस्त कार्य प्राप्त होने पर स्वर का निषेध किया है। कण्वादि शब्द गर्गादिगण में पठित हैं। उनसे यञ् प्रत्यय के ञित् होने से आद्युदात्त भी प्राप्त होता है। वह न हो, ण्य प्रत्यय का ही स्वर हो, इसलिये वार्त्तिक में 'स्वरवर्जम्' कहा गया है॥ १५१॥

सेनान्तलक्षणकारिभ्यश्च॥ १५२॥

ण्य इत्यनुवर्त्तते। सेना......कारिभ्यः —५।३। च [अ०] सेनाशब्दोऽन्त उत्तरपदं येषां ते सेनान्ताः संज्ञाशब्दाः। लक्षणशब्दस्य एवं रूपं गृह्यते। कारिवाचिनः शिल्पिविशेषवाचिनः*। सेनान्त-लक्षण-कारिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽपत्यसामान्ये ण्यप्रत्ययो भवति। परिषेणस्यापत्यं पारिषेण्यः। वारिषेण्यः। औग्रसेन्यः। भैमसेन्यः। लाक्षण्यः। कुलालस्यापत्यं कौलाल्यः। तान्तुवाय्यः। कौम्भकार्य्यः॥ १५२॥

भाषार्थ—पूर्वसूत्र से यहाँ 'ण्य' प्रत्यय की अनुवृत्ति है। 'सेना' शब्द जिनके अन्त में है, वे सेनान्त संज्ञाशब्द हैं। 'लक्षण' शब्द से स्वरूप का ग्रहण है और 'कारि' शब्द शिल्पीविशेषों का वाचक है। सेनान्त, लक्षण और कारि (शिल्पीविशेषवाची) प्रातिपदिकों से अपत्यार्थ में 'ण्य' प्रत्यय होता है। जैसे—सेनान्त—परिषेणस्यापत्यं पारिषेण्यः वारिषेण्यः। औग्रसेन्यः। भैमसेन्यः। लक्षण से—लाक्षण्यः। कारिवाची-कुलालस्यापत्यं कौलाल्यः। तान्तुवाय्यः। कौम्भकार्य्यः। इत्यादि॥ १५२॥

उदीचामिञ्॥ १५३॥

सेनान्तलक्षणकारिभ्य इत्यनुवर्त्तते। ण्यस्यापवादः। उदीचाम् —६।३। इञ् —१।१। सेनान्त-लक्षण-कारिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽपत्यसामान्ये उदीचामाचार्याणां-मतेन इञ् प्रत्ययो भवति। पारिषेणिः। वारिषेणिः। लाक्षणिः। कौम्भकारिः। काटकारिः॥

अत्र जयादित्येन लिखितं 'तक्षन्शब्दः शिवादिस्तेनाणाऽयमिञ् बाध्यते न तु ण्यः'। इदमपि महाभाष्याद् विरुद्धमेव। तद्यथा—वा०—उदीचां वा ण्यवचनम्॥ उदीचां मते सेनान्तलक्षणकारिभ्यो विकल्पेन ण्यप्रत्ययो भवतीति वार्त्तिकाशयः। ण्येन मुक्ते यो यतः प्राप्नोति स ततो भविष्यति। यथा तक्षन् शब्दाद् उदीचां मते विकल्पेन ण्यः पक्षे शिवादित्वादण्। एवं सेनान्तेभ्य उदीचां मते विकल्पेन ण्यः पक्षे ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्योऽपि बाह्वादेराकृतिगणत्वाद्

---

* कृञ उदीचां कारुषु (उ० ४।१२९) इस उणादिसूत्र से इन्प्रत्यय। —सं०

इञ्। जयादित्य इदं प्रष्टव्यः—यदि पुरस्तादपवादा इति न्यायः प्रवर्त्तते तर्हि शिवादिविहितोऽण् ण्यं बाधेत कथमिञम्। जयादित्यकथनेन वार्त्तिकमन्तरा प्रयोजनं सिध्यति। यदि जयादित्य-कथनं तथ्यं स्यात्। यदि च वार्त्तिकमन्तरा कार्यसिद्धिः स्यातर्हि महाभाष्यकारो वार्तिकं कदापि न ब्रूयात्॥ १५३॥

भाषार्थ—यहाँ पूर्वसूत्र की अनुवृत्ति है। यह सूत्र 'ण्य' प्रत्यय का अपवाद है। उदीच् (उत्तरदेशीय) आचार्यों के मत में सेनान्त, लक्षण और कारिवाची प्रातिपदिकों से अपत्य अर्थ में 'इञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—पारिषेणस्यापत्यं पारिषेणिः। वारिषेणिः। लाक्षणिः। कौम्भकारिः। काटकारिः। इत्यादि।

इस सूत्र पर काशिकाकार जयादित्य ने लिखा है—

'तक्षन् शब्दः शिवादिस्तेनाणाऽयम् इञ् बाध्यते न तु ण्यः।'

अर्थात् 'तक्षन्' शब्द शिवादिगण में पठित है। उस सूत्र से विहित 'अण्' प्रत्यय इस सूत्र से विहित 'इञ्' प्रत्यय का बाधक है, 'ण्य' प्रत्यय का नहीं। जैसे—तक्ष्णोऽपत्यं ताक्ष्णः। ताक्ष्ण्यः।

यह जयादित्य का कथन महाभाष्य से विरुद्ध है। महाभाष्य में 'तक्षन्' शब्द से 'अण्' प्रत्ययान्त 'ताक्ष्ण' रूप बनाने के लिए 'सिद्धं तूदीचां वा ण्यवचनात्' वार्तिक स्वीकार किया है। इस वार्तिक से सेनान्तादि शब्दों से विकल्प से 'ण्य' प्रत्यय होता है उदीचों के मत में। पक्ष में जो जिससे प्राप्त होता है वह उससे होता है। जैसे—तक्षन् शब्द से विकल्प से 'ण्य' प्रत्यय होता है, पक्ष में शिवादि में पाठ होने से 'अण्' होता है। इसी प्रकार सेनान्तादि से विकल्प से 'ण्य' और पक्ष में यथाप्राप्त इञ्। यहाँ जयादित्य के वचन में यह दोष है कि यदि 'पुरस्तादपवादा अनन्तरान् विधीन् बाधन्ते' इस न्याय से शिवादि गण में पठित तक्षन् शब्द से विहित 'अण्' प्रत्यय 'इञ्' की अपेक्षा अनन्तर ण्य का बाधक है तो 'इञ्' का बाधक कैसे होगा और इष्ट 'इञ्' का बाधन न करके 'ण्य' प्रत्यय करना है। और यदि जयादित्य का वचन यथार्थ होता तो वार्तिक के विना भी इष्ट सिद्धि होने से महाभाष्यकार वार्त्तिक का पाठ कदापि नहीं मानते। इसलिये जयादित्य का कथन महाभाष्य से विरुद्ध होने से माननीय नहीं है॥ १५३॥

तिकादिभ्यः फिञ्॥ १५४॥

तिकादिभ्यः —५।३।फिञ् —१।१।तिकादिभ्यो गणप्रातिपदिकेभ्यः फिञ् प्रत्ययो भवति [अपत्यसामान्ये]। तैकायनिः। कैतवायनिः॥

अथ तिकादयः—तिक। कितव। संज्ञा। बाल। शिखा। उरस्। शाट्य। सैन्धव। यमुन्द। रूप्य। ग्राम्य। नील। अमित्र। गौकक्ष्य। कुरु। देवरथ। तैतिल। औरस। कौरव्य। भौरिकि। भौलिकि। मौलिकि। चौपायत। चैट्यत। शीकयत। शैकयत। क्षैतयत। ध्वाजवत। वाजवत। चन्द्रमस्। शुभ। गङ्गा। वरेण्य। सुयामन्। आरद्ध। वह्यका। खल्य। वृष। लोभक। उदन्या। यज्ञ। ऋष्य। भीत। जाजल। रस। लावक। ध्वजवद। वसु। बन्धु। आबन्धका। सुपामन्॥ इति

निकादय: ॥ १५४॥

भाषार्थ—तिकादि गणपठित प्रातिपदिकों से अपत्यार्थ में 'फिञ्' प्रत्यय होता है जैसे—तिकस्यापत्यं तैकायनि:। कैतवायनि: इत्यादि॥ १५४॥

कौसल्यकार्मार्य्याभ्यां च। १५५॥

कौसल्य-कार्मार्य्याभ्याम् —५।२। च [अ०] फिञनुवर्त्तते। कोसल-कर्मारशब्दयो: कौसल्य-कार्मार्य्यावादेशौ कृत्वाऽत्र पठितौ। अस्मिन् सूत्रे निपाततनादेवादेशौ, तेन परमप्रकृतेरेव फिञ् विधीयते। कौसल्य-कार्मार्य्यप्रातिपदिकाभ्यां फिञ् प्रत्ययो भवति [अपत्यसामान्ये]। कोसल-स्यापत्यं कौसल्यायनि:। कार्मार्य्यायणि:॥

वा०—फिञ्प्रकरणे दगुकोसलकर्मारछागवृषाणां युट् च॥ १॥

दागव्यायनि:। कौसल्यायनि:। कार्मार्य्यायणि:। छाग्यायनि:। वृषशब्दस्तिकादिषु पठ्यते तस्मात् फिञ् स्यादेव पुनर्वचनं युडागमार्थम्। वार्ष्यायणि:। परमप्रकृते: फिञ् भवतीति यदुक्तं तदस्मादेव वार्त्तिकाल्लभ्यते॥ १५५॥

भाषार्थ—इस सूत्र में फिञ् प्रत्यय की अनुवृत्ति है। इस सूत्र में पाठ करने से ही कोसलकर्मार शब्दों के स्थान में कौसल्य-कार्मार्य्य आदेश यथासंख्य हुए हैं। और यह फिञ् प्रत्यय परमप्रकृति अर्थात् कोसल तथा कर्मार शब्दों से ही होता है। कौसल्य और कार्मार्य्य प्रातिपदिकों से अपत्यार्थ में फिञ् प्रत्यय होता है। जैसे—कोसलस्यापत्यं कौसल्यायनि:। कार्मार्य्यायणि:।

वा०—फिञ्प्रकरणे दगुकोसलकर्मारछागवृषाणां युट् च॥ १॥

सूत्र से भिन्न शब्दों से भी प्रत्यय करने के लिये वार्त्तिक का पाठ किया है। फिञ् प्रकरण में दगु, कोसल, कर्मार, छाग और वृष प्रातिपदिकों से अपत्यार्थ में 'फिञ्' प्रत्यय होता है और प्रत्यय को युट् आगम होता है। जैसे—दागव्यायनि:। कौसल्यायनि:। कार्मार्य्यायणि:। छाग्यायनि:। वार्ष्यायणि:। वृष शब्द का तिकादिगण में पाठ होने से ही फिञ् प्रत्यय हो जाता, फिर वार्त्तिक में पाठ 'युट्' आगम के लिये है और यह फिञ् प्रत्यय परमप्रकृति से होता है, यह भी इस वार्त्तिक सूत्र से ही स्पष्ट होता है॥ १५५॥

अणो द्व्यच:॥ १५६॥

अण: —५।१। द्व्यच: —५।१। अणन्ताद् द्व्यच्प्रातिपदिकात् फिञ् प्रत्ययो भवति [अपत्यसामान्ये]। अपत्यप्रत्ययान्तमणन्तं प्रातिपदिकं गृह्यते न तु कृदन्तम्। शैवायनि:। चाण्डायनि:। जाम्भायनि:। अण इति किम्। दाक्षायण:। द्व्यच इति किम्। आर्ष्टिषेणस्य युवापत्यम् आर्ष्टिषेणि:॥

अत्र जयादित्येन निष्प्रयोजनं वार्त्तिकं ध्वन्यते। तद्यथा—त्यदादीनां वा फिञ् वक्तव्य इति। इदं वार्तिकं महाभाष्ये नास्ति। यद्यस्य प्रयोजनं स्यात्तदा महाभाष्यकार: पठेत्। त्यदादीनि चेति सूत्रेण त्यदादीनां वृद्धसंज्ञा। वृद्धत्वाद्

वक्ष्यमाणसूत्रेणोदीचां मते फिञ् भविष्यत्यन्येषां मते चाण्। पुनर्जयादित्यस्य वार्तिकं व्यर्थमेव॥ १५६ ॥

भाषार्थ—अण् प्रत्ययान्त द्व्यच् प्रातिपदिकों से अपत्य अर्थ में फिञ् प्रत्यय होता है। यहाँ अण् प्रत्ययान्त अपत्यार्थक प्रातिपदिक का ही ग्रहण है, कृदन्त अणन्त का नहीं। जैसे-शिवस्यापत्यं शैवः। यहाँ शिवादि से अण् प्रत्यय हुआ है। शैवस्यापत्यं शैवायनिः। चाण्डायनिः। जाम्भायनिः। यहाँ अणन्त का ग्रहण इसलिए किया है कि—दाक्षायणः। यहाँ इञन्त से फिञ् न हो। और 'द्व्यचः' का ग्रहण इसलिये किया है कि आर्ष्टिषेणस्य युवापत्यम् आर्ष्टिषेणिः। यहाँ अणन्त तो है, परन्तु द्व्यच् न होने से 'फिञ्' नहीं हुआ।

इस सूत्र पर जयादित्य ने निष्प्रयोजन यह वार्तिक लिखा है—'त्यदादीनां वा फिञ् वक्तव्यः।' यह वार्तिक महाभाष्य में नहीं है और यदि इस वार्त्तिक की सार्थकता होती तो महाभाष्यकार अवश्य पाठ करते। वार्तिक की निरर्थकता इस प्रकार है। वार्त्तिक से विकल्प से 'फिञ्' प्रत्यय करके त्यदादिशब्दों की वृद्धसंज्ञा 'त्यदादीनि च' (१।१।७४) सूत्र से होती है और वृद्धसंज्ञक होने से वक्ष्यमाण सूत्र 'उदीचां वृद्धादगोत्रात्' (४।१।१५७) सूत्र से उदीचों के मत में फिञ् प्रत्यय और दूसरों के मत में सामान्य 'अण्' प्रत्यय होने से इन पूर्वोक्त रूपों की सिद्धि हो जाती है। फिर इन प्रयोगों के लिए नवीन वार्त्तिकों की रचना करना निरर्थक ही है॥ १५६ ॥

उदीचां वृद्धादगोत्रात्॥ १५७॥

फिञ् ग्रहणमनुवर्त्तते। उदीचाम् —६।३। वृद्धात् —५।१। अगोत्रात् —५।१। अगोत्रादिति पर्य्युदासः प्रतिषेधः। गोत्रादितरस्माद् वृद्धसंज्ञकात् प्रातिपदिकादपत्ये उदीचां मतेन फिञ् प्रत्ययो भवति। अन्येषां मते यो यतः प्राप्नोति स ततो विज्ञेयः। तादायनिः। यादायनिः। कैमायनिः। भानोरपत्यं भानवायनिः। ज्ञानस्यापत्यं ज्ञानायनिः। अन्येषां मते-तादः। यादः। कैमः। भानवः। ज्ञानः। उदीचामिति किम्। आम्रगुप्तस्यापत्यमाम्रगुप्तिः। वृद्धादिति किम्। यज्ञदत्तस्यापत्यं याज्ञदत्तिः। अगोत्रादिति किम्। गार्ग्यायणः॥ १५७॥

भाषार्थ—यहाँ भी फिञ् प्रत्यय की अनुवृत्ति है। सूत्रस्थ 'अगोत्रात्' पद में पर्य्युदास प्रतिषेध है। गोत्र से भिन्न वृद्ध संज्ञक प्रातिपदिकों से अपत्य अर्थ में उदीक् (उत्तरदेशीय) आचार्यों के मत में 'फिञ्' प्रत्यय होता है। दूसरे आचार्यों के मत में जो प्रत्यय जिस सूत्र से प्राप्त होता है, वह उससे हो जाता है। जैसे— तादायनिः। यादायनिः कैमायनिः। भानोरपत्यं भानवायनिः। ज्ञानस्यापत्यं ज्ञानायनिः। दूसरों के मत में—तादः। यादः। कैमः। भानवः। 'उदीचाम्' का ग्रहण इसलिए है—आम्रगुप्तस्यापत्यमाम्रगुप्तिः। यहाँ फिञ् नहीं हुआ। 'वृद्धात्' का ग्रहण इसलिए है—यज्ञदत्तस्यापत्यं याज्ञदत्तिः। और गोत्र का निषेध इसलिये किया है कि गार्ग्यायणः। यहाँ गोत्र प्रत्ययान्त से 'फिञ्' प्रत्यय न होवे॥ १५७॥

वाकिनादीनां कुक् च॥ १५८॥

उदीचां वृद्धादित्यनुवर्त्तते। तत्र यानि प्रातिपदिकान्यवृद्धानि तेभ्य आरम्भसामर्थ्याद् भविष्यति। वाकिनादीनाम् —६।३। कुक् —१।१। च। अ०। वाकिन इत्यादि प्रातिपदिकेभ्य उदीचां मते फिञ् प्रत्ययो भवति [अपत्यसामान्ये] फिञि परतो वाकिनादीनां कुगागमश्च। वाकिनस्यापत्यं वाकिनकायनिः। गौधेरकायनिः। अन्येषां मते—वाकिनिः। ये शब्दा वाकिनादिष्वगोत्रा वृद्धसंज्ञकाः पठ्यन्ते तेषां ग्रहणं कुगागमार्थम्॥

अथ वाकिनादयः—वाकिन। गौधेर। कार्कट्य। काक। लङ्का॥ चर्मिवर्मिणोर्नलोपश्च॥ इति वाकिनादयः॥ १५८॥

भाषार्थ—यहाँ 'उदीचां वृद्धात्' पदों की अनुवृत्ति आती है। इस वाकिनादिगण में जो वृद्धसंज्ञक प्रातिपदिक नहीं है, उनसे आरम्भसामर्थ्य से 'फिञ्' प्रत्यय और 'कुक्' आगम होता है और जो अगोत्र वृद्धसंज्ञक प्रातिपदिक हैं, उनसे प्रत्यय पूर्वसूत्र से ही सिद्ध था, उनसे कुगागम इस सूत्र से होता है। उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में वाकिन आदि गणपठित प्रातिपदिकों से अपत्य अर्थ में 'फिञ्' प्रत्यय होता है और 'फिञ्' प्रत्यय के संयोग से वाकिनादि को 'कुक्' आगम होता है। जैसे—वाकिनस्यापत्यं वाकिनकायनिः। गौधेरकायनिः। दूसरों के मत में वाकिनिः। गौधेरिः॥ १५८॥

पुत्रान्तादन्यतरस्याम्॥ १५९॥

उदीचां वृद्धादित्यनुवर्त्तते। पुत्रान्तात् —५।१। अन्यतरस्याम् [अ०] प्राप्तविभाषेयम्। कुगागमेन संबध्यते। पुत्रान्ताद् वृद्धसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् फिञ् प्रत्ययः [अपत्यसामान्ये] तस्मिन् पुत्रान्तस्य कुगागमो विकल्पेन भवति। दाक्षी-पुत्रकायणिः। दाक्षीपुत्रायणिः। अन्येषां मतेन। दाक्षीपुत्रस्यापत्यं दाक्षीपुत्रिः। एवं सर्वत्र॥ १५९॥

भाषार्थ—यहाँ भी 'उदीचां वृद्धात्' पदों की अनुवृत्ति है। यह प्राप्त विभाषा है। 'उदीचां वृद्धा' (४।१।१५७) सूत्र से 'फिञ्' प्रत्यय प्राप्त था, इस सूत्र से 'कुक्' आगम का विकल्प किया गया है। उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में वृद्धसंज्ञक पुत्रान्त प्रातिपदिकों से अपत्य अर्थ में 'फिञ्' प्रत्यय होता है और इन पुत्रान्त शब्दों को प्रत्ययसंनियोग से विकल्प करके 'कुक्' आगम होता है। जैसे—दाक्षीपुत्रस्यापत्यं दाक्षीपुत्रकायणिः। दाक्षीपुत्रायणिः। दूसरों के मत में—दाक्षीपुत्रस्यापत्यं दाक्षीपुत्रिः। इसी प्रकार 'गार्गीपुत्रकायणिः आदि प्रयोग भी जानने चाहिएँ॥ १५९॥

प्राचामवृद्धात् फिन् बहुलम्॥ १६०॥

उदीचामिति निवृत्तम्। प्राचाम् —६।३। फिन् —१।१। बहुलम् —१।१। उदीचां प्राचामेकेषां बहुलमन्यतरस्यामित्यादयः शब्दाः पर्य्यायवाचिनः। तत्र प्राचां बहुलमिति शब्दद्वयस्य ग्रहणमेतदर्थम्—प्राचामित्याचार्यग्रहणं पूजार्थम्। बहुलमिति विकल्पार्थम्। अवृद्धात् प्रातिपदिकात् प्राचामाचार्याणां

मते बहुलं फिन् प्रत्ययो भवति [अपत्यसामान्ये]। ग्लुचुकस्यापत्यं ग्लुचुकायनिः। अहिचुम्बकायनिः। प्राचामिति किम्। ग्लौचुकिः। अवृद्धादिति किम्। श्यामगोरपत्यं श्यामगवः। बहुलग्रहणं क्वचिदवृद्धादपि प्रातिपदिकात् प्राचां मते फिन्न भवति। यथा—दाक्षिः। प्लाक्षिः॥ १६०॥

भाषार्थ—'उदीचाम्' पद की यहाँ अनुवृत्ति नहीं है। व्याकरणशास्त्र में 'उदीचाम् प्राचाम् एकेषाम्, बहुलम् अन्यतरस्याम् इत्यादि शब्दों को पर्यायवाची समझना चाहिये। इस सूत्र में फिर 'प्राचाम्, बहुलम्' दोनों शब्दों का ग्रहण क्यों किया? यहाँ 'प्राचाम्' का ग्रहण सम्मान के लिये और 'बहुलम्' विकल्प के लिये है। प्राच्य आचार्यों के मत में 'अवृद्ध' प्रातिपदिकों से अपत्य अर्थ में बहुल करके 'फिन्' प्रत्यय होता है। जैसे—ग्लुचुकस्यापत्यं ग्लुचुकायनिः। अहिचुम्बकायनिः। यहाँ 'प्राचाम्' का ग्रहण इसलिये है कि —'ग्लौचुकिः' यहाँ 'फिन्' न हो। और 'वृद्ध' का निषेध इसलिये किया है कि श्यामगोरपत्यं श्यामगवः। बहुलग्रहण से कहीं अवृद्ध प्रातिपदिकों से भी प्राच्याचार्यों के मत में फिन् प्रत्यय नहीं होता। जैसे—दाक्षिः। प्लाक्षिः॥ १६०॥

मनोर्जातावञ्यतौ षुक् च॥ १६१॥

मनोः —५।१। जातौ —७।१। अञ्यतौ —१।२। षुक् —१।१। च-[अ०]। जातिग्रहणादपत्यमिह नानुवर्त्तते। आकृतिग्रहणा जातिरिति जातिलक्षणम् उक्तं तदेव ग्राह्यम्। मनोः प्रातिपदिकाज्जाताव भिधेयेऽञ्-यतौ प्रत्ययौ भवतः। तत् प्रत्ययसंनियोगेन प्रातिपदिकस्य षुगागमश्च। मानुषः। मनुष्यः। जातिशब्दौ लोके प्रसिद्धावेतौ। अत्र सामान्यजातिग्रहणाद् 'यञञोश्चेति' गोत्रे विहितो लुगिह बहुवचने न भवति। मानुषाः॥

का०— अपत्ये कुत्सिते मूढे मनोरौत्सर्गिकः स्मृतः।
नकारस्य च मूर्धन्यस्तेन सिध्यति माणवः॥ १॥

जातावञ्यतौ विधीयेते। अपत्ये स्यादेवौत्सर्गिकोऽण् पश्चादर्थविशेषेण प्रयोगविशेषज्ञापनाय वचनम्। कुत्सितेऽधर्माचरणविषयलम्पटादिषु कुकर्मसु वर्त्तमाने मूढेऽनधीतविद्ये। अथवा—

अश्रुतश्च समुन्नद्धो दरिद्रश्च महामनाः।
अर्थांश्चाकर्मणा प्रेप्सुर्मूढ इत्युच्यते बुधैः॥ १॥
अनाहूतः प्रविशति ह्यपृष्टो बहुभाषते।
अविश्वस्ते विश्वसिति मूढचेता नराधमः॥ २॥

अधीतविद्योऽप्येतादृशे मूढेऽपत्येऽभिधेये मनोः प्रातिपदिकादौत्सर्गिकोऽण् प्रत्ययो भवति। तत् सन्नियोगे नकारस्य मूर्धन्यादेशः। एवमर्थेऽण् प्रत्यये कृते 'माणव' इति प्रयोगः सिध्यति। सामान्यापत्येऽण् तु भवत्येव। मूर्धन्या-देशाभावान्मनोरपत्यं मानवः॥ १६१॥

भाषार्थ—यहाँ सूत्र में जाति पद के ग्रहण से अपत्यार्थ की विवक्षा नहीं

है। क्योंकि प्रकृति-प्रत्यय के समुदाय से जाति का बोध होना चाहिये। जाति का लक्षण 'आकृतिग्रहणाजातिः'* इत्यादि पहले कहा गया है, उसी का यहाँ ग्रहण समझना चाहिये। जाति अभिधेय हो तो 'मनु' प्रातिपदिक से 'अञ्' और 'यत्' प्रत्यय होते हैं। और 'मनु' शब्द को प्रत्यय संनियोग से 'षुक्' का आगम होता है। जैसे—मानुषः। मनुष्यः। ये दोनों शब्द जाति अर्थ में प्रसिद्ध हैं। इस सूत्र में सामान्य जाति का ग्रहण होने से 'यञञोश्च' (अ० २।४।६४) सूत्र से गोत्र में बहुवचन में जो लुक् का विधान किया है, वह नहीं होता। जैसे—मानुषाः।

का०— अपत्ये कुत्सिते मूढे मनोरौत्सर्गिकः स्मृतः।
नकारस्य च मूर्धन्यस्तेन सिध्यति माणवः॥ १॥

जाति अर्थ में इस सूत्र से 'अञ् और यत्' प्रत्ययों का विधान किया है। और अपत्य अर्थ में सामान्य 'अण्' प्रत्यय हो ही जाता है। फिर इस कारिका का प्रयोजन अर्थविशेष में विशिष्ट प्रयोग का बताना है। अधर्मादि कुकर्मों में रत कुत्सित और मूर्ख अपत्य अर्थ में मनु प्रातिपदिक से सामान्य अण् प्रत्यय समझना चाहिये। अण् के सन्नियोग से मनु के नकार को मूर्धन्य णकारादेश होवे। जैसे—मनोरपत्यं कुत्सितो मूढो माणवः। कुत्सित मूढ अर्थ से अन्यत्र तो सामान्य अण् प्रत्यय होता ही है और मूर्धन्यादेश न होने से 'मनोरपत्यं मानवः' प्रयोग ही बनता है। 'मूढ़' शब्द के अर्थ को स्पष्ट करने के लिये संस्कृत में दो श्लोक महाभारतान्तर्गत उद्योगपर्व विदुर प्रजागर (अध्याय ३३ श्लोक ३५, ४१) के उद्धृत किये हैं। उनके अर्थ इस प्रकार हैं—

पढ़ाने में अयोग्य और मूर्ख के लक्षण—

जिसने कोई शास्त्र न पढ़ा, न सुना और जो अतीव घमण्डी, दरिद्र होकर बड़े बड़े मनोरथ करने हारा, विना कर्म से पदार्थों की प्राप्ति की इच्छा करनेवाला हो, उसी को बुद्धिमान् लोग 'मूढ़' कहते हैं॥ १॥

जो विना बुलाये सभा वा किसी के घर में प्रविष्ट हो, उच्च आसन पर बैठना चाहे, विना पूछे सभा में बहुत सा बके, विश्वास के अयोग्य वस्तु वा मनुष्य में विश्वास करे, वही 'मूढ़' और सब मनुष्यों में नीच मनुष्य कहाता है'॥ २॥

—(सत्यार्थ० चतुर्थ समु०)

अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम्॥ १६२॥

अपत्यम् —१।१। पौत्रप्रभृति —१।१। गोत्रम् —१।१। अपत्यमिति शब्द उत्पाद्यसंबन्धे वर्त्तते। तेनापत्यशब्देन पुत्रादीनां ग्रहणं भवति। पौत्रप्रभृति पौत्रादि यदपत्यं तद् गोत्रसंज्ञं भवति। गर्गस्यापत्यं पौत्रप्रभृति गार्ग्यः। वात्स्यः। पौत्रप्रभृतीति किम्। अनन्तरस्य गोत्रसंज्ञा मा भूत्। कुञ्जस्यानन्तरापत्यं कौञ्जिः। समर्थानां प्रथमाद्वेत्यनुवर्त्तते तेन पौत्रप्रभृतेः सामान्येन गोत्रसंज्ञा न भवति। अर्थाद् यस्यापत्य विवक्षा तस्य पौत्रप्रभृति गोत्रसंज्ञं भवति। यदि च

---

* द्रष्टव्य—'जातेरस्त्री विषया०' (४।१।६३)

सामान्येन गोत्रसंज्ञा स्यात्तर्हि गर्गोऽपि कंचित् प्रति पौत्रः। गर्गस्यापि गोत्रसंज्ञा स्यात् तर्हि गोत्रे प्रत्ययः कथं स्यात्। तस्मादयमर्थः। एकस्मिन् कुटुम्बे यावन्तो जना भवन्ति तेषु बहवः समर्था अपि। तत्र समर्थानां मध्ये यः प्रथम आदिसमर्थस्तस्य यदपत्यं पौत्रप्रभृति तद्गोत्रसंज्ञं भवति। तेन गर्गस्य गोत्रसंज्ञा न भवति। एवं सर्वत्र प्राप्ता गोत्रसंज्ञा प्रतिषिध्यते।

वा०—जीवद् वंश्यं च कुत्सितम्॥ १॥

जीवति तु वंश्ये युवेति वक्ष्यमाणसूत्रेण युवसंज्ञा प्राप्ता तस्या बाधनार्थं वार्तिकमिदम्। जीवति वंश्यं पित्रादि यस्य तज्जीवद्वंश्यमपत्यं कुत्सितं निन्दितं चेद् गोत्रसंज्ञमेव भवति। गार्ग्यस्त्वमसि जाल्म। वात्स्यस्त्वमसि जाल्म।

भा०—का पुनरिह कुत्सा। पितृतो लोके व्यपदेशवताऽस्वतन्त्रेण भवितव्यम्। य इदानीं पितृमान् स्वतन्त्रो भवति स उच्यते गार्ग्यस् त्वमसि जाल्म। वात्स्यस्त्वमसि जाल्म। न त्वं पितृतो व्यपदेशमर्हसीति। सर्वं स्पष्टमेव॥ १६२॥

भाषार्थ—'अपत्य' शब्द उत्पाद्य-सम्बन्ध को बताता है। इसलिये इस सूत्र में अपत्य शब्द से पुत्रादि का ग्रहण किया गया है। जो पौत्र प्रभृति(पोतादि से लेकर) अपत्य नाम सन्तान है, वह गोत्र संज्ञक होती है। जैसे—गर्गस्यापत्यं पौत्रप्रभृति गार्ग्यः। वात्स्यः। सूत्र में 'पौत्रप्रभृति' इसलिये कहा है कि अनन्तरापत्य (पुत्र) की गोत्र संज्ञा न होवे। जैसे—कुञ्जस्यानन्तरापत्यं कौञ्जिः। यहां गोत्र में विहित 'च्फञ्' प्रत्यय नहीं हुआ।

यहाँ 'समर्थानां प्रथमाद्वा' की अनुवृत्ति आती है। इसलिये पौत्रादि की सामान्यरूप में गोत्र संज्ञा नहीं होती। अर्थात् जिसके अपत्य को कहना चाहते हैं, उसके पौत्रादि की गोत्र संज्ञा होती है। यदि सामान्यरूप में गोत्र संज्ञा हो तो 'गर्ग' भी किसी का पौत्र है, अतः गर्ग की भी गोत्र संज्ञा होनी चाहिये। फिर गोत्र में प्रत्ययविधि की व्यवस्था कैसे हो? इस कारण से सूत्रकार का अभिप्राय यह है कि एक कुटुम्ब में जितने मनुष्य हैं, उनमें बहुतों के समर्थ होते हुए भी जो प्रथम समर्थ हो, और उसका जो पौत्रादि अपत्य हैं, उसकी गोत्र संज्ञा होती है। इस परिभाषा से गर्ग की गोत्र संज्ञा नहीं होती। इस प्रकार गोत्र संज्ञा की अतिव्याप्ति का प्रतिषेध किया गया है।

वा०—जीवद् वंश्यं च कुत्सितम्॥ १॥

इस वार्तिक का प्रयोजन यह है कि 'जीवति तु वंश्ये युवा' (४।१।१६३) इस अगले सूत्र से जो युवसंज्ञा प्राप्त होती है, उसका यह अपवाद विधान करता है। जिसके पितादि कुटुम्ब के वृद्ध पुरुष जीवित हों तो पौत्रादि सन्तानों के कुत्सित अपत्य की युवसंज्ञा न होकर गोत्रसंज्ञा ही होती है। जैसे—गार्ग्यस्त्वमसि जाल्म। वात्स्यस्त्वमसि जाल्म।

भा०—उपर्युक्त वार्तिक के उदाहरण में निन्दा किस प्रकार हुई? इसका उत्तर

यह है कि कुटुम्ब में जो पितर (वृद्धपुरुष) हैं, उनकी सन्तान को उनके अधीन रहना चाहिये। अर्थात् उनके चलाये नियमों का पालन करते हुए व्यवस्था में रहना चाहिये। जो सन्तान वृद्धपुरुषों के अनुशासन में न चलकर स्वेच्छा से आचरण करती हैं, वे कुत्सित कहलाती हैं—गार्ग्यस्त्वमसि जाल्म। वात्स्यस्त्वमसि जाल्म। अर्थात् कुत्सित सन्तान पितृजनों के नाम का व्यवहार करने योग्य नहीं है॥ १६२॥

जीवति तु वंश्ये युवा॥ १६३॥

अपत्यं पौत्रप्रभृतीत्यनुवर्त्तते। जीवति -७।१। तु [अ०] वंश्ये -७।१। युवा —१।१। वंशशब्दो दिगादिषु पठ्यते तस्माद् भवार्थे यत्। पूर्वस्मिन् सूत्रेऽपत्यग्रहणस्य प्रयोजनं नोक्तम्। पौत्रप्रभृतीति कथनेनापत्यस्यैव ग्रहणं स्यात् पुनरपत्यग्रहणस्यैतत् प्रयोजनम्। पौत्रप्रभृतीति प्रातिपदिकनिर्देशस्तत्र विभक्तिविपरिणामेन षष्ठी। पौत्रप्रभृतेर्यदपत्यमिति। वंश्ये पित्रादौ जीवति सति पौत्रप्रभृतेर्यदपत्यं तद् युवसंज्ञं भवति। गार्ग्यस्यापत्यं गार्ग्यायणः। वात्स्यायनः। पौत्रप्रभृतेरिति षष्ठी विपरिणामाच्चतुर्थादारभ्य युवसंज्ञा विधीयते। किन्तु गर्गस्य पौत्रस्य पित्रादौ जीवत्यपि युवसंज्ञा न भविष्यति। सामान्येन सर्वत्र गोत्रसंज्ञाविशेषत्वेन युवसंज्ञा च। गर्गस्य पौत्रस्य केवला गोत्रसंज्ञा। चतुर्थादारभ्य वंश्ये जीवति युवसंज्ञा, अन्यत्र गोत्रसंज्ञा। गोत्रसंज्ञायां युवसंज्ञाऽन्तर्हितैव भवति। अस्मिन् सूत्रे तु शब्द एवार्थे पठ्यते। तेन गोत्र-युवसंज्ञयोः समावेशो न भवति। अर्थाद् वंश्ये जीवति पौत्रप्रभृतेरपत्यं युवसंज्ञमेव भवति न तु गोत्रसंज्ञम्॥

वा०—वृद्धस्य च पूजायाम्॥ १॥

सत्कारयुक्तस्य वृद्धस्यापि युवसंज्ञा भवति। तत्रभवन्तो गार्ग्यायणाः। तत्रभवन्तो वात्स्यायनाः।

भा०—का पुनरिह पूजा। युवत्वं लोक ईप्सितं पूजेत्युपचर्यते। तत्रभवन्तश्च युवत्वेनोपचर्य्यमाणाः पूजिता भवन्ति। गोत्रसंज्ञायां प्राप्तायां युवसंज्ञा विधीयते॥ १६३॥

भाषार्थ—यहाँ 'अपत्य पौत्रप्रभृति' पदों की अनुवृत्ति है। अभिजनप्रबन्ध=जो उत्पादकों की परम्परा है, उसे वंश कहते हैं और जो उस वंश में होवे वह वंश्य कहाता है। पूर्वसूत्र में अपत्यग्रहण का प्रयोजन नहीं कहा है। यद्यपि पौत्रप्रभृति कहने से अपत्य का ही ग्रहण होता, पुनरपि अपत्य का ग्रहण इसलिए किया है—सूत्र में 'पौत्रप्रभृत्ति' यह प्रातिदपदिक का निर्देश किया है। और 'प्रातिपदिक-निर्देशाश्चार्थतन्त्रा भवन्ति' इस महाभाष्य के वचनानुसार इस पद में विभक्ति विपरिणाम (परिवर्त्तन) करके षष्ठी विभक्ति मानकर यह अर्थ किया जाएगा—पौत्रप्रभृतेर्यदपत्यम्=पौत्रादि जो अपत्य। इससे सूत्रार्थ यह होगा—वंश्य=उत्पादक परम्परा में पिता, पितामहादि वृद्ध पुरुषों के जीवित रहते हुए पौत्रादि के जो अपत्य (सन्तान) है, उसकी युवसंज्ञा होती है। जैसे—गार्ग्यस्यापत्यं गार्ग्यायणः। वात्स्य-स्यापत्यं वात्स्यायनः। 'पौत्रप्रभृत्ति' पद में विभक्ति विपरिणाम करके जो षष्ठी विभक्ति स्वीकार की है, उससे चतुर्थ सन्तान अर्थात् पौत्र की और उसके बाद

की सन्तान की युवसंज्ञा का विधान किया गया है। इस नियम से गर्ग के पौत्र की पितादि के जीवित रहते हुए भी युवसंज्ञा नहीं होगी। गोत्र संज्ञा का विधान सामान्यरूप से है और युवसंज्ञा उसका अपवाद वा विशेषरूप से विधान है। इससे पितादि के जीते हुए चतुर्थ सन्तान से लेकर युवसंज्ञा होती है अन्यत्र गोत्र संज्ञा। युवसंज्ञा गोत्रसंज्ञा में ही अन्तर्हित है। इस सूत्र में 'तु' शब्द 'एव' के अर्थ में है। जिससे निर्धारण होने से गोत्र-युवसंज्ञाओं का एकसाथ समावेश नहीं होता। अर्थात् वंश्य में पितादि के जीवित रहते हुए पौत्रादि की सन्तान युवसंज्ञक ही होगी, गोत्र संज्ञक नहीं।

वा०—वृद्धस्य च पूजायाम्॥ १॥

पाणिनि से भिन्न कुछ आचार्य गोत्रसंज्ञा को वृद्ध नाम से कहते हैं। पूजा (सत्कार) प्रकट करने में सम्मानित वृद्ध (गोत्रसंज्ञा) की भी युवसंज्ञा हो जाती है। जैसे—तत्रभवन्तो गार्ग्यायणाः। तत्रभवन्तो वात्स्यायनाः। गोत्र की युवसंज्ञा करने में पूजा (सत्कार) कैसे प्रकट होता है? इसका उत्तर महाभाष्यकार देते हैं—लोक में युवत्व=जिस अवस्था में युवसंज्ञा हो जाये, वह ईप्सित होने से सम्मानजनक मानी जाती है। 'तत्रभवन्तो गार्ग्यायणाः' इस वाक्य में गोत्र संज्ञा में युवसंज्ञा का व्यवहार सम्मान जनक है और सम्मान को व्यक्त करनेवाला 'तत्रभवन्तः' शब्द है। यह गोत्र संज्ञा की प्राप्ति में युवसंज्ञा का विधान किया गया है॥ १६३॥

भ्रातरि च ज्यायसि॥ १६४॥

अपत्यं पौत्रप्रभृत्तित्यनुवर्त्तते जीवतीति च। अवंश्यार्थोऽयमारम्भः। भ्रातरि—७।१। च [अ०]। ज्यायसि —७।१। ज्यायसि ज्येष्ठे भ्रातरि जीवति सति पौत्र-प्रभृतेर्यदपत्यं तत् पित्रादौ वंश्ये मृतेऽपि युवसंज्ञमेव भवति। यथा—गार्ग्यस्य गर्गपौत्रस्य द्वौ पुत्रौ तत्र गर्गस्य पौत्रे मृतेऽपि पूर्वजो गार्ग्यो भवति कनीयान् भ्राता गार्ग्यायणः॥ १६४॥

भाषार्थ—यहाँ 'अपत्यं पौत्रप्रभृति' तथा 'जीवति' पदों की अनुवृत्ति है। यह सूत्र वंश्य से भिन्न की युव संज्ञा करने के लिए है। पूर्वज वृद्ध पितृ आदि वंश्य कहलाते हैं, भ्राता की वंश्यसंज्ञा न होने से पूर्वसूत्र से युवसंज्ञा प्राप्त नहीं थी। जो बड़ा भाई जीवित हो और वंश्य पितादि की मृत्यु हो गई हो तो पौत्रादि की सन्तान की युवसंज्ञा होती है। यथा—गार्ग्यस्य=गर्गपौत्रस्य द्वौपुत्रौ=गर्ग के पौत्र के दो पुत्र हैं। गर्ग के पौत्र के मरने पर भी पौत्र के पुत्रों में बड़ा भाई 'गार्ग्य' तथा छोटा भाई 'गार्ग्यायण' कहलाएगा॥ १६४॥

वान्यस्मिन् सपिण्डे स्थविरतरे जीवति॥ १६५॥

ज्यायसीत्यनुवर्त्तते। वा। [अ०]। अन्यस्मिन् -७। १। सपिण्डे -७। १। स्थविरतरे —७। १। जीवति —७। १। अप्राप्तविभाषेयम्। अन्यस्मिन्निति भ्रातृनिवृत्यर्थम्। सपिण्डे समानपिण्डे। सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्त्तते।

समानोदकभावस्तु जन्मनाम्नोरवेदने॥ १॥ (मनुस्मृतौ) सप्तमे पुरुषे

सपिण्डता निवर्त्तते। षट्स्वपत्येषु सपिण्डता भवतीति। द्वयोर्मध्येऽत्यन्तः स्थविरः स्थविरतरः। जीवतीत्यनुवर्त्तमाने पुनर्जीवतिग्रहणं संज्ञितोऽपत्यस्य विशेषणार्थम्। भ्रातुरन्यस्मिन् सपिण्डे स्थविरतरे ज्यायसि जीवति सति पौत्रप्रभृतेर्यदपत्यं तज्जीवत् सद् विकल्पेन युवसंज्ञं भवति। गर्गस्यापत्यं गार्ग्यायणः गार्ग्यो वा। वात्स्यायनः। वात्स्यो वा। स्थविरतरग्रहणस्यैतत् प्रयोजनं ज्यायसीत्यनुवर्त्तनाद् गुणैरवस्थया चोत्कृष्टे यथा स्यात्। जीवतीति किम्। संज्ञिसपिण्डयोरेकस्मिन् मृते मा भूत्। अर्थाद् उभयोर्जीवतोः सतोर्विकल्पेन युवसंज्ञा स्यात्।

इतः सूत्रादग्रे जयादित्येन द्वे सूत्रे व्याख्याते—वृद्धस्यच्च पूजायाम्॥ यूनश्च कुत्सायाम्॥ तत्रास्मात् सूत्राद् विकल्पानुवृत्तिरपि कृता, तदसम्मतमेव। महाभाष्ये वार्त्तिकयोर्व्याख्यानात्॥ १६५॥

भाषार्थ—पूर्वसूत्र से 'ज्यायसि' पद की अनुवृत्ति है। यह अप्राप्त विभाषा है। यहाँ 'अन्यस्मिन्' पद से भ्राता की निवृत्ति होती है अर्थात् भ्राता से भिन्न सपिण्ड=सात पीढियों में यह सूत्र युवसंज्ञा का विधान करता है। सूत्र में पिण्ड शब्द पीढी शब्द के लिए आया है। कुटुम्ब में यह सपिण्डता सातवीं पीढी तक रहती है। इस विषय में संस्कृत में मनुस्मृति (अ० ५, श्लोक ६०) का प्रमाण भी दिया गया है। 'स्थविरतर' शब्द में आतिशयिक 'तरप्' प्रत्यय है। दो जनों में जो अतिशय वृद्ध हों उसे स्थविरतर कहते हैं। ऊपर से 'जीवति' पद की अनुवृत्ति आती है, पुनः इस सूत्र में 'जीवति' पद का ग्रहण इसलिये किया है कि यह 'जीवति' पद की संज्ञी अपत्य का विशेषण हो सके। भ्राता से भिन्न सपिण्ड=सात पीढियों में चाचा दादा आदि अधिक अवस्थावाले पुरुष के जीवित रहते हुए पौत्रादि का जो अपत्य (सन्तान) है, वह जीवित रहता हुआ विकल्प से युवसंज्ञक हो। जैसे—गर्गस्यापत्यं गार्ग्यायणः। गार्ग्यः। वात्स्यायनः। वात्स्यः। 'ज्यायसि' पद की अनुवृत्ति होते हुए भी 'स्थविरतर' पद का ग्रहण इसलिए किया है कि गुणों तथा अवस्था में जो उत्कृष्ट (बड़ा) हो, उसके जीवित रहते हुए यह संज्ञा हो। 'जीवति' पद का ग्रहण इसलिये है कि संज्ञी और स्थविरतर सपिण्ड दोनों में से एक के मरने पर यह युवसंज्ञा न हो। अर्थात् दोनों के जीवित रहते हुए ही यह विकल्प से युवसंज्ञा होनी चाहिये।

इस सूत्र से आगे जयादित्य ने दो सूत्र लिखकर व्याख्या की है—(१) वृद्धस्य* च पूजायाम्। (२) यूनश्च कुत्सायाम्। और इन दोनों सूत्रों में इस सूत्र से विकल्प की अनुवृत्ति करके व्याख्या की है। यह महाभाष्य से विरुद्ध होने से मानने योग्य नहीं है। क्योंकि यदि ये दोनों सूत्र होते तो महाभाष्यकार वार्त्तिक मानकर व्याख्या नहीं करते॥ १६५॥

* महाभाष्य के टीकाकार कैय्यट ने भी इन्हें वार्त्तिक ही मानते हुए लिखा है—'यूनश्च कुत्सायामिति सूत्रमनार्षम्।' 'सूत्रेषु तु वृद्धस्य च पूजायामिति कैश्चिद् वार्त्तिकदर्शनात प्रक्षिप्तम्।' —सं०

जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्॥ १६६ ॥

तस्यापत्यमित्यनुवर्त्तते। जनपदशब्दात् —५।१। क्षत्रियात् —५।१। अञ् —१।१। जनपदशब्दाद् देशवाचिनः। तत्र निवासार्थस्य प्रत्ययस्य जनपदे लुबिति लुप्। लुपि कृते क्षत्रियवाचिनो भवन्ति। जनपदशब्दा यदा क्षत्रियवाचिनो भवन्तितदा तेभ्योऽपत्यसामान्येऽञ् प्रत्ययो भवति। पंचालस्यापत्यं पाञ्चालः। इक्ष्वाकोरपत्यमैक्ष्वाकः। वैदेहः। जनपदशब्दादिति किम्। दशरथस्यापत्यं दाशरथिः। क्षत्रियादिति किम्। विदेहो नाम ब्राह्मणस्तस्यापत्यं वैदेहिः।

वा०—क्षत्रियसमानशब्दाज्जनपदात् तस्य राजन्यपत्यवत्॥ १ ॥

यथा पंचालादयः शब्दाः क्षत्रियवाचिनस्तथैव जनपददेशविशेष-वाचिनश्च। यदा क्षत्रियतुल्याः शब्दा देशवाचिनो भवन्ति तेषां स्वामिनि राजन्यभिधेयेऽपत्यवत् प्रत्ययो भवति। पंचालानां राजा पांचालः। वैदेहः। मागधः। इदं वार्त्तिकमग्रेऽप्यनुवर्त्तिष्यते॥ १ ॥

वा०—पूरोरण् वक्तव्यः॥ २ ॥

पूरुशब्दो जनपदवाची। तस्मात् प्राग्दीव्यतोऽणित्यधिकारादण् स्यादेव पुनस्तद्राजसंज्ञार्थं वचनम्। पूरूणां राजा पौरवः॥ २ ॥

वा०—पाण्डोर्ड्यण् वक्तव्यः॥ ३ ॥

युधिष्ठिरादीनां पितुः पाण्डोर्ग्रहणमत्र नास्ति। पाण्डुशब्दो द्व्यच् प्रातिपदिकं तस्माद् वक्ष्यमाणसूत्रेणाणि प्राप्ते वचनम्। पाण्डोरपत्यं पाण्डूनां राजा वा पाण्ड्यः। कथमेतज् ज्ञायते पाण्डुशब्देन युधिष्ठिरादिपितुर्ग्रहणं नास्ति। बाह्वादिभ्यश्चेत्यत्र वार्त्तिकमुक्तम्। बाह्वादिप्रभृतिषु येषां दर्शनं लौकिके गोत्रभाव इति। तदेतद् वार्त्तिकमिहाप्यनुवर्त्तते। तेन मुख्यस्यैव पाण्डोर्ग्रहणं भवति। अन्यस्य तु पाण्डव इत्येव॥ १६६ ॥

भाषार्थ—यहाँ 'तस्यापत्यम्' सूत्र की अनुवृत्ति आती है (जनपद शब्द देशवाची होते हैं और जनपदवाची शब्दों से निवासार्थ में जो प्रत्यय होता है, उसका (४।२।८१) 'जनपदे लुप्' सूत्र से अदर्शन होने से जनपद (देशविशेष) वाची पञ्चालादि शब्द क्षत्रियवाची हो जाते हैं। जनपदवाची शब्द जब क्षत्रियवाची हो जाते हैं, तब उनसे अपत्य अर्थ में 'अञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—पंचालस्यापत्यं पांचालः। इक्ष्वाकोरपत्यम् ऐक्ष्वाकः। वैदेहः। यहाँ 'जनपदशब्दात्' का ग्रहण इसलिये है कि—दशरथस्यापत्यं दाशरथिः। यहाँ 'अञ्' प्रत्यय न होवे और 'क्षत्रियात्' का ग्रहण इसलिये है कि—विदेहो नाम ब्राह्मणस्तस्यापत्यं वैदेहिः। यहाँ क्षत्रियवाची न होने से 'अञ्' न हो।

वा०—क्षत्रियसमानशब्दाज्जनपदात् तस्य राजन्यपत्यवत्॥ १ ॥

जैसे पंचालादिशब्द क्षत्रियवाची हैं, वैसे ही जनपद देशविशेषवाची हैं। जो क्षत्रियवाची शब्दों के तुल्य शब्द देशवाची होते हैं, उनसे राजा के सम्बन्ध में अपत्य के समान प्रत्यय होते हैं। जैसे—पंचालानां राजा पांचालः। वैदेहः। मागधः।

इस वार्त्तिक की अगले सूत्रों में भी अनुवृत्ति जाती है॥ १ ॥

वा०—पूरोरण् वक्तव्यः॥ २ ॥

पूरु शब्द जनपदवाची है। उससे राजा के सम्बन्ध में अण् प्रत्यय होता है। जैसे—पूरुणां राजा पौरवः। पूरु शब्द से 'प्राग्दीव्यतोऽण्' (४।१।८३) इस अधिकार से ही 'अण्' प्रत्यय प्राप्त है, पुनः अण् का विधान तद्राज संज्ञा करने के लिए है॥ २ ॥

वा०—पाण्डोर्ड्यण् वक्तव्यः॥ ३ ॥

यहाँ पाण्डु शब्द से युधिष्ठिरादि के पिता का ग्रहण नहीं है। पाण्डु शब्द द्व्यच् है, अतः अगले 'द्व्यञ्-मगध०' (४।१।१६८) सूत्र से 'अण्' की प्राप्ति में यह विधान किया है। पाण्डोरपत्यं पाण्डूनां राजा वा पाण्ड्यः। इस बात का कैसे बोध होता है कि यहाँ पाण्डुशब्द से युधिष्ठिरादि के पिता का ग्रहण नहीं है? इसका उत्तर इस प्रकार है—'बाह्वादिभ्यश्च' (४।१।९६) सूत्र पर वार्त्तिक में यह बात स्पष्ट कही है कि 'बाह्वादिप्रभृतिषु येषां दर्शनं लौकिकगोत्रभाव इति।' इस वार्त्तिक की यहाँ भी अनुवृत्ति है। इसमें कहा गया है कि अपत्याधिकार में जिन शब्दों से प्रत्यय विधान किया है, वे आदिपुरुषों (प्रथम प्रकृति) के बोधक हैं, लोकरूढ संज्ञा शब्दों के बोधक नहीं है। अतः मुख्य आदि पुरुष पाण्डु का ही इसमें ग्रहण है। उस से भिन्न पाण्डु शब्द से ड्यण् प्रत्यय न होने से 'पाण्डव' रूप ही बनेगा॥ १६६ ॥

साल्वेयगान्धारिभ्यां च॥ १६७॥

अञनुवर्तते। साल्वेय-गान्धारिभ्याम् —५।२। च [अ०] वृद्धसंज्ञके इमे प्रातिपदिके ताभ्यां ञ्यङ्प्राप्तः स बाध्यते। साल्वेय-गान्धारिभ्यां प्रातिपदिकाभ्यामपत्यसामान्ये तद्राजनि चाभिधेयेऽञ् प्रत्ययो भवति। साल्वेयस्यापत्यं साल्वेयः। गान्धारः। तस्य राजनीति पूर्वस्माद् वार्त्तिकादनुवर्त्तते। साल्वेयानां राजा साल्वेयः। गान्धारः॥ १६७॥

भाषार्थ—यहाँ 'अञ्' की अनुवृत्ति आती है। सूत्रपठित दोनों शब्द वृद्ध संज्ञक हैं, उन से 'वृद्धे त्०' सूत्र से ञ्यङ् प्रत्यय की प्राप्ति में यह बाधक प्रत्यय का विधान किया है। साल्वेय, गान्धारि प्रातिपदिकों से अपत्य अर्थ में और तद्राज अर्थ में 'अञ्' प्रत्यय होता है। साल्वेयस्यापत्यं साल्वेयः। गान्धारः। 'तस्य राजनि' इस वार्त्तिक की यहाँ भी अनुवृत्ति है। साल्वेयानां राजा साल्वेयः। गान्धारः॥ १६७॥

द्व्यञ्-मगध-कलिङ्ग-सूरमसादण्॥ १६८॥

द्व्यञ्...सूरमसात् —५।१। अण् —१।१। जनपदशब्दात् क्षत्रिया-दित्यनुवर्त्तते। अञ्बाधनार्थमण्विधानम्। द्व्यच्प्रातिपदिकान् मगधादिभ्य-श्चापत्ये तद्राजनि चाण् प्रत्ययो भवति। अङ्गस्यापत्यं तद्राजा वा आङ्गः। वाङ्गः। मागधः। कालिङ्गः। सौरमसः। तद्राजनीति वार्त्तिकादेवानुवर्त्तते॥ १६८॥

भाषार्थ—यहाँ 'जनपद्शब्दात् क्षत्रियात्' पदों की अनुवृत्ति है। यह सूत्र अञ्

प्रत्यय का बाधक और 'अण्' प्रत्यय का विधान करता है। जनपद क्षत्रियवाची द्व्यच्=दो स्वरवाले और मगध, कलिङ्ग, सूरमस, प्रातिपदिकों से अपत्य और तद्राज अर्थ में अण् प्रत्यय होता है। जैसे—अङ्गस्यापत्यं तद्राजा वा आङ्गः। वाङ्गः। मागधः। कालिङ्गः। सौरमसः। 'तस्य राजनि' पद की वार्त्तिक सूत्र से ही अनुवृत्ति आती है॥१६८॥

वृद्धेत्कोसलाजादाञ् ञ्यङ्॥१६९॥

जनपदशब्दात् क्षत्रियादित्यनुवर्त्तते। वृद्धेत्...दात् -५।१। ञ्यङ् -१।१। अञोऽपवादः। वृद्धसंज्ञकादिकारान्तात् कोसल-अजादाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां चापत्ये तद्राजे चाभिधेये ञ्यङ् प्रत्ययो भवति। सौवीरस्यापत्यं तद्राजो वा सौवीर्य्यः। दार्व्यः। अवन्तेरपत्यं तद्राजो वा आवन्त्यः। कौन्त्यः। कौसल्यः। आजाद्यः। तपरकरणं तत्कालार्थम्॥१६९॥

भाषार्थ—यहाँ 'जनपद शब्दात् क्षत्रियात्' पदों की अनुवृत्ति है। यह सूत्र 'अञ्' का अपवाद है। जनपद-क्षत्रियवाची वृद्धसंज्ञक, इकारान्त शब्दों और कोसल, अजाद प्रातिपदिकों से अपत्य और तद्राज अर्थ में 'ञ्यङ्' प्रत्यय होता है। जैसे—वृद्धसंज्ञक-सौवीरस्यापत्यं तद्राजो वा सौवीर्य्यः। दार्व्यः। इकारान्त—अवन्तेरपत्यं तद्राजो वा आवन्त्यः। कौन्त्यः। कौसल्यः। आजाद्यः। सूत्र में तपरकरण तत्काल ग्रहण के लिये है॥१६९॥

कुरुनादिभ्यो ण्यः॥१७०॥

जनपदशब्दात् क्षत्रियादित्यनुवर्त्तते। कुरुनादिभ्यः -५।३। णः -१।१। नकार आदौ येषां ते नादयः। कुरुश्च नादयश्च तेभ्यः। कुरुशब्दादञोऽपवादो द्व्यच्त्वादण् प्राप्तस्तस्यायमपवादः। कुरुशब्दान्नादिभ्यश्चापत्ये तद्राजे चाभिधेये ण्यः प्रत्ययो भवति। कुरोरपत्यं तद्राजो वा कौरव्यः। नादि—निचकाया अपत्यं तद्राजो वा नैचक्यः। नैषो नाम जनपदस्तस्य नैष्यः। नैषध्यः॥१७०॥

भाषार्थ—यहाँ 'जनपद शब्दात् क्षत्रियात्' पदों की अनुवृत्ति है। 'कुरु' शब्द से सामान्य 'अञ्' प्रत्यय का अपवाद द्व्यच् होने से 'अण्' प्रत्यय प्राप्त है, यह 'ण्य' प्रत्यय उसका बाधक है। जनपद-क्षत्रियवाची कुरु शब्द और नकारादि प्रातिपदिकों से अपत्य और तद्राज अर्थ में 'ण्य' प्रत्यय होता है। जैसे—कुरोरपत्यं तद्राजो वा कौरव्यः। नकरादि-निचकाया अपत्यं तद्राजो वा नैचक्यः। नैषो नाम जनपदस्तस्य अपत्यं तद्राजो वा नैष्यः। नैषध्यः॥१७०॥

साल्वावयवप्रत्यग्रथकलकूटाश्मकादिञ्॥१७१॥

अञोऽपवादः। जनपदशब्दात् क्षत्रियादित्यनुवर्त्तते। साल्व-कूटाश्मकात् —५।१। इञ् —१।१। साल्वा नाम क्षत्रियास्तेषां निवासो जनपद इति निवासार्थस्य प्रत्ययस्य लुप्। तस्य साल्वस्यावयववाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः प्रत्यग्रथ, कलकूट, अश्मक, इत्येतेभ्यश्चापत्ये तद्राजे चेञ् प्रत्ययो भवति। बुध, अजकुन्द, अजमीढ़, इत्यादयः साल्वावयवाः। बुधस्यापत्यं तद्राजो वा

बौधिः । आजक्रन्दिः । आजमीढ़िः । प्रात्यग्रथिः । कालकूटिः । आश्मकिः ॥ १७१ ॥

भाषार्थ—यह सूत्र 'अञ्' का अपवाद है। यहाँ 'जनपदशब्दात् क्षत्रियात्' पदों की अनुवृत्ति है। साल्व नामक क्षत्रिय हैं, उनसे निवासार्थ में प्रत्यय का 'जनपदे लुप्' (४ । २ । ८१) सूत्र से लुप् होता है। साल्व नामक देशविशेष के अवयववाची और प्रत्यग्रथ, कलकूट, अश्मक प्रातिपदिकों से अपत्य और तद्राज अर्थ में 'इञ्' प्रत्यय होता है। बुध, अजक्रन्द, अजमीढ, इत्यादि साल्व-अवयव हैं। जैसे—साल्वावयव—बुधस्यापत्यं तद्राजो वा बौधिः । आजक्रन्दिः आजमीढिः ॥ प्रात्यग्रथिः । कालकूटिः । आश्मकिः ॥ १७१ ॥

ते तद्राजाः ॥ १७२ ॥

ते —१ । ३ । तद्राजाः —१ । ३ । त इतिशब्दः पूर्वोक्तं परामृशति। तत्रापत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रमिति मध्ये संज्ञाकरणस्यैतत् प्रयोजनम्—जनपदशब्दादित्यारभ्याञादिप्रत्ययानां तद्राजसंज्ञा यथा स्यात्। तेऽञादयः प्रत्ययास्तद्राजसंज्ञा भवन्ति। अस्याः फलमुक्तं द्वितीयाध्यायस्य चतुर्थपादे 'तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम्' इति॥ १७२ ॥

भाषार्थ—'ते' शब्द पूर्वोक्त 'जनपदशब्दात्०' (४ । १ । १६६) सूत्र से लेकर विहित समस्त प्रत्ययों का सूचक है। 'अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम्' (४ । १ । १६२) सूत्र से बीच में संज्ञा करने का यह प्रयोजन है कि उसके परवर्ती 'जनपदशब्दात्०' (४ । १ । १६६) सूत्र से लेकर जो अञादिप्रत्ययों का विधान किया है, उन्हीं की तद्राज संज्ञा होवे, अन्यों की नहीं। 'जनपदशब्दात्०' (४ । १ । १६६) सूत्र से लेकर यहाँ तक जो अञादि प्रत्यय कहे हैं, उनकी 'तद्राज' संज्ञा होती है। इस संज्ञा का फल द्वितीयाध्याय के चतुर्थपाद में 'तद्राजस्य बहुषु०' (२ । ४ । ६२) सूत्र से बहुवचन में प्रत्यय का लुक् होता है॥ १७२ ॥

कम्बोजाल्लुक् ॥ १७३ ॥

कम्बोजात् —५ । १ । लुक् —१ । १ । जनपदशब्दात् क्षत्रियवाचिनः कम्बोजप्रातिपदिकाद्विहितस्य प्रत्ययस्य लुग्भवति। कम्बोजस्यापत्यं तद्राजो वा कम्बोजः ।

वा०—कम्बोजादिभ्यो लुग्वचनं चोलाद्यर्थम्॥ १ ॥

चोलः । शकः । केरलः । यवनः । इत्यादिभ्योऽपि विहितस्य प्रत्ययस्यानेनैव लुक् । कम्बोजाद्याकृतिगणः ॥ १७३ ॥

भाषार्थ—जनपद-क्षत्रियवाची कम्बोज प्रातिपदिक से अपत्य और तद्राज अर्थ में विहित 'अञ्' प्रत्यय का लुक् होता है। जैसे—कम्बोजस्यापत्यं तद्राजो वा कम्बोजः ।

वा०—कम्बोजादिभ्यो लुग्वचनं चोलाद्यर्थम्॥ १ ॥

इस सूत्र से जो 'कम्बोज' शब्द से लुक् कहा है, वह कम्बोजादि से कहना चाहिये। जैसे—चोलः । शकः । केरलः । यवनः । इत्यादि शब्दों से भी अपत्य और

तद्राज अर्थ में विहित प्रत्यय का इसी से लुक् होता है। कम्बोजादि आकृतिगण है॥ १७२॥

स्त्रियामवन्तिकुन्तिकुरुभ्यश्च॥ १७४॥

स्त्रियाम् —७।१। अवन्तिकुन्तिकुरुभ्यः —५।३। च [अ०] अवन्तिकुन्तिकुरुभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो विहितस्य तद्राजसंज्ञकस्य प्रत्ययस्य स्त्रियामभिधेयायां, लुग्भवति। अवन्तेरपत्यं कन्या तद्राजी वा अवन्ती। कुन्ती। कुरूः। अवन्ति-कुन्तिभ्यामितो मनुष्यजातेरिति ङीष्। कुरुशब्दाद् ऊङुत इत्यूङ्। स्त्रियामिति किम्। आवन्त्यः। कौन्त्यः। कौरव्यः॥ १७४॥

भाषार्थ—यदि स्त्री अपत्य अथवा राज्ञी अभिधेय हो तो अवन्ति, कुन्ति, कुरु शब्दों से विहित तद्राज संज्ञक प्रत्यय का लुक् होता है। जैसे—अवन्तेरपत्यं कन्या तद्राजी वा अवन्ती। कुन्ती। कुरूः। यहाँ अवन्ति कुन्ति शब्दों से 'इतो-मनुष्यजातेः' (४।१।६५) सूत्र से 'ङीष्' और कुरु शब्द से 'ऊङुतः' (४।१।६६) सूत्र से स्त्रीलिङ्ग में 'ऊङ्' प्रत्यय हुआ है। यहाँ 'स्त्रियाम्' का ग्रहण इसलिये है कि—आवन्त्य*। कौन्त्यः। कौरव्यः। यहाँ स्त्री अभिधेय न होने से लुक् नहीं हुआ॥ १७४॥

अतश्च॥ १७५॥

स्त्रियामित्यनुवर्त्तते। अतः —५।१। च-[अ०] तद्राजसंज्ञकस्याकार-प्रत्ययस्य स्त्रियामभिधेयायां लुग्भवति। मद्राणां राज्ञी मद्री। शूरसेनी। जाति-लक्षणोऽत्र ङीष्। अत इति तदन्तविधिर्न भवति। कुतः। अवन्त्यादिभ्यो लुग्वचनस्य ज्ञापकत्वात्। यद्यवन्त्यादिभ्यो विहितस्य ञ्यङ्प्रत्ययस्य ण्यप्रत्ययस्य च तदन्तविधिना लुक् स्यात्तर्ह्यवन्त्यादिभ्यो लुग्वचनमनर्थकं स्यात्। तेन ज्ञापके-नेह न भवति—आम्बष्ठ्या। सौवीर्य्या। अस्मिन् सूत्रे तद्राजसंज्ञामात्रस्य प्रत्ययस्य लुग् भवति। अर्थात् पंचमाध्यायस्य तृतीयपादान्ते विहितानां तद्राजसंज्ञानामकारप्रत्ययानां लुग् भवति। यथा पर्शोरपत्यं द्व्यञ्मगधेत्यण्। तस्यानेन स्त्रियां लुक् ततः पर्श्वादियौधेयादिभ्यामणञाविति पांचमिकेन स्वार्थेऽण्। तस्याऽप्यनेन लुक्। पर्शूः। रक्षाः आसुरी॥ १७५॥

भाषार्थ—यहाँ 'स्त्रियाम्' पद की अनुवृत्ति आती है। जो स्त्री अपत्य अथवा राज्ञी अभिधेय हो तो तद्राज संज्ञक अकार प्रत्यय का लुक् होता है। जैसे—मद्राणामपत्यं राज्ञी वा मद्री। शूरसेनी। इन में 'जातेरस्त्री०' (४।१।६३) सूत्र से जाति लक्षण ङीष् प्रत्यय हुआ है। इस सूत्र में 'अतः' पद में तदन्तविधि अर्थात् अकारान्त प्रत्यय का लुक् इसलिये नहीं होता कि 'स्त्रियामवन्ति०' (४।१।१७४) कि इससे पूर्वसूत्र में अवन्ति आदि शब्दों से जो लुक् कहा है, वही तदन्तविधि

---

* यहाँ अवन्ति और कुन्ति शब्दों से इकारान्त होने से 'वृद्धेत्०' (४।१।१६९) सूत्र से ञ्यङ् और कुरु शब्द से ण्य प्रत्यय 'कुरुनादि०' (४।१।१७०) इस सूत्र से होता है।
—सम्पादक

न होने में ज्ञापक है। यदि अवन्ति आदि से विहित 'ञ्यङ्' प्रत्यय का और 'ण्य' प्रत्यय का तदन्तविधि मानकर लुक् हो जावे, तो अवन्ति आदि से लुक् करना निरर्थक ही हो जाये। इस ज्ञापक से यहाँ लुक् नहीं होता—आम्बष्ठ्या*। सौवीर्य्या। इस सूत्र में तद्राजसंज्ञक प्रत्यय मात्र का लुक् होता है। अर्थात् पंचमाध्याय के तृतीयपाद के अन्त में विहित तद्राज संज्ञक अकार प्रत्ययों का भी इससे लुक् होता है। जैसे 'पर्शोरपत्यं' इसमें 'द्व्यञ्मगध०' (४।१।१६८) सूत्र से अण्, उसका इससे लुक्। तत्पश्चात् 'पार्श्वादियौधेयादि०' (५।३।११७) सूत्र से (पंचमाध्याय में) स्वार्थ में अण्। उसका भी इससे लुक्। पर्शूः। रक्षाः। आसुरी॥ १७५॥

न प्राच्यभर्गादियौधेयादिभ्यः॥ १७६॥

स्त्रियामित्यनुवर्त्तते। न [अ०]। प्राच्यभर्गादियौधेयादिभ्यः —५।३। प्राग्भवाः प्राच्याः क्षत्रियाः। भर्गादयो यौधेयादयश्च गणशब्दाः। प्राच्यभर्गादि-यौधेयादिभ्यो विहितस्य तद्राजसंज्ञकस्य प्रत्ययस्य स्त्रियामभिधेयायां लुङ् न भवति। प्राच्याः—अङ्गस्यापत्यं तद्राजी वा आङ्गी। वाङ्गी। मागधी। भार्गी। कारुषी। यौधेयी। शौभ्रेयी। युधाया अपत्यं द्व्यच इति ढक्। तस्माद् वृद्धत्वाद् ञ्यङ् प्राप्तस्तस्य तु लुक् प्राप्नोत्येव न पश्चाद् यौधयादिभ्यः स्वार्थे तद्राजसंज्ञः पाञ्चमिकेनाञ् विधीयते तस्यापि लुग्भवतीत्युक्तं तदनेन प्रतिषिध्यते। यौधेयशब्दाड् ढगन्तान् ङीप् प्राप्नोति लुकि प्रतिषिद्धेऽञन्ताज् जातिलक्षणो ङीन् भवति। तत्र स्वरे विशेषः। यदि ङीप् स्यात्तर्हि उदात्तनिवृत्तिस्वरो ङीप उदात्तत्वं स्यात्। ङीनि सत्याद्युदात्तत्वम्। अनेनैव ज्ञापकेन पांचमिकस्य तद्राजसंज्ञस्यातश्चेति लुग् भवति। यदि पाञ्चमिकस्य न स्याद् यौधेयादिभ्यो लुक् प्रतिषेधोऽनर्थकः स्यात्।

अथ भर्गादयः—भर्ग। करूष। केकय। कश्मीर। साल्व। सुस्थाल। उरश। उरस। कौरव्य॥ इति भर्गादिः॥ अथ यौधेयादयः-यौधेय। शौभ्रेय। शौकेय। शौक्नेय। ग्रावाणेय। वार्त्तेय। धार्त्तेय। धौर्त्तेय। त्रिगर्त्त। भरत। उशीनर॥ इति यौधेयादिः॥ १७६॥

इति चतुर्थाध्यायस्य प्रथमः पादः समाप्तः॥

भाषार्थ—यहाँ 'स्त्रियाम्' पद की अनुवृत्ति है। प्राच्य=पूर्वदेश के क्षत्रियों के विशिष्ट नामों और भर्गादि, यौधेयादि गणों में पठित प्रातिपदिकों से विहित तद्राज संज्ञक प्रत्यय का स्त्री अपत्य अथवा राज्ञी अभिधेय हो तो लुक् नहीं होता है। जैसे—प्राच्य—अङ्गस्यापत्यं तद्राजी वा आङ्गी। वाङ्गी। मागधी। भर्गादि-भार्गी। कारूषी। यौधेयादि-यौधेयी। शौभ्रेयी। इत्यादि।

'यौधेयी' प्रयोग में—'युधाया अपत्यम्' विग्रह करके 'द्व्यचः' (४।१।१२१)

---

* अत्र आम्बष्ठ-सौवीर शब्दाभ्यामपत्यार्थे 'वृद्धेत्' (४।१।१६९) सूत्रेण ञ्यङ् प्रत्ययः। तदन्ताच् चाप् प्रत्ययः। —अनुवादक

सूत्र से 'ढक्' प्रत्यय करके वृद्ध संज्ञक होने से 'वृद्धेत्०' (४।१।१६९) सूत्र से 'ञ्यङ्' प्रत्यय होता है, उसका तो लुक् हो जाता है। तत्पश्चात् 'यौधेय' शब्द से 'पार्श्वादियौधेयादिभ्योऽणञौ' (५।३।११७) सूत्र से जो स्वार्थ में तद्राजसंज्ञक 'अञ्' प्रत्यय होता है, उसका जो लुक् प्राप्त है, उसका इससे प्रतिषेध किया गया है। ढक् प्रत्ययान्त 'यौधेय' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में 'ङीप्' प्राप्त होता है और लुक् का प्रतिषेध होने से अञ् प्रत्ययान्त से जातिलक्षण 'ङीन्' प्रत्यय होता है। 'ङीप्' और 'ङीन्' प्रत्ययों में स्वर का भेद है। यदि लुक् होने पर 'ङीप्' होता है तो उदात्तनिवृत्ति स्वर से 'ङीप्' उदात्त होता है और लुक् न होने से 'ङीन्' प्रत्यय होने पर प्रत्यय के 'नित्' होने से आद्युदात्त स्वर होता है।

इसी लुक् निषेध करनेवाले सूत्र से यह स्पष्ट होता है कि पंचमाध्याय के तद्राजसंज्ञक अकार प्रत्यय का 'अतश्च' (४।१।१७५) सूत्र से लुक् होता है। यदि पाञ्चमिक तद्राजसंज्ञक प्रत्यय का लुक् नहीं होवे, तो यौधेयादि शब्दों से लुक् का प्रतिषेध करना निरर्थक हो जाता है॥ १७६॥

यह चतुर्थ अध्याय का प्रथम पाद समाप्त हुआ॥

अथ चतुर्थाध्यायस्य द्वितीयः पादः

तेन रक्तं रागात् ॥ १ ॥

समर्थानां प्रथमाद्वेति प्राग्दीव्यतोऽणिति च सर्वमनुवर्त्तते। तेन—३ । १ । रक्तम् —१ । १ । रागात् —५ । १ । रागात्=रक्तवाचिनस्तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकाद् रक्तमित्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्यया भवन्ति। कुसुम्भेन रक्तं वस्त्रं कौसुम्भम्। कषायेण रक्तं वस्त्रं काषायम्। मांजिष्ठम्। रागादिति किम्। इह मा भूत्—देवदत्तेन रक्तं वस्त्रम्। हारिद्रौ कुक्कुटस्य पादावित्यादिप्रयोगेषूपमानात्प्रत्ययो भवति—हरिद्रया रक्ताविव ॥ १ ॥

भाषार्थ—यहाँ 'समर्थानां प्रथमाद्वा' (४ । १ । ८२) और 'प्राग्दीव्यतोऽण्' (४ । १ । ८३) इन सूत्रों की अनुवृत्ति है। तृतीया समर्थ राग (रङ्ग) वाची प्रातिपदिकों से रक्त=रंगने अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं। जैसे—कुसुम्भेन रक्तं वस्त्रं कौसुम्भम्। कषायेण रक्तं वस्त्रं काषायम्। माञ्जिष्ठम्, इत्यादि। 'यहाँ 'रागात्' का ग्रहण इसलिये है कि—देवदत्तेन रक्तं वस्त्रम्। यहाँ रागवाची न होने से देवदत्त से प्रत्यय नहीं हुआ। इस सूत्र से रागवाची शब्दों से रक्त अर्थ में प्रत्यय का विधान किया है, इसलिये 'हारिद्रौ कुक्कुटस्य पादौ' इत्यादि में प्रत्यय प्राप्त नहीं है, क्योंकि वे रंगे हुए नहीं हैं। इसका उत्तर यह है, यहाँ 'हरिद्रया रक्ताविव' उपमानवाची मानकर प्रत्यय हुआ है।

लाक्षारोचनाट् ठक् ॥ २ ॥

तेन रक्तमित्यनुवर्त्तते। लाक्षारोचनात् —५ । १ । ठक् —१ । १ । तृतीयासमर्थाभ्यां लाक्षारोचनाप्रातिपदिकाभ्यां रक्तार्थे ठक् प्रत्ययो भवति। लाक्षया रक्तं वस्त्रं लाक्षिकम्। रौचनिकम्। अधिकारादण् प्राप्तः स बाध्यते।

वा०—ठक् प्रकरणे शकलकर्दमाभ्यामुपसंख्यानम् ॥ १ ॥

शाकलिकम्। कार्दमिकम् ॥ १ ॥

वा०—नील्या अन् ॥ २ ॥

नील्या रक्तं वस्त्रं नीलम् ॥ २ ॥

वा०—पीतात् कन् ॥ ३ ॥

पीतेन रक्तं वस्त्रं पीतकम् ॥ ३ ॥

वा०—हरिद्रामहारजनाभ्यामञ् ॥ ४ ॥

हारिद्रम्। माहाराजनम् ॥ ४ ॥ सर्वं स्पष्टतरमेव ॥

अस्मिन् सूत्रे शकल-कर्दमशब्दौ जयादित्येन सूत्रे पठित्वा व्याख्यातौ, तद्भ्रान्तिमूलकमस्ति, वार्त्तिके तयोः पठितत्वात्। तत्र जयादित्येनेदमप्युक्तं

शकल-कर्दमाभ्यामणपीष्यते तत्सर्वं त्याज्यमेव प्रमाणाऽभावात्। अत्र कैय्यटेनाप्युक्तं 'शकल-कर्दमयोः पाठोऽनार्ष इति'। तेन ज्ञायते बहुकालादारभ्य केनचिद् देवानां प्रियेण वार्त्तिकस्थौ शब्दौ भ्रमात् सूत्रे लिखितौ॥ २॥

भाषार्थ—यहाँ 'तेन रक्तम्' पदों की अनुवृत्ति है। यह पूर्वसूत्र का अपवादसूत्र है। तृतीयासमर्थ लाक्षा और रोचन प्रातिपदिकों से रक्त (रंगने) अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है। जैसे—लाक्षया रक्तं वस्त्रं लाक्षिकम्। रौचनिकम्। अधिकार होने से यहाँ 'अण्' प्रत्यय प्राप्त था, उसका बाधक इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय हो गया है।

वा०—ठक्प्रकरणे शकल-कर्दमाभ्यामुपसंख्यानम्॥ १॥

यह वार्त्तिक भी 'अण्' प्रत्यय के बाधक 'ठक्' का विधान करता है। तृतीयासमर्थ शकल-कर्दम प्रातिपदिकों से रक्त अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है। जैसे—शकलेन रक्तं शाकलिकम्। कार्द्दमिकम्॥ १॥

वा०—नील्या अन्॥ २॥

तृतीया समर्थ 'नीली' प्रातिपदिक से रक्त अर्थ में 'अन्' प्रत्यय होता है। जैसे—नील्या रक्तं वस्त्रं नीलम्॥ २॥

वा०—पीतात् कन्॥ ३॥

तृतीया समर्थ 'पीत' प्रातिपदिक से रक्त अर्थ में 'अन्' प्रत्यय होता है। जैसे—पीतेन रक्तं वस्त्रं पीतकम्॥ ३॥

वा०—हरिद्रा महारजनाभ्यामञ्॥ ४॥

तृतीयासमर्थ हरिद्रा-महारजन प्रातिपदिकों से रक्त अर्थ में अञ् प्रत्यय होता है। जैसे—हरिद्रया रक्तं वस्त्रं हारिद्रम्। माहारजनम्।

इस सूत्र में काशिकाकार जयादित्य ने शकल और कर्दम शब्दों को सूत्र में पढ़कर व्याख्या की है। यह उनकी भ्रान्ति ही है। क्योंकि इन शब्दों का वार्त्तिक में पाठ है, और जयादित्य का यह कथन भी भ्रान्तिमूलक है कि शकल-कर्दम शब्दों से 'अण्' प्रत्यय भी इष्ट है, क्योंकि इसमें प्रमाण नहीं है। महाभाष्य के टीकाकार कैय्यट ने भी 'शकल-कर्दमयोः सूत्रे पाठोऽनार्षः' कहकर इस बात की पुष्टि की है। कैय्यट के इस पाठ से स्पष्ट है कि सूत्र में यह अनार्ष पाठ बहुत पहले से चला आ रहा है, और किसी भ्रान्त व्यक्ति ने भ्रमवश वार्त्तिक के शब्दों को सूत्र में लिखा है॥ २॥

नक्षत्रेण युक्तः कालः॥ ३॥

तेनेति तृतीयासमर्थमनुवर्त्तते। नक्षत्रेण —३।१। युक्तः —१।१। कालः —१।१। नक्षत्रशब्देन विशेषवाचिनां ग्रहणम्। युक्त इति विशेष्यतयार्थनिर्देशः, कालस्तस्य विशेषणम्। तृतीयासमर्थान् नक्षत्रवाचिनः प्रातिपदिकाद् युक्तः-काल इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति। नक्षत्रेण युक्ते चन्द्रमसि नक्षत्रशब्दो वर्त्तते। तेन नक्षत्रयुक्तेन पुष्येण चन्द्रमसा युक्तः कालः पौषी रात्रिः। पौषमहः। सामान्येनाधिकारादणेव भवति। विशेषत्वेन यो यतः प्राप्नोति स ततो

भविष्यति। नक्षत्रेणेति किम्-चन्द्रमसा युक्ता रात्रिः। काल इति किम्-पुष्येण युक्तश्चन्द्रमाः॥ ३॥

भाषार्थ—यहाँ 'तेन' तृतीया समर्थविभक्ति की अनुवृत्ति है। 'नक्षत्र' शब्द से नक्षत्रविशेषवाची शब्दों का ग्रहण है, स्वरूप ग्रहण नहीं है। 'युक्तः' पद से विशेष्य होने से प्रत्ययार्थ का निर्देश किया गया है और 'कालः' पद उसका विशेषण है। तृतीयासमर्थ नक्षत्र विशेषवाची प्रातिपदिकों से 'युक्तःकालः' इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है। 'अप्राप्तिपूर्विका प्राप्तिर्योगः' इस नियम के अनुसार काल-नक्षत्र का योग नहीं हो सकता। क्योंकि नित्य वर्त्तमान होने से उनका सन्निकर्ष-विप्रकर्ष नहीं होता है। इसलिये इस सूत्र में ऐसा समझना चाहिये कि यहाँ 'नक्षत्र' शब्द नक्षत्र से युक्त चन्द्रमा का बोधक है, इसलिये चन्द्रमा के साथ पुष्यादि नक्षत्रों का संयोगकाल कहना अभीष्ट है। जैसे—नक्षत्रयुक्तेन पुष्येण चन्द्रमसा युक्तः कालः—पौषी रात्रिः। पौषमहः। यहाँ सामान्य अधिकार से 'अण्' प्रत्यय होता है और जिस नक्षत्रवाची से विशेष विधान किया जायेगा, वह उससे हो जायेगा। सूत्र में 'नक्षत्रेण' पद इसलिये पढ़ा है—'चन्द्रमसा युक्ता रात्रिः' यहाँ प्रत्यय न हो। और 'कालः' पद का ग्रहण इसलिये है—'पुष्येण युक्तश्चन्द्रमाः' यहाँ प्रत्यय न हो॥ ३॥

लुबविशेषे॥ ४॥

लुप् —१।१। अविशेषे —७।१। पूर्वसूत्रेण विहितस्य प्रत्ययस्य लुब् विधीयते। अहोरात्रः कालो नक्षत्रेण युज्यते, तस्याहोरात्रस्य सामान्यवचने विहितस्य प्रत्ययस्य लुब् भवति। पुष्येण युक्तः कालोऽद्य पुष्यः। अद्य कृत्तिका। अद्य रोहिणी। अविशेष इति किम्। पौषो मुहूर्त्तः॥ ४॥

भाषार्थ—पूर्वसूत्र से विहित प्रत्यय का लुप् (अदर्शन) विधान किया जाता है। अविशेषे=जहाँ काल का अवयवरूप कोई विषेश अर्थ विवक्षित न हो, वहाँ अहोरात्र रूप काल के नक्षत्र से योग हो तो सामान्यवचन=पूर्वसूत्र से विहित प्रत्यय का लुप् हो जाता है। जैसे—पुष्येण युक्तः कालोऽद्य पुष्यः। अद्य कृत्तिका। अद्य रोहिणी।

सूत्र में 'अविशेष' इसलिये कहा है कि—'पौषो मुहूर्त्तः। यहाँ विशेष विवक्षा में प्रत्यय का लुप् न हो॥ ४॥

संज्ञायां श्रवणाश्वत्थाभ्याम्॥ ५॥

अविशेषेण पूर्वेण लुब् विहितो विशेषार्थमिदमुच्यते। संज्ञायाम् —७।१। श्रवणाश्वत्थाभ्याम् —५।२। तृतीयासमर्थाभ्यां श्रवण-अश्वत्थनक्षत्राभ्यां विहितस्य प्रत्ययस्य संज्ञायां विषये लुब् भवति। श्रवणेन युक्ता रात्रिः श्रवणा। अश्वत्थो मुहूर्त्तः। ''विभाषा फाल्गुनीश्रवणे' ति निपातनाच्छ्रवणा रात्रिरिति, युक्तवद्भावो न भवति। संज्ञायामिति किम्— श्रावणी रात्रिः॥ ५॥

भाषार्थ—पूर्वसूत्र से अविशेष अर्थ में प्रत्यय का लुप् विधान किया है, विशेष

अर्थ में इस सूत्र से विधान किया जाता है। तृतीया समर्थ नक्षत्रवाची श्रवण और अश्वत्थ प्रातिपदिकों से संज्ञा विषय में विहित प्रत्यय का लुप् (अदर्शन) होता है। जैसे—श्रवणेन युक्ता रात्रिः श्रवणा। अश्वत्थो मुहूर्त्तः। 'श्रवणा रात्रिः' प्रयोग में प्रत्यय का लुप् होने पर 'लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने' (अ० १।२।५१) सूत्र से युक्तवद् भाव=पूर्ववद् लिङ्गवचन इसलिए नहीं हुआ, क्योंकि सूत्रकार ने 'विभाषा फाल्गुनी-श्रवणा०' (अ० ४।२।२२) सूत्र में ऐसा ही निपातन किया है।

सूत्र में 'संज्ञायाम्' पद इसलिए पढ़ा है कि संज्ञा से अन्यत्र 'श्रावणी रात्रिः' प्रयोग में प्रत्यय का लुप् न हो॥५॥

द्वन्द्वाच्छः ॥ ६ ॥

द्वन्द्वात्—५।१। छः—१।१। तृतीयासमर्थान् नक्षत्र-द्वन्द्वप्रातिपदिकात् सर्वापवादश्छः प्रत्ययो भवति। तिष्यपुनर्वसुभिर्युक्तः कालस्तिष्यपुनर्वसवीयम्। कृत्तिकारोहिणीयम्॥ ६ ॥

भाषार्थ—तृतीयासमर्थ नक्षत्रवाची शब्दों के द्वन्द्व प्रातिपदिकों से 'युक्तः कालः' अर्थ में सबका अपवाद=अविशेष और विशेष में विहित प्रत्ययों का अपवाद 'छ' प्रत्यय होता है। जैसे—तिष्य-पुनर्वसुभिर्युक्तः कालः=तिष्य-पुनर्वसवीयमहः। कृत्तिकारोहिणीयमहः। इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी ज्ञेय हैं—तिष्यपुनर्वसवीया रात्रिः। कृत्तिकारोहिणीया रात्रिः। अविशेषार्थ में—अद्य तिष्यपुनर्वसवीयम्। अद्य कृत्तिकारोहिणीयम्॥ ६ ॥

दृष्टं साम॥ ७॥

तेनेत्यनुवर्त्तते। दृष्टम्-१।१। साम-१।१। दृष्टमित्यर्थनिर्देशः। सामेत्येतद् विशेषणम्। तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकाद् दृष्टं सामेत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति। वसिष्ठेन दृष्टं साम वासिष्ठम्। वैश्वामित्रम्। देवेन दृष्टं साम दैव्यम्। दैवम्।

वा०—सर्वत्राग्निकलिभ्यां ढक्॥ १॥

सर्वत्रातोऽग्रे प्रादीव्यतीयेष्वर्थेष्वग्निकलिभ्यां ढक् प्रत्ययो भवति। अग्निना दृष्टं साम आग्नेयम्। अग्नौ भवमाग्नेयम्। अग्नेरागतम् आग्नेयम्। अग्नेः स्वमाग्नेयम्। अग्निर्देवतास्य आग्नेयम्। एवं कलिना दृष्टं साम कालेयम्।

अत्रापि जयादित्येन 'कलेर्ढगिति' सूत्रं व्याख्यातं, तच्च भ्रान्तिमूलं वार्त्तिकारम्भात्।

का०— दृष्टे सामनि जाते च द्विरण् डिद् वा विधीयते।
तीयादीकङ् न विद्याया गोत्रादङ्कवदिष्यते ॥ १॥

दृष्टे सामनीत्यर्थेऽण् प्रत्ययो विकल्पेन डिद् भवति। उशनसा दृष्टं साम औशनसम्। औशनम्। डित्त्वाट्टिलोपः। जाते च='तत्र जात' इति प्रकरणे द्विरण्=स्वबाधकं बाधित्वा पुनर्विधीयमानोऽण् प्रत्ययो विकल्पेन डिद् भवति। शतभिषजि जातः शातभिषजः। शातभिषः। डित्कार्यं पूर्ववत् शतभिषगिति

नक्षत्रवाचिनः प्रातिपदिकाद् युक्तः काल इत्यर्थेऽण्। शतभिषज युक्तः कालः शतभिषक्। 'लुबविशेष इति' लुप्। ततः शैषिके जातार्थे प्राग्दीव्यतोऽण् इत्यणि प्राप्ते 'कालाट्ठञ्' प्रत्ययेन बाध्यते। पुनष्ठञं बाधित्वा 'सन्धिवेलाद्यृतु-नक्षत्रेभ्यः' इत्यण् विधीयते। तीयादीकक्=तीयप्रत्ययान्तात् प्रातिपदिकादीकक् प्रत्ययो भवति। अर्थनिर्देशाभावात् स्वार्थे विधानम्। द्वैतीयीकः तार्त्तीयीकः। न विद्यायाः=विद्यावाचिनस्तीयप्रत्ययान्तात् प्रातिपदिकादीकङ् न भवतीत्यर्थः। द्वितीया विद्या तृतीया वा। गोत्रादङ्कवदिष्यते=गोत्र प्रत्ययान्ताद् दृष्टे सामनी-त्यर्थेऽङ्कवत् प्रत्ययो भवति। अङ्क इवेत्यङ्कवत्। सप्तम्यर्थे वतिः। अङ्कार्थे यः प्रत्ययो विधीयते स भवतीत्यर्थः। यथा—'गोत्रचरणाद् वुञ्'। संघाङ्क-लक्षणेष्विति। गार्ग्येण दृष्टं साम गार्ग्यकम्। वात्स्यकम्। औपगवेन दृष्टं साम औपगवकम्। कापटवकम्। अत्रापि वुञ् प्रत्ययो भवति॥ ७॥

भाषार्थ—यहाँ 'तेन' पद की अनुवृत्ति है। 'दृष्टम्' इससे अर्थ का निर्देश किया गया है और 'साम' यह उसका विशेषण है। तृतीया समर्थ प्रातिपदिकों से दृष्टं साम=सामवेद के देखने=अर्थसाक्षात्कार करने अथवा विचार करने के अर्थ में अणादि यथाविहित प्रत्यय होते हैं। जैसे—वसिष्ठेन दृष्टं वासिष्ठम्। वैश्वामित्रम्। देवेन दृष्टं साम दैव्यम्, दैवं वा।

वा०—सर्वत्राग्निकलिभ्यां ढक्॥ १॥

सर्वत्र=यहाँ से आगे जितने प्राग्दीव्यतीय अर्थ हैं, उनमें अग्नि और कलिः प्रातिपदिकों से 'ढक्' प्रत्यय होता है। जैसे—अग्निना दृष्टं साम आग्नेयम्। अग्नौ भवमाग्नेयम्। अग्नेरागतम् आग्नेयम्। अग्नेः स्वम् आग्नेयम्। अग्निर्देवताऽस्याग्नेयम्। इसी प्रकार कलिना दृष्टं साम कालेयम्। इत्यादि भी जानने चाहिएँ।

इस वार्तिक को जयादित्य ने काशिका में 'कलेर्ढक्' सूत्र मानकर व्याख्या की है। यह उनकी भ्रान्ति ही है। और फिर वार्त्तिक भी ऐसा ही लिखा है। अतः महाभाष्य एवं सूत्रकार के विरुद्ध होने से जयादित्य की नवीन सूत्ररचना भ्रान्ति ही है।

का०— दृष्टे सामनि जाते च द्विरण् डिद्वा विधीयते।
तीयादीकङ् न विद्याया गोत्रादङ्कवदिष्यते॥ १॥

सामवेद के दृष्ट=विशिष्ट ज्ञान करने अर्थ में अण् प्रत्यय विकल्प से डित् होता है। जैसे—उशनसा दृष्टं साम औशनसम्। औशनम्। विकल्प से डित् होने से पक्ष में टिभाग का लोप हो गया। और 'तत्र जातः' (४।३।२५) इस आगामी प्रकरण में अपने अपवाद का अपवाद होके फिर विधान किया 'अण्' प्रत्यय विकल्प से डित् होता है। जैसे—शतभिषजि जातः शातभिषजः। शातभिषः। डित् का प्रयोजन यहाँ पूर्ववत् पक्ष में टि लोप करना है। यहाँ नक्षत्र वाची 'शतभिषक्' प्रातिपदिक से 'युक्तः कालः' अर्थ में अण् प्रत्यय हुआ। शतभिषजा युक्तः कालः शतभिषक्। 'अण्' प्रत्यय का 'लुबविशेषे' सूत्र से लुप् (अदर्शन) हो गया। उसके पश्चात् शैषिक जात अर्थ में प्राग्दीव्यतीय 'अण्' प्रत्यय की प्राप्ति होने पर 'कालाट्

ठञ्' प्रत्यय के बाधक 'सन्धिवेलाद्यृतु०' (४।३।१६) सूत्र से विहित अण् प्रत्यय को विकल्प से डित् किया है।

और तीय-प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से स्वार्थ में 'ईकक्' प्रत्यय होता है। यह प्रत्यय अर्थनिर्देश न होने से स्वार्थ में होता है। जैसे द्वितीय शब्द से—द्वैतीयीकम्। तृतीय से—तार्त्तीयीकम्। परन्तु विद्यावाची तीयप्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से 'ईकक्' प्रत्यय नहीं होता। जैसे—द्वितीया विद्या। तृतीया विद्या।

और गोत्र प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से सामवेद के दृष्ट=विशेष ज्ञान करने अर्थ में अङ्कवत् प्रत्यय होते हैं, अर्थात् अङ्कः अर्थ में जो प्रत्यय होता है, वह यहाँ भी होता है। 'अङ्कवत्' शब्द में वति प्रत्यय सप्तम्यर्थ में है—अङ्के इव अङ्कवत्। जैसे—'गोत्रचरणाद् वुञ्' (४।३।१२५) 'संघाङ्कलक्षणेष्व०' (४।३।१२६)— 'गार्ग्येण दृष्टं साम गार्ग्यकम्। वात्स्यकम्। औपगवेन दृष्टं साम औपगवकम्। कापटवकम्। इनमें गोत्रवाचियों से भी दृष्ट साम अर्थ में संघादि अर्थों की भाँति वुञ् प्रत्यय का अतिदेश हो गया है॥७॥

वामदेवाड् ड्यड्ड्यौ॥८॥

वामदेवात्—५।१। ड्यड्ड्यौ—१।२ तृतीयासमर्थाद् वामदेवप्रातिपदिकाद् दृष्टं सामेत्येतस्मिन्नर्थे ड्यत्—ड्यौ प्रत्ययौ भवतः। अधिकारादण् प्राप्तः बाध्यते। वामदेवेन दृष्टं साम वामदेव्यम्। तित्करणं स्वरार्थम्।

का०— सिद्धे यस्येति लोपेन किमर्थं यन्यतौ डितौ।
ग्रहणं माऽतदर्थे भूद् वामदेव्यस्य नञ्स्वरे॥१॥

अनया कारिकया डित्करणस्य प्रयोजनमुच्यते। 'यस्येति चे' ति सूत्रेण वामदेव शब्दस्यान्त्यःलोपः स्यादेव, पुनष्टिलोपार्थं तु डित्करणं न कर्त्तव्यम्। तत्रैतत्प्रयोजनं य-यतोर्ग्रहणे ड्य-ड्यतोर्ग्रहणं मा भूत्। अस्मादेव डित्करणज्ञापकादेते परिभाषे निस्सृते—

परि०—अननुबन्धकग्रहणेन न सानुबन्धकस्य ग्रहणम्॥१॥

परि०—तदनुबन्धकग्रहणे नातदनुबन्धकस्य ग्रहणम्॥२॥

तस्य ज्ञापनस्यैतत् प्रयोजनम्—वामदेवस्य नञ्स्वरेऽतदर्थे यन्यतोरर्थे ड्य-ड्यतोर्ग्रहणं मा भूत्। अवामदेव्यम्। अञ् ''ययोतश्चातदर्थे'' इत्यन्तोदात्तत्वं प्राप्तं तन्मा भूत्। अव्ययपूर्वपदप्रकृतिस्वरेणाद्युदात्तस्वरो यथा स्यात्॥८॥

भाषार्थ—तृतीयसमर्थ 'वामदेव' प्रातिपदिक से सामवेद के दृष्ट=अर्थ जानने अर्थ में ड्यत् और ड्य प्रत्यय होते हैं। यह 'अण्' प्रत्यय का अपवाद है। जैसे—वामदेवेन दृष्टं साम वामदेव्यम्। प्रत्ययस्थ तित्करण स्वर के लिये है।

का०— सिद्धे यस्येति लोपेन किमर्थं य-यतौ डितौ।
ग्रहणं माऽतदर्थे भूद् वामदेव्यस्य नञ् स्वरे॥१॥

इस कारिका से प्रत्ययों में डित्करण का प्रयोजन स्पष्ट किया गया है। 'वामदेव्यम्' प्रयोग में 'यस्येति च' (६।४।१४८)सूत्र से ही अन्त्य अकार

का लोप हो जाता फिर टिलोप करने के लिये डित्करण हो जाने से यह ज्ञापक हो जाता है कि सूत्रों में य-यत् प्रत्ययों के ग्रहण से ड्य-ड्यत् प्रत्ययों का ग्रहण न होवे। और यह डित्करण इन परिभाषाओं का ज्ञापक है—

परि०—अननुबन्धकग्रहणेन न सानुबन्धकस्य ग्रहणम्॥१॥

परि०—तदनुबन्धकग्रहणे नातदनुबन्धकस्य ग्रहणम्॥२॥

अर्थात् व्याकरण शास्त्र में अनुबन्धरहित के पाठ से अनुबन्धसहित प्रत्ययों का ग्रहण नहीं होता है। अथवा जिस अनुबन्धसहित का सूत्र में पाठ है, उसी का ग्रहण होता है। उससे भिन्न अनुबन्धवाले प्रत्यय का ग्रहण नहीं होता। इसलिये 'य-यतोश्चाऽतदर्थे' (६।२।१५५) सूत्र से अन्तोदात्त का विधान किया गया है, वह ड्य-ड्यत् प्रत्ययान्त शब्दों में नहीं होगा। इसलिये (अवामदेव्यम्) प्रयोग में उत्तरपद अन्तोदात्त न होकर अव्यय पूर्वपद प्रकृति स्वर से आद्युदात्त स्वर हो गया है॥८॥

परिवृतो रथः॥९॥

तेनेत्यनुवर्त्तते। परिवृतः—१।१। रथः—१।१। परितः सर्वत आच्छादित इत्यर्थनिर्देशः। रथशब्दः प्रत्ययार्थविशेषणम्। तृतीयसमर्थात् प्रातिपदिकात् परिवृतो रथ इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति।

कम्बलेन परिवृतो रथः काम्बलः। वास्त्रः। वासनः। रथशब्दो यानवाची। रथ इति किम्। वस्त्रेण परिवृत्तं शरीरम्। पुत्रैः परिवृतो रथ इत्यनभिधानान्न भवति। अर्थात् पौत्रशब्देन नैषोऽर्थोऽभिधीयते पुत्रैः परिवृतो रथ इति॥९॥

भाषार्थ—यहाँ 'तेन' पद की अनुवृत्ति है। 'परिवृत' शब्द का अर्थ है सब ओर से अच्छादित करना। 'रथ' शब्द प्रत्ययार्थ का विशेषण है। तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से परिवृत (सब ओर से ढकने) अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है, जिसे परिवृत किया जाये वह रथ (यान) होना चाहिये। जैसे—कम्बलेन परिवृतो रथः काम्बलो रथः। वास्त्रः। वासनः। यहाँ 'रथ' का ग्रहण इसलिये किया है कि 'वस्त्रेण परिवृतं शरीरम्' यह रथ से भिन्न वाच्य में प्रत्यय न हो। 'पुत्रैः परिवृतो रथः' में प्रत्यय अनभिधान से नहीं होता, क्योंकि प्रत्यय करने पर 'पौत्र' शब्द से उस वाक्यार्थ की प्रतीति नहीं होती॥९॥

पाण्डुकम्बलादिनिः॥१०॥

परिवृतो रथ इत्यनुवर्त्तते। पाण्डुकम्बलात्—५।१। इनिः—१।१। पाण्डुकम्बलो वर्णविशेषवाची। पाण्डुकम्बलात्तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकात् परिवृतो रथ इत्यस्मिन्नर्थे इनिः प्रत्ययो भवति। अण् प्राप्तः स बाध्यते। पाण्डुकम्बलेन परिवृतो रथ इति पाण्डुकम्बली रथः॥१०॥

भाषार्थ—यहाँ 'परिवृतो रथः'। सूत्र की अनुवृत्ति है। 'पाण्डुकम्बल' शब्द वर्ण विशेषवाची है। तृतीयासमर्थ 'पाण्डुकम्बल' प्रातिपदिक से परिवृत रथ अर्थ में 'इनि' प्रत्यय होता है। यह 'अण्' प्रत्यय का बाधक है। जैसे—पाण्डुकम्बलेन

परिवृतो रथः पाण्डुकम्बली रथः॥१०॥

द्वैपवैयाघ्रादञ्॥ ११॥

द्वैपवैयाघ्रात् —५।१।अञ् —१।१।द्वीप-व्याघ्रयोर्विकारश्चर्म तस्माद् अण्बाधनार्थमञ्विधानम्। द्वैपेन परिवृतो रथो द्वैपः। वैयाघ्रः। प्रयोगस्तु स एव। स्वरे भेदः॥११॥

भाषार्थ—द्वैप-वैयाघ्र शब्दों में विकार अर्थ में 'अञ्' प्रत्यय है और यहाँ दोनों शब्द विवक्षा से चर्म के लिये पठित हैं। यह 'अण्' प्रत्यय का अपवाद अञ् का विधान किया है। तृतीया समर्थ द्वैप-वैयाघ्र प्रातिपदिकों से परिवृत रथ अर्थ में 'अञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—द्वैपेन परिवृतो रथो द्वैपः। वैयाघ्रः। अण् और अञ् प्रत्ययों में स्वर में भेद होता है रूप में नहीं॥११॥

कौमाराऽपूर्ववचने॥ १२॥

कौमार इति लुप्तविभक्तिको निर्देशः। अपूर्ववचने —७।१। यस्याः पाणिग्रहणस्य पूर्वकथनमपि न जातम्।

वा०—कौमारापूर्ववचन इत्युभयतः स्त्रिया अपूर्वत्वे॥१॥

उभयतः स्त्रीलिङ्गे पुंल्लिङ्गे च स्त्रिया अपूर्ववचने कौमारशब्दो निपात्यते। अपूर्वपतिं कुमारीमुपपन्नः कौमारो भर्त्ता। अपूर्वपतिः कुमारी पतिमुपपन्ना कौमारी भार्य्या।

का०— कौमाराऽपूर्ववचने कुमार्य्या अण् विधीयते।
अपूर्वत्वं यदा तस्याः कुमार्य्यां भवतीति वा॥१॥

'कौमाराऽपूर्ववचने' इत्यस्मिन् सूत्रे कुमारी शब्दादण् प्रत्ययो विधीयते। यदा तस्याः कुमार्य्या अपूर्वत्वं भवति। अथवा सामान्ये भवार्थे-कुमार्य्यां भवः कौमार इत्यण्॥१२॥

भाषार्थ—जिसका किसी के साथ पूर्व=पहले पाणिग्रहण विषयक कथन (वाग्दान) भी न हुआ हो, उस अपूर्ववचन अर्थ में कुमारी शब्द से अण् प्रत्ययान्त 'कौमार' शब्द का निपातन किया है।

वा०—कौमाराऽपूर्ववचन इत्युमयतः स्त्रिया अपूर्वत्वे॥१॥

यह कुमारी शब्द से अण् प्रत्ययान्त 'कौमार' शज्द का निपातन स्त्रीलिंग और पुल्लिंग में अर्थात् यदि 'कौमारी' स्त्रीलिंग में प्रयोग हो, अथवा 'कौमारः पतिः' ऐसा पुल्लिंग में प्रयोग हो, दोनों तरह के प्रयोगों में स्त्री (कुमारी) के विवाह विषयक अपूर्वकथन में हो। जैसे—अपूर्वपतिं कुमारीमुपपन्नः कौमारो भर्ता। अपूर्वपतिः कुमारी पतिमुपपन्ना कौमारी भार्या। अभिप्राय यह है कि निपातन से प्रत्यय का विधान कुमारी शब्द से हो, परन्तु प्रत्ययार्थ दोनों लिङ्गों में रहे। और 'अपूर्ववचन अर्थ का सम्बन्ध कुमारी के साथ ही रहे।

का०— कौमाराऽपूर्ववचन कुमार्य्या अण् विधीयते।
अपूर्वत्वं यदा तस्याः कुमार्यां भवतीतिवा॥१॥

पूर्व वार्तिकोक्त निपातन लभ्य अर्थ को ही कारिका से कहा गया है। अर्थात् इस सूत्र से कुमारी शब्द से 'अण्' प्रत्यय करके 'कौमार' शब्द का निपातन अपूर्ववचन अर्थ में (जब कुमारी का अपूर्ववचन कहना अभीष्ट हो) किया है। अथवा कुमारी शब्द से सामान्य 'भव' अर्थ में 'अण्' प्रत्यय से भी यह रूप बन जाता है। जैसे—कुमार्यां भवः कौमारः। इस दूसरे पक्ष में 'कौमारीभार्या' प्रयोग कैसे बनेगा? इसका समाधान महाभाष्य में ''पुंयोगात् स्त्र्यभिधानम्'' कहकर किया है, अर्थात् पुंयोग से ''कौमारस्य भार्या कौमारी'' प्रयोग होगा॥ १२॥

तत्रोद्धृतममत्रेभ्यः॥ १३॥

तत्र—[अ०प०]। उद्धृतम्—१।१। अमत्रेभ्यः—५।३। उद्धृतमिति प्रत्ययार्थनिर्देशः। अमत्रशब्दः पात्रपर्यायः। सप्तमीसमर्थेभ्योऽमत्रवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो यथाविहितं प्रत्यया भवन्ति [उद्धृतमित्यस्मिन्नर्थे] पंचकपालेषूद्धृत ओदनः पंचकपालः। 'द्विगोर्लुगनपत्य' इति लुक्। शरावेषूद्धृतः शारावः। अमत्रेभ्य इति किमर्थम्। पाणावुद्धृत ओदनः॥ १३॥

भाषार्थ—यहाँ 'उद्धृतम्' पद से प्रत्ययार्थ का निर्देश है। 'अमत्र' शब्द पात्र का पर्यायवाची है। सप्तमी समर्थ अमत्र (पात्र) वाची प्रातिपदिकों से उद्धृतम्= रखने अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं। जैसे—पञ्चकपालेषूद्धृत ओदनः पञ्चकपालः। यहाँ प्राग्दीव्यतीय अनपत्य प्रत्यय का द्विगुसंज्ञा होने से 'द्विगोर्लुगनपत्ये' (४। १। ८८) सूत्र से लुक् हुआ है। शरावेषूदधृतः, शारावः, इत्यादि। यहाँ 'अमत्रेभ्यः' का ग्रहण इसलिये है कि 'पाणावुद्धृत ओदनः' यहाँ प्रत्यय न होवे॥ १३॥

स्थण्डिलाच्छयितरि व्रते॥ १४॥

तत्रेति सप्तमीसमर्थमनुवर्त्तते। स्थण्डिलात् —५।१। शयितरि —७।१। व्रते-७।१। सप्तमीसमर्थात् स्थण्डिलप्रातिपदिकाच्छयितरि शयनकर्तर्य्यभिधेये प्रकृतिप्रत्ययार्थेन व्रते गम्यमानेऽण् प्रत्ययो भवति। स्थण्डिले शयिता स्थाण्डिलो यतिः। स्थाण्डिलो ब्रह्मचारी। व्रतशब्देन शास्त्रकृतो नियम उच्यते। व्रत इति किम्। स्थण्डिले शयिता देवदत्तः॥ १४॥

भाषार्थ—पूर्वसूत्र से यहाँ 'तत्र' पद से सप्तमी विभक्ति की अनुवृत्ति है। सप्तमी समर्थ स्थण्डिल प्रातिपदिक से शयनकर्त्ता के वाच्य में अण् प्रत्यय होता है। यदि प्रकृति-प्रत्ययार्थ से व्रत का बोध होवे। जैसे—स्थण्डिले शयिता स्थाण्डिलो यतिः। स्थाण्डिलो ब्रह्मचारी। सूत्र में 'व्रत' शब्द से शास्त्रविहितनियम कहा गया है। यहाँ 'व्रत' का ग्रहण इसलिये है कि व्रत से अन्यत्र 'स्थण्डिले शयिता देवदत्तः' यहाँ प्रत्यय न होवे॥ १४॥

संस्कृतं भक्षाः॥ १५॥

संस्कृतम् —१।१। भक्षाः —१।३। संस्कृतं भक्षा इत्यर्थनिर्देशः। भक्षणार्थं यत्संस्कृतं तस्मिन् प्रत्ययार्थेऽभिधेये सप्तमीसमर्थात् प्रातिपदिकाद

यथाविहितं प्रत्ययो भवति। घृते संस्कृतं घार्त्तम्। तक्रे संस्कृतं ताक्रम्। भ्राष्ट्रे संस्कृता अपूपा भ्राष्ट्राः। भक्षा इति किम्। सूत्रे संस्कृता माला। अत्र मा भूत्॥ १५॥

भाषार्थ—'संस्कृतं भक्षाः' यह प्रत्ययार्थ का निर्देश है। खाने के लिये जो संस्कृत संस्कार किया हुआ हो, उस प्रत्ययार्थ के वाच्य में सप्तमी समर्थ प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय होता है। जैसे—घृते संस्कृतं घार्त्तम्। तक्रे संस्कृतं ताक्रम्। भ्राष्ट्रे संस्कृता अपूपा भ्राष्ट्राः। यहाँ 'भक्षाः' पद का ग्रहण इसलिये है कि—'सूत्रे संस्कृता माला' यहाँ भक्षण विषय न होने से प्रत्यय न होवे॥ १५॥

शूलोखाद् यत्॥ १६॥

संस्कृतमित्यनुवर्त्तते। शूलोखात् —५।१। यत् —१।१। अणोऽपवादः। शूल-उखाभ्यां सप्तमीसमर्थाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां संस्कृतमित्यस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवति। शूले संस्कृतं शूल्यम्। उखायां संस्कृतम् उख्यम्। शूलोखयोः समाहारद्वन्द्वः॥ १६॥

भाषार्थ—'संस्कृतम्' पद की यहाँ अनुवृत्ति है। यह सूत्र 'अण्' प्रत्यय का अपवाद है। सप्तमी-समर्थ शूल-उखा प्रातिपदिकों से संस्कृत अर्थ में 'यत्' प्रत्यय होता है। जैसे—शूले संस्कृतं शूल्यम्। उखायां संस्कृतम् उख्यम्। 'शूलोखाद्' पद में समाहार द्वन्द्व समास है॥ १६॥

दध्नष्ठक्॥ १७॥

दध्नः —५।१। ठक् —१।१। सप्तमीसमर्थाद् दधिप्रातिपदिकात् संस्कृतमित्यस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति। अणोऽपवादः। दधनि संस्कृतं दाधिकम्॥ १७॥

भाषार्थ—सप्तमीसमर्थ 'दधि' प्रातिपदिक से संस्कृत अर्थ में 'ठक्' प्रत्यय होता है। यह 'अण्' का अपवाद है। जैसे—दधनि संस्कृतं दाधिकम्॥ १७॥

उदश्वितोऽन्यतरस्याम्॥ १८॥

उदश्वितः —५।१। अन्यतरस्याम्। [अ०] अप्राप्तविभाषायेम्। सप्तमी-समर्थाद् उदश्वित्प्रातिपदिकात् संस्कृतमित्यस्मिन्नर्थे विकल्पेन ठक् प्रत्ययो भवति। पक्षेऽण्। उदश्विता संस्कृतम् औदश्वितम्। औदश्वित्कम्॥ १८॥

भाषार्थ—इस सूत्र में अप्राप्तविभाषा है। सप्तमी समर्थ 'उदश्वित्' प्रातिपदिक से संस्कृत अर्थ में विकल्प से 'ठक्' प्रत्यय होता है। पक्ष में 'अण्' प्रत्यय होता है। जैसे—उदश्विता संस्कृतम् औदश्वितम्। औदश्वित्कम्। यहाँ 'ठक्' प्रत्ययान्त में 'इसुसुक्तान्तात् कः' (अ० ७।३।५१) सूत्र से इक् का अपवाद क-आदेश हुआ है॥ १८॥

क्षीराड् ढञ्॥ १९॥

क्षीरात् —५।१। ढञ् —१।१। सप्तमीसमर्थात् क्षीरप्रातिपदिकात् संस्कृतमित्यस्मिन्नर्थे ढञ्प्रत्ययो भवति। क्षीरे संस्कृतं क्षैरेयम्॥ १९॥

भाषार्थ—सप्तमी समर्थ 'क्षीर' प्रातिपदिक से संस्कृत अर्थ में 'ढञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—क्षीरे संस्कृतं क्षैरेयम्॥१९॥

साऽस्मिन् पौर्णमासीति॥२०॥

तत्रेति सप्तमीसमर्थं निवृत्तं संस्कृतमिति च। सा —१।१। अस्मिन् —७।१। पौर्णमासी —१।१। इति [अ० प०] पौर्णमासीशब्दादग्रे इतिकरणः पठ्यते तेन मासार्द्धमासयोः प्रत्ययः। सेति प्रथमासमर्थात् पौर्णमासीविशेष-वाचिनः प्रातिपदिकाद् अस्मिन्नित्यधिकरणेऽभिधेये यथाविहितं प्रत्ययो भवति। पुष्येण युक्ता पौर्णमासी पौषी। पौषी पौर्णमासी अस्मिन् मासे पौषो मासः। पौषोऽर्द्धमासः। पौषः संवत्सरः। एवं माघी पौर्णमासी अस्मिन् माघो मासः। फाल्गुनः।

वा०—सास्मिन् पौर्णमासीति संज्ञाग्रहणम्॥१॥

संज्ञायां प्रत्ययो यथा स्याद्। इह मा भूत्—पौषी पौर्णमास्यस्मिन् पंचदश-रात्रे। सूत्रकारेणैतत् प्रयोजनमितिकरणाज् ज्ञात्वा न कृतम्। वार्त्तिककारेण स्पष्टार्थं संज्ञाग्रहणं कृतम्।

जयादित्येनात्र संज्ञाग्रहणं सूत्रे व्याख्यातं तद्वृथैवास्तीति विज्ञेयम्। वार्त्तिकारम्भात्। अत्र कैयटेनाप्युक्तं संज्ञाग्रहणं सूत्रेऽनार्षमिति वार्त्तिकमारब्धम्। अनेन ज्ञायते कैयट-समयात्पूर्वमेव केनचिद् भ्रान्त्या मेलितम्॥२०॥

भाषार्थ—यहाँ 'तत्र' तथा 'संस्कृतम्' पदों की अनुवृत्ति नहीं है। 'पौर्णमासी' शब्द के बाद 'इति' शब्द का पाठ होने से मास और अर्द्धमास आदि की विवक्षा में यह प्रत्यय का विधान है। सा=प्रथमासमर्थ पौर्णमासी विशेषवाची प्रातिपदिकों से अधिकरण अर्थ वाच्य होवे तो यथाविहित प्रत्यय होता है। जैसे पुष्येण युक्ता पौर्णमासी पौषी। पौषी पौर्णमासी अस्मिन् मासे स पौषो मासः। पौषोऽर्धमासः। पौषः संवत्सरः। इसी प्रकार मघानक्षत्रेण युक्ता माघी पौर्णमासी अस्मिन् मासे स माघो मासः। फाल्गुनः, इत्यादि।

वा०—साऽस्मिन् पौर्णमासिति संज्ञाग्रहणम्॥१॥

'साऽस्मिन्' इस सूत्र में संज्ञा का ग्रहण करना चाहिये, अर्थात् जहाँ प्रकृति-प्रत्यय के समुदाय से मासों की संज्ञा प्रकट हो, वहीं यह प्रत्यय होवे। यहाँ प्रत्यय न हो—पौषी पौर्णमास्यस्मिन् पंचदशरात्रे। सूत्रकार ने यह प्रयोजन 'इति' करण से जानकर संज्ञा का ग्रहण नहीं किया और वार्त्तिककार ने उसे स्पष्ट करने के लिये ही 'संज्ञायाम्' का पाठ माना है।

काशिकाकार जयादित्य ने इस सूत्र में ही 'संज्ञायाम्' पाठ मानकर व्याख्या की है, यह ठीक नहीं है। क्योंकि यदि यह पाठ आर्ष होता तो वार्त्तिककार के पढ़ने का क्या प्रयोजन रह जाता है। यहाँ कैय्यट ने भी कहा है—सूत्र में संज्ञा का पाठ अनार्ष है, इसलिये वार्त्तिक बनाया है। इससे यह स्पष्ट है कि यह 'संज्ञायाम्' का पाठ कैयट से भी पहले किसी ने भ्रान्ति से मिलाया है॥२०॥

आग्रहायण्यश्वत्थाट् ठक् ॥ २१ ॥

साऽस्मिन्पौर्णमासीत्यनुवर्तते। आग्रहायण्यश्वत्थात्—५।१। ठक्—१।१। अणोऽपवादः। प्रथमासमर्थाभ्यां पौर्णमासीसमानाधिकरणाभ्याम् आग्रहायण्य-श्वत्थाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यामस्मिन्नित्यधिकरणे ठक् प्रत्ययो भवति। आग्रहायणी पौर्णमास्यस्मिन् मासे आग्रहायणिको मासः। अर्द्धमासो वा। एवम्-आश्वत्थिकः॥ २१॥

भाषार्थ—यहाँ पूर्वसूत्र की अनुवृत्ति है। यह पूर्वसूत्र से प्राप्त 'अण्' प्रत्यय का अपवाद है। प्रथमा समर्थ पौर्णमासी समानाधिकरण आग्रहायणी-अश्वत्थ प्रातिपदिकों से अधिकरण अर्थ वाच्य में 'ठक्' प्रत्यय होता है। जैसे—आग्रहायणी पौर्णमासी अस्मिन् मासे स आग्रहायणिको मासः। अर्धमासो वा। इसी प्रकार—आश्वत्थिको मासः॥ २१॥

विभाषा फाल्गुनीश्रवणाकार्तिकीचैत्रीभ्यः॥ २२॥

विभाषा [अ०]। फाल्गुनी......चैत्रीभ्यः-५।३। अप्राप्तविभाषेयम्। सास्मिन् पौर्णमासीत्यणि प्राप्ते ठग्विकल्प्यते। प्रथमासमर्थेभ्यः पौर्णमासीसमानाधि-करणेभ्यः फाल्गुन्यादिप्रातिपदिकेभ्यो विकल्पेनास्मिन्नित्यधिकरणे ठक् प्रत्ययो भवति। पक्षेऽण्। फाल्गुनी पौर्णमास्यस्मिन् मासे फाल्गुनो मासः। फाल्गुनिको मासः। श्रावणिकः। श्रावणः। कार्त्तिकिकः। कार्त्तिकः। चैत्रिकः। चैत्रः॥ २२॥

भाषार्थ--यह अप्राप्त विभाषा है। 'साऽस्मिन्' सूत्र से 'अण्' प्रत्यय की प्राप्ति में 'ठक्' प्रत्यय का विकल्प किया है। प्रथमा समर्थ पौर्णमासी समानाधिकरण फल्गुनी, श्रवणा, कार्तिकी और चैत्री प्रातिपदिकों से अधिकरण अर्थ में विकल्प से ठक् प्रत्यय होता है। पक्ष में 'अण्' होता है। जैसे—फाल्गुनी पौर्णमास्यस्मिन् मासे स फाल्गुनिको मासः। फाल्गुनो मासः। श्रावणिको मासः। श्रावणो मासः। यहाँ श्रवणा नक्षत्र से युक्त काल अर्थ में 'संज्ञायां श्रवणा' (अ० ४।२।५) सूत्र से प्रत्यय का लुप् हुआ है। इसलिये प्रत्ययार्थ के होने से पौर्णमासी का विशेषण बना रहता है। कार्त्तिकिकः। कार्त्तिकः। चैत्रिकः। चैत्रः॥ २२॥

साऽस्य देवता॥ २३॥

सा —१।१। अस्य —६।१। देवता —१।१। सेति प्रथमासमर्थाद् देवताविशेषवाचिनः प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति। इन्द्रो देवताऽस्य ऐन्द्रं हविः। ऐन्द्रो मन्त्रः। ऐन्द्री ऋक्। एवं सर्वत्र। बृहस्पतिर्देवताऽस्य बार्हस्पत्यं हविः। अधिकारसूत्रं चेदम्॥ २३॥

भाषार्थ—सा=प्रथमासमर्थ देवता विशेषवाची प्रातिपदिकों से अस्य=षष्ठ्यर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं। जैसे—इन्द्रो देवताऽस्य ऐन्द्रं हविः। ऐन्द्रो मन्त्रः। ऐन्द्री ऋक्। इसी प्रकार-बृहस्पतिर्देवताऽस्य बार्हस्पत्यं हविः। यहाँ 'दित्यदित्या०' (४।१।८५) सूत्र से पत्युत्तरपद होने से 'ण्य' प्रत्यय हुआ है। यह अधिकार सूत्र है॥ २३॥

कस्येत्॥ २४॥

कस्य —६।१। इत् —१।१। पूर्वेणैवाण् प्रत्यये सिद्धे इकारादेशार्थ आरम्भः। प्रथमासमर्थाद् देवतासमानाधिकरणात् कप्रातिपदिकादण् प्रत्ययो भवति। प्रत्ययसंनियोगेन इकारादेशश्च। को देवताऽस्य कायं हविः। कायो मन्त्रः। कायी ऋक्॥ २४॥

भाषार्थ—इस सूत्र का आरम्भ पूर्व सूत्र से अण् प्रत्यय प्राप्त होने पर भी इकारादेश के लिये किया है। प्रथमा समर्थ देवता समानाधिकरणवाले 'क' प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में 'अण्' प्रत्यय और प्रकृति को इकारादेश प्रत्यय सन्नियोग से होता है। जैसे—को देवताऽस्य कायं हविः। कायो मन्त्रः। कायी ऋक्॥ २४॥

शुक्राद् घन्॥ २५॥

शुक्रात् —५।१। घन् —१।१। अणोऽपवादः। प्रथमासमर्थाद् देवता-समानाधिकरणाच्छुक्रप्रातिपदिकादस्येति षष्ठ्यर्थे घन् प्रत्ययो भवति। शुक्रो देवताऽस्य शुक्रियं हविः। शुक्रियो मन्त्रः। शुक्रिया ऋक्॥ २५॥

भाषार्थ—यह सूत्र 'अण्' प्रत्यय का अपवाद है। प्रथमासमर्थ देवता समाना-धिकरणवाले शुक्र प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में घन् प्रत्यय होता है। जैसे—शुक्रो देवताऽस्य शुक्रियं हविः। शुक्रियो मन्त्रः। शुक्रिया ऋक्॥ २५॥

अपोनप्त्रपान्नप्तृभ्यां घः॥ २६॥

अपोनप्त्रपांनप्तृभ्याम् —५।२।घः —१।१।अपोनपाद्-अपांनपाच्छब्दौ देवतावाचिनौ। तयोः प्रत्ययसंनियोगेन ऋकारान्तत्वं निपात्यते। असति प्रत्यये तकारान्तावेव दृश्येते। प्रथमासमर्थाभ्यां देवतासमानाधिकरणाभ्याम् अपोनप्तृ-अपांनप्तृप्रातिपदिकाभ्यामस्येति षष्ठ्यर्थे घः प्रत्ययो भवति। अपोनपाद्, अपांनपाद्वा देवताऽस्य अपोनप्त्रियं हविः। अपांनप्त्रियं हविः। अन्यत्र-अपोनपाते अनुब्रूहि। अपांनपाते अनुब्रूहि। नादेशः॥ २६॥

भाषार्थ—'अपोनपात्' और 'अपांनपात्' शब्द देवता वाची हैं। प्रत्यय संनियोग से उनका ऋकारान्तत्व निपातन सूत्र से किया है। प्रत्यय के अभाव में वे दोनों शब्द तकारान्त ही प्रयुक्त होते हैं। प्रथमा समर्थ देवतासमानाधिकरणवाले अपोनप्तृ और अपांनप्तृ प्रातिपदिकों से षष्ठ्यर्थ में 'घ' प्रत्यय होता है। जैसे—अपोनपाद् देवताऽस्य अपोनप्त्रियं हविः। अपांनपाद् देवताऽस्य अपांनप्त्रियं हविः। अन्यत्र—'अपोनपाते अनुब्रूहि, अपांनपाते अनुब्रूहि। प्रयोग होते हैं। यहाँ प्रत्यय के अभाव में ऋकारान्तादेश भी नहीं हुआ॥ २६॥

छ च॥ २७॥

अपोनप्त्रपांनप्तृभ्यामित्यनुवर्त्तते। छ —१।१। च —[अ०प०]। योग-विभागकरणं यथासंख्यनिवृत्यर्थम्, उत्तरार्थं च। प्रथमासमर्थाभ्यां देवता-समानाधिकरणाभ्याम् अपोनप्तृ-अपांनप्तृप्रातिपदिकाभ्यामस्येति षष्ठ्यर्थे छ प्रत्ययो भवति। अपोनपाद्-अपांनपाद्वा देवताऽस्य अपोनप्त्रीयम्। अपांनप्त्रीयं

हविः।

वा० — छप्रकरणे पैङ्गाक्षी-पुत्रादिभ्य उपसंख्यानम्॥ १॥

पैङ्गाक्षी पुत्रो देवताऽस्य पैङ्गाक्षीपुत्रीयम्। तार्णविन्दवीयम्॥ १॥

वा० — शतरुद्राद् घ च॥ २॥

शतरुद्रशब्दाद् घ-छौ प्रत्ययौ भवतः। शतरुद्रो देवताऽस्य शतरुद्रियम्। शतरुद्रीयम्॥ २७॥

भाषार्थ—यहाँ पूर्वसूत्र की अनुवृत्ति है। योग विभाग यथासंख्य निवृत्ति के लिये किया है और छ प्रत्यय की अगले सूत्र में अनुवृत्ति के लिये भी है। प्रथमा समर्थ देवता समानाधिकरणवाले अपोनप्तृ-अपांनप्तृ प्रातिपदिकों से षष्ठ्यर्थ में 'छ' प्रत्यय होता है। जैसे—अपोनपाद्, अपांनपाद्वा देवताऽस्य अपोनप्त्रीयम्। अपांनप्त्रीयं हविः।

वा० — छप्रकरणे पैङ्गाक्षी-पुत्रादिभ्य उपसंख्यानम्॥ १॥

छ प्रत्यय के प्रकरण में प्रथमासमर्थ देवता समानाधिकरणवाले पैङ्गाक्षीपुत्र आदि प्रातिपदिकों से भी षष्ठ्यर्थ में 'छ' प्रत्यय होता है। जैसे—पैङ्गाक्षीपुत्रो देवताऽस्य पैङ्गाक्षीपुत्रीयम्। तार्णविन्दवीयम्।

वा० — शतरुद्राद् घ च॥ २॥

देवता समानाधिकरण शतरुद्र से 'घ' और 'छ' प्रत्यय होते हैं। जैसे—शतरुद्रो देवताऽस्य शतरुद्रियम्। शतरुद्रीयम्॥ २७॥

महेन्द्राद् घाणौ च॥ २८॥

छप्रत्ययोऽप्यनुवर्त्तते। महेन्द्रात् —५।१। घाणौ —१।२। च [अ०]। प्रथमासमर्थाद् देवतासमानाधिकरणान्महेन्द्रशब्दाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे घ-अणौ प्रत्ययौ भवतश्चकाराच्छ च। महेन्द्रो देवताऽस्य महेन्द्रियं हविः। माहेन्द्रम्। महेन्द्रीयम्॥ २८॥

भाषार्थ—यहाँ छ प्रत्यय की भी अनुवृत्ति है। प्रथमासमर्थ देवतासमानाधिकरणवाले महेन्द्र प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में घ, अण् और चकार से छ प्रत्यय होते हैं। जैसे—महेन्द्रो देवताऽस्य महेन्द्रियं हविः। माहेन्द्रम्। महेन्द्रीयम्॥ २८॥

सोमाट् ट्यण्॥ २९॥

सोमात् —५।१। ट्यण् —१।१। अण् बाध्यते। प्रथमासमर्थाद् देवता-समानाधिकरणात् सोमप्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे ट्यण् प्रत्ययो भवति। सोमो देवताऽस्य सौम्यं हविः। सौम्यो मन्त्रः। सौमी ऋक्। टित्करणं ङीबर्थं णकारो वृद्ध्यर्थः॥ २९॥

भाषार्थ—यह 'अण्' प्रत्यय का अपवाद है। प्रथमासमर्थ देवता समानाधिकरणवाले 'सोम' प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में 'ट्यण्' प्रत्यय होता है। जैसे—सोमो देवताऽस्य सौम्यं हविः। सौम्यो मन्त्रः। सौमी ऋक्। प्रत्यय में टकार स्त्रीलिंग में 'ङीप्' के लिये तथा णकार-वृद्धि के लिये अनुबन्ध लगाये हैं॥ २९॥

वाय्वृतुपित्रुषसो यत्॥ ३०॥

वाय्वृतुपित्रुषसः —५।१। यत् —१।१। प्रथमासमर्थेभ्यो देवतासमानाधिकरणेभ्यो वाय्वादिप्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थे यत् प्रत्ययो भवति। वायुर्देवताऽस्य वायव्यम्। ऋतव्यम्। पित्र्यम्। उषस्यम्॥ ३०॥

भाषार्थ—प्रथमासमर्थ देवतासमानाधिकरणवाले वायु, ऋतु, पितृ और उषस् प्रातिपदिकों से षष्ठ्यर्थ में 'यत्' प्रत्यय होता है। जैसे—वायुर्देवताऽस्य वायव्यम्। ऋतव्यम्। पित्र्यम्। उषस्यम्। यहाँ उकारान्त वायु ऋतु शब्दों में 'ओर्गुणः' (६।४।१४६) से गुण 'वान्तोयि प्रत्यये' (६।१।७७) से अवादेश हुआ है और 'पित्र्यम्' प्रयोग में 'रीङृतः' (७।४।२७) से रीङ्, 'यस्येति च' (६।४।१४८) से ईकारलोप हुआ है॥ ३०॥

द्यावापृथिवीशुनासीरमरुत्वदग्नीषोमवास्तोष्पतिगृहमेधाच्छ च॥ ३१॥

यच्चानुवर्त्तते। वास्तोष्पतिशब्दात् पत्युत्तरपदत्वाण् ण्यः प्राप्त इतरेभ्यश्चाण् तयोरपवादः। द्यावापृथिवी...गृहमेधात् —५।१। छ —१।१। च —अ०प०। प्रथमासमर्थेभ्यो देवतासमानाधिकरणेभ्यो द्यावापृथिव्यादिप्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थे छ-यतौ प्रत्ययौ भवतः। द्यावापृथिव्यौ देवते अस्य द्यावापृथिवीयम्। द्यावापृथिव्यम्। शुनासीरीयम्। शुनासीर्यम्। मरुत्वान् देवता अस्य मरुत्वतीयम्। मरुत्वत्यम्। अग्नीषोमीयम्। अग्नीषोम्यम्। वास्तोष्पतीयम्। वास्तोष्पत्यम्। गृहमेधीयम्। गृहमेध्यम्॥ ३१॥

भाषार्थ—यहाँ यत् प्रत्यय की अनुवृत्ति है। 'वास्तोष्पति' शब्द से पत्युत्तरपद होने से 'ण्य' प्रत्यय तथा दूसरे शब्दों से 'अण्' प्राप्त है। यह सूत्र उन दोनों का अपवाद है। प्रथमासमर्थ देवता समानाधिकरणवाले द्यावापृथिवी, शुनाशीर, मरुत्वत्, अग्नीषोम, वास्तोष्पति और गृहमेध, प्रातिपदिकों से षष्ठ्यर्थ में छ और यत् प्रत्यय होते हैं। जैसे—द्यावपृथिव्यौ देवते अस्य द्यावापृथिवीयम्। द्यावापृथिव्यम्। शुनासीरीयप्। शुनासीर्य्यम्। मरुत्वान् देवता अस्य मरुत्वतीयम्। मरुत्वत्यम्। अग्नीषोमीयम्। अग्नीषोम्यम्। वास्तोष्पतीयम्। वास्तोष्पत्यम्। गृहमेधीयम्। गृहमेध्यम्॥ ३१॥

अग्नेर्ढक्॥ ३२॥

अग्नेः —५।१। ढक् —१।१। प्रथमासमर्थाद् देवतासमानाधिकरणाद् अग्निप्रातिपदिकादस्येति षष्ठ्यर्थे ढक् प्रत्ययो भवति। अग्निर्देवताऽस्य आग्नेयो मन्त्रः। सर्वत्राग्निकलिभ्यां ढगिति वार्त्तिकमुक्तम्। तेन प्राग्दीव्यतीयेषु सामान्येन ढग् भवति॥ ३२॥

भाषार्थ—प्रथमासमर्थ देवता समानाधिकरणवाले 'अग्नि' प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में 'ढक्' प्रत्यय होता है। जैसे—अग्निर्देवताऽस्य आग्नेयो मन्त्रः। 'दृष्टं साम' (४।२।७) सूत्र पर 'सर्वत्राग्निकलिभ्यां ढक्' वार्त्तिक कहा है। उससे प्राग्दीव्यतीय

अर्थों में सामान्यता से ढक् का विधान किया है।

कालेभ्यो भववत्॥ ३३॥

कालेभ्यः —५।३। भववत् ।अ० प०। भव इव भववत्। सप्तमी-समर्थाद् वतिः। यथा भवाधिकारे याभ्यः कालवाचिभ्यः प्रकृतिभ्यो येन विशेषणेन प्रत्यया विधीयन्ते तथैव सास्य देवतेत्यस्मिन् विषये यथा स्युः। यथा सामान्येन कालवाचिभ्यष्ठञ्। प्रावृट् शब्दाण् ण्यः।

एवं सर्वत्र। मासो देवताऽस्य मासिकः। संवत्सरो देवताऽस्य सांवत्सरिकः। प्रावृड् देवताऽस्य प्रावृषेण्यः। शिशिरो देवताऽस्य शैशिरः। ग्रीष्मो देवताऽस्य ग्रैष्मम्। उत्सादित्वादञ्॥ ३३॥

भाषार्थ—'भव इव भववत्' यहाँ सप्तमी समर्थ से वति प्रत्यय है। जैसे 'तत्र भवः' (४।३।५३) में जिन कालवाची प्रकृतियों से जिस विशेषण के साथ प्रत्ययों का विधान किया है, वैसे ही 'सास्य देवता' (४।२।२३) इस देवता समानाधि-करणवाले काल विशेषवाची प्रातिपदिकों से प्रत्यय होवें। जैसे—वहाँ सामान्यरूप में काल वाचियों से 'ठञ्' प्रत्यय का विधान किया है वैसे यहाँ भी—मासो देवताऽस्य मासिकः। संवत्सरो देवताऽम्य सांवत्सरिकः। इसी प्रकार प्रावृड् देवताऽस्य प्रावृषेण्यः। शिशिरो देवताऽस्य शैशिरः। ग्रीष्मो देवताऽस्य ग्रैष्मम्। 'ग्रीष्म' शब्द का 'उत्सादि' गण में पाठ होने से 'अञ्' प्रत्यय होता है॥ ३३॥

महाराजप्रोष्ठपदाट् ठञ्॥ ३४॥

महाराज-प्रोष्ठपदात् —५।१। ठञ् —१।१। प्रथमासमर्थाभ्यां देवता-समानाधिकरणाभ्यां महाराज-प्रोष्ठपदप्रातिपदिकाभ्यामस्येति षष्ठ्यर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति। महाराजो देवताऽस्य माहाराजिकम्। प्रौष्ठपदिकम्।

वा०—ठञ्प्रकरणे तदस्मिन् वर्त्तत इति नवयज्ञादिभ्य उपसंख्यानम्॥ १॥

नवयज्ञोऽस्मिन् काले वर्त्तते नावयज्ञिकः। पाकयज्ञिकः॥

वा०—पूर्णमासादण्॥ २॥

पूर्णमासोऽस्मिन् काले वर्त्तते पौर्णमासी तिथिः॥ ३४॥

भाषार्थ—प्रथमासमर्थ देवतासमानाधिकरणवाले महाराज और प्रोष्ठपद प्रातिपदिकों से षष्ठ्यर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है। जैसे—महाराजो देवताऽस्य माहाराजिकम्। प्रौष्ठपदिकम्।

वा०—ठञ् प्रकरणे तदस्मिन् वर्त्तत इति नवयज्ञादिभ्य उपसंख्यानम्॥ १॥

तदस्मिन्=काल अधिकरण अभिधेय होवे, तो प्रथमासमर्थ नवयज्ञादि प्राति-पदिकों से 'ठञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—नवयज्ञोऽस्मिन् काले वर्त्तते नावयज्ञिकः। पाकयज्ञिकः इत्यादि।

वा०—पूर्णमासादण्॥ २॥

कालाधिकरण में पूर्णमास प्रातिपदिक से 'अण्' प्रत्यय होता है। जैसे—पूर्णमासोऽस्मिन् काले वर्त्तते इति पौर्णमासी तिथिः। 'ठञ्' का बाधक यह

'अण्' हुआ है॥ ३४॥

पितृव्य-मातुल-मातामह-पितामहाः॥ ३५॥

सास्य देवतेति निवृत्तम्। पितृव्य....पितामहाः —१।३। पितृव्यादयः शब्दा विशिष्टेऽर्थे निपात्यन्ते।

भा०—पितृव्यमातुलेति किं निपात्यते?

वा०—पितृमातृभ्यां भ्रातरि व्यड्डुलचौ॥ १॥

पितृ-मातृशब्दाभ्यां भ्रातरि प्रत्ययार्थेऽभिधेये व्यत्, डुलच् इत्येतौ प्रत्ययौ निपात्येते। पितुर्भ्राता पितृव्यः। मातुर्भ्राता मातुलः।

अथ मातामह-पितामहेति किं निपात्यते?

वा०—मातृ-पितृभ्यां पितरि डामहच्॥ २॥

मातृ-पितृ प्रातिपदिकाभ्यां पितरि प्रत्ययार्थेऽभिधेये डामहच् प्रत्ययो निपात्यते। मातुः पिता मातामहः। पितुः पिता पितामहः।

वा०—मातरि षिच्च॥ ३॥

मातर्यभिधेये डामहच् प्रत्ययः षिद्भवति। तच्च ङीषर्थम्। मातुर्माता मातामही। पितुर्माता पितामही।

वा०—अवेर्दुग्धे सोढ-दूस-मरीसचः॥ ४॥

अविशब्दाद् दुग्धेऽभिधेये सोढ, दूस, मरीसच्, इत्येते प्रत्यया भवन्ति। अवेर्दुग्धम् अविसोढम्। अविदूसम्। अविमरीसम्।

वा०—तिलान्निष्फलात् पिंज-पेजौ॥ ५॥

तिलशब्दान् निष्फलेऽर्थे पिंज-पैजौ प्रत्ययौ भवतः। निष्फलस्तिलः तिलपिंजः। तिलपेजः।

वा०—पिंजः छन्दसि डिच्च॥ ६॥

डित्करणं लोपार्थम्। तिलपिंजं दण्डानतम्॥ ३५॥

भाषार्थ—'सास्यदेवता' सूत्र की यहां अनुवृत्ति नहीं है। पितृव्यादि शब्दों का विशिष्टार्थ में निपातन किया गया है। विशिष्टार्थ में महाभाष्य का यह प्रमाण है— 'पितृव्य और मातुल शब्दों में क्या निपातन किया है?'

वा०—पितृ-मातृभ्यां भ्रातरि व्यड्-डुलचौ॥ १॥

पितृ और मातृ शब्दों से भ्राता अर्थ वाच्य में यथासंख्य व्यत् और डुलच् प्रत्यय निपातन किये हैं। जैसे—पितुर्भ्राता पितृव्यः। मातुर्भ्राता मातुलः॥ १॥ और मातामह तथा पितामह शब्दों में क्या निपातन किया है?

वा०—मातृ-पितृभ्यां पितरि डामहच्॥ २॥

मातृ और पितृ प्रातिपदिकों से पितृ अर्थ वाच्य में 'डामहच्' प्रत्यय निपातन किया है। जैसे-मातुः पिता मातामहः। पितुः पिता पितामहः॥ २॥

वा०—मातरि षिच्च॥ ३॥

माता अर्थ वाच्य हो तो मातृ और पितृ शब्दों से 'डामहच्' प्रत्यय षित् होता है। षित्करण 'ङीष्' प्रत्यय के लिये है। जैसे—मातुर्माता मातामही। पितुर्माता पितामही॥ ३॥

वा०—अवेर्दुग्धे सोढ-दूस-मरीसचः॥ ४॥

अवि प्रातिपदिक से दुग्ध अर्थ में सोढ, दूस तथा मरीसच् प्रत्यय होते हैं। जैसे—अवेर्दुग्धम् अविसोढम्। अविदूसम्। अविमरीसम्॥ ४॥

वा०—तिलान्निष्फलात् पिंज-पेजौ॥ ५॥

निष्फल (फलरहित) समानाधिकरणवाले 'तिल' प्रातिपदिक से पिञ्ज और पेज प्रत्यय प्रत्यय होते हैं। जैसे—निष्फलं तिलं तिलपिञ्जः। तिलपेजम्॥ ५॥

वा०—पिञ्जः छन्दसि डिच्च॥ ६॥

वैदिकप्रयोग विषय में पूर्वोक्त 'पिञ्ज' प्रत्यय डित् होवे। जैसे—तिल्पिञ्जं दण्डानतम्। यहाँ डित्करण से टिसंज्ञक अकार का लोप हो गया है॥ ६॥ ३५॥

तस्य समूहः॥ ३६॥

समर्थानां प्रथमाद्वेति प्राग्दीव्यतोऽणिति चानुवर्त्तते। तस्य —६।१। समूहः —१।१। अधिकारसूत्रमिदम् 'इनित्रकट्यचश्चेति' पर्य्यन्तम्। तत्र बाधकविषयं वर्जयित्वाऽस्य प्रवृत्तिः। समर्थानां प्रथमात् षष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकात् समूह इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति। मानुषाणां समूहो मानुषम्। औत्सीनां समूह औत्सम्। अश्वपतीनां समूह आश्वपतम्। अश्वपत्यादिभ्यश्चेत्यण्। वनस्पतीनां समूहो वानस्पत्यम्। स्त्रीणां समूहः स्त्रैणम्। पौंस्नम्। एवं सर्वत्र योजनीयम्।

अत्र जयादित्येन स्वबुद्ध्या वार्त्तिकं सृष्टं तत् मिथ्यैवास्ति प्रमाणाभावात्। वार्त्तिकानि महाभाष्यमूलकानि सन्ति। तत्र नास्त्यतश्च॥ ३६॥

भाषार्थ—यहाँ 'समर्थानां प्रथमाद्वा' (४।१।८२) तथा 'प्राग्दीव्यतोऽण्' (४।१।८३) सूत्रों की अनुवृत्ति है। यह अधिकारसूत्र है। इस सूत्र का अधिकार 'इनि-त्र-कट्यचश्च' (४।२।५०) सूत्र तक है। अपवाद-विषय को छोड़कर इस सामान्य सूत्र की प्रवृत्ति होती है। षष्ठी समर्थ प्रातिपदिकों से समूहार्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं। जैसे—मानुषाणां समूहो मानुषम्। औत्सीनां समूह औत्सम्। अश्वपतीनां समूह आश्वपतम्। यहाँ 'अश्वपत्यादिभ्यश्च' (४।१।८४) सूत्र से अण् प्रत्यय हुआ है। वानस्पतीनां समूहो वानस्पत्यम्। स्त्रीणां समूहः स्त्रैणम्। पौंस्नम्। इत्यादि प्रयोगों में समूहार्थ में यथाविहित प्रत्यय समझने चाहिएँ।

इस सूत्र पर जयादित्य ने स्वेच्छा से 'गुणादिभ्यो ग्रामज्वक्तव्यः' इस वार्त्तिक की रचना की है। वह प्रमाण-रहित होने से मिथ्या ही है। समस्त वार्त्तिकों का मूल महाभाष्य में है। क्योंकि यह वार्त्तिक महाभाष्य में नहीं है, अतः मिथ्या है॥ ३६॥

भिक्षादिभ्योऽण्॥ ३७॥

भिक्षादिभ्यः —५।३। अण् —१।१। भिक्षादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽण्

प्रत्ययो भवति समूहार्थे। भिक्षाणां समूहो भैक्षम्। गर्भिणीनां समूहो गार्भिणम्। भिक्षादिभ्योऽचित्तवत्त्वात् ठक् प्राप्तः स बाध्यते। भिक्षादिषु युवतिशब्दः पठ्यते। स चानुदात्तादिस्तस्मादञ्बाधनार्थः पाठः।

अथ भिक्षादयः—भिक्षा। गर्भिणी। क्षेत्र। करीष। अङ्गार। चर्मिन्। धर्मिन्। चर्मन्। धर्मन्। सहस्र। युवति। पदाति। पद्धति। अथर्वन्। दक्षिणा। भूत। विषय। श्रोत्र। इति भिक्षादयः॥ ३७॥

भाषार्थ—षष्ठी समर्थ भिक्षादि प्रातिपदिकों से समूह अर्थ में 'अण्' प्रत्यय होता है। जैसे—भिक्षाणां समूहो भैक्षम्। गर्भिणीनां समूहो गार्भिणम्। भिक्षादि शब्द अचित्तवान् होने से 'अचित्तहस्तिधेनोष्ठक्' (४।२।४६) सूत्र से ठक् प्राप्त है, उसका यह बाधक है। और भिक्षादि गण में 'युवति' शब्द का पाठ है, उसके अनुदात्तादि होने से 'अनुदात्तादेरञ्' (४।२।४३) सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय प्राप्त है, उसके बाधन के लिये भिक्षादिगण में इसका पाठ किया है॥ ३७॥

गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्रराजराजन्यराजपुत्रवत्समनुष्याजाद् वुञ्॥ ३८॥

इत आरभ्याणादीनामपवादः। गोत्रो...मनुष्याजात्—५।१। वुञ्—१।१। गोत्रशब्देन लौकिकस्य गोत्रस्य ग्रहणम्। युवानमपि लोके गोत्रमुपाचरन्ति। तच्च राजन्यमनुष्यग्रहणाज् ज्ञायते। षष्ठीसमर्थेभ्यो गोत्रादिप्रातिपदिकेभ्यो वुञ् प्रत्ययो भवति समूह इत्यस्मिन्नर्थे। ग्लुचुकायनीनां समूहो ग्लौचुकायनम्। गार्ग्यकम्। वात्स्यकम्। गार्ग्यायणकम्। वात्स्यायनकम्। उक्षन्-औक्षकम्। उष्ट्र-औष्ट्रकम्। उरभ्र-औरभ्रकम्। राजकम्। राजन्यकम्। राजपुत्रकम्। वात्सकम्। मानुष्यकम्। आजकम्। अत्रापत्यस्य राजन्य-मनुष्य-यकारस्य लोपः प्राप्नोति। 'प्रकृत्याऽके राजन्य-मनुष्य युवानः' इति वार्त्तिकेन प्रतिषिध्यते।

वा०—वृद्धाच्च॥ १॥

वृद्धशब्दादपि समूहे वुञ् भवतीति। वार्द्धकम् ॥ १॥ ३८॥

भाषार्थ—यहाँ से लेकर अणादि के अपवाद प्रत्ययों का विधान किया है। इस सूत्र में गोत्र शब्द से लौकिक गोत्र का ग्रहण है। लोक में युवा संज्ञक को भी गोत्र ही कहते हैं। (जब कि व्याकरणशास्त्र में 'जीवति तु वंश्ये युवा' (४।१।१६३) सूत्र से गोत्र से भिन्न युवा संज्ञा की है।) इस बात में ज्ञापक सूत्रकार का राजन्य और मनुष्य शब्दों का पाठ करना है। षष्ठी समर्थ जो गोत्रवाची, तथा उक्षन्, उष्ट्र, उरभ्र, राज, राजन्य, राजपुत्र, वत्स, मनुष्य और अज प्रातिपदिक हैं, उनसे समूह अर्थ में 'अण्' का बाधक 'वुञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—गोत्र—ग्लुचुकायनीनां समूहो ग्लौचुकायनकम्। गार्ग्यकम्। वात्सकम्। गार्ग्यायणकम्। वात्स्यायनकम् इत्यादि। उक्षन्—उक्ष्णां समूह औक्षकम्। उष्ट्र-औष्ट्रकम्। उरभ्र-औरभ्रकम्। राजन्-राजकम्। राजन्य-राजन्यकम्। राजपुत्र-राजपुत्रकम्। वत्स-वात्सकम्। मनुष्य-मानुष्यकम्। अज-आजकम्। यहाँ 'राजन्य तथा मनुष्य' शब्दों में यकार का लोप (आपत्यस्य तद्धितेऽनाति' (६।४।१५१) सूत्र से प्राप्त है,

किन्तु 'प्रकृत्याऽके राजन्य-मनुष्य-युवानः) वार्त्तिक से प्रकृतिभाव होने से लोप नहीं हुआ है।

वा०—वृद्धाच्च॥ १॥

षष्ठीसमर्थ 'वृद्ध' प्रातिपदिक से भी समूह अर्थ में 'वुञ्' प्रत्यय होवे। जैसे—वृद्धानां समूहो वार्द्धकम्॥ १॥ ३८॥

केदाराद् यञ् च॥ ३९॥

चकारग्रहणाद् वुञ् अनुवर्त्तते। केदारात्—५। १। यञ्—१। १। च—[अ०प०] केदारशब्दादचित्तवत्त्वाट् ठक् प्राप्तः स बाध्यते। षष्ठीसमर्थात् केदारप्रातिपदिकात् समूह इत्यस्मिन्नर्थे यञ् प्रत्ययो भवति, चकाराद् वुञ् च। केदाराणां समूहः कैदार्य्यम्। कैदारकम्।

वा०—गणिकायाश्च॥ १॥

गणिकाशब्दाद् यञ् प्रत्ययः समूहार्थे भवति। गणिकानां समूहो गाणिक्यम्॥ १॥ ३९॥

भाषार्थ—सूत्र में चकार के पाठ से 'वुञ्' प्रत्यय की अनुवृत्ति है। केदार शब्द के अचित्तवान् होने से 'ठक्' प्रत्यय प्राप्त है, इससे उसका बाधन हुआ है। षष्ठी समर्थ 'केदार' प्रातिपदिक से समूह अर्थ में 'यञ्' और चकार से 'वुञ्' प्रत्यय होते हैं। जैसे—केदाराणां समूहः कैदार्य्यम्। कैदारकम्।

वा०—गणिकायाश्च॥ १॥

षष्ठीसमर्थ गणिका प्रातिपदिक से भी समूह अर्थ में यञ् प्रत्यय होता है। जैसे—गणिकानां समूहो गाणिक्यम्॥ १॥ ३९॥

ठञ् कवचिनश्च॥ ४०॥

अनुदात्तादेरञ् बाध्यते। ठञ्—१। १। कवचिनः—५। १। च—[अ०प०]। षष्ठीसमर्थात् कवचिन्प्रातिपदिकात् समूहार्थे ठञ् प्रत्ययो भवति केदाराच्च। कवचिनां समूहः कावचिकम्। कैदारिकम्॥ ४०॥

भाषार्थ—'अनुदात्तादेरञ्' (४। २। ४३) सूत्र का यह बाधक है। सूत्रस्थ चकार से 'केदारात्' पद की अनुवृत्ति है। षष्ठीसमर्थ कवचिन् और केदार प्रातिपदिकों से समूहार्थ में ठञ् प्रत्यय होता है। जैसे—कवचिनां समूहः कावचिकम्। कैदारिकम्॥ ४०॥

ब्राह्मणमाणववाडवाद् यन्॥ ४१॥

अनुदात्तादेरञोऽपवादः। ब्राह्मणमाणववाडवात् —५। १। यन् —१। १। षष्ठीसमर्थेभ्यो ब्राह्मणादिप्रातिपदिकेभ्यः समूहार्थे यन् प्रत्ययो भवति। ब्राह्मणानां समूहो ब्राह्मण्यम्। माणव्यम्। वाडव्यम्।

वा०—यन्प्रकरणे पृष्ठादुपसंख्यानम्॥ १॥

पृष्ठानां समूहः पृष्ठ्यः। वक्ष्यमाणसूत्रस्थानि वार्त्तिकानि जयादित्येनात्रैव

लिखितानि भ्रमात्॥ ४१॥

भाषार्थ—यह सूत्र 'अनुदात्तादेरञ्' (४।२।४३) का अपवाद है। षष्ठी समर्थ ब्राह्मण, मानव, और वाडव प्रातिपदिकों से समूहार्थ में यन् प्रत्यय होता है। जैसे—ब्राह्मणानां समूहो ब्राह्मण्यम्। माणव्यम्। वाडव्यम्।

वा०—यन्प्रकरणे पृष्ठादुपसंख्यानम्॥ १॥

षष्ठीसमर्थ पृष्ठ शब्द से समूहार्थ में 'यन्' प्रत्यय होता है। जैसे—पृष्ठानां समूहः पृष्ठ्यः।

काशिका में जयादित्य ने इस सूत्र पर अगले सूत्र के वार्त्तिक भी लिखे हैं, यह उनका भ्रम ही है क्योंकि महाभाष्य में इन का पाठ अगले सूत्र पर ही है॥ ४१॥

ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल्॥ ४२॥

अनुदात्तादेरञ् बाध्यते। ग्रामजनबन्धुभ्यः —५।३। तल् —१।१। षष्ठीसमर्थेभ्यो ग्रामादिप्रातिपदिकेभ्यः समूह इत्यस्मिन्नर्थे तल् प्रत्ययो भवति। ग्रामाणां समूहो ग्रामता। जनता। बन्धुता।

वा०—गजसहायाभ्यां च॥ १॥

तल् भवतीत्यर्थः। गजता। सहायता॥ १॥

अत्र जयादित्येन सहाय शब्दः सूत्रे व्याख्यातः। गजार्थं तु वार्त्तिकं पठितम्। तदग्राह्यं वार्त्तिके पठितत्वात्।

वा०—अह्नः खः क्रतौ॥ २॥

क्रतौ यज्ञेऽभिधेयेऽहन्शब्दात् समूहार्थे खः प्रत्ययो भवति। अह्नां समूहोऽहीनः क्रतुः। क्रताविति किम्? इह मा भूत्-आह्नाय धूतपाप्मानो भास्कराजितभृत्यवः। अत्र खण्डिकादिषु पाठादञ्॥ २॥

वा०—पर्श्वा णस् वक्तव्यः॥ ३॥

पर्शूनां समूहः पार्श्वम्। णसि प्रत्यये णित्करणं वृद्ध्यर्थम्। सित्करणं पदसंज्ञार्थं पदत्वाद् भसंज्ञाकार्यम्, ओर्गुणो न भवति॥ ३॥ ४२॥

भाषार्थ—यह सूत्र भी (अनुदात्तादेरञ्) (४।२।४३) सूत्र का अपवाद है। षष्ठी समर्थ ग्राम, जन तथा बन्धु प्रातिपदिकों से समूहार्थ में 'तल्' प्रत्यय होता है। जैसे—ग्रामाणां समूहो ग्रामता। जनानां समूहो जनता। बन्धुता।

वा०—गजसहायाभ्यां च॥ १॥

षष्ठीसमर्थ गज, सहाय शब्दों से भी समूहार्थ में तल् प्रत्यय होवे। जैसे—गजानां समूहो गजता। सहायता।

इस सूत्र में जयादित्य ने वार्त्तिकस्थ सहाय शब्द का पाठ करके व्याख्या की है। और वार्त्तिक 'गजाच्च' बनाया है। यह उनका महाभाष्य के विरुद्ध होने से प्रमाद का ही कार्य है। क्योंकि महाभाष्य में 'सहाय' शब्द का पाठ वार्त्तिक में है।

वा०—अह्नः खः क्रतौ॥ २॥

यज्ञ अर्थ वाच्य हो तो षष्ठी समर्थ 'अहन्' शब्द से समूह अर्थ में 'ख' प्रत्यय होता है। जैसे—अह्नां समूहोऽहीनः क्रतुः। यहाँ 'क्रतौ' का पाठ इसलिये है, कि यज्ञ से अन्यत्र न हो—आह्नाय धूतपाप्मानो भास्कराजितभृत्यवः।

यहाँ खण्डिकादि गण में 'अहन्' शब्द का पाठ होने से 'अञ्' प्रत्यय हुआ है।

वा०— पर्श्वा णस् वक्तव्यः ॥ ३ ॥

षष्ठीसमर्थ पर्शू प्रातिपदिक से समूह अर्थ में णस् प्रत्यय होता है। जैसे-पशूर्नां समूहः पार्श्वम्। यहाँ 'णस्' प्रत्यय में णित्करण वृद्धि के लिये है और सित्करण पद संज्ञा के लिये है। जिससे पद संज्ञा होने से भसंज्ञा का बाध हो जाये और 'ओर्गुणः' (६।४।१४६) सूत्र से भसंज्ञा का कार्य गुण न होवे॥ ४२॥

अनुदात्तादेरञ्॥ ४३ ॥

अधिकारादण् प्राप्तः स बाध्यते। अनुदात्तादेः —५।१। अञ् —१।१। षष्ठीसमर्थाद् अनुदात्तादेः प्रातिपदिकात् समूहार्थेऽञ् प्रत्ययो भवति। कपोतानां समूहः कापोतम्। मायूरम्। कुमारीणां समूहः कौमारम्। कैशोरम्। वाधूटम्॥ ४३ ॥

भाषार्थ—यह सूत्र अधिकार से प्राप्त 'अण्' प्रत्यय का अपवाद है। षष्ठी समर्थ अनुदात्तादि प्रातिपदिकों से समूह अर्थ में 'अञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—कपोतानां समूहः कापोतम्। मायूरम्। कुमारीणां समूहः कौमारम्। कैशोरम्। वाधूटम्। इत्यादि॥ ४३ ॥

खण्डिकादिभ्यश्च॥ ४४॥

अचित्तवद्भ्यष्ठग्बाधनार्थमुदात्तादिभ्योऽण् बाधनार्थं च वचनम्। खण्डिकादिभ्यः —५।३।च —[अ०प०] षष्ठीसमर्थेभ्यः खण्डिकादिप्रातिपदिकेभ्योऽञ् प्रत्ययो भवति समूहार्थे। खण्डिकानां समूहः खाण्डिकम्। वाडवम्।

वा०—अञ्प्रकरणे क्षुद्रकमालवात् सेनासंज्ञायाम्॥ १॥

क्षुद्रक-मालवशब्दौ जनपदक्षत्रियौ, ताभ्यां विहितस्य तद्राजप्रत्ययस्य लुक्। ततस्समासः। क्षुद्रकश्च मालवश्चानयोः समाहारः। समासस्यान्तोदात्तत्वम्। तत्रानुदात्तादित्वादञ् सिद्ध एव। पुनर्विधानं गोत्राश्रयो वुञ् प्राप्तस्तद्बाधनार्थं नियमार्थं च। क्षुद्रक-मालवशब्दात् सेनासंज्ञायामेव अञ् प्रत्ययो भवति। क्षौद्रक-मालवी सेना। क्व मा भूत्? क्षौद्रकमालवकमिति गोत्राश्रयो वुञ्।

अथ खण्डिकादयः। खण्डिका। वडवा। क्षुद्रकमालव। भिक्षुक। शुक। उलूक। श्वन्। युग। अहन्। वरत्रा। हलबन्ध। इति खण्डिकादयः॥ ४४॥

भाषार्थ—यह सूत्र अचित्तवान् शब्दों से 'ठक्' प्रत्यय का और उदात्तादि शब्दों से 'अण्' प्रत्यय का अपवाद है।

षष्ठी समर्थ खण्डिकादि प्रातिपदिकों से समूह अर्थ में 'अञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—खण्डिकानां समूहः खाण्डिकम्। वाडवम्। इत्यादि।

वा०—अञ्प्रकरणे क्षुद्रकमालवात् सेनासंज्ञायाम् ॥ १ ॥

क्षुद्रक और मालव दोनों शब्द जनपद क्षत्रियवाची हैं। उनसे विहित तद्राजसंज्ञक प्रत्यय का लुक् हो जाता है। फिर दोनों शब्दों का समाहारद्वन्द्व समास होके 'समासस्य' (६।१।२१७) सूत्र से अन्तोदात्त स्वर होकर अनुत्तादि होने से अञ् प्रत्यय 'अनुदात्तादेरञ्' (४।२।४३) सूत्र से सिद्ध ही था, फिर अञ् प्रत्यय का इससे विधान गोत्राश्रय 'गोत्रोक्षो०' (४।२।३८) सूत्र से जो वुञ् प्रत्यय प्राप्त हुआ, उसके अपवाद के लिये है। और यह वार्त्तिक नियम के लिये भी है। अर्थात् 'क्षुद्रक मालव' शब्द से सेना संज्ञा अर्थ में ही 'अञ्' प्रत्यय होवे। अन्यत्र नहीं। जैसे—क्षौद्रकमालवी सेना और जहां सेना संज्ञा न हो, वहाँ गोत्राश्रय 'वुञ्' प्रत्यय होकर 'क्षौद्रकमालवकम्' प्रयोग ही होगा॥ ४४॥

चरणेभ्यो धर्मवत्॥ ४५॥

चरणेभ्यः —५।३। धर्मवत् [अ०]। अतिदेशोऽयम्। धर्म इव, सप्तमी समर्थाद्वतिः। चरणशब्दाः कठकलापादयः। षष्ठीसमर्थेभ्यश्चरणवाचिप्रातिपदिकेभ्यः समूह इत्यस्मिन्नर्थे धर्मवत् प्रत्यया भवन्ति। 'गोत्रचरणाद्वुञ्' इत्यत्र 'चरणाद् धर्माम्नाययोरिति' वार्त्तिकेन तस्मिन् चरणवाचिभ्यो यथा प्रत्यया विधीयन्ते तथैव सामूहिके भवन्तीत्यर्थः। यथा कठानां धर्मः काठकम्। कालापकम्। छन्दोगानां समूहः छान्दोग्यम्। आथर्वणिकानां समूह आथर्वणम्॥ ४५॥

भाषार्थ—यह अतिदेशसूत्र है। 'धर्मवत्' पद में 'धर्म इव' सप्तमी समर्थ से वति प्रत्यय है। चरण शब्द से कठ, कलापादि का ग्रहण है। षष्ठी समर्थ चरणवाची (कठादि) प्रातिपदिकों से समूह अर्थ में धर्म अर्थ में विहित प्रत्ययों की भाँति प्रत्यय होते हैं। 'गोत्र चरणाद् वुञ्' (४।३।१२५) सूत्र पर 'चरणाद् धर्माम्नाययोः' वार्त्तिक से चरणवाची शब्दों से जैसे धर्म अर्थ में प्रत्यय होते हैं, वैसे ही समूह अर्थ में भी होते हैं। जैसे—कठानां धर्मः काठकम्। कालापकम्। छान्दोगानां धर्मश्छान्दोग्यम्। इसी प्रकार समूह अर्थ में भी—कठानां समूहः काठकम्। कालापकम्। छन्दोगानां समूहः छान्दोग्यम्। आथर्वणिकानां समूह आथर्वणम्॥ ४५॥

अचित्तहस्तिधेनोष्ठक्॥ ४६॥

अण्-अञोरपवादः। अचितहस्तिधेनोः —५।१। ठक् —१।१। षष्ठीसमर्थेभ्योऽचित्तार्थकप्रातिपदिकेभ्यो हस्तिधेनुभ्यां च समूहेऽर्थे ठक् प्रत्ययो भवति। ये चाचित्तवन्तोऽनुदात्तादयः शब्दास्तेभ्योऽपि परविप्रतिषेधाट् ठगेव भवति। सक्तूनां समूहः साक्तुकम्। अपूप-शाष्कुल्यौ शब्दावनुदात्तादी। अपूपानां समूह आपूपिकम्॥ शष्कुलीनां समूहः शाष्कुलिकम्। हस्तिनां समूहो हास्तिकम्। प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापीति हस्तिनीशब्दादपि प्रत्ययः। हस्तिनीनां

समूहो हास्तिकम्। 'भस्याढे तद्धिते' इति वक्ष्यमाणवार्त्तिकेन पुंवद्भावः। धेनूनां समूहो धैनुकम्॥ ४६॥

भाषार्थ—यह सूत्र 'अण्' और 'अञ्' का अपवाद है। षष्ठीसमर्थ अचित्तार्थक= अचेतन प्रातिपदिकों से और हस्तिन्, धेनु शब्दों से समूह अर्थ में 'ठक्' प्रत्यय होता है। जो अचितार्थक अनुदात्तादि शब्द हैं, उनसे पर विप्रतिषेध से 'ठक्' प्रत्यय ही होता है। जैसे—सक्तूनां समूहः साक्तुकम्। अपूप और शष्कुली शब्द अनुदात्तादि हैं। अपूपानां समूह आपूपिकम्। शष्कुलीनां समूहः शाष्कुलिकम्। हस्तिनां समूहो हास्तिकम्। प्रातिपदिक के ग्रहण में लिङ्गविशिष्ट का भी ग्रहण हो जाता है। इस परिभाषा के नियम से 'हस्तिनी' शब्द में भी प्रत्यय होता है। हस्तिनीनां समूहो हास्तिकम्। 'भस्याढे तद्धिते' इस वार्तिक से यहाँ पुंवद्भाव होता है। धेनूनां समूहो धैनुकम्॥ ४६॥

केशाश्वाभ्यां यञ्-छावन्यतरस्याम्॥ ४७॥

केशाश्वाभ्याम् —५।२। यञ्-छौ —१।२। अन्यतरस्याम् [अ०]। अप्राप्तविभाषेयम्। केशशब्दादचित्तत्वाद् ठक् प्राप्त उदात्तादेरश्व शब्दादण्, पक्षे तावेव भवतः। षष्ठीसमर्थाभ्यां केश-अश्वप्रातिपदिकाभ्यां समूह इत्यस्मिन्नर्थे यथासंख्यं यञ्-छौ प्रत्ययौ भवतः। केशानां समूहः कैश्यम्। कैशिकम्। अश्वानां समूहोऽश्वीयम्। आश्वम्॥ ४७॥

भाषार्थ—इस सूत्र में अप्राप्त विभाषा है। केश शब्द से अचित्तवान् होने से 'ठक्' प्राप्त है और अश्व शब्द से उदात्तादि होने से 'अण्' प्रत्यय प्राप्त है। विकल्प से ये दोनों प्रत्यय भी होते हैं। षष्ठी समर्थ केश, अश्व प्रातिपदिकों से समूह अर्थ में यथासंख्य 'यञ्' और 'छ' प्रत्यय होते हैं। जैसे—केशानां समूहः कैश्यम्। कैशिकम्। अश्वानां समूहोऽश्वीयम्। आश्वम्॥ ४७॥

पाशादिभ्यो यः॥ ४८॥

पाशादीनामचित्तवत्त्वात् ठक् प्राप्तस्तद् बाधनार्थं यविधानम्। पाशादिभ्यः —५।३। यः —१।१। षष्ठीसमर्थेभ्यः पाशादिप्रातिपदिकेभ्यो यः प्रत्ययो भवति समूहार्थे। पाशानां समूहः पाश्या। तृण्या।

वातशब्दोऽत्र पठ्यते, तस्मात् सामूहिके कथं प्रत्ययः स्यात्। वातानामेकीभावात्। तत्र पूर्वो वात उत्तरो वात इत्यादिभेदाददोषः।

अथ पाशादयः—पाश। तृण। धूम। वात। अङ्गर। पाटल। पोत। गल। पिटक। पिटाक। वाधक। शकट। हल। नडवन॥ ४८॥

भाषार्थ—पाशादि गण पठित शब्दों के अचित्तवान् होने से 'ठक्' प्रत्यय प्राप्त है, उसका अपवाद 'य' प्रत्यय है। षष्ठी समर्थ गणपठित पाशादि प्रातिपदिकों से समूह अर्थ में 'य' प्रत्यय होता है। जैसे—पाशानां समूहः पाश्या। तृण्या इत्यादि।

पाशादिगण में 'वात' शब्द का पाठ है, उससे समूह अर्थ की संगति न होने से प्रत्यय कैसे होगा? क्योंकि वात संज्ञक अवयवी के एक होने से

अनेकता=पृथक्‌भाववाले समूह अर्थ की अनुपपत्ति है। इसका उत्तर यह है—पूर्व वात, उत्तरवात, इत्यादि भेद होने से वात में भी अनेकता का व्यवहार होता है। अत: समूह अर्थ में प्रत्ययविधान में दोष नहीं आता॥ ४८॥

खलगोरथात्॥ ४९॥

य इत्यनुवर्त्तते। खलगोरथात् —५।१। समाहारद्वन्द्वः। षष्ठीसमर्थेभ्यः खल, गो, रथ, इत्येतभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो यः प्रत्ययो भवति समूहार्थे। अण्-ठकोरपवादः। खलानां समूहः खल्या। गव्या। रथ्या। पाशादिषु पाठ उत्तरार्थो न कृतः॥ ४९॥

भाषार्थ—यहाँ 'य' प्रत्यय की अनुवृत्ति है। 'खल-गो-रथात्' पद में समाहारद्वन्द्व समास है। षष्ठीसमर्थ खल, गो और रथ प्रातिपदिकों से समूह अर्थ में 'य' प्रत्यय होता है। यह 'अण्' तथा ठक् प्रत्ययों का अपवाद है। जैसे—खलानां समूह: खल्या। गव्या। रथ्या। इन शब्दों का पाशादि गण में ही पाठ इसलिये नहीं किया कि इन शब्दों की उत्तर-सूत्र में अनुवृत्ति है।

इनित्रकट्यचश्च॥ ५०॥

खलगोरथादित्यनुवर्त्तते। इनि-त्र-कट्यचः —१।३। च —अ०प०। षष्ठीसमर्थेभ्यः खल, गो, रथ इति त्रिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः समूह इत्यस्मिन्नर्थे इनि, त्र, कट्यच्, इत्येते प्रत्यया यथासंख्यं भवन्ति। खलानां समूहः खलिनी। गवां समूहो गोत्रा। रथानां समूहो रथकट्या।

वा०—खलादिभ्य इनिर्वक्तव्यः॥ १॥

खलिनी। डाकानां समूहो डाकिनी। कुटुम्बिनी। अत्र समूहाधिकारो निवृत्तः।

जयादित्येनात्र 'कमलादिभ्यः खण्डज्' इत्यादि वार्त्तिकत्रयंस्वबुद्ध्या सृष्टं तन्मिथ्यैवास्ति, महाभाष्ये पठनाऽभावात्॥ ५०॥

भाषार्थ—यहाँ 'खल-गो-रथात्' पद की अनुवृत्ति है। षष्ठी समर्थ खल, गो, रथ प्रातिपदिकों से समूह अर्थ में यथासंख्य इनि, त्र और कट्यच् प्रत्यय होते हैं। जैसे—खलानां समूह: खलिनी। गवां समूहो गोत्रा। रथानां समूहो रथकट्या।

वा०—खलादिभ्य इनिर्वक्तव्यः॥ १॥

षष्ठीसमर्थ खलादि प्रातिपदिकों से समूह अर्थ में 'इनि' प्रत्यय होता है। जैसे—खलानां समूह: खलिनी। डाकानां समूहो डाकिनी। कुटुम्बिनी। यहाँ 'समूह' का अधिकार समाप्त हुआ।

काशिकाकार जयादित्य ने इस सूत्र पर 'कमलादिभ्य: खण्डच्' इत्यादि तीन नवीन वार्त्तिक अपनी बुद्धि से लिखे हैं, वे महाभाष्य में न होने से मिथ्या ही समझने चाहिएँ॥ ५०॥

विषयो देशे॥ ५१॥

तस्येति षष्ठीसमर्थमनुवर्त्तते। समूह इति निवृत्तम्। विषयः —१।१। देशे

—७।१। षष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकाद् विषयो देश इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति। वृषलानां विषयो देशो वार्षलम्। यवनानां विषयो देशो यावनः।

वा०—विषयाभिधाने जनपदे लुब् बहुवचनविषयात्॥ १॥

जनपदक्षत्रियशब्देभ्यो बहुवचनविषयेभ्य उत्पन्नस्य प्रत्ययस्य लुप्। अङ्गानां विषयो देशः अङ्गाः। वङ्गाः। सुह्माः। पुण्ड्राः॥ १॥

वा०—गान्धार्य्यादिभ्यो वा॥ २॥

गान्धार्य्यादिजनपदविषयबहुवचनान्तेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो विकल्पेन लुब् भवति। लुप्पक्षे व्यक्तिवचने युक्तवद् भवतः। गान्धारीणां विषयो देशो गान्धारः। गान्धारयः। वासातः। वासातयः। शैवः। शिवयः॥ १॥

वा०—राजन्यादिभ्यो वा वुञ्॥ ३॥

सूत्रेण नित्ये विधीयमाने विकल्पः क्रियते, पक्षेऽण् भवति। तस्यैव लुप्। वुञस्तु विधानसामर्थ्यादेव [लुब्] न भवति। राजन्यानां विषयो देश, राजन्याः। राजन्यकः। दैवयातवः। दैवयातवकः॥ ३॥

वा०—बैल्ववनादिभ्यो नित्यम्॥ ४॥

राजन्याद्यन्तर्गतेभ्यो बैल्ववनादिभ्यो नित्यं वुञ् प्रत्ययो भवति। बैल्ववनानां विषयो देशः। बैल्ववनकः। आम्बरीषपुत्रकः। आत्मकामेयकः॥ ५१॥

भाषार्थ—इस सूत्र में 'तस्य' पद की अनुवृत्ति है। समूह अर्थ निवृत्त हो गया है। षष्ठी समर्थ प्रातिपदिकों से विषय अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है, यदि विषय देश* अर्थ में हो। जैसे—वृषलानां विषयो देशो वार्षलम्। यवनानां विषयो देशो यावनः। इत्यादि।

वा०—विषयाभिधाने जनपदे लुब् बहुवचनविषयात्॥ १॥

इस 'विषय' अर्थ में जनपद-क्षत्रियवाची बहुवचनान्त शब्दों से उत्पन्न प्रत्यय का लुप् होवे। जैसे—अंगानां विषयो देशः अङ्गाः। वङ्गाः। सुह्माः। पुण्ड्राः। यद्यपि 'जनपदे लुप्' सूत्र से चातुर्थिक प्रत्ययों का लुप् कहा है पुनरपि 'अङ्गानां विषयः' इससे जो स्व-स्थानिवद् भाव प्राप्त होता है, उसका निवासादि अर्थों से बोध न होने से पृथक् से लुप् विधान किया है।

वा०—गान्धार्य्यादिभ्यो वा॥ २॥

जनपद-क्षत्रिय विषयक बहुवचनान्त गान्धारि आदि शब्दों से विषय अर्थ में उत्पन्न प्रत्यय का विकल्प से लुप् होवे। जैसे—गान्धारीणां विषयो देशो गान्धारः। गान्धारयः। वासातः। वासातयः। शैवः। शिवयः। जहाँ प्रत्यय का लुप् होता है, वहाँ व्यक्ति-वचन पूर्ववत् ही रहते हैं।

---

* विषय शब्द अनेकार्थ है, जैसे—ग्रामसमुदाय अर्थ में, विषयो लब्धः। इन्द्रियों से ग्रहण करने योग्य रूपादि विषय अर्थ में, जैसे—चक्षुविषयो रूपम्। अत्यधिक अभ्यास अर्थ में, जैसे—देवदत्तस्य विषयोऽनुवाकः। अतः इस सूत्र में ग्राम समुदाय अर्थ का ग्रहण करने के लिये 'देशे' शब्द का ग्रहण किया है। (अनुवादक)

वा०—राजन्यादिभ्यो वा वुञ्॥ ३॥

राजन्यादि शब्दों से सूत्र से नित्य-प्रत्यय की प्राप्ति में विकल्प से 'वुञ्' का विधान किया है॥

पक्ष में यथाप्राप्त 'अण्' होता है। और उसी 'अण्' का लुप् होता है। विधानसामर्थ्य से वुञ् का लुप् नहीं होता। जैसे—राजन्यानां विषयो देशः राजन्याः। राजन्यकः। दैवयातवः। दैवयातवकः।

वा०—बैल्ववनादिभ्यो नित्यम्॥ ४॥

राजन्यादि के अन्तर्गत बैल्ववनादि प्रातिपदिकों से विषय अर्थ में नित्य वुञ् प्रत्यय होता है। जैसे बैल्ववनानां विषयो देशः। बैल्ववनकः। आम्बरीषपुत्रकः। आत्मकामेयकः॥ ५१ ॥

राजन्यादिभ्यो वुञ्॥ ५२॥

राजन्यादिभ्यः —५।३। वुञ् —१।१। उक्त वार्त्तिकेन वा ग्रहणमत्र सम्बध्यते। षष्ठीसमर्थेभ्यो राजन्यादिप्रातिपदिकेभ्यो विकल्पेन विषयो देश इत्यर्थे वुञ् प्रत्ययो भवति। राजन्यानां विषयो देशः। राजन्यकः। राजन्याः। वुञ्विकल्पे पक्षेऽण् भवति। तस्य लुप्। तत्र व्यक्तिवचने युक्तवद् भवतः।

अथ राजन्यादयः—राजन्य। देवयातव। अमृत। बाभ्रव्य। शालङ्कायन। जालन्धरायण। तेल। बैल्ववन। आत्मकामेय। अम्बरीषपुत्र। वसाति। शैलूष। उदुम्बर। तीव्र। बैल्वल। आर्जुनायन। संप्रिय। दाक्षि। ऊर्णनाभ। आप्रीत। आब्रीड। वैतिल। वावक्र। इति राजन्यादयः।

भाषार्थ—पूर्व सूत्रोक्त ''राजन्यादिभ्यो वा वुञ्'' इस वार्त्तिक से वा (विकल्प) का इस सूत्र से भी संबन्ध होता है। षष्ठी समर्थ राजन्यादि गणपठित प्रातिपदिकों से देश वाच्य विषय अर्थ में विकल्प से 'वुञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—राजन्यानां विषयो देशो राजन्यकः। राजन्याः। 'वुञ्' के विकल्प में पक्ष में अण् होता है और उसका लुप् वार्तिक से होता है। प्रत्यय के लुप् होने पर 'लुपि युक्तवद्०' (१।२।५१) सूत्र से लिङ्ग और संख्या पूर्ववत् ही रहते हैं॥ ५२॥

भौरिक्याद्यैषुकार्य्यादिभ्यो विधल्भक्तलौ॥ ५३॥

विषयो देश इत्यनुवर्त्तते। भौरि—दिभ्यः -५।३। विधल्भक्तलौ -१।२। षष्ठीसमर्थेभ्यो भौरिक्यादिभ्य ऐषुकार्यादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो यथासंख्यं विधल्भक्तलौ प्रत्ययौ भवतः। भौरिकीणां विषयो देशः। भौरिकिविधः। भौलिकिविधः। ऐषुकारिभक्तः। सारस्यायनभक्तः।

अथ भौरिक्यादयः—भौरिकि। वैपेय। भौलिकि। चौपयत। चौय्यत। काणेय। वाणिजक। वालिज। वालिज्यक। शैकयत। वैकयत। इति भौरिक्यादयः।

अथैषुकार्य्यादयः—ऐषुकारि। सारस्यायन। चान्द्रायण। द्व्याक्षायण। आक्षायण। त्रायण। औडायन। जौलायन। सौवीर। दासमित्रि। दासमित्रायण।

शौद्रायण। दाक्षायण। शयण्ड। ताक्ष्र्यायण। शौभ्रायण। सौवीरायण। सायण्डि। शौण्डि। वैश्वमाणव। वैश्वधेनव। नद। नड। तुण्डदेव। विश्वदेव। विशदेव। अलायत। औलालायत। शौण्ड। शयाण्ड। वैश्वदेव। इत्यैषुकार्य्यादयः ॥ ५३ ॥

भाषार्थ—यहाँ 'विषयो देशे' पदों की अनुवृत्ति है। षष्ठी समर्थ गणपठित भौरिकि आदि और एषुकारि आदि प्रातिपदिकों से यथासंख्य विधल् और भक्तल् प्रत्यय होते हैं। जैसे—भौरिकीणां विषयो देशो भौरिकिविधः। भौलिकिविधः। ऐषुकारिभक्तः। सारस्यायनभक्तः, इत्यादि॥५३॥

सोऽस्यादिरिति च्छन्दसः प्रगाथेषु॥५४॥

तस्येत्यपि निवृत्तम्। सः —१।१। अस्य —६।१। आदिः —१।१। इति [अ०]। छन्दसः —५।१। प्रगाथेषु —७।३। स इति प्रथमासमर्थनिर्देशः। आदिरिति प्रकृतिविशेषणम्। प्रगाथेष्विति प्रत्ययार्थः। छन्दः शब्देन गायत्र्यादि-छन्दसां ग्रहणम्। [स इति प्रथमासमर्थाद् आदिसमानाधिकरणाच् छन्दःवाचि प्रतिपादिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे प्रगाथेष्वभिधेयेषु यथाविहितं प्रत्ययो भवति] गायत्र्यादिरस्य प्रगाथस्य गायत्रः प्रगाथः। पाङ्क्तः। त्रैष्टुभः। आनुष्टुभः। बार्हतः। पङ्क्ति, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्। जगती, इति चत्वारः शब्दा उत्सादिषु पठ्यन्ते तेभ्योऽञ् प्रत्ययः। अन्येभ्यस्त्वण्।

वा०--छन्दसः प्रत्ययविधाने नपुंसकात् स्वार्थ उपसंख्यानम्॥१॥

नपुंसकादिति प्रातिपदिकनिर्देशः, प्रत्ययार्थविशेषणम्। प्रत्ययान्तं रूपं नपुंसकं भवतीत्यर्थः। त्रिष्टुबेव त्रैष्टुभम्। अनुष्टुबेवानुष्टुभम्। जगत्येव जागतम्। स्वार्थे नपुंसकत्वम्। प्रगाथेऽभिधेये पुंस्त्वमेव॥५४॥

भाषार्थ—यहाँ 'तस्य' पद की अनुवृत्ति नहीं है। 'सः' शब्द से प्रथमा समर्थ विभक्ति का निर्देश है। 'आदि' शब्द प्रकृति का विशेषण है। 'प्रगाथेषु' पद प्रत्ययार्थ का बोधक है। और 'छन्दस्' शब्द से अक्षरपरिमाण गायत्री आदि छन्दों का ग्रहण है। प्रथमासमर्थ आदि समानाधिकरण छन्दस्-वाची प्रातिपदिकों से षष्ठ्यर्थ में प्रगाथ* अभिधेय हो तो यथाविहित प्रत्यय होते हैं। जैसे—गायत्री आदिरस्य प्रगाथस्य गायत्रः प्रगाथः। पाङ्क्तः। त्रैष्टुभः। आनुष्टुभः। जागतः। बार्हतः। पङ्क्ति, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, जगती, ये चार शब्द उत्सादिगण में पठित हैं, उनसे 'अञ्' प्रत्यय हुआ है और दूसरे शब्दों से तो 'अण्' प्रत्यय हुआ है।

वा०—छन्दसः प्रत्ययविधाने नपुंसकात् स्वार्थ उपसंख्यानम्॥१॥

'नपुंसकात्' शब्द से नपुंसकप्रातिपदिक का निर्देश है और प्रत्ययार्थ का विशेषण है, अर्थात् प्रत्ययान्त जो रूप बनता है, वह नपुंसक होता है। छन्दस्वाची शब्दों से स्वार्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है। जैसे—त्रिष्टुबेव त्रैष्टुभम्।

---

* प्र+गाथा=प्रगाथा। गीयते या सा गाथा (उणादि० २।४), अत्रानुक्तं गाथा (छन्द० ८।१) शास्त्रे नामोद्देशेन यन्नोक्तं छन्दः, प्रयोगे च दृश्यते तत्-छन्दः गाथेत्यभिधीयते।

—सम्पादक

अनुष्टुबेवानुष्टुभम्। जगत्येव जागतम्। यहाँ स्वार्थ में प्रत्ययान्त शब्द नपुंसक होता है; और प्रगाथ अभिधेय में पुल्लिंग ही रहता है॥५४॥

संग्रामे प्रयोजनयोद्धृभ्यः॥५५॥

संग्रामे —७।१। प्रयो०.....धृभ्यः —५।३। सोऽस्येत्यनुवर्त्तते। संग्राम इति प्रत्ययार्थः। प्रथमासमर्थेभ्य प्रयोजनन्योद्धृसमानाधिकरणप्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति संग्रामेऽभिधेये। स्त्री प्रयोजनमस्य मंग्रामस्य स्त्रैणः। कल्याणं प्रयोजनमस्य संग्रामस्य काल्याणः। पृथिवी प्रयोजनमस्य संग्रामस्य पार्थिवः संग्रामः।'पृथिव्या ञाञाविति वार्त्तिकेन ञाञौ। भरता योद्धारोऽस्य संग्रामस्य भारतः संग्रामः। कुरवो योद्धारोऽस्य संग्रामस्य कौरवः संग्रामः। कुरु-भरत शब्दाभ्यामुत्सादिपाठादञ्। संग्राम इति किम्। स्त्री प्रयोजनमस्य कामुकस्य। प्रयोजनयोद्धृभ्य इति किम्। स्त्री प्रयोजनमस्य कामुकस्य। प्रयोजन योद्धृभ्य इति किम्। सुभद्रा प्रेक्षिकाऽस्य संग्रामस्य अत्र मा भूत्॥५५॥

भाषार्थ—यहाँ 'सोऽस्य' पदों की अनुवृत्ति है। संग्रामे' शब्द से प्रत्ययार्थ का निर्देश है। प्रथमा समर्थ प्रयोजन और योद्धृ समानाधिकरण प्रातिपदिकों से षष्ठ्यर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं, यदि प्रकृति-प्रत्यय समुदाय से संग्राम का बोध होवे। जैसे—स्त्री प्रयोजनमस्य संग्रामस्य स्त्रैणः संग्रामः। कल्याणं प्रयोजनमस्य संग्रामस्य काल्याणः। पृथिवी प्रयोजनमस्य संग्रामस्य पार्थिवः संग्रामः। 'पार्थिवः' शब्द में 'पृथिव्या ञाञौ' वार्त्तिक से ञ् और अञ् प्रत्यय हैं। योद्धृसमानाधिकरण—भरता योद्धारोऽस्य संग्रामस्य भारतः संग्रामः। कुरवो योद्धारोऽस्य संग्रामस्य कौरवः संग्रामः। कुरु और भरत शब्दों से उत्सादि में पाठ होने से 'अञ्' प्रत्यय हुआ है। यहाँ 'संग्रामे' शब्द का ग्रहण इसलिये है कि स्त्री प्रयोजनमस्य कामुकस्य, यहाँ प्रत्यय न होवे और प्रयोजनयोद्धृभ्यः' का ग्रहण इसलिये है कि 'सुभद्रा प्रेक्षिकाऽस्य संग्रामस्य' यहाँ भी न हो॥५५॥

तदस्यां प्रहरणमिति क्रीडायां णः॥५६॥

स इत्यनुवर्त्तमाने पुनस्तद् ग्रहणमस्येति निवृत्त्यर्थम्। तत् —१।१। अस्याम्—७।१। प्रहरणम्—१।१। इति [अ०] क्रीडायाम्—७।१। णः —१।१। अस्यां क्रीडायामिति प्रत्ययार्थः। प्रहरणमिति प्रकृत्यर्थविशेषणम्। प्रथमा-समर्थात् प्रहरणसमानाधिकरणाद् अस्यां क्रीडायामित्यधिकरणे णः प्रत्ययो भवति। दण्डाः प्रहरणमस्यां क्रीडायां दाण्डा क्रीडा। मौष्टा। पुष्पाणि प्रहरणमस्यां क्रीडायां पौष्पा। प्रहरणमिति किम्। मालाभूषणमस्यां क्रीडायाम्। क्रीडायामिति किम्। असिः प्रहरणमस्यां सेनायामित्यत्र माभूत्॥५६॥

भाषार्थ—यहाँ 'सः' की अनुवृत्ति होने पर भी पुनः 'तद्' का ग्रहण 'सः' से सम्बद्ध 'अस्य' पद की निवृत्ति के लिये है। 'अस्यां क्रीडायाम्' पद प्रत्ययार्थ के निर्देशक और 'प्रहरणम्' शब्द प्रकृत्यर्थ का विशेषण है। प्रथमासमर्थ प्रहरण

समानाधिकरण प्रातिपदिकों से सप्तम्यर्थ में 'ण' प्रत्यय होता है, यदि प्रकृति-प्रत्यय समुदाय से क्रीडा का बोध होवे। जैसे—दण्डाः प्रहरणमस्यां क्रीडायां दाण्डा क्रीडा। मौष्टा। पुष्पाणि प्रहरणमस्यां क्रीडायां पौष्पा क्रीडा। यहाँ 'प्रहरणम्' का ग्रहण इसलिये है कि—मालाभूषणमस्यां क्रीडायाम्। यहाँ प्रत्यय न हो। और 'क्रीडायाम्' पद का ग्रहण इसलिये है कि—असिः प्रहरणमस्यां सेनायाम्। यहाँ भी क्रीडा अभिधेय न होने से प्रत्यय न होवे॥५६॥

घञः सास्यां क्रियेति ञः॥५७॥

घञः —५।१। सा —१।१। अस्याम् —७।१। क्रिया —१।१। इति। ञः —१।१। घञ् इति प्रकृतिनिर्देशः। सेति समर्थविभक्तिः। क्रियेति प्रकृतिविशेषणम्। प्रथमासमर्थात् क्रियावाचिनो घञन्तात् प्रातिपदिकाद् अस्यामित्यधिकरणे ञः प्रत्ययो भवति। श्येनपातोऽस्यां वर्त्तते श्यैनंपाता। तिलपातोऽस्यां वर्त्तते तैलंपाता। 'श्येनतिलस्य पाते ञे' इति मुमागमः। घञ इत किम्। श्येनपतनमस्यां वर्त्तते। क्रियेति किम्। उपाध्यायोऽस्यां वर्त्तते। साऽस्यामिति पुनर्ग्रहणस्यैतत् प्रयोजनं क्रीडायामिति न संबध्येत। अर्थात् सामान्येन स्त्रीलिङ्गेऽभिधेये स्यात्। इहापि यथा स्यात्। दण्डपातोऽस्यां तिथौ वर्त्तते दाण्डपाता। मौसलपाता॥५७॥

भाषार्थ—यहाँ सूत्र में 'घञः' पद से प्रकृति का 'सा' पद से समर्थ विभक्ति का और 'क्रिया' पद से प्रकृतिविशेषण का निर्देश है। प्रथमा समर्थ क्रियावाची घञ् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से सप्तम्यर्थ स्त्रीलिंग में 'ञ' प्रत्यय होता है। जैसे—श्येनपातोऽस्यां वर्त्तते श्यैनंपाता। तिलपातोऽस्यां वर्त्तते तैलंपाता। 'श्येनतिलस्य पाते ञे' (अ० ६।३।७०) सूत्र से पूर्वपद को 'मुम्' आगम हुआ है। यहाँ 'घञ्' का ग्रहण इसलिये है कि—श्येनपतनमस्यां वर्त्तते। यहाँ घञन्त न होने से प्रत्यय न होवे। 'क्रिया' का ग्रहण इसलिये हैं कि उपाध्यायोऽस्यां वर्त्तते। यहाँ क्रिया न होने से प्रत्यय न होवे और 'साऽस्याम्' पदों के पुनर्ग्रहण का यह प्रयोजन है कि 'क्रीडायाम्' का सम्बन्ध यहाँ न होवे। अर्थात् सामान्यरूप में स्त्रीलिंग अभिधेय में प्रत्यय होने से यहाँ भी प्रत्यय हो जावे—दण्डपातोऽस्यां तिथौ वर्त्तते दाण्डपाता तिथिः। मौसलपाता तिथिः॥५७॥

तदधीते तद् वेद॥५८॥

तत् —२।१। अधीते [क्रि.प.]। तद् —२।१। वेद [क्रि.प.] अत्र द्विस्तद्ग्रहणस्यैतत् प्रयोजनं यः केवलमध्ययनमात्रं करोति, यश्च केवलं वेत्ति नाऽधीते, तयोः पृथक् पृथगपि ग्रहणं यथा स्यात्। अन्यथा योऽधीते स एव वेद तत्रैव प्राप्नोति। अध्ययनं केवलः पाठमात्रस्याभ्यासः। वेदनं तत्त्वज्ञानम्। द्वितीयासमर्थात् प्रातिपदिकादध्ययनकर्त्तर्य्यभिधेये यथाविहितं प्रत्ययो भवति। एवं द्वितीयासमर्थाद् वेदनकर्त्तर्य्यपि। व्याकरणमधीतेऽसौ वैयाकरणः। व्याकरणं वेद सोऽपि वैयाकरणः। निरुक्तमधीते वेद वा नैरुक्तः। गणितमधीते गाणितः। मुहूर्त्तं वेत्ति मौहूर्त्तः। औत्पातः॥५८॥

भाषार्थ—सूत्र में दो वार तद् (समर्थ विभक्ति) के ग्रहण करने का प्रयोजन* यह है कि जो केवल शास्त्र को पढ़ रहा है और जो शास्त्र का वेत्ता (विद्वान्) है, पढ़ता नहीं है, उन दोनों का पृथक्-पृथक् ग्रहण हो सके। अन्यथा जो पढ़ रहा है, वही वेत्ता भी हो, उस का ही ग्रहण प्राप्त होता। अध्ययन (पढ़ना) केवल पाठ के अभ्यास को और वेदन=जानना तत्त्वज्ञान को कहते हैं।

द्वितीया समर्थ प्रातिपदिकों से अध्ययन करने और जाननेवाला कर्त्ता वाच्य हो तो यथाविहित प्रत्यय होते हैं। जैसे—व्याकरणमधीतेऽसौ वैयाकरणः। व्याकरणं वेद सोऽपि वैयाकरणः। निरुक्तमधीते वेद वा नैरुक्तः। गणितमधीते गाणितः। मुहूर्त्तं वेत्ति मौहूर्त्तः। औत्पातः, इत्यादि॥५८॥

क्रतूक्थादिसूत्रान्ताट् ठक्॥५९॥

पूर्वसूत्रं सर्वमनुवर्त्तते। क्रतूक्थादिसूत्रान्तात् —५।१। ठक् —१।१। क्रतवः=यज्ञ-विशेषवाचिनः। उक्थादयो गणशब्दाः। अण् प्राप्तः बाध्यते। द्वितीयासमर्थेभ्यः क्रतूक्थादिसूत्रान्तप्रातिपदिकेभ्योऽध्ययनवेदनयोः कर्त्तरि ठक् प्रत्ययो भवति। क्रतु—अश्वमेधमधीते आश्वमेधिकः। राजसूयिकः। वाजपेयिकः। उक्थादि—औक्थिकः। लौकायतिकः। उक्थानि सामगानमधीत इति विग्रहः। सूत्रान्त—योगसूत्रमधीते यौगसूत्रिकः। गौभिलीयसूत्रिकः। श्रौतसूत्रिकः।

वा०—विद्यालक्षणकल्पसूत्रान्तादकल्पादेरिकक् स्मृतः॥१॥

विद्यादयश्चत्वारः शब्दा अन्ते यस्मादकल्पादेः प्रातिपदिकाद्-इकक् प्रत्ययो भवति। वायसविद्यामधीते वेत्ति वा वायसविद्यिकः। सार्पविद्यिकः। लक्षण-गोलक्षणमधीते वेद वा गौलक्षणिकः। आश्वलक्षणिकः। कल्प-पराशरकल्पमधीते वेद वा पाराशरकल्पिकः। मातृकल्पिकः। सूत्र-वार्त्तिकसूत्रमधीते वेद वा वार्त्तिकसूत्रिकः। सांग्रहसूत्रिकः। अकल्पादेरिति किमर्थम्? कल्पसूत्रमधीते काल्पसूत्रः। अणेव भवति॥१॥

वा०—विद्या चानङ्गक्षत्रधर्मत्रिपूर्वा॥२॥

अङ्ग, क्षत्र, धर्म, त्रि, इति शब्दचतुष्टयपूर्वाद् विद्याशब्दाट् ठक् प्रत्ययो न भवतीत्यर्थः। किन्त्वणेव। अन्यपूर्वाद् विद्याशब्दात्तु ठगेव भवतीति नियमः। अङ्ग-विद्यामधीते वेद वा आङ्गविद्यः। क्षात्रविद्यः। धार्मविद्यः। त्रैविद्यः॥२॥

वा०—आख्यानाख्यायिकेतिहासपुराणेभ्यश्च॥३॥

आख्यानाख्यायिकयोरर्थग्रहणम्। इतिहास-पुराणयोः स्वरूपमेव। आख्यानादिप्रातिपदिकेभ्यष्ठक् प्रत्ययो भवति। आख्यान-यवक्रीतमधीते यावक्रीतिकः। प्रैयङ्गविकः। यायातिकः। आख्यायिका—वासवदत्तामधीते

---

* किमर्थमिमावुभावर्थौ निर्दिश्येते, न योऽधीते वेत्त्यप्यसौ यश्च वेत्ति अधीतेऽप्यसौ। नैतयोरावश्यकः समावेशः। भवति हि कश्चित् संपाठं पठति न च वेत्ति, कश्चिच्च वेत्ति न च संपाठं पठति।'
—अनुवादकः

वेद वा वासवदत्तिकः। सौमनोत्तरिकः। इतिहासमधीते ऐतिहासिकः। पौराणिकः॥ ३॥

वा०—सर्वसादेर्द्विगोश्च लः॥ ४॥

सर्वशब्दः सशब्दश्चादौ यस्य तस्माद् द्विगुसंज्ञकाच्च प्रातिपदिकाद् विहितस्य प्रत्ययस्य लः=लुग् भवतीति। सर्ववेदमधीते वेद वा सर्ववेदः। सर्वतन्त्रः।सवार्तिकमधीते वेद वा सवार्त्तिकः।ससंग्रहः।द्विगु—पंचकल्पानधीते वेद वा पंचकल्पः। द्विवेदः। द्वितन्त्रः॥ ४॥

का०— अनुसूर्लक्ष्यलक्षणे सर्वसादेर्द्विगोश्च लः।
इकन्पदोत्तरपदात् शतषष्टेः षिकन् पथः॥ १॥

अनुसू, लक्ष्य, लक्षण, इति त्रयः शब्दा ग्रन्थविशेषवाचिनः। तेभ्यष्ठक्। अनुस्वमधीते आनुसुकः। 'इसुसुक्तान्तात्कः' ति कादेशः। 'केऽणः' इति ह्रस्वः। लक्ष्यमधीते लाक्षियकः। लाक्षणिकः। सर्वसादेर्द्विगोश्च ल इति व्याख्यातम्। पदशब्द उत्तरपदमस्य तस्मात् पदोत्तरपदाद् इकन् प्रत्ययो भवति। पूर्वपदमधीते पूर्वपदिकः। उत्तरपदिकः। शतषष्टेः षिकन् पथः=पथान्ताभ्यां शत-षष्टिप्रातिपदिकाभ्यां षिकन् प्रत्ययो भवति। षित्करणं स्त्रियां ङीषर्थम्। शतपथमधीते शतपथिकः। शतपथिकी। षष्टिपथिकः। षष्टिपथिकी॥ १॥

अथोक्थादयः—उक्थ। लोकायत। न्याय। न्यास। निमित्त। पुनरुक्त। निरुक्त। द्विपद। ज्योतिष। अनुपद। अनुकल्प। यज्ञ। चर्चा। धर्म। क्रमेतर। श्लक्ष्ण। संहिता। सङ्घात। सङ्घाट। वृत्ति। परिषत्। संग्रह। गुणागुण। आयुर्वेद। इत्युक्थादयः॥ ५९॥

भाषार्थ—यहाँ समस्त पूर्वसूत्र की अनुवृत्ति है। यह सूत्र अण् का अपवाद है। द्वितीया समर्थ क्रतु (यज्ञ विशेष वाची) गणपठित उक्थादि और सूत्रान्त प्रातिपदिकों से अध्ययन और वेदन के कर्त्तृवाच्य में 'ठक्' प्रत्यय होता है। जैसे—क्रतु वाची—अश्वमेधमधीते आश्वमेधिकः। राजसूयिकः। वाजपेयिकः। उक्थादि-उक्थानि सामगानमधीते औक्थिकः। लौकायतिकः, सूत्रान्त-योगसूत्रमधीते वेद वा यौगसूत्रिकः। गौभिलीयसूत्रिकः। श्रौतसूत्रिकः।

वा०—विद्यालक्षणकल्पसूत्रान्तादकल्पादेरिकक् स्मृतः॥ १॥

विद्या, लक्षण, कल्प, सूत्र, ये चार शब्द जिनके अन्त में हों और कल्प शब्द आदि में न होवे, ऐसे प्रातिपदिकों से अध्ययन और वेदन अर्थों में इकक् (ठक्) प्रत्यय होता है। जैसे—वायसविद्यामधीते वेत्ति वा वायसविद्यिकः। सार्पविद्यिकः। लक्षणान्त-गोलक्षणमधीते वेद वा गौलक्षणिकः। आश्वलक्षणिकः। कल्पान्त-पराशरकल्पमधीते वेद वा पाराशरकल्पिकः। मातृकल्पिकः। सूत्रान्त-वार्त्तिकसूत्रमधीते वेद वा वार्त्तिकसूत्रिकः।सांग्रहसूत्रिकः।

'अकल्पादेः' का ग्रहण इसलिये है कि —कल्पसूत्रमधीते काल्पसूत्रः। यहाँ 'ठक्' न हो किन्तु 'अण्' ही हो॥ १॥

वा० — विद्या चानङ्गक्षत्रधर्मत्रिपूर्वा ॥ २ ॥

पूर्ववार्त्तिक से विद्यान्त शब्दों से 'ठक्' प्रत्यय विहित है। यह उसका अपवाद है कि अङ्ग, क्षत्र, धर्म त्रि, ये चार शब्द जिससे पूर्व हों ऐसे विद्यान्त प्रातिपदिकों से अध्ययन और वेदन अर्थों में 'ठक्' प्रत्यय नहीं होता है। किन्तु 'अण्' ही होता है। उन शब्दों से अन्य कोई शब्द पूर्व हो तो विद्या शब्द से 'ठक्' ही होता है, यह नियम इस वार्त्तिक से समझना चाहिये। जैसे अङ्ग विद्यामधीते वेद वा आङ्गविद्यः। क्षात्रविद्यः। धार्मविद्यः। त्रैविद्यः॥ २ ॥

वा० — आख्यानाख्यायिकेतिहासपुराणेभ्यश्च ॥ ३ ॥

यहाँ आख्यान-आख्यायिका शब्दों के अर्थ का ग्रहण है और इतिहास, पुराण शब्दों के स्वरूप का ग्रहण है। आख्यान तथा आख्यायिका वाचक शब्दों से और इतिहास तथा पुराण शब्दों से अध्ययन और वेदन अर्थों में 'ठक्' प्रत्यय होता है। जैसे—आख्यानवाचक-यवक्रीतिमधीते यावक्रीतिकः। प्रैयङ्गविकः। यायातिकः। आख्यायिकावाचक—वासवदत्तामधीते वेद वा वासवदत्तिकः। सौमनोत्तरिकः। इतिहासमधीते वेद वा ऐतिहासिकः। पौराणिकः, इत्यादि ॥ ३ ॥

वा० — सर्वसादेर्द्विगोश्च लः ॥ ४ ॥

'सर्व' शब्द और 'स' शब्द जिनके आदि में हों, उन प्रातिपदिकों से और द्विगुसंज्ञक प्रातिपदिकों से अध्ययन और वेदन अर्थों में विहित प्रत्यय का लुक् होता है। जैसे—सर्वादि-सर्ववेदमधीते वेद वा सर्ववेदः। सर्वतन्त्रः। सादि—सवार्त्तिकमधीते वेद वा सवार्त्तिकः। ससंग्रहः। द्विगु—पंचकल्पान् अधीते वेद वा पंचकल्पः। द्विवेदः। द्वितन्त्रः॥ ४ ॥

का० — अनुसूर्लक्ष्यलक्षणे सर्वसादेर्द्विगोश्च लः।
इकन् पदोत्तरपदात् शतषष्टे षिकन् पथः ॥ १ ॥

अनुसू, लक्ष्य, लक्षण, ये तीनों शब्द ग्रन्थविशेषों के वाचक हैं। इन प्रातिपदिकों से अध्ययन और वेदन अर्थों में ठक् प्रत्यय होता है। जैसे—अनुस्वमधीते आनुसुकः। यहाँ 'इसुसुक्तान्तात्कः' (७।३।५१) सूत्र से 'ठ' को क-आदेश हुआ है और 'केऽणः' (७।४।१३) सूत्र से ह्रस्व हुआ है। लक्ष्यमधीते लाक्षियकः। लाक्षणिकः। 'सर्वसादेर्द्विगोश्च लः' कारिका के इस भाग की व्याख्या वार्त्तिक में की गई है वहीं द्रष्टव्य है और पद शब्द जिनके अन्त में हो, ऐसे प्रातिपदिकों से अध्ययन और वेदन अर्थों में 'इकन्' प्रत्यय होता है। जैसे—पूर्वपदमधीते वेद वा पूर्वपदिकः। उत्तरपदिकः। 'पथिन्' शब्द जिनके अन्त में हों ऐसे शत और षष्टि प्रातिपदिकों से 'षिकन्' प्रत्यय होता है। प्रत्यय में षित्करण स्त्रीलिंग में 'ङीष्' प्रत्यय के लिये है। जैसे—शतपथमधीते वेद वा शतपथिकः। शतपथिकी। षष्टिपथिकः। षष्टिपथिकी॥ ५९ ॥

क्रमादिभ्यो वुन् ॥ ६० ॥

क्रमादिभ्यः — ५।३। वुन् — १।१। द्वितीयासमर्थेभ्यः क्रमादिप्राति-

पदिकेभ्योऽध्ययनवेदनकर्त्तरि वुन् प्रत्ययो भवति। क्रममधीते वेद वा क्रमकः। पदकः।

अथ क्रमादयः—क्रम। पद। शिक्षा। मीमांसा। सामन्। इति क्रमादयः॥ ६०॥

भाषार्थ—द्वितीयासमर्थ गणपठित क्रम आदि प्रातिपदिकों से अध्ययन और वेदन अर्थों में 'वुन्' प्रत्यय होता है। जैसे—क्रममधीते वेद वा क्रमकः। पदकः इत्यादि॥ ६०॥

अनुब्राह्मणादिनिः॥ ६१॥

अनुब्राह्मणात् —५।१।इनिः —१।१।ब्राह्मणसदृशमनुब्राह्मणं ग्रन्थः। द्वितीयासमर्थाद् अनुब्राह्मणशब्दाद् अध्येतृ-वेदित्रोरिनिः प्रत्ययो भवति। अनुब्राह्मणमधीते वेद वा अनुब्राह्मणी। अनुब्राह्मणिनौ। अनुब्राह्मणिनः अण्-बाधनार्थ आरम्भः॥ ६१॥

भाषार्थ—ब्राह्मण के सदृश ग्रन्थ को 'अनुब्राह्मण' कहते हैं। द्वितीयासमर्थ अनुब्राह्मण शब्द से अध्ययन और वेदन अर्थों में 'इनि' प्रत्य होता है। जैसे—अनुब्राह्मणमधीते वेद वा अनुब्राह्मणी। अनुब्राह्मणिनौ। अनुब्राह्मणिनः। यह सूत्र 'अण्' का अपवाद है॥ ६१॥

वसन्तादिभ्यष्ठक्॥ ६२॥

वसन्तादिभ्यः —५।३।ठक् —१।१।वसन्तादयः शब्दा ऋतुविशेष-वाचिनस्तेभ्योऽध्ययने वेदने च प्रत्ययस्यासम्भवात् सहचारोपाधिर्गृह्यते। द्वितीयासमर्थेभ्यो वसन्तादिप्रातिपदिकेभ्योऽध्येतृ-वेदित्रोष्ठक् प्रत्ययो भवति। वसन्तसह चरितं ग्रन्थमधीते वासन्तिकः। वार्षिकः।

भा०—साहचर्यात् ताच्छब्द्यं भविष्यति॥

वसन्तसहचरितेऽध्ययने वसन्तशब्दः। तथैव व्याख्यातम्।

अथ वसन्तादयः—वसन्त। ग्रीष्म। वर्षा। शरद्। हेमन्त। प्रथम। गुण। चरम। अनुगुण। अपर्वन्। अथर्वन्। आथर्वण। इति वसन्तादयः॥ ६२॥

भाषार्थ—वसन्तादि शब्द ऋतुविशेष के वाचक हैं।'साहचर्यात् ताच्छब्द्यं भविष्यति' इस महाभाष्य के वचन से वसन्तादि ऋतु विषयक ग्रन्थों का यहाँ ग्रहण है। द्वितीयासमर्थ गणपठित वसन्तादि प्रातिपदिकों से अध्ययन और वेदन अर्थों में 'ठक्' प्रत्यय होता है। जैसे—वसन्तसहचरितं ग्रन्थमधीते वेद वा वासन्तिकः। वार्षिकः। इत्यादि॥ ६२॥

प्रोक्ताल्लुक्॥ ६३॥

प्रोक्तात् —५।१। लुक् —१।१। प्रोक्तशब्देन 'तेन प्रोक्तम्' इति प्रोक्तार्थविहितः प्रत्ययो गृह्यते। द्वितीयासमर्थात् प्रोक्त'प्रत्ययान्तात् प्रातिपदिकाद् अध्येतृवेदित्रो`र्विहितस्य प्रत्ययस्य लुग् भवति। काशकृत्स्निना प्रोक्ता मीमांसा काशकृत्स्नी। काशकृत्स्नीं मीमांसामधीते ब्राह्मणी काशकृत्स्ना। अत्रानुप-

मर्जनाभावात् पुनर्ङीम् न भवति। एवं पाणिनिना प्रोक्तं पाणिनीयं, पाणिनीयमधीते कन्या पाणिनीया। अध्येत्र्यामणि लुप्ते ङीम्न भवति। स्वरे च विशेषः। अण्यन्तोदात्तः। छप्रत्यये प्रत्ययस्याद्युदात्तस्वरः॥ ६३॥

भाषार्थ—यहाँ 'प्रोक्त' शब्द से 'तेन प्रोक्तम्' (अ० ४।३।१०१) सूत्र से प्रोक्तार्थ में विहित प्रत्यय का ग्रहण है। द्वितीयासमर्थ प्रोक्त प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से अध्ययन और वेदन अर्थों में विहित प्रत्यय का लुक् होता है। जैसे—काशकृत्स्निना प्रोक्ता मीमांसा काशकृत्स्नी। काशकृत्स्नीं मीमांसामधीते ब्राह्मणी काशकृत्स्ना। यहाँ प्रत्यय के लुक् होने पर अध्ययन और वेदन अर्थ मुख्य है और प्रोक्तार्थ अण् प्रत्यय अनुपसर्जन (प्रधान) न होने से पुनः 'ङीप्' नहीं होता है। इसी प्रकार—पाणिनिना प्रोक्तं पाणिनीयं, पाणिनीयमधीते कन्या पाणिनीया। अध्ययन अर्थ में 'अण्' के लुक् होने पर 'ङीप्' नहीं होता है। 'अण्' प्रत्यय में अन्तोदात्त और छ प्रत्यय में आद्युदात्त स्वर का भेद है॥ ६३॥

सूत्राच्च कोपधात्॥ ६४॥

लुगनुवर्त्तते। सूत्रात् —५।१। च —[अ०प०]। कोपधात् —५।१। द्वितीयासमर्थात् सूत्रवाचिनः कोपधात् प्रातिपदिकादध्येतृ-वेदित्रोर्विहितस्य प्रत्ययस्य लुग् भवति। अप्रोक्तार्थोऽयमारम्भः। पाणिनीयमष्टकं सूत्रमधीते वेद वा अष्टकाः पाणिनीयाः। पञ्चकं गौतमसूत्रमधीते पञ्चका गौतमाः। त्रिकाः काशकृत्स्नाः। कोपधादिति किम्। चतुष्टयमधीते चातुष्टयः।

वा०—संख्याप्रकृतेरिति वक्तव्यम्॥ १॥

संख्याप्रकृतेर्विहितस्य प्रत्ययस्य लुग्भवतीत्यर्थः। इह मा भूत्—माहावार्त्तिकः। चान्दनगन्धिकः। कालापकः॥ ६४॥

भाषार्थ—यहाँ पूर्वसूत्र से लुक् की अनुवृत्ति है। द्वितीयासमर्थ सूत्रवाची ककारोपध प्रातिपदिकों से अध्ययन और वेदन अर्थों में विहित प्रत्यय का लुक् होता है। प्रोक्तार्थ से भिन्न शब्दों से लुक् करने के लिये यह सूत्र बनाया है। जैसे—पाणिनीयमष्टकं सूत्रमधीते वेद वा अष्टकाः पाणिनीयाः। पंचकं गोतमसूत्रमधीते पंचका गौतमाः। त्रिकाः काशकृत्स्नाः। यहाँ 'कोपधात्' का ग्रहण इसलिये है कि—चतुष्टयमधीते चातुष्टयः। यहाँ लुक् न होवे।

वा०—संख्याप्रकृतेरिति वक्तव्यम्॥ १॥

सूत्रवाची ककारोपध शब्द संख्यावाची हो तो विहित प्रत्यय का लुक् होवे अन्यथा नहीं। इससे संख्यावाची प्रकृति न होने से यहाँ प्रत्यय का लुक् नहीं हुआ—माहावार्त्तिकः। चान्दनगन्धिकः। कालापकः॥ ६४॥

छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि॥ ६५॥

प्रोक्तग्रहणमनुवर्त्तते। छन्दोब्राह्मणानि —१।३। च—[अ०]। तद्विषयाणि —१।३। प्रोक्तशब्दे विभक्तिर्विपरिणम्यते। प्रोक्तप्रत्ययान्तानि छन्दांसि ब्राह्मणानि च तद्विषयाणि भवन्ति। अर्थादध्येतृवेदितृविषयाणि। अध्येतृवेदितृभ्यां विना

छन्दःसु ब्राह्मणेषु च प्रत्ययो न भवति। यथा—तित्तिरिणा प्रोक्तं छन्दोऽधीयते ते तैत्तिरीयाः। वारतन्तवीयाः। ब्राह्मणानि—शाट्यायनेन प्रोक्तमधीयते शाट्यायनिनः। ताण्डिनः। भाल्लविनः। छन्दो ब्राह्मणानीति किम्। पाणिनीयं व्याकरणम्। काशकृत्स्नी मीमांसा॥ ६५॥

भाषार्थ—यहाँ 'प्रोक्तात्' पद की अनुवृत्ति है और उसमें 'अर्थाद् विभक्तिर्विपरिणम्यते'' इस नियम से विभक्ति विपरिणाम होकर प्रथमान्त हो जाती है। छन्दस् वाची और ब्राह्मणवाची, ये दोनों प्रोक्त प्रत्ययान्त शब्द तद्विषय=अध्येतृ-वेदितृ प्रत्ययार्थ विषयक होते हैं। अर्थात् प्रोक्त प्रत्ययान्त छन्द और ब्राह्मण शब्दों का अध्ययन और वेदन अर्थों के विना प्रयोग न होवे। जैसे—तित्तिरिणा प्रोक्तं छन्दोऽधीयते ते तैत्तिरीयाः। वारतन्तवीयाः। ब्राह्मणवाची—शाट्यायनेन प्रोक्तमधीयते शाट्यायनिनः। ताण्डिनः। भाल्लविनः। यहाँ 'छन्दोब्राह्मणानि' ग्रहण इसलिए है कि—पाणिनीयं व्याकरणम्। काशकृत्स्नी मीमांसा। यहाँ प्रोक्तार्थ में विहित प्रत्यय की तद्विषयता न होवे॥ ६५॥

तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि॥ ६६॥

तत्-१।१। अस्मिन्-७।१। अस्ति [क्रि.प.]। इति -[अ०]। देशे-७।१। तन्नाम्नि —७।१। तन्नामशब्दो देशविशेषणम्। प्रकृति-प्रत्ययसमुदायेन देशस्य लौकिकं नाम यदि स्यात्। अस्ति समानाधिकरणात् प्रथमासमर्थादस्मिन् तन्नाम्नि देशेऽधिकरणे यथाविहितं प्रत्ययो भवति। शिरीषाः सन्त्यस्मिन् देशे शैरीषः। बल्वजाः सन्त्यस्मिन् देशे बाल्वजः। औदुम्बरः। बार्बुरः खादिरः। पालाशः। तन्नाम्नीति किम्—गोधूमाः सन्त्यस्मिन् देशे॥ ६६॥

भाषार्थ—[यह सूत्र मत्वर्थीय प्रत्ययों का अपवाद है।] 'तन्नाम' शब्द देश का विशेषण है। यदि प्रकृति और प्रत्यय के समुदाय से देश के लौकिक नाम का बोध होवे, तो अस्ति—समानाधिकरण, प्रथमा समर्थ प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय होते हैं। जैसे—शिरीषाः सन्त्यस्मिन् देशे शैरीषः। बल्वजाः सन्त्यस्मिन् देशे बाल्वजः। औदुम्बरः। बार्बुरः। खादिरः। पालाशः यहाँ—'तन्नाम्नि' शब्द का ग्रहण इसलिये है कि—गोधूमाः सन्त्यस्मिन् देशे। यहाँ देश नाम का बोध न होने से प्रत्यय न होवे॥ ६६॥

तेन निर्वृत्तम्॥ ६७॥

तेन —३।१। निर्वृत्तम् —१।१। तृतीयासमर्थात् प्रातिकान्निर्वृत्तमित्य-स्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति। कुशाम्बेन निर्वृत्ता कौशाम्बी नगरी। भरतेन निर्वृत्तं भारतम्। सहस्रेण निर्वृत्ता साहस्री परिखा॥ ६७॥

भाषार्थ—तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से निर्वृत्त (बनाने) अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं। जैसे—कुशाम्बेन निर्वृत्ता कौशाम्बी नगरी। भरतेन निर्वृत्तं भारतम्। सहस्रेण निर्वृत्ता साहस्री परिखा॥ ६७॥

तस्य निवासः॥ ६८॥

तस्य —६।१। निवासः —१।१। देश इत्यनुवर्त्तते। निवासो देश-विशेषणम्। निवसन्त्यस्मिन् सोऽयं निवासो देशः। अधिकरणे घञ्। षष्ठी-समर्थात् प्रातिपदिकान् निवासार्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति। उत्सस्य निवासो देश औत्सः। कुरूणां निवासो देशः कौरवः। अम्बष्ठानां निवासो देश आम्बष्ठः॥ ६८॥

भाषार्थ—यहाँ 'देशे' पद की अनुवृत्ति है। निवास शब्द देश का विशेषण है। निवास शब्द में 'निवसन्त्यस्मिन्' अधिकरण में 'घञ्' प्रत्यय है। षष्ठी समर्थ प्रातिपदिकों से निवास देश अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं। जैसे—उत्सस्य निवासो देश औत्सः। कुरूणां निवासो देशः कौरवः। अम्बष्ठानां निवासो देश आम्बष्ठः, इत्यादि॥ ६८॥

अदूरभवश्च॥ ६९॥

तस्येत्यनुवर्त्तते। अदूरभवः —१।१। च —[अ.प.] चकार इत्यर्थे। इत चत्वारो योगा अधिकारार्थाः। उत्तरसूत्रेषु चत्वारोऽपि सम्बध्यन्ते। षष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकाद् अदूरभव इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति। आम्राणामदूरभवो ग्राम आम्रः। हिमवत अदूरभवो ग्रामो हैमवतः। हैमालयः॥ ६९॥

भाषार्थ—यहाँ 'तस्य' पद की अनुवृत्ति है। चकार शब्द 'इति' के अर्थ में है अर्थात् ये चार सूत्र अधिकार के लिये हैं। इस सूत्र से आगे चारों सूत्रों का सम्बन्ध है। षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिकों से अदूरभव (समीप) अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं। जैसे—आम्राणाम् अदूरभवो ग्राम आम्रः। हिमवत अदूरभवो ग्रामो हैमवतः। हैमालयः, इत्यादि॥ ६९॥

ओरञ्॥ ७०॥

चत्वारोऽर्था अनुवर्त्तन्ते। ओः —५।१। अञ् —१।१। प्रथमा-तृतीया-षष्ठीसमर्थात् [उवर्णान्तात्] प्रातिपदिकाच् चतुर्ष्वर्थेषु अञ् प्रत्ययो भवति। परशुना निर्वृत्तं पारशवम्। पर्शूनां निवासो देशः पार्शवः। रुरवः सन्त्यस्मिन् देशे रौरवः॥ ७०॥

भाषार्थ—यहाँ पूर्वोक्त चारों अर्थों की अनुवृत्ति है। प्रथमा, तृतीया तथा षष्ठी समर्थ उवर्णान्त प्रातिपदिकों से उक्त चारों अर्थों में 'अञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—परशुना निर्वृत्तं पारशवम्। पर्शूनां निवासो देशः पार्शवः। रुरवः सन्त्यस्मिन् देशे रौरवः॥ ७०॥

मतोश्च बह्वजङ्गात्॥ ७१॥

मतोः -५।१। च-[अ.प.]। बह्वजङ्गात् -५।१। मतौ परतो यद्बह्वजङ्गं प्रातिपदिकं तस्मान् मत्वन्तात् प्रातिपदिकाच् चातुरर्थिकेऽञ् प्रत्ययो भवति। गवयवान् अस्त्यस्मिन् देशे गावयवतो देशः। गार्दभवतः। बह्वज्ग्रहण-मङ्गविशेषणम्। मत्वन्तविशेषणे इह दोषः स्यात्—मालावतां निवासो मालावतम्। अत्राणेव भवति॥ ७१॥

भाषार्थ—मतुप् प्रत्यय के परे होने पर जो बह्वच् (बहुत स्वरोंवाला) अंग प्रातिपदिक है, उस मतुप्-प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से पूर्वोक्त चारों अर्थों में 'अञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—गवयवान् अस्त्यस्मिन् देशे गावयवतो देशः। गार्दभवतः। यहाँ बह्वच् शब्द अङ्ग का विशेषण है। मतुबन्त का विशेषण मानने पर यहाँ दोष हो जाये—मालावतां निवासो मालावतम्। यहाँ अण् ही होता है॥७१॥

बह्वचः कूपेषु॥७२॥

बह्वचः —५।१। कूपेषु —७।३। बह्वच्प्रातिपदिकात् कूपेष्वभिधेयेषु चातुरर्थिकेऽञ् प्रत्ययो भवति। दीर्घवरत्रेण निर्वृत्तः कूपो दैर्घवरत्रः। कापिलवरत्रः॥७२॥

भाषार्थ—बह्वच् (अनेक स्वरोंवाले) प्रातिपदिकों से कूप (कूआँ) अर्थ अभिधेय हो तो पूर्वोक्त चारों अर्थों में अञ् प्रत्यय होता है। जैसे—दीर्घवरत्रेण निर्वृत्तः कूपो दैर्घवरत्रः कापिलवरत्रः, इत्यादि॥७२॥

उदक् च विपाशः॥७३॥

अबह्वजर्थ आरम्भः। उदक्-१।१। च-[अ०]। विपाशः-५।१। विपाशो नद्या उत्तरदेशे ये कूपास्तेष्वभिधेयेष्वञ् प्रत्ययो भवति। दत्तेन निर्वृत्तः कूपोदात्तः। गौप्तः। विपाशोऽन्यदेशे त्वणेव भवति। प्रयोगस्तु स एव, स्वरे विशेषः॥७३॥

भाषार्थ—यह सूत्र बह्वच् से अन्यत्र विधान के लिये है। विपाश् (व्यास नदी) के उत्तरदेश में जो कूप (कूएँ) हैं, उनके वाच्य होने पर अबह्वच् प्रातिपदिकों से पूर्वोक्त चारों अर्थों में 'अञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—दत्तेन निर्वृत्तः कूपो दात्तः। गौप्तः। विपाश् नदी से भिन्नदेश में तो 'अण्' ही होता है। अण् और अञ् प्रत्ययों में प्रयोग की समानता होने पर भी स्वर में भेद होता है॥७३॥

संकलादिभ्यश्च॥७४॥

कूपेष्विति नानुवर्त्तते। संकलादिभ्यः —५।३। च [अ०] संकलादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽञ् प्रत्ययो भवति चातुरर्थिकेऽर्थे। संकलेन निर्वृत्तः सांकलः। पौष्कलः।

अथ संकलादयः—संकल। पुष्कल। उत्तम। उड्डप। उडुप। उद्वेय। उत्पुट। विधान। निधान। सुदक्ष। सुदत्त। सुभूत। सुपूत। सुनेत्र। सुमङ्गल। सुपिङ्गल। सिकता। पूतिकी। पूतीक। पूलास। कूलास। निवेश। गवेष। गम्भीर। इतर। शर्मन्। आन। अहन्। आहन्। लोभन्। वेमन्। वरुण। बहुल। सद्योज। अभिषिक्त। गोभृत। राजभृत्। गृह। भृत। भल्ल। मल्ल। माल। इति संकलादयः॥७४॥

भाषार्थ—यहाँ 'कूपेषु' पद की अनुवृत्ति नहीं है। संकल आदि प्रातिपदिकों से पूर्वोक्त चारों अर्थों में 'अञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—संकलेन निर्वृत्तः सांकलः। पौष्कलः इत्यादि॥७४॥

स्त्रीषु सौवीरसाल्वप्राक्षु॥ ७५ ॥

स्त्रीषु —७।३। सौवीरसाल्वप्राक्षु —७।३। स्त्रीग्रहणेन प्रत्ययार्थो विशेष्यते। सौवीरसाल्वप्राक्ष्विति स्त्रीविशेषणम्। सौवीरसाल्वप्राक्षु देशाधिकरणे स्त्रीलिङ्गे प्रत्ययार्थे प्रथमादिसमर्थात् प्रातिपदिकाच्चातुरर्थिकेऽञ् प्रत्ययो भवति। दत्तामित्रेण निर्वृत्ता नगरी दात्तामित्री। साल्वे—विधूमाग्निना निर्वृत्ता वैधूमाग्नी। प्राचि—मकन्देन निर्वृत्ता माकन्दी। माणिचरी॥ ७५ ॥

भाषार्थ—यहाँ स्त्री शब्द प्रत्ययार्थ का विशेषण है और 'सौवीरसाल्वप्राक्षु' शब्द स्त्री का विशेषण है। सौवीर, साल्व तथा प्राच्यदेशाधिकरण स्त्रीलिंग अभिधेय हो तो प्रथमा समर्थ प्रातिपदिकों से पूर्वोक्त चारों अर्थों में 'अञ्' प्रत्यय होता है। जैसे सौवीर में—दत्तामित्रेण निर्वृत्ता नगरी दात्तामित्री। साल्व में—विधूमाग्निना निर्वृत्ता वैधूमाग्नी। प्राच्य में—मकन्देन निर्वृत्ता माकन्दी। माणिचरी, इत्यादि॥ ७५ ॥

सुवास्त्वादिभ्योऽण्॥ ७६ ॥

सुवास्त्वादिभ्यः —५।३। अण् —१।१। उवर्णान्तत्वाद्, 'उदक् च विपाशः' इत्यनेन चाञ् प्राप्तः स बाध्यते। अणित्यनुवर्तमाने पुनरण् ग्रहणं बाधकबाधनार्थम्। 'नद्यां मतुपं बाधित्वाऽणेव यथास्यात्। सुवास्त्वादि-प्रातिपदिकेभ्यश्चातुरर्थिकोऽण् प्रत्ययो भवति। सुवास्तोरदूरभवं नगरं सौवास्तवम्। वार्णवम्। सुवास्तोरदूरभवा नदी सौवास्तवी।

अथ सुवास्त्वादयः—सुवास्तु। वर्णु। भण्डु। खण्डु। कण्डु। सेवालिन्। सेचालिन्। कर्पूरिन्। गर्त्त। कर्कश। शकटी। कर्ण। शटीकर्ण। कृशकरण। कर्क। कर्कन्धुमती। गोह। गोह्य। अहिरुक्थ। इति सुवास्त्वादयः॥ ७६ ॥

भाषार्थ—'सुवास्तु' इत्यादि शब्दों से उवर्णान्त होने से 'ओरञ्' (४।२।७०) सूत्र से और 'उदक् च विपाशः' (४।२।७३) सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय प्राप्त है, यह उसका अपवाद है। 'अण्' प्रत्यय का अधिकार होने से ही अनुवृत्ति होने पर पुनः यहाँ 'अण्' का ग्रहण बाधक प्रत्यय के भी बाधन के लिये है। 'नद्यां मतुप्' (४।२।८४) सूत्र से विहित नदी अभिधेय में 'मतुप्' का बाधक यह 'अण्' ही होता है। सुवास्तु आदि गणपठित प्रातिपदिकों से चातुरर्थिक 'अण्' प्रत्यय होता है। जैसे—सुवास्तोरदूरभवं नगरं सौवास्तवम्। वार्णवम्। सुवास्तोरदूरभवा नदी सौवस्तवी॥ ७६ ॥

रोणी॥ ७७ ॥

रोणी —१।१। 'उदक् च विपाश' इति कूपेऽभिधेयेऽञ् प्राप्तः स बाध्यते। रोणीप्रातिपदिकाच्चातुरर्थिकोऽण् प्रत्ययो भवति। रौण्या निर्वृत्तः कूपः रौणः। अजकरोणेन निर्वृत्तः कूपः, आजकरौणः। सिंहिकरोण्या निर्वृत्तः सैंहिकरौणः॥ ७७ ॥

भाषार्थ—रोणी शब्द से 'उदक् च विपाशः (४।२।७३) सूत्र से कूप अभिधेय में 'अञ्' प्राप्त है, यह उसका अपवाद है। रोणी प्रातिपदिक से चातुरर्थिक

अण् प्रत्यय होता है। जैसे—रोण्या निर्वृत्तः कूप; रौणः। अजकरोणेन निर्वृत्तः कूपः आजकरौणः। सिंहिकरोण्या निर्वृत्तः सैंहिकरोणः। 'रोणी' शब्द से केवल और तदन्त से भी प्रत्यय होता है, यह सूत्र में पञ्चम्यन्तनिर्देश न करके प्रथमान्त निर्देश करने से स्पष्ट होता है॥ ७७॥

कोपधाच्च॥ ७८॥

कोपधात् —५।१। च [अ०]। अञोऽपवादः। कोपध-प्रातिपदिकाच् चातुरर्थिकोऽण् प्रत्ययो भवति। कर्णवेष्टकेन निर्वृत्तः कूपः कार्णवेष्टकः। कृकवाकुना निर्वृत्तः कार्कवाकवः। त्रैशङ्कवः॥ ७८॥

भाषार्थ—यह सूत्र कूपलक्षण और उवर्णलक्षण से प्राप्त 'अञ्' का अपवाद है। ककारोपध प्रातिपदिकों से चातुरर्थिक 'अण्' प्रत्यय होता है। जैसे—कर्णवेष्टकेन निर्वृत्तः कूपः कार्णवेष्टकः। कृकवाकुना निर्वृत्तः कार्कवाकवः। त्रैशंकवः। इत्यादि॥ ७८॥

वुञ्छण्कठजिलसेनिरढञ्ण्ययफक्फिञ्-इञ्ञ्यकक्ठकोऽरीहणकृशाश्वर्श्यकुमुदकाशतृणप्रेक्षाश्मसखिसङ्काशबल-वक्षकर्णसुतङ्गमप्रगदिन्वराहकुमुदादिभ्यः॥ ७९॥

वुञ्......ठकः —१।३।अरीहण............कुमुदादिभ्यः —५।३।वुञादयः सप्तदश प्रत्ययाः। अरीहणादीनि सप्तदश प्रातिपदिकानि। अन्त्ये पठित आदि-शब्दः प्रत्येकं सम्बध्यते। तेनारीहणादयः सप्तदश गणाः सम्पद्यन्ते। अरीहणा-द्यादिसप्तदश-गणप्रातिपदिकेभ्यो वुञादयः सप्तदश चातुरर्थिकाः प्रत्यया यथासंख्यं भवन्ति। तद्यथा—अरीहणादिभ्यो वुञ्—आरीहणकम्। द्रौघणकम्। गणः—अरीहण। द्रुघण। द्रुहण। खदिर। सार। भगल। उलन्द। किरण। सांपरायण। क्रौष्ट्रायन। औष्ट्रायन। त्रैगर्त्तायन। मैत्रायण। भास्त्रायण। वैमतायन। गौमतायन। सौमतायन। सौसायन। धौमतायन। सौमायन। ऐन्द्रायण। कैन्द्रायण। खाण्डायन। शाण्डिल्यायन। रायस्पोष। विपथ। विपाश। उद्दण्ड। उदंचन। खण्ड। वीरण। काशकृत्स्न। जाम्बवन्त। शिंशपा। रैवत। बैल्व। सुयज्ञ। शिरीष। बधिर। जम्बू। सुशर्मन्। दलतृ। भलन्दन। कण्ड। कनल। यज्ञदत्त। इत्यरीहणादयः॥ १॥

कृशाश्वादिभ्यश्छण् प्रत्ययो भवति। कृशाश्वेन निर्वृत्तं कार्शाश्वीयम्। आरिष्टीयम्। गणः—कृशाश्व। अरिष्ट। आरिरमन्। वेश्मन्। विशाल। रोमश। अरीश्व। रोमक। लोमक। रोमन्। शवल। कूट। बर्बर। वर्चल। सुवर्चल। सुकर। सूकर। प्रतर। प्रातर। सदृश। पुरग। पुराग। सुख। धूम। अजिन। विनता। वनिता। अवनता। विकुघास। पराशर। अरुस्। अहस्। अयस्। अयावस्। मौद्गल्य। इति कृशाश्वादयः॥ २॥

ऋश्यादिभ्यः कः प्रत्ययो भवति। ऋश्यकः। न्यग्रोधकः। गणः—ऋश्य। न्यग्रोध। शर। शिरा। निलीन। निवास। निधान। निवात। निबद्ध। निबन्धन।

परिगूढ। असनि। सित। मत। वेश्मन्। उत्तराश्मन्। स्थूलबाहु। खदिर। शर्क्करा। अनडुह। अद्रुह। परिवंश। वेणु। वीणा। खण्ड। दण्ड। परिवृत्त। कर्दम। अंशु। इति ऋश्यादयः॥ ३॥

कुमुदादिभ्यष्ठच् प्रत्ययो भवति। कुमुदिकम्। शर्क्करिकम्। गणः— कुमुद। शर्क्करा। न्यग्रोध। इत्कट। उत्कट। इक्कट। संकट। कंकट। गर्त्त। अश्व। अश्वत्थ। बल्वज। बीज। परिवाप। निर्य्यास। शकट। कच। मधु। शिरीष। यवाष। कूप। विकङ्कत। कण्टक। पलाश। त्रिक। कत। दशग्राम॥ इति कुमुदादयः॥ ४॥

काशादिभ्य इलः प्रत्ययो भवति। काशिलम्। वाशिलम्। पाशिलम्। गणः—काश। वास। पाश। अश्वत्थ। पलाश। पीयूष। पीयूक्षा। लिश। विस। तृण। नर। चरण। नड। वन। कर्द्दम। कर्पूर। कण्टक। आवास। बधूल। बर्बर। गुहा। कपित्थ। मधुर। गृह। जतु। सीपाल॥ इति काशादयः॥ ५॥

तृणादिभ्यः शः प्रत्ययो भवति। तृणशः। नडशः। गणः—तृण। नड। वन। बुस। पर्ण। वर्ण। बिल। पुल। फल। अर्जुन। चरण। अर्ण। जन। सुवर्ण। बल। लव॥ इति तृणादिः॥ ६॥

प्रेक्षादिभ्य इनिः प्रत्ययो भवति। प्रेक्षी। हलकी। गणः—प्रेक्षा। हलका। फलका। बन्धुका। ध्रुवका। क्षिपका। न्यग्रोध। इर्कुट। इक्कट। बुधका। संकट। कूपका। कर्कटा। सुकटा। मंकट। सुक। महा। परिवाप। यवाष। गर्त्त। हिरण्य॥ इति प्रेक्षादिः॥ ७॥

अश्मादिभ्यो रः प्रत्ययो भवति। अश्मरः यूथरः। गणः—अश्मन्। यूथ। यूष। रूष। मीन। दर्भ। वृन्द। गुद। खण्ड। नद। गुड। नग। शिखा। नख। काट। पाम। कोट। कन्द। काण्ड। कुल। गडु। कुण्डल। पीन। गुह॥ इत्यश्मादिः॥ ८॥

सख्यादिभ्यो ढञ् प्रत्ययो भवति। साखेयम्। साखिदत्तेयम्। गणः— सखि। अग्निदत्त। वायुदत्त। सखिदत्त। गोहित। गोहिल। गोपिल। भल्ल। पाल। वक्र। चक्रवाल। चक्रपाल। चक्रवाक। छगल। अशोक। करवीर। अवीर। सीकर। सकर। सरस। सलम। बासव। वीरपुर। वज्वा। सुरस। रोह। तमाल। कदल। सप्तल॥ इति सख्यादिः॥ ९॥

संकाशादिभ्यो ण्यः प्रत्ययो भवति। सांकाश्यम्। काम्पिल्यम्। गणः— संकाश। कम्पिल। कश्मीर। समीर। कश्मर। शूरसेन। सरक। सूर। सुपथिन्। सक्थच। यूप। यूथ। अंश। राग। अंगनाशा। पलित। अनुनाश। अश्मन्। कूट। मलिन। दस। कुम्भ। शीर्षविरत। समल। पंजर। मन्थानल। रोमन्। लोमन्। पुलिन्। सुपरि। कटिप। सकर्णक। वृष्टि। तीर्थ। अगस्ति। विरत। विकार। विरह। नासिका॥ इति संकाशादिः॥ १०॥

बलादिप्रातिपदिकेभ्यो यः प्रत्ययो भवति। बल्यम्। कुल्यम्। गणः— बल। बुल। चुल। नल। दल। बटन। कुल। उल। तुल। पुल। मूल। डुल। द्रुल।

कवल। वन॥ इति बलादिः॥ ११॥

पक्षादिभ्यः फक् प्रत्ययो भवति। पाक्षायणः। तौषायणः। गणः—पक्ष। तुक्ष। तुष। अण्डा। अणु। कुण्ड। कम्बलिक। चित्र। अश्मन्। अतिस्वन्। अस्ति। पथिन् पथं च॥ कुम्भ। सीरज। सीरक। सरक। सकल। सलक। सरस। समल। अतिश्वन्। रोमन्। लोमन्। हस्तिन्। हंसका। मकर। लोमक। शीर्ष। निवात। पाक। सिंहक। अङ्कुश। सुवर्ण। हिंसक। कुत्स। बिल। खिल। यमल। हस्त। कला। अस्तिबल। सकर्णक। सत्कण्डक॥ इति पक्षादिः॥ १२॥

कर्णादिभ्यः फिञ् प्रत्ययो भवति। कार्णायनिः। वासिष्ठायनिः। गणः—कर्ण। वसिष्ठ। अर्क। अलुष। शल। डुपद। दुपद। अनडुह्य। पांचजन्य। स्थिरा। कुलिश। कुम्भी। जीवन्ती। जीत्व। आण्डीवत्। अर्क। लूष। स्फिक्। ज्ञावत्। इति कर्णादिः॥ १३॥

सुतंगमादिभ्य इञ् प्रत्ययो भवति। सौतङ्गमिः। मौनिचित्तिः। गणः—सुतङ्गम। मुनिचित्त। विप्रचित्त। महाचित्त। महापुत्र। स्वन। श्वेत। गडिक। खडिक। शुक्र। विग्र। बीजवापिन्। श्वन्। अर्जुन। अजिर। जीव। खण्डित। कर्ण। विग्रह॥ इति सुतङ्गमादिः॥ १४॥

प्रगदिन्नादिभ्यो ञ्यः प्रत्ययो भवति। प्रागद्यम्। मागद्यम्। गणः—प्रगदिन्। मगदिन्। शरदिन्। कलिव। खडिव। गडिव। चूडार। मदार। मडार। मन्दार। कोविदार॥ इति प्रगदिन्नादयः॥ १५॥

वराहादिभ्यः कक् प्रत्ययो भवति। वाराहकम्। पालाशकम्। गणः—वाराह। पलाश। शिरीष। पिनद्ध। निबद्ध। स्थूण। स्थूल। विदग्ध। विजग्ध। विभग्न। विमग्न। बाहु। खदिरा। शर्करा। निबद्ध। विरुद्ध। मूल॥ इति वराहादिः॥ १६॥

कुमुदादिभ्यष्ठक् प्रत्ययो भवति। कौमुदिकम्। गौमथिकम्। गणः—कुमुद। गोमथ। रथकार। दशग्राम। अश्वत्थ। शाल्मली। शिरीष। मुनिस्थल। कुण्डल। कूट। मुचुकर्ण। कुन्द। मधुकर्ण। घास। शुचिकर्ण॥ इति कुमुदादयः॥ सूत्रं च समासम्॥ १७॥ ७९॥

भाषार्थ—वुञ् आदि सप्तदश (१७) प्रत्यय हैं और अरीहणादि सप्तदश प्रातिपदिकों के गण हैं। अन्त में पठित आदि शब्द का सम्बन्ध प्रत्येक सूत्रस्थ शब्द के साथ है। उस आदि शब्द के योग से अरीहणादि सप्तदश (सत्रह) गण बन जाते हैं। अरीहणादि इत्यादि सत्रह गणपठित प्रातिपदिकों से पूर्वोक्त चार अर्थों में 'वुञ्' आदि सत्रह प्रत्यय यथासंख्य होते हैं। जैसे—

(१)	अरीहणादिकों से	वुञ्	—	आरीहणकम्। द्रौघणकम्, इत्यादि।
(२)	कृशाश्वादिकों से	छण्	—	कृशाश्वेन निर्वृत्तं कार्शाश्वीयम्। आरिष्टीयम्। इत्यादि।
(३)	ऋष्यादिकों से	क	—	ऋष्यकः। न्यग्रोधकः; इत्यादि।

(४)	कुमुद आदि से	ठच्	—	कुमुदिकम्। शर्क्करिकम्, इत्यादि।
(५)	काश आदि से	इल	—	काशिलम्। वाशिलम्। पाशिलम्, इत्यादि।
(६)	तृण आदि से	श	—	तृणशः। नडशः, इत्यादि।
(७)	प्रेक्षा आदि से	इनि	—	प्रेक्षी। हलकी, इत्यादि।
(८)	अश्मन् आदि से	र	—	अश्मरः। यूथरः, इत्यादि।
(९)	सखि आदि से	ढञ्	—	साखेयम्। साखिदत्तेयम्, इत्यादि।
(१०)	संकाशादि से	ण्य	—	सांकाश्यम्। काम्पिल्यम्, इत्यादि।
(११)	बल आदि से	य	—	बल्यम्। कुल्यम्, इत्यादि।
(१२)	पक्ष आदि से	फक्	—	पाक्षायणः। तौषायणः, इत्यादि।
(१३)	कर्ण आदि से	फिञ्	—	कार्णायनिः। वासिष्ठायनिः, इत्यादि।
(१४)	सुतङ्गम आदि से	इञ्	—	सौतङ्गमिः। मौनचित्तिः, इत्यादि।
(१५)	प्रगदिन् आदि से	ञ्य	—	प्रागद्यम्। मागद्यम्, इत्यादि।
(१६)	वराह आदि से	कक्	—	वाराहकम्। पालाशकम्, इत्यादि।
(१७)	कुमुद आदि से	ठक्	—	कौमुदिकम्। गौमथिकम्, इत्यादि॥७९॥

जनपदे लुप्॥८०॥

जनपदे —७।१।लुप् —१।१।प्रथमासमर्थाद् देशसामान्ये यः प्रत्ययो विधीयते तस्य विशेषेजनपदे लुब् भवति। तत्र 'लुपि युक्तिवद् व्यक्तिवचने' इति युक्तवद्भावः। पंचालानां क्षत्रियाणां निवासो जनपदः पञ्चालाः। मत्स्याः। अङ्गाः। वङ्गाः॥८०॥

भाषार्थ—प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से 'तदस्मिन्नस्तीति' (४।२।६६) सूत्र से देश सामान्य अर्थ में जो प्रत्यय का विधान किया है उसका विशेष जनपद अभिधेय में लुप् (अदर्शन) हो जाता है। और प्रत्यय के लुप् होने पर 'लुपि युक्तिवद् व्यक्तिवचने' (१।२।५१) सूत्र से लिंग और संख्यापूर्ववत् होते हैं। जैसे—पञ्चालानां क्षत्रियाणां निवासो जनपदः पञ्चालाः। मत्स्याः। अङ्गाः। वङ्गाः॥८०॥

वरणादिभ्यश्च॥८१॥

अजनपदार्थारम्भः। वरणादिभ्यः —५।३। च [अ०]। वरणादि-प्रातिपदिकेभ्यो विहितस्य चातुरर्थिकस्य प्रत्ययस्य लुब् भवति। वरणानामदूर-भवं नगरं वरणाः। शिरीषाणामदूरभवो ग्रामः शिरीषाः।

अथ वरणादयः—वरण। शृङ्गी। शाल्मलि। कटुबदरी। शुण्डी। शयाजी। शिरीष। कांची। आलिङ्यायन। पर्णी। ताम्रपर्णी। गोद। जानपदी। जम्बू। पुष्प। चम्पा। पम्पा। वल्गु। सदाण्वी। वणिकि। वणिक्। जानपद। उज्जयिनी। गया। मथुरा। तक्षशिला। उरशा। गोमती। बलभी॥ इति वरणादयः॥८१॥

भाषार्थ—यह सूत्र जनपद से भिन्न अभिधेय में लुप् करने के लिये है। गणोपदिष्ट वरण आदि प्रातिपदिकों से विहित चातुरर्थिक प्रत्यय का लुप् होता है। जैसे—वरणानामदूरभवं नगरं वरणा:। शिरीषाणामदूरभवो ग्राम: शिरीषा:॥८१॥

शर्कराया वा॥८२॥

शर्करायाः —५।१।वा[अ०]।अप्राप्तविभाषायेम्।शर्कराप्रातिपदिकाद् विहितस्य चातुरर्थिकस्य प्रत्ययस्य विकल्पेन लुब् भवति। पक्षे श्रवणमेव। शर्करया निर्वृत्तं शर्करा। शार्करम्॥८२॥

भाषार्थ—यह अप्राप्त विभाषा है। शर्करा प्रातिपदिक से विहित चातुरर्थिक प्रत्यय का विकल्प से लुप् होता है। पक्ष में प्रत्यय का श्रवण भी रहता है। जैसे—शर्करया निर्वृत्तं शर्करा। शार्करम्॥८२॥

ठक्छौ च॥८३॥

शर्कराया इत्यनुवर्त्तते।ठक्-छौ —१।२।च[अ०]।शर्कराप्रातिपदिकाच् चातुरर्थिकौ ठक्-छौ प्रत्ययौ भवतः। शर्करया निर्वृत्तं शार्करिकम्। शर्करीयम्॥८३॥

भाषार्थ—यहाँ 'शर्करायाः' पद की अनुवृत्ति है। शर्करा प्रातिपदिक से चातुरर्थिक ठक् और छ प्रत्यय होते हैं। शर्करया निर्वृत्तं शार्करिकम्। छ—शर्करीयम्।

नद्यां मतुप्॥८४॥

नद्याम् —७।१। मतुप् —१।१। सर्वेषामणादीनामपवादः। तन्नाम्नो देशस्य विशेषणं नदी। प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकान्नद्यामभिधेयायां चातुरर्थिको मतुप् प्रत्ययो भवति। उदुम्बराः सन्ति यस्यां नद्याम् उदुम्बरावती। मशकावती। वीरणावती। वेत्रवती। इक्षुमती। तन्नाम्नीत्यनुवर्त्तनात्—भागीरथी, इह मतुम्न भवति॥८४॥

भाषार्थ—यह सूत्र सब अणादि प्रत्ययों का अपवाद है। तन्नाम देश का नदी विशेषण है। प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से नदी अभिधेय में चातुरर्थिक 'मतुप्' प्रत्यय होता है। जैसे—उदुम्बराः सन्ति यस्यां नद्याम् उदुम्बरावती। मशकावती। वीरणावती। वेत्रवती। इक्षुमती। इस सूत्र में 'तन्नाम्नि' पद की अनुवृत्ति होने से यहाँ मतुप् नहीं होता—भागीरथी॥८४॥

मध्वादिभ्यश्च॥८५॥

मध्वादिभ्यः —५।३।च[अ०]।अनद्यर्थोऽयमारम्भः।प्रथमासमर्थेभ्यो मध्वादिप्रातिपदिकेभ्यश्चातुरर्थिको मतुप् प्रत्ययो भवति। मध्वस्त्यस्मिन् देशे मधुमान् देशः। विसवान्।

अथ मध्वादयः—मधु।विस।स्थाणु।वेणु।मुष्टि।हृष्टि।इक्षु।रम्य।ऋक्षु। कर्कन्धु। शमी। करीर। किरीर। हिम। किशरा। शर्य्याण। मरुत्। वर्दाली। दार्वाघाट। शर। इष्टका। तक्षशिला। आसुति। शक्ति। आसन्दी। शकल। शलाका। आमिषी। आमिधी। खडा। वेटा। रोमन्। ऋष्टि। ऋष्य। इति

मध्वादयः ॥ ८५ ॥

भाषार्थ—नदी अभिधेय से भिन्न अर्थ में विधान के लिये यह सूत्र बनाया है। प्रथमासमर्थ मधु आदि प्रातिपदिकों से चातुरर्थिक 'मतुप्' प्रत्यय होता है। जैसे—मध्वस्त्यस्मिन् देशे मधुमान् देशः। विसवान्॥ ८५ ॥

कुमुदनडवेतसेभ्यो ड्मतुप्॥ ८६ ॥

कुमुदनडवेतसेभ्यः —५।३। ड्मतुप् —१।१। कुमुदादिभ्यस्त्रिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यश्चातुरर्थिको ड्मतुप् प्रत्ययो भवति। कुमुद्वान्। नड्वान्। वेतस्वान्।

वा० —महिषाच्च॥ १ ॥

महिषशब्दादपि चातुरर्थिको ड्मतुप् प्रत्ययो भवति। महिष्मान्॥ ८६ ॥

भाषार्थ—कुमुद, नड, वेतस, इन तीन प्रातिपदिकों से चातुरर्थिक ड्मतुप् प्रत्यय होता है। जैसे—कुमुद्वान्। नड्वान्। वेतस्वान्।

वा० —महिषाच्च॥ १ ॥

महिष प्रातिपदिक से भी चातुरर्थिक ड्मतुप् प्रत्यय होता है। जैसे—महिष्मान्॥ ८६ ॥

नडशादाड् ड्वलच्॥ ८७ ॥

नड-शादात् --५।१।ड्वलच् —१।१।नड-शादशब्दाभ्यां चातुरर्थिको ड्वलच् प्रत्ययो भवति। नड्वलम्। शाद्वलम्॥ ८७ ॥

भाषार्थ—नड और शाद शब्दों से चातुरर्थिक ड्वलच प्रत्यय होता है। जैसे-नड्वलम्। शाद्वलम्॥ ८७ ॥

शिखाया वलच्॥ ८८ ॥

शिखायाः-५।१।वलच्-१।१। शिखाप्रातिपदिकाच्चातुरर्थिको वलच् प्रत्ययो भवति। शिखा=कश्चिन्मनुष्यस्तेन निर्वृत्तं नगरं शिखावलम्॥ ८८ ॥

भाषार्थ—'शिखा' प्रातिपदिक से चातुरर्थिक 'वलच्' प्रत्यय होता है। जैसे—शिखा नामक कोई मनुष्य है। उससे बनाया हुआ नगर-'शिखावलम्' कहलाता है॥ ८८ ॥

उत्करादिभ्यश्छः ॥ ८९ ॥

उत्करादिभ्यः —५।३।छः —१।१।उत्करादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यश्चातुरर्थिकश्छः प्रत्ययो भवति। उत्करीयम्। संफलीयम्।

अथोत्करादयः—उत्कर। संफल। संकर। शफर। पिप्पल। पिप्पलीमूल। अश्मन्। अर्क। पर्ण। सुपर्ण। सुवर्ण। खलाजिन। इडा। अग्नि। तिक। कितव। आतप। अनेक। पलाश। तृणव। पिचुक। अश्वत्थ। शकाक्षुद्र। भस्त्रा। विशाला। अवरोहित। गर्त्त। शाल। अन्यजन्या। अजिन। मंच। चर्मन्। उत्क्रोश। शान्त। खदिर। शूर्प्पणाय। श्यावनाय। नैव। बक। तृण। नितान्त। वृक्ष। विजिगीषा। फल। सम्बर। अर्क। वैराणक। अरण्य। निशान्त। पर्ण।

नीचायक। शंकर। अवरोहित। क्षार। विशाल। वेत्र। अरीहण। खण्ड। वातागर। मन्त्रणार्ह। इन्द्रवृक्ष। नितान्तवृक्ष। आर्द्रवृक्ष। अर्जुनवृक्ष। इत्युत्करादयः॥८९॥

भाषार्थ—उत्करादि प्रातिपदिकों से चातुरर्थिक 'छ' प्रत्यय होता है। जैसे— उत्करीयम्। सम्फलीयम्॥८९॥

नडादीनां कुक् च॥९०॥

नडादीनाम् —६।३। कुक् —१।१। च [अ०]। नडादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो विहिते चातुरर्थिके प्रत्यये परतो नडादीनां कुगागमो भवति। नडकीयम्। प्लक्षकीयम्।

अथ नडादयः—नड। प्लक्ष। विल्व। वेणु। वेत्र। वेतस। तृण। इक्षु। काष्ठ। कपोत। क्रुंचाया ह्रस्वत्वं च। तक्षन्नलोपश्च॥ इति नडादयः॥९०॥

भाषार्थ—नडादि गणपठित प्रातिपदिकों से चातुरर्थिक 'छ' प्रत्यय होता है और नडादि शब्दों को 'कुक्' आगम होता है। जैसे—नडकीयम्। प्लक्षकीयम्, इत्यादि॥९०॥

शेषे॥९१॥

शेषे —७।१। भा०—'कः शेषो नाम। अपत्यादिभ्यश्चातुरर्थपर्यन्तेभ्यो योऽन्योऽर्थः स शेषः।' 'तस्य विकार' इत्यस्य सूत्रस्योपरि महाभाष्यकारेणोक्तं तस्येत्यनुवर्त्तमाने पुनस्तस्य ग्रहणं शेषाधिकारनिवृत्यर्थम्। अतो ज्ञायते तस्य विकार इत्यस्मात् पूर्वं पूर्वं शेषाधिकारः। अधिकारसूत्रमिदम्। अतोऽग्रे ये घादयः प्रत्यया विधास्यन्ते ते जातादिशेषेऽर्थे भवन्तीति वेदितव्यम्॥९१॥

भाषार्थ—'शेष' किसे कहते हैं? इसका उत्तर महाभाष्य में यह दिया है— 'तस्यापत्यम्' (४।१।१३४) इस अपत्य अर्थ से लेकर चातुरर्थिक पर्यन्त अर्थों से भिन्न जो अर्थ हैं, वे शेष हैं और शेष का अधिकार कहाँ तक है? इसका उत्तर भी महाभाष्य के अनुसार 'तस्य विकारः' (४।३।१३४) सूत्र से पहले शेष का अधिकार है। क्योंकि इस सूत्र में 'तस्य' शब्द की अनुवृत्ति आने पर भी पुनः 'तस्य' शब्द का ग्रहण शेषाधिकार की निवृत्ति के लिये है।

यह अधिकार सूत्र है। इस सूत्र से आगे जो जो प्रत्यय विधान किये जायेंगे। वे सब जातादि शेष अर्थों में होते हैं, ऐसा जानना चाहिये॥९१॥

राष्ट्रावारपाराद् घखौ॥९२॥

राष्ट्रावारपारात् —५।१। घ-खौ —१।२। समर्थविभक्तिनिर्देशोऽर्थनिर्देशश्च जातादिशेषे विधीयते। तत्र यथासम्भवं जातादिष्वर्थेषु राष्ट्र, अवार-पार इत्येताभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां घ-खौ प्रत्ययौ यथासंख्यं भवतः। राष्ट्रे जातः। राष्ट्रे भवः। राष्ट्रादागतः। राष्ट्रं भक्तिरस्येत्यादि विगृह्य राष्ट्रियः। अवारपारीणः।

वा०—आवारपाराद् विगृहीतादपि॥१॥

अवार-पार शब्दाभ्यां पृथक् पृथगपि खः प्रत्ययो भवति। पारीणः। अवारीणः।

वा०—विपरीताच्च॥ २॥

यदि पारशब्दस्य पूर्वनिपातस्तदापि यथा स्यात्। पारावारीणः॥ ९२॥

भाषार्थ—समर्थ विभक्ति और अर्थ का निर्देश जातादि शेषाधिकार के सूत्रों में किया गया है। राष्ट्र और अवारपार प्रातिपदिकों से यथासम्भव शेष जातादि अर्थों में क्रम से घ और ख प्रत्यय होते हैं। जैसे—राष्ट्रे जातः, राष्ट्रे भवः, राष्ट्रादागतः, राष्ट्रं भक्तिरस्य, (इत्यादि विग्रह करके) वा राष्ट्रियः। अवारपारीणः।

वा०—अवारपाराद् विगृहीतादपि॥ १॥

विगृहीत शब्द का अर्थ भिन्न-भिन्न है। अवारपार शब्दों से पृथक् पृथक् भी ख प्रत्यय होता है। जैसे—अवारीणः। पारीणः॥ १॥

वा०—विपरीताच्च॥ २॥

यदि 'अवारपार' शब्दों में 'पार' शब्द को पहिले और 'अवार' शब्द का परनिपात हो तो भी समस्त शब्द से ख प्रत्यय होता है। जैसे—पारावरीणः॥ २॥ ९२॥

ग्रामाद् यखञौ॥ ९३॥

ग्रामात् —५।१। य-खञौ —१।१। ग्रामप्रातिपदिकाच् छैषिकेष्वर्थेषु य-खञौ प्रत्ययौ भवतः। ग्रामे जातो भवो वेत्यादि विगृह्य ग्राम्यः। ग्रामीणः। वृद्धाच्छं बाधते॥ ९३॥

भाषार्थ—'ग्राम' प्रातिपदिक से शैषिक जातादि अर्थों में य और खञ् प्रत्यय होते हैं। जैसे—ग्रामे जातो भवो वा (इत्यादि विग्रह करके) ग्राम्यः। ग्रामीणः। ग्राम शब्द वृद्धसंज्ञक है, अतः यह सूत्र 'वृद्धाच्छः' (४।२।११४) सूत्र का अपवाद है॥ ९३॥

कत्त्र्यादिभ्यो ढकञ्॥ ९४॥

कत्त्र्यादिभ्यः —५।३। ढकञ् —१।१। कत्त्र्यादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो ढकञ् प्रत्ययो भवति शैषिकेष्वर्थेषु। कात्त्रेयकः। औम्भेयकः।

इदानींतनेषु गणपाठपुस्तकेषु काशिकायां च कत्त्र्यादिषु ग्रामशब्दः पठितो दृश्यते। स केनचिद् भ्रान्त्या लिखितः। यदि कत्त्र्यादिषु ग्रामशब्दः स्यात् तर्हि वार्त्तिकारम्भोऽनर्थकः स्यात्।

वा०—ग्राम्माच्च॥ १॥

ग्रामशब्दादपि ढकञ् प्रत्ययो भवति। ग्रामेयकः।

अथ कत्त्र्यादयः—कत्त्रि। उम्भि। पुष्कर। पुष्कल। मोदनकुम्भी। कुण्डिन्। नगरी। वञ्जी। भक्ति। महिष्मती। वर्मवती। चर्मण्वती। उख्या। कुट्याया यलोपश्च॥ इति कत्त्र्यादयः॥

अत्र जयादित्येन कुल्याया यलोपश्चेति गणसूत्रं पठितं तत्र वक्ष्यमाणसूत्रेण 'कौलेयक' इति सिद्ध एव पुनरनर्थकमेव॥ ९४॥

भाषार्थ—गणपठित 'कत्त्रि' आदि प्रातिपदिकों से शैषिक अर्थों में 'ढकञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—कात्त्रेयकः। औम्भेयकः। इत्यादि।

वा०—ग्रामाच्च॥ १॥

ग्राम शब्द से भी शैषिक अर्थों में 'ढकञ्' प्रत्यय होता है। जैसे ग्रामेयक:॥ १॥

वर्त्तमान में उपलब्ध गणपाठ की पुस्तकों तथा काशिका में कत्र्यादि गण में 'ग्राम' शब्द का पाठ मिलता है। वह किसी ने भ्रान्ति से लिखा है। क्योंकि यदि इस गण में 'ग्राम' शब्द का पाठ होता तो वार्त्तिक बनाना निरर्थक ही होगा और इस गण में जयादित्य ने 'कुल्यायां यलोपश्च' ऐसा गण सूत्र माना है। यह भी भ्रान्तिवश ही है। क्योंकि इस गणसूत्र से 'कौलेयक:' रूप बनता है, और इस रूप की सिद्धि अगले 'कुलकुक्षि०' (४।२।९५) सूत्र से हो जाती है॥ ९४॥

कुलकुक्षिग्रीवाभ्यः श्वास्यलंकारेषु॥ ९५॥

ढकञ् अनुवर्त्तते। कुलकुक्षिग्रीवाभ्यः -५।३। श्वास्यलंकारेषु -७।३। श्वास्यलङ्काराः शेषविशेषणानि। नियमार्थश्चारम्भः। कुल, कुक्षि, ग्रीवा, इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः श्वास्यलंकारेष्वेव भवेषु ढकञ् प्रत्ययो भवति। कुले भवः कौलेयकः श्वा चेत्। कुक्षौ भवः कौक्षेयकोऽसिः। ग्रीवायां भवोऽलंकारो ग्रैवेयकः। श्वास्यलंकारेष्वति किम्—कौलः॥ ९५॥

भाषार्थ—पूर्वसूत्र से यहाँ 'ढकञ्' की अनुवृत्ति है। श्वा, असि और अलंकार ये शेष के विशेषण हैं। यह सूत्र नियमार्थक है। कुल, कुक्षि और ग्रीवा प्रातिपदिकों से श्वा, असि और अलंकार अभिधेय हो तो यथासंख्य करके शैषिक 'ढकञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—कुले भवः कौलेयकः श्वा। कुक्षौ भवः कौक्षेयकोऽसिः। ग्रीवायां भवोऽलंकारो ग्रैवेयकः। यहाँ 'श्वास्यलंकारेषु' इसलिये ग्रहण किया है कि--कौलः। [कौक्षः। ग्रैवः, यहाँ 'ढकञ्' न हो]॥ ९५॥

नद्यादिभ्यो ढक्॥ ९६॥

नद्यादिभ्यः —५।३। ढक् —१।१। नद्यादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः शैषिकेषु ढक् प्रत्ययो भवति। नद्यां भवं नादेयम्। माहेयम्।

अथ नद्यादयः—नदी। मही। वाराणसी। श्रावस्ती। श्रावणी। कौशाम्बी। नवकौशाम्बी। काशफरी। काशपरी। खादिरी। पूर्वनगरी। पावा। मावा। साल्वा। दार्वा। दाल्वा। सेतकी। वासेनकी। बडवाया वृषे॥ इति नद्यादयः॥ ९६॥

भाषार्थ—गण पठित नदी आदि प्रातिपदिकों से शैषिक अर्थों में 'ढक्' प्रत्यय होता है। जैसे—नद्यां भवं नादेयम्। माहेयम्। इत्यादि॥ ९६॥

दक्षिणापश्चात्पुरस्तात्* त्यक्॥ ९७॥

दक्षिणा, पश्चात्, पुरस्तात्, अव्ययशब्दा एते। तत्र त्यप् प्रत्ययः प्राप्तस्तद् बाधनार्थ आरम्भः। दक्षिणादिप्रातिपदिकेभ्यस्त्यक् प्रत्ययः शैषिकेषु भवति। दाक्षिणात्यः। पाश्चात्यः। पौरस्त्यः॥ ९७॥

भाषार्थ—दक्षिणा, पश्चात्, पुरस्तात्, ये तीनों शब्द अव्यय हैं, अतः इनसे 'त्यप्' प्रत्यय (अ० ४।२।१०३) सूत्र से प्राप्त है। यह उसका अपवाद है। दक्षिणा

---

* उपलब्धपुस्तकेषु ''दक्षिणा.........पुरसस्त्यक्'' इति पाठ उपलभ्यते। —**सम्पादकः**

आदि प्रातिपदिकों से शैषिक 'त्यक्' प्रत्यय होता है। जैसे—दाक्षिणात्यः। पाश्चात्यः। पौरस्त्यः॥ ९७॥

कापिश्याः ष्फक्॥ ९८॥

कापिश्याः —५।१। ष्फक् —१।१। कापिशीशब्दाद् वृद्धाच्छः प्राप्तः स बाध्यते। कापिशीप्रातिपदिकाच्छैषिकः ष्फक् प्रत्ययो भवति। कापिश्यां भवं कापिशायनं मधु। कापिशायनी द्राक्षा। कापिशीशब्दो देशविशेषस्य संज्ञा। प्राकृतभाषायां काबिल इत्यपभ्रंशः॥

वा० — बाह्ल्युर्दिपर्दिभ्यश्च॥ १॥

बाह्लि, उर्दि, पर्दि, इत्येतेभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः ष्फक् प्रत्ययो भवति। बाह्लायनी। और्दायनी। पार्दायनी॥ ९८॥

भाषार्थ—कापिशी शब्द के वृद्धसंज्ञक होने से 'छ' प्रत्यय प्राप्त है, यह उसका अपवाद है। 'कापिशी' प्रातिपदिक से शैषिक अर्थों में 'ष्फक्' प्रत्यय होता है। जैसे—कापिश्यां भवं कापिशायनं मधु। कापिशायनी द्राक्षा। कापिशी शब्द देश विशेष का नाम है। भाषा में इसी शब्द का अपभ्रंश 'काबिल' [काबुल] शब्द है।

वा० — बाहल्युर्दिपर्दिभ्यश्च॥ १॥

बाह्लि, उर्दि, पर्दि प्रातिपदिकों से शैषिक 'ष्फक्' प्रत्यय होता है। जैसे—बाह्लायनी। और्दायनी। पार्दायनी॥ १॥ ९८॥

रङ्कोरमनुष्येऽण् च॥ ९९॥

ष्फगप्यनुवर्त्तते। रङ्कोः —५।१। अमनुष्ये —७।१। अण् —१।१। च [अ०]। [अमनुष्येऽभिधेये] रङ्कुप्रातिपदिकात् शैषिकेषु ष्फक्-अणौ प्रत्ययौ भवतः। राङ्कवो मृगः। राङ्कवायणो मृगः। अमनुष्य इति किम्। राङ्कवको मनुष्यः। अण्ग्रहणममनुष्ये ष्फग्-अणावुभावपि स्याताम्। अन्यथा रङ्कोर-मनुष्ये चेत्युक्ते ष्फगणो बाधकः स्यात्॥ ९९॥

भाषार्थ—यहाँ 'ष्फक्' प्रत्यय की भी अनुवृत्ति है। मनुष्य से भिन्न अभिधेय में 'रङ्कु' प्रातिपदिक से शैषिक अर्थों में ष्फक् और अण् प्रत्यय होते हैं। जैसे अण्—राङ्कवो मृगः। ष्फक्—राङ्कवायणो मृगः। यहाँ 'अमनुष्ये' इसलिये ग्रहण किया है कि राङ्कवको मनुष्यः। यहाँ 'मनुष्यतत्स्थयोर्वुञ्' (४।२।१३३) सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है, स्फक् अण् न होवें।

यहाँ यद्यपि सामान्य अण् का अधिकार है, पुनरपि अण् का यहाँ ग्रहण इस लिये किया है कि ष्फक् अण् का बाधक न हो जाये और अमनुष्यवाची से ष्फक् तथा अण् दोनों प्रत्यय होवें॥ ९९॥

द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत्॥ १००॥

द्यु........प्रतीचः —५।१। यत् —१।१। दिव्, प्राच्, अपाच्, उदच्, प्रत्यच्, इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः शैषिकेषु यत् प्रत्ययो भवति। दिव्यम्।

प्राच्यम्। अपाच्यम्। उदीच्यम्। प्रतीच्यम्। प्रागादीनामव्ययानां ग्रहणमत्र नास्ति किन्तु यौगिकानां शब्दानाम्। अव्ययेभ्यस्तु ट्यु-ट्युलौ भवतः—प्राक्तनम्। अणोऽपवादः॥ १००॥

भाषार्थ—दिव्, प्राच्, अपाच्, उदच् और प्रत्यच् प्रातिपदिकों से शैषिक अर्थों में यत् प्रत्यय होता है। जैसे—दिव्यम्। प्राच्यम्। अपाच्यम्। उदीच्यम्। प्रतीच्यम्। यह सूत्र 'अण्' प्रत्यय का अपवाद है। इस सूत्र में प्राच् इत्यादि अव्ययों का ग्रहण नहीं है, प्रत्युत यौगिक शब्दों का ग्रहण है। 'दिव' आदि अव्यय शब्दों से तो ट्यु और ट्युल् प्रत्यय ही होते हैं। जैसे—प्राक्तनम्। प्रत्यक्तनम्, इत्यादि॥ १००॥

कन्थायाष्ठक्॥ १०१॥

कन्थायाः -५।१। ठक् -१।१। कन्थाप्रातिपदिकाच्छैषिकष्ठक् प्रत्ययो भवति। कान्थिकः॥ १०१॥

भाषार्थ—कन्था प्रातिपदिक से शैषिक अर्थों में 'ठक्' प्रत्यय होता है। जैसे—कान्थिकः॥ १०१॥

वर्णौ वुक्॥ १०२॥

कन्थाया इत्यनुवर्त्तते। वर्णौ —७।१। वुक् —१।१। वर्णुनामदेशस्तद्-विषयकात् कन्थाप्रातिपदिकाद् वुक् प्रत्ययो भवति। ठकोऽपवादः। वर्णौ या कन्था तत्र जाता यूकाः कान्थकाः॥ १०२॥

भाषार्थ—यहाँ 'कन्थाया' पद की अनुवृत्ति है। 'वर्णु' नाम का देश है, उसके अभिधेय होने पर 'कन्था' प्रातिपदिक से शैषिक अर्थों में 'वुक्' प्रत्यय होता है। यह सूत्र 'ठक्' का अपवाद है। जैसे—वर्णौ या कन्था तत्र जाता यूकाः कान्थकाः॥ १०२॥

अव्ययात् त्यप्॥ १०३॥

अव्ययात् —५।१। त्यप् —१।१। अव्ययप्रातिपदिकाच्छैषिकस्त्यप् प्रत्ययो भवति।

भा०— **परिगणनं कर्त्तव्यम्। अमेहक्वतसित्रेभ्यस्त्यब्विधिर्योऽव्ययात् स्मृतः॥**

अमा, इह, क्व, तसिल्-त्रल्प्रत्ययान्ताश्च, इत्येतेभ्योऽव्ययेभ्यस्त्यब् विधेयः। अमात्यः। इहत्यः। क्वत्यः। ततस्त्य। यतस्त्यः। तत्रत्यः। यत्रत्यः। परिगणनस्यैतत् प्रयोजनम्—औपरिष्टः। पौरस्तः। पारस्तः।

वा०—**त्यब् नेर्ध्रुवे॥ १॥**

नि-प्रातिपदिकाद् ध्रुवे त्यप् प्रत्ययो भवति। नियतभावो नित्यम्॥ १॥

वा०—**निसो गते॥ २॥**

निस्शब्दाद् गतार्थे त्यप् प्रत्ययो भवति। निर्गतो निष्ट्यः॥ २॥

वा०—**अरण्याण् णः॥ ३॥**

अरण्यशब्दाण् णः प्रत्ययो भवति। आरण्याः सुमनसः॥ ३॥

वा०—दूरादेत्यः॥ ४॥

दूर-प्रातिपदिकाद् एत्यः प्रत्ययो भवति। दूरेत्यः॥ ४॥

वा०—उत्तराद् आहञ्॥ ५॥

उत्तरप्रातिपदिकाद् आहञ् प्रत्ययो भवति। औत्तराहः॥ ५॥

वा०—अव्ययात् त्यप्याविष्ट्यस्योपसंख्यानं छन्दसि॥ ६॥

छन्दसि=वेदविषये आविस्शब्दात् त्यप् प्रत्ययो भवति। आविष्ट्यो वर्धते चारुरासु॥ १०३॥

भाषार्थ—अव्यय संज्ञक प्रातिपदिकों से शैषिक अर्थों में 'त्यप्' प्रत्यय होता है। यह सूत्र भी 'अण्' आदि प्रत्ययों का अपवाद है। उस सूत्र पर इष्ट प्रयोग साधनार्थ महाभाष्यकार ने परिगणन किया है कि—अमा, इह, क्व तथा तसिल् और त्रल् प्रत्ययान्त अव्ययों से ही 'त्यप्' प्रत्यय होवे। जैसे—अमात्यः। इहत्यः। क्वत्यः। ततस्त्यः। यतस्त्यः। तत्रत्यः। यत्रत्यः। इत्यादि। इस परिगणन करने का प्रयोजन यह है कि इनसे भिन्न अव्ययों से त्यप् प्रत्यय न होते। जैसे—उपरिष्टात्= औपरिष्टः। पौरस्तः। पारस्तः। इत्यादि।

वा०—त्यब् नेर्ध्रुवे॥ १॥

नि-अव्यय प्रातिपदिक से ध्रुव अर्थ में 'त्यप्' प्रत्यय होता है। जैसे—नियत भावो नित्यम्॥ १॥

वा०—निसो गते॥ २॥

'निस्' अव्यय से गत अर्थ में 'त्यप्' प्रत्यय होता है। जैसे—निर्गतो निष्ट्यः॥ २॥

वा०—अरण्याण् णः॥ ३॥

'अरण्य' शब्द से शैषिक अर्थों में 'ण' प्रत्यय होता है। जैसे—अरण्ये भवा आरण्याः सुमनसः॥ ३॥

वा०—दूराद् एत्यः॥ ४॥

'दूर' प्रातिपदिक से शैषिक अर्थों में 'एत्य' प्रत्यय होता है। जैसे—[दूरे लब्धो] दूरेत्यः॥ ४॥

वा०—उत्तराद् आहञ्॥ ५॥

'उत्तर' प्रातिपदिक से शैषिक अर्थों में 'आहञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—उत्तरे जात औत्तराहः॥ ५॥

वा०—अव्ययात् त्यप्याविष्ट्यस्योपसंख्यानं छन्दसि॥ ६॥

वेदविषय में आविस् शब्द से शैषिक 'त्यप्' प्रत्यय होता है। जैसे—आविष्ट्यो वर्धते चारुरासु॥ १०३॥

एषमोह्यःश्वसोऽन्यतरस्याम्॥ १०४॥

त्यबनुवर्त्तते। ऐषमोह्यःश्वसः —५।१। अन्यतरस्याम्। [अ.प.]। अप्राप्तविभाषेयम्। ऐषम आद्यव्ययप्रातिपदिकेभ्यस्त्यप् प्रत्ययो विकल्पेन भवति। पक्षे ट्यु-ट्युलौ प्रत्ययौ भवतः। श्वस्प्रातिपदिकात्तु 'श्वसस्तुट् चे' ति विकल्पेन ठञ् तत्पक्षे च ट्यु-ट्युलौ। एवं त्रीणि रूपाणि (श्वसो) भवन्ति। ऐषमस्त्यः। ऐषमस्तनः। ह्यस्त्यः। ह्यस्तनः। श्वस्त्यः। शौवस्तिकः। श्वस्तनः। 'अव्ययात् त्यबि' ति तु परिगणनात् त्यम्न प्राप्तोऽतोऽप्राप्तविभाषा॥ १०४॥

भाषार्थ—यहाँ 'त्यप्' प्रत्यय की अनुवृत्ति है। यह अप्राप्तविभाषा है। ऐषमस्, ह्यस्, श्वस्, इन अव्यय प्रातिपदिकों से शैषिक अर्थों में विकल्प से 'त्यप्' प्रत्यय होता है। पक्ष में यथाप्राप्त ट्यु और ट्युल् प्रत्यय होते हैं। श्वस् प्रातिपदिक से तो 'श्वसस्तुट् च' (४।३।१५) सूत्र से विकल्प से ठञ् और पक्ष में ट्यु और ट्युल् होने से तीन रूप सिद्ध होते हैं। जैसे—ऐषमस्त्यः। ऐषमस्तनः। ह्यस्त्यः। ह्यस्तनः। श्वस्त्यः। ठञ्—शौवस्तिकः। ट्यु-ट्युल्=श्वस्तनः। 'अव्ययात्त्यप्' सूत्र में परिगणन करने से 'त्यप्' प्रत्यय प्राप्त नहीं है, अतः यह अप्राप्त विभाषा है॥ १०४॥

तीररूप्योत्तरपदादञ्ञ्यौ॥ १०५॥

तीररूप्योत्तरपदात् —५।१। अञ्-ञ्यौ —१।२। अणोऽपवादः। तीररूप्यशब्दावुत्तरपदे यस्य तस्मात् तीररूप्योत्तरपदात् प्रातिपदिकाद् यथा-संख्यम् अञ्-ञ्यौ प्रत्ययौ शैषिकेषु भवतः। करवतीरे भवं कारवतीरम्। चणाररूप्ये भवं चाणाररूप्यम्॥ १०५॥

भाषार्थ—यह सूत्र 'अण्' प्रत्यय का अपवाद है। तीर और रूप्य शब्द उत्तरपद में है जिनके, उन प्रातिपदिकों से शैषिक अर्थों में यथाक्रम 'अञ्' और 'ञ्य' प्रत्यय होते हैं। जैसे—करवतीरे भवं कारवतीरम्। चणाररूप्ये भवं चाणार-रूप्यम्॥ १०५॥

दिक्पूर्वपदादसंज्ञायां ञः॥ १०६॥

दिक्पूर्वपदात् —५।१। असंज्ञायाम् —७।१। ञः —१।१। दिग्वाचि-शब्दः पूर्वपदं यस्य तस्मात्। दिक्पूर्वपदस्य संज्ञायां समासो विधीयतेऽ-तोऽसंज्ञायामिति प्रतिषिध्यते। असंज्ञायां वर्त्तमानाद् दिक्पूर्वपदात् प्रातिपदिकाद् ञः प्रत्ययः शैषिकेषु भवति। पौर्वशालो ग्रामः। आपरशालः। असंज्ञायामिति किम्—पूर्वैषुकामशम्यां भवः पूर्वैषुकामशमः। अपरैषुकामशमः। अत्राणेव भवति। स्वरे विशेषः॥ १०६॥

भाषार्थ—दिक्पूर्वपद का 'दिक्संख्ये संज्ञायाम्' (२।१।४९) सूत्र से संज्ञा में समास का विधान किया है। संज्ञा विषय से अन्यत्र दिशावाची शब्द पूर्वपद में है, जिनके उन प्रातिपदिकों से शैषिक अर्थों में 'ञ' प्रत्यय होता है। जैसे—पौर्वशालो ग्रामः। आपरशालः। यहाँ 'असंज्ञायाम्' का ग्रहण इसलिये किया है कि पूर्वैषुकामशम्यां भवः पूर्वैषुकामशमः। अपरैषुकामशमः। यहाँ संज्ञा होने से 'ञ' न होकर सामान्य 'अण्' प्रत्यय ही होता है। ञ और अण् में रूपों में भेद न

होने पर भी स्वर में भेद होता है॥१०६॥

मद्रेभ्योऽञ्॥१०७॥

मद्रेभ्यः —५।३।अञ् —१।१।दिक्पूर्वपदादित्यनुवर्त्तते।दिक्पूर्वपदान् मद्रान्तात् प्रातिपदिकाद् अञ् प्रत्ययो शैषिकेषु भवति। स्त्रियां विशेषः। पौर्वमद्री। आपरमद्री॥१०७॥

भाषार्थ—यहाँ 'दिक्पूर्वपदात्' की अनुवृत्ति है। दिशावाची जिसके पूर्वपद में हो, उस मद्रान्त प्रातिपदिक से शैषिक अर्थों में 'अञ्' प्रत्यय होता है। अञ् और ञ प्रत्ययान्त रूपों में स्त्रीलिंग में ही भेद है। जैसे—पौर्वमद्री। आपरमद्री॥१०७॥

उदीच्यग्रामाच्च बह्वचोऽन्तोदात्तात्॥१०८॥

उदीच्यग्रामात् -५।१।[अ०] बह्वचः -५।१। अन्तोदात्तात् -५।१। उदीचि भव उदीच्यः। स चासौ ग्राम उदीच्यग्रामस्तस्मात्। अन्तोदात्ताद् बह्वच उदीच्यग्रामात् प्रातिपदिकाच्छैषिकोऽञ् प्रत्ययो भवति। अणोऽपवादः। शिवस्य पुरं शिवपुरम्। षष्ठीसमासे कृते समासस्येत्यन्तोदात्तत्वम्। शिवपुरे भवं शैवपुरम्। उदीच्यग्रामादिति किम्—पाटलिपुत्रीयम्। बह्वच इति किम्—ध्वाजम्। ध्वजिन् शब्दादण्। अन्तोदात्तादिति किमर्थम्—अरिष्टपुरम्। गौडपुरम्। 'अरिष्टगौडपूर्वे चे' ति पूर्वपदस्यान्तोदात्तम्॥१०८॥

भाषार्थ—उदीच्यग्रामवाची=उत्तरदेशवर्ती जो ग्रामवाची, बह्वच्=अनेक स्वर-वाले और अन्तोदात्त शब्द हैं, उनसे शैषिक अर्थों में 'अञ्' प्रत्यय होता है। यह 'अण्' प्रत्यय का अपवाद है। जैसे—शिवस्य पुरं शिवपुरम्। शिवुपुरे भवं शैवपुरम्। यहाँ शिवपुर शब्द में षष्ठी समास होने से 'समासस्य' (६।१।२१७) सूत्र से अन्तोदात्त है। इसी प्रकार 'माण्डवपुरम्' इत्यादि प्रयोग भी जानने चाहियें। यहाँ 'उदीच्यग्रामात्' का ग्रहण इसलिये है कि—पाटलिपुत्रीयम्। 'बह्वच्' का ग्रहण इसलिये है कि ध्वाजम्। यहाँ ध्वजिन् शब्द से अण् प्रत्यय है। और 'अन्तोदात्तात्' का ग्रहण इसलिये है कि अरिष्टपुरम्। गौडपुरम्। यहाँ 'अरिष्टगौडपूर्वे च' (अ० ६।२।१००) सूत्र से पूर्वपद को अन्तोदात्त स्वर हुआ है॥१०८॥

प्रस्थोत्तरपदपलद्यादिकोपधादण्॥१०९॥

प्रस्थो.....कोपधात् —५।१। अण् —१।१। प्रस्थशब्द उत्तरपदं यस्य तस्मात्। पलद्यादयो गणशब्दाः। ककार उपधायां यस्य तस्मात्। प्रस्थोत्तर-पदात् पलद्यादिभ्यः कोपधाच्च प्रातिपदिकाद् अण् प्रत्ययो भवति शैषिकः। माद्रीप्रस्थः। कौन्तीप्रस्थः। पालदः। पारिषदः। निलीनके भवो नैलीनकः। प्रस्थान्तस्य पूर्वपदमाद्युदात्तं भवति कर्क्यादीन् वर्जयित्वा। कर्क्यादिप्रस्थान्त-स्योत्तरपदमन्तोदात्तं भवति। तत्रपूर्वसूत्रेणात्रि प्राप्तेऽण् विधीयते। ये च पूर्वपदमाद्युदात्ताः प्रस्थान्तास्तेभ्यस्त्वधिकारेणैव सिद्धोऽण्। पलद्यादिषु कानिचिद् वृद्धानि तेभ्यश्छः प्राप्तः। ये वाहिकग्रामास्तेभ्यष्ठञ्-ञिठौ। य इकारान्तास्तेभ्यो वुञ्। एवं कोपधादिभ्योऽपि छादयः प्राप्तास्तद्बाधनार्थं

पुनरण्विधानम्। अथ पलद्यादयः—पलदी। परिषद्। यकृल्लोमन्। रोमक। कालकूट। वाहीक। कलकीट। बहुकीट। जालकीट। मलकीट। कमलकीट। कमलभिदा। कमलकीर। गोष्ठी। परिखा। शूरसेन। नैरवती। नैतकी। गोमती। उदपान। पक्ष। कललकीट। कललकीकटा। नैधिकी। नैकेती। इति पलद्यादिः॥ १०९॥

भाषार्थ—प्रस्थ शब्द जिसके उत्तरपद में है, वह प्रस्थोत्तरपद है। पलदी आदि गणपठित शब्द हैं। और ककार उपधामें है जिसके वह कोपध है। प्रस्थोत्तरपद, पलदी इत्यादि गणपठित शब्दों और ककारोपध प्रातिपदिकों से शैषिक अर्थों में 'अण्' प्रत्यय होता है। जैसे—प्रस्थोत्तरपद— माद्रीप्रस्थः। कौन्तीप्रस्थः। पलद्यादि-- पालदः। पारिषदः। कोपध—निलीनके भवो नैलीनकः। इत्यादि॥

प्रस्थेऽवृद्धमकर्क्यादीनाम्' (अ० ६।२।८७) सूत्र से प्रस्थ शब्दान्तों में पूर्वपद आद्युदात्त होता है, कर्की आदि शब्दों को छोड़कर। और कर्की आदि शब्द पूर्वपद में हों तो प्रस्थान्त शब्दों में समास के सामान्य स्वर से उत्तरपद अन्तोदात्त होता है। इसलिये 'माद्रीप्रस्थ' आदि शब्दों में 'उदीच्यग्रामाच्च' (४।२।१०८) इस पूर्वसूत्र से अन्तोदात्त होने से 'अञ्' प्रत्यय के प्राप्त होने पर यह 'अण्' का विधान किया है। और जो प्रस्थान्त शब्द पूर्वपद आद्युदात्त हैं, उनसे तो सामान्याधिकार से ही 'अण्' सिद्ध है। और पलद्यादि गण में जो कुछ शब्द वृद्ध संज्ञक हैं, उनसे 'छ' का अपवाद 'अण्' है। और जो वाहीकग्रामवाची हैं उनसे ठञ् और ञिठ् का अपवाद 'अण्' है। तथा जो इस गण में गोमती आदि इकारान्त शब्द हैं, उनसे 'रोपधेतोः' (४।२।१२२) सूत्र से प्राप्त वुञ् का अपवाद अण् है। इसी प्रकार कोपधादि शब्दों से छादि प्रत्ययों का अण् अपवाद विधान किया है॥ १०९॥

कण्वादिभ्यो गोत्रे॥ ११०॥

अणित्यनुवर्त्तते। कण्वादिभ्यः —५।३। गोत्रे —७।१। कण्वादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो गोत्रे यो विहितः प्रत्ययस्तदन्तात् प्रातिपदिकाद् अण् प्रत्ययो भवति शैषिकः। कण्वादयो गर्गाद्यन्तर्गतास्तेभ्यश्छः प्राप्तः स बाध्यते। काण्वस्य छात्राः काण्वाः॥ ११०॥

भाषार्थ—यहाँ 'अण्' प्रत्यय की अनुवृत्ति है। कण्वादि शब्द गर्गादिगण के अन्तर्गत हैं, उनसे 'वृद्धाच्छः' (४।२।११३) सूत्र से 'छ' प्रत्यय प्राप्त है, उसका यह सूत्र बाधक है। कण्वादि प्रातिपदिकों से गोत्र में जो प्रत्यय विधान किया है, तदन्त प्रातिपदिकों से शैषिक अण् प्रत्यय होता है। जैसे—काण्व्यस्य छात्राः काण्वाः॥ इत्यादि॥ ११०॥

इञश्च॥ १११॥

गोत्र इत्यनुवर्त्तते। इञः —५।१। च [अ०]। गोत्र प्रत्ययान्ताद् इञन्तात् प्रातिपदिकादण् प्रत्ययो भवति शैषिकः। छस्यापवादः। दाक्षाः। प्लाक्षाः। गोत्र इति किम्---आर्ष्टिषेणीयाः॥ १११॥

भाषार्थ—यहाँ 'गोत्रे' पद की अनुवृत्ति है। गोत्र में जो 'इञ्' प्रत्यय का विधान किया है, तदन्त प्रातिपदिकों से शैषिक 'अण्' प्रत्यय होता है। यह सूत्र 'छ' प्रत्यय का अपवाद है। जैसे—दाक्षाः। प्लाक्षाः। यहाँ 'गोत्रे' इसलिये ग्रहण किया है कि आर्ष्टिषेणीयाः। यहाँ गोत्र में 'इञ्' न होने से 'अण्' नहीं हुआ॥ १११ ॥

न द्व्यचः प्राच्यभरतेषु॥ ११२॥

न [अ०] द्व्यचः —५।१। प्राच्यभरतेषु —७।३। प्राच्यभरतगोत्राद् इञन्ताद् द्व्यचः प्रातिपदिकाद् अण् प्रत्ययो न भवति। चैदीयाः पौष्कीयाः। द्व्यच इति किम्—पन्नागारेश्छात्राः पान्नागाराः। प्राच्यभरत इति किमर्थम् दाक्षाः। प्लाक्षाः॥ ११२॥

भाषार्थ—प्राच्य-भरत गोत्र में जो 'इञ्' प्रत्यय, तदन्त द्व्यच् प्रातिपदिकों से शैषिक 'अण्' प्रत्यय नहीं होता है। यह पूर्वसूत्र से प्राप्त 'अण्' का निषेध करता है। जैसे—चैदीयाः। पौष्कीयाः। यहाँ 'द्व्यचः' इसलिये पढ़ा है कि—पन्नागारेश्छात्राः पान्नागाराः। यहाँ द्व्यच् न होने से इञन्त से 'अण्' प्रत्यय ही हुआ है। और 'प्राच्य-भरत' का ग्रहण इसलिये है कि दाक्षाः। प्लाक्षाः। यहाँ 'अण्' का निषेध न हो॥ ११२॥

वृद्धाच्छः॥ ११३॥

गोत्र इत्यनुवर्त्तते। वृद्धात् —५।१। छः —१।१। वृद्धसंज्ञकात् प्रातिपदिकाच्छैषिकश्छः प्रत्ययो भवति। गार्गीयाः। वात्सीयाः शालीयः। मालीयः।

'अव्ययात् त्यप्। 'तीररूप्योत्तरपदादञ्ञ्यौ।' उदीच्यग्रामाच्च बह्वचोऽन्तोदात्तात्। प्रस्थोत्तरपदपलद्यादिकोपधादण्। आराच्छब्दोऽव्ययं तस्माच्छः। आरातीयः। वायसतीरप्रातिपदिकं तीरोत्तरपदं तस्मात् परविप्रतिषेधाच्छः। वायसतीरीयः। माणिरूप्यशब्दाद् रूप्योत्तरपदादपवादेन छः प्राप्तस्तमपि यकारोपधलक्षणो वुञ् बाधते। माणिरूप्यकः। वाडवकर्ष उदीच्यग्रामोऽन्तोदात्तो वृद्धं प्रातिपदिकं तस्मात् परत्वाच्छः। वाडवकर्षीयः। औलूकं वृद्धं कोपधं प्रातिपदिकं तस्माद् वृद्धलक्षणश्छः। औलूकीयम्॥ ११३॥

भाषार्थ—यहाँ 'गोत्रे' पद की अनुवृत्ति है। गोत्रप्रत्ययान्त वृद्धसंज्ञक प्रातिपदिकों से शैषिक 'छ' प्रत्यय होता है। जैसे—गार्गीयाः। वात्सीयाः। शालीयः। मालीयः।

इस प्रकरण में यह बात अवश्य ध्यान देने योग्य है कि—'अव्ययात् त्यप्' (४।२।१०३) 'तीररूप्योत्तरपदादञ्-ञौ' (४।२।१०५) 'उदीच्यग्रामाच्च बह्वचोऽन्तोदात्तात्' (४।२।१०८) प्रस्थोत्तपदपलद्यादिकोपधादण् (४।२।१०९) इन सूत्रों से जहाँ प्रत्यय प्राप्त हों, और उन्हीं शब्दों की वृद्धसंज्ञा होने से 'छ' प्रत्यय भी प्राप्त हो, वहाँ इन सूत्रों का बाधन करके पर विप्रतिषेध से 'छ' प्रत्यय ही होता है—आरातीयः। इसी प्रकार 'वीयसतीर' शब्द तीरोत्तरपद है, उससे 'अञ्' न होकर 'छ' प्रत्यय होता है—वायसतीरीयम्। और रूप्योत्तरपद माणिरूप्य शब्द से 'छ'

प्रत्यय प्राप्त है और यकारोपध होने से वुञ् भी प्राप्त है, पर विप्रतिषेध से 'वुञ्' होता है। जैसे—माणिरूप्यकः। 'वाडवकर्ष' एक उदीच्य ग्राम है, और यह अन्तोदात्त वृद्ध प्रातिपदिक है, इससे परत्व से 'छ' प्रत्यय होता है—वाडवकर्षीयः। इसी तरह औलूक शब्द वृद्ध संज्ञक ककारोपध प्रातिपदिक है, उससे भी परत्व से 'छ' प्रत्यय होता है—औलूकीयम्॥ ११३॥

भवतष्ठक्छसौ॥ ११४॥

वृद्धादिति वर्त्तते। भवतः —५।१। ठक्-छसौ —१।२। भवच्छब्दस्य त्यदादित्वाद् वृद्धत्वम्। तस्माच्छः प्राप्तः स बाध्यते। वृद्धसंज्ञकाद् भवत्प्रातिपदिकाच्छैषिकौ ठक्-छसौ प्रत्ययौ भवतः। भवतश्छात्रो भावत्कः। भवदीयः। सित्करणं पदसंज्ञार्थम्। तेन 'झलां जसोऽन्ते' इति पदान्तस्य जश्त्वं सिद्धं भवति॥ ११४॥

भाषार्थ—भवत् शब्द की त्यदादि गण में पाठ होने से वृद्ध संज्ञा है, उससे 'छ' प्रत्यय की प्राप्ति है, उसका यह अपवाद है। वृद्धसंज्ञक भवत् प्रातिपदिक से शैषिक ठक् और छस् प्रत्यय होते हैं। जैसे—भवतश्छात्रो भावत्कः। भवदीयः। छस् प्रत्यय में सकारानुबन्ध 'सिति च' (१।४।१६) सूत्र से पदसंज्ञार्थ है और पद संज्ञा होने से 'झलां-जशोऽन्ते' (८।२।३९) सूत्र से पदान्त को जश्त्व हो जाता है॥ ११४॥

काश्यादिभ्यष्ठञ्ञिठौ॥ ११५॥

वृद्धादित्यनुवर्त्तते, तदत्र नैव संबध्यते। कुतः। यादृशाः काश्यादयः शब्दा गणे पठितास्तादृशेभ्य एव पठनसामर्थ्यात् प्रत्ययो भविष्यतीत्यतः। काश्यादिभ्यः —५।३। ठञ्-ञिठौ —१।२। काश्यादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यष्ठञ्-ञिठौ शैषिकौ प्रत्ययौ भवतः। प्रयोगस्तु स एवैकश्चैव स्वरः। स्त्रीलिङ्गे रूपभेदः। काशिकी। काशिका। चैदिकी। चैदिका। ञकारोऽनुबन्ध उभयत्र वृद्ध्यर्थः स्वरार्थश्च। ठञ् प्रत्ययान्तात् स्त्रीलिङ्गे 'टिड्ढाणञ्०' इति ङीप्। ञिठ्प्रत्ययान्ताट् टाप्।

अथ काश्यादयः—काशि। चेदि। वेदि। संज्ञा। सांयाति। संवाह। अच्युत। मोहमान। मोदमान। शकुलाद। हस्तिकर्षू। कुदामन्। कुनामन्। हिरण्य। करण। गोवासन। गोधाशन। भारङ्गि। भौरिकि। भौलिङ्गि। अरिन्दम। अरित्र। सर्वमित्र। देवदत्त। साधुमित्र। दासमित्र। दासग्राम। सिन्धुमित्र। सुधामित्र। सोममित्र। छागमित्र। दशग्राम। सौधावतान। शौवावतान। युवराज। उपराज। देवराज। मोहन। आपदादि पूर्वपदात् कालान्तात्। आपदादयः शब्दाः पूर्वपदानि यस्य तस्मात् कालान्तात् प्रातिपदिकाद् ठञ्-ञिठौ प्रत्ययौ भवतः। आपत्कालिकी। आपत्कालिका। और्ध्वकालिकी। और्ध्वकालिका। तात्कालिकी। तात्कालिका॥ इति काश्यादयः सम्पूर्णाः॥ ११५॥

भाषार्थ—यहाँ 'वृद्धात्' पद की अनुवृत्ति है किन्तु उसका सूत्र में सम्बन्ध

नहीं है। क्योंकि काशि आदि शब्दों का जैसा गण में पाठ किया है, उनमें अवृद्धसंज्ञक शब्द भी हैं, उनसे पाठ-सामर्थ्य से प्रत्यय होते हैं। काशि इत्यादि गण-पठित प्रातिपदिकों से शैषिक अर्थों में ठञ् और ञिठ प्रत्यय होते हैं। ठञ् और ञिठ प्रत्ययान्त रूपों में प्रयोग और स्वर समान ही है, केवल स्त्रीलिंग में भेद होता है। जैसे—काशिकी। काशिका। चैदिकी। चैदिका। दोनों प्रत्ययों में ञकारानुबन्ध वृद्धि और स्वर के लिये है। ठञ् प्रत्ययान्त से स्त्रीलिंग में 'टिड्ढाणञ्' (४।१।१५) सूत्र से ङीप् प्रत्यय होता है और ञिठ् प्रत्ययान्त से स्त्रीलिंग में टाप् प्रत्यय होता है।

वाहीकग्रामेभ्यश्च॥ ११६॥

वृद्धादित्यनुवर्त्तते। वाहीकग्रामेभ्यः —५।३। च [अ०]। वाहीकग्राम-वाचिभ्यो वृद्धसंज्ञकेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यश्छादीन् बाधित्वा शैषिकौ ठञ्ञिठौ प्रत्ययौ भवतः। कारतान्तविकी। कारतन्तविका। शाकलिकी। शाकलिका। आराच्छब्दोऽव्ययं वाहीकग्रामः प्रातिपदिकं तस्मात् परत्वाद् ठञ्-ञिठौ भवतः। आरात्की। आरात्का। एवमन्येभ्योऽपि॥ ११६॥

भाषार्थ—यहाँ 'वृद्धात्' पद की अनुवृत्ति है। वृद्धसंज्ञक वाहीक ग्रामवाची प्रातिपदिकों से शैषिक अर्थों में छ आदि प्रत्ययों के बाधक ठञ् और ञिठ प्रत्यय होते हैं। जैसे—कारतन्तविकी। कारतन्तविका। शाकलिकी। शाकलिका।

'आरात्' शब्द अव्यय है और वाहीकग्राम है, उससे परत्व से ठञ् और ञिठ् प्रत्यय होते हैं। जैसे—आरात्की। आरात्का। इसी प्रकार दूसरे शब्दों से भी समझने चाहिएँ॥ ११६॥

विभाषोशीनरेषु॥ ११७॥

वृद्धादित्यनुवर्त्तते। विभाषा —१।१। उशीनरेषु —७।३। प्राप्तविभाषेयम्। वाहीकग्रामेभ्य इति वर्त्तते। उशीनरदेशे ये वाहीकग्रामास्तेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो विकल्पेन ठञ्-ञिठौ प्रत्ययौ भवतः शैषिकौ। आह्वजालिकी। आह्वजालिका। आह्वजालीयाः॥ ११७॥

भाषार्थ—यहाँ 'वृद्धात्' पद की अनुवृत्ति है। यह प्राप्तविभाषा है। और 'वाहीकग्रामेभ्यः' पद की भी अनुवृत्ति है। उशीनर नामक देश में जो वाहीक ग्राम हैं, उन प्रातिपदिकों से शैषिक अर्थों में विकल्प से ठञ् और ञिठ् प्रत्यय होते हैं। जैसे—आह्वजालिकी आह्वजालिका। आह्वजालीयाः॥ ११७॥

ओर्देशे ठञ्॥ ११८॥

वृद्धादिति निवृत्तम्। ओः —५।१। देशे —७।१। ठञ् —१।१। देश इति प्रकृतिविशेषणं नैव प्रत्ययार्थः। उवर्णान्ताद् देशे वर्त्तमानात् प्राति-पदिकाच्छैषिकष्ठञ् प्रत्ययो भवति। निषादकर्षूर्नाम देशः। नैषादकर्षुकः। दाक्षिकर्षुकः॥ ११८॥

भाषार्थ—यहाँ 'वृद्धात्' पद की अनुवृत्ति नहीं है। और 'देशे' शब्द प्रकृति

का विशेषण है प्रत्ययार्थ नहीं। देश अर्थ में वर्त्तमान उवर्णान्त प्रातिपदिकों से शैषिक अर्थों में 'ठञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—निषादकर्षू नाम का देश है। नैषादकर्षुकः। दाक्षिकर्षुकः, इत्यादि॥ ११८॥

वृद्धात् प्राचाम्॥ ११९॥

अस्मिन् सूत्रे वृद्धग्रहणाज् ज्ञायते पूर्वत्र वृद्धादिति नानुवर्त्तते। वृद्धात् —५।१। प्राचाम् —६।३॥ देशे वर्त्तमानादुवर्णान्ताद् वृद्धसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् प्राचामाचार्याणां मते शैषिकष्ठञ् प्रत्ययो भवति। नापितवास्तुर्नाम देशः, तस्माट्ठञ्। नापितवास्तुकः। वृद्धादिति नियमार्थ आरम्भः॥ ११९॥

भाषार्थ—इस सूत्र में 'वृद्धात्' का पुनः ग्रहण करने से स्पष्ट होता है कि पूर्वसूत्र में 'वृद्धात्' पद की अनुवृत्ति नहीं आ रही है। देश अर्थ में वर्त्तमान वृद्धसंज्ञक उवर्णान्त प्रातिपदिकों से प्राच्य आचार्यों के मत में शैषिक अर्थों में ठञ् प्रत्यय होता है। जैसे—नापितवास्तु नामक देश है उससे ठञ् प्रत्यय करने पर—नापितवास्तुकः। सूत्र में 'वृद्धात्' पद नियमार्थक है॥ ११९॥

धन्वयोपधाद् वुञ्॥ १२०॥

'देशे' इति 'वृद्धादि' ति चानुवर्त्तते। धन्वयोपधात् —५।१। वुञ् —१।१। देशे वर्त्तमानाद् धन्वयोपधान्ताद् वृद्धसंज्ञकात् प्रातिपदिकाद् वुञ् प्रत्ययो भवति शैषिकः। पारेधन्वकः। योपधात्—सांकाश्यकः। कांपिल्यकः। दाशरूप्यकः॥ १२०॥

भाषार्थ—यहाँ 'देशे' और 'वृद्धात्' पदों की अनुवृत्ति है। देश अर्थ में वर्त्तमान वृद्धसंज्ञक धन्व-शब्दान्त और यकारोपध-शब्दान्त प्रातिपदिकों से शैषिक अर्थों में वुञ् प्रत्यय होता है। जैसे धन्वान्त—पारेधन्वकः। योपध–सांकाश्यकः। कांपिल्यकः। दाशरूप्यकः। इत्यादि॥ १२०॥

प्रस्थपुरवहान्ताच्च॥ १२१॥

प्रस्थपुरवहान्तात् —५।१। च [अ०]। प्रस्थ, पुर, वह, इत्येते शब्दा अन्ते यस्य तस्मात्। प्रस्थपुरवहान्ताद् वृद्धसंज्ञकाद् देशे वर्त्तमानात् प्रातिपदिकाद् वुञ् प्रत्ययो भवति शैषिकः। मालाप्रस्थकः। पातालप्रस्थं नाम वाहीकग्रामस्तस्माद् वुञेव भवति। पातालप्रस्थकः। पुरान्तात्-कांचीपुरकः। नान्दीपुरकः। वहान्तात्—वातवहकः। कौक्कुर्यवहकः॥ १२१॥

भाषार्थ—प्रस्थ, पुर और वह ये शब्द जिनके अन्त में हैं, उन वृद्धसंज्ञक और देश अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिकों से शैषिक अर्थों में 'वुञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—प्रस्थान्त—मालाप्रस्थकः। पातालप्रस्थकः। यह पातालप्रस्थ नामक वाहीकग्राम है, उससे परत्व से 'वुञ्' ही होता है। पुरान्त—काञ्चीपुरकः। नान्दीपुरकः। वहान्त—वातवहकः। कौक्कुर्यवहकः॥ १२१॥

रोपधेतोः प्राचाम्॥ १२२॥

रोपधेतोः —६।२। प्राचाम् —६।३। र-उपधायां यस्य तस्मात्।

रोपधादी-कारान्ताच्च [प्राचां] देशे वर्तमानाद् वृद्धात् प्रातिपदिकाच्छैषिको वुञ् प्रत्ययो भवति। पाटलिपुत्रकाः। ईकारन्तात्-काकन्दी। माकन्दी। काकन्दकः। माकन्दकः। प्राचामिति किम्—दत्तामित्रशब्दो रोपधस्तस्मान्न भवति। दात्तामित्रीयः॥ १२२॥

भाषार्थ—रेफ जिसकी उपधा में है, उससे और जो ईकारान्त शब्द है, उन वृद्ध संज्ञक और प्राच्य देश अर्थ में वर्तमान प्रतिपादकों से शैषिक-अर्थों में 'वुञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—रोपध-पाटलिपुत्रकाः। ईकारान्त—काकन्दी-काकन्दकः। माकन्दी-माकन्दकः। यहाँ 'प्राचाम्' का ग्रहण इसलिये है कि दतामित्र शब्द रोपध तो है, प्राच्य देश वाची नहीं है। अतः वुञ् नही हुआ—दात्तामित्रीयः॥ १२२॥

जनपदतदवध्योश्च॥ १२३॥

जनपदतदवध्योः —६। २। च [अ०]। **वृद्धादिति देश इति चानुवर्तते। वृद्धाज्जनपदवाचिनो जनपदावधिवाचिनश्च प्रातिपदिकाद् वुञ् प्रत्ययो भवति। चैद्यकः। कौशल्यकः। जनपदावधेः—आपुष्टकः। श्यामायानकः। त्रैगर्त्तकः॥ १२३॥**

भाषार्थ—यहाँ 'वृद्धात्, देशे' पदों की अनुवृत्ति है। देश अर्थ में वर्त्तमान वृद्धसंज्ञक जनपदवाची और जनपद की अवधि वाची प्रातिपदिकों से शैषिक 'वुञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—चैद्यकः। कौशल्यकः। जनपदावधि—आपुष्टकः। श्यामायनकः। त्रैगर्त्तकः। इत्यादि॥ १२३॥

अवृद्धादपि बहुवचनविषयात्॥ १२४॥

अवृद्धात् —५। १। अपि [अ०] बहुवचनविषयात् —५। १। बहुवचन-विषयाज्जनपदवाचिनस्तदवधिवाचिनोऽवृद्धादपि प्रातिपदिकाद् वुञ् प्रत्ययो भवति शैषिकः। अङ्गाः। बङ्गाः। आङ्गकः। वाङ्गकः। अवृद्धाज् जनपदावधेः—अजमीढाः। अजक्रन्दाः। आजमीढकः। आजक्रन्दकः। वृद्धाज्जनपदात्—दार्वाः। दार्वकः। वृद्धाज्जनपदावधेः—कालंजराः। कालंजरकः। विषयग्रहण-मवयवनिवृत्त्यर्थम्॥ १२४॥

भाषार्थ—बहुवचन विषयक वृद्ध संज्ञक और अवृद्ध संज्ञक जनपदवाची और जनपदावधिवाची प्रातिपदिकों से शैषिक 'वुञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—अवृद्ध-जनपद-अङ्गाः। वङ्गाः। आङ्गकः। वाङ्गकः। अवृद्ध जनपदावधि—अजमीढ़ाः। अजक्रन्दाः। आजमीढकः। आजक्रन्दकः। वृद्ध जनपद—दार्वाः। दार्वकः। वृद्धजनपदावधि—कालंजराः। कालंजरकः। यहाँ 'विषय' शब्द का ग्रहण अवयव में प्रत्यय की निवृत्ति के लिये है। अर्थात् जब जनपदवाचियों का एकशेष किया जाता है, जैसे—वर्त्तनी च वर्त्तनी चेति वर्त्तन्यः। यहाँ एकशेष शब्द सह विवक्षा में वहुवचन हो जाता है। यहाँ 'वर्त्तनीषु भव' वुञ् प्रत्यय नहीं होता है॥ १२४॥

कच्छाग्निवक्त्रवर्त्तोत्तरपदात्॥ १२५॥

देश इत्यनुवर्त्तते। कच्छाग्नि.......पदात् —५। १। उत्तरपदशब्दः प्रत्येकं

सम्बध्यते। कच्छादयः शब्दा उत्तरपदानि यस्य तस्मात्। देशे वर्त्तमानात् कच्छाद्युत्तरपदात् प्रातिपदिकाद् वुञ् प्रत्ययो भवति शैषिकः। दारुकच्छ, काण्डाग्नि, सिन्धुवक्त्र, बाहुवर्त्त, इत्येते शब्दा देशवाचिनः। दारुकच्छकः। काण्डाग्नकः। सैन्धुवक्त्रकः। बाहुवर्त्तकः।

अस्मिन् सूत्रे जयादित्येन गर्त्तोत्तरपदशब्दो व्याख्यातस्तदशुद्धमेव। गर्त्तोत्तरपदाच्छविधानात्। यच्च जनपदवाचि गर्त्तोत्तरपदं प्रातिपदिकं तस्मात्तदवधिग्रहणज्ञापकाद् वुञ् एव भवतीत्युक्तं महाभाष्ये। यद्यनेन गर्त्तोत्तरपदाद् वुञ् स्यातर्हि जनपदादपि स्यादेव॥ १२५॥

भाषार्थ—उत्तरपद का सम्बन्ध सूत्रस्थ प्रत्येक शब्द के साथ है। कच्छ, अग्नि, वक्त्र और वर्त शब्द जिनके उत्तरपद में हों, उन देश अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिकों से शैषिक वुञ् प्रत्यय होता है। जैसे—दारुकच्छ, काण्डाग्नि, सिन्धुवक्त्र और बाहुवर्त्त, ये शब्द देशवाची है। दारुकच्छकः। काण्डाग्नकः। सैन्धुवक्त्रकः। बाहुवर्त्तकः।

इस सूत्र पर जयादित्य ने 'वर्त्तोत्तर' शब्द के स्थान पर 'गर्त्तोत्तरपद' मानकर व्याख्या की है। वह अशुद्ध ही है। क्योंकि 'गर्त्तोत्तरपदाच्छः' (अ० ४।२।१३६) सूत्र से गर्त्तोत्तरपद शब्दों से 'छ' प्रत्यय का विधान किया है। और जो गर्त्तोत्तरपद शब्द जनपदवाची है, उससे 'जनपदतदवध्योश्च' (४।२।१२३) सूत्र में तदवधिग्रहण के ज्ञापक से ही 'वुञ्' प्रत्यय होता है, यह महाभाष्य में स्पष्ट कहा है। यदि इस सूत्र में 'गर्त्तोत्तर' पाठ मानकर 'वुञ्' प्रत्यय होता तो जनपदवाची से भी होता ही। फिर (अ० ४।२।१२३) में तदवधि का प्रयोजन कुछ भी नहीं रहता। अतः काशिका की पाठान्तर मानकर व्याख्या सर्वथा अशुद्ध है॥ १२५॥

धूमादिभ्यश्च॥ १२६॥

धूमादिभ्यः —५।१। च [अ०]। धूमादिभ्यो गणपठितेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः शैषिको वुञ् प्रत्ययो भवति। धौमकः। खाण्डकः।

अथ धूमादयः—धूम। खण्ड। खडण्ड। शशादन। अर्जुनाद। आर्जुनाद। माहकस्थली। आनकस्थली। घोषस्थली। माषस्थली। माहिषस्थली। मानस्थली। अदृस्थली। मद्रुस्थली। चन्द्रकस्थली। समुद्रस्थली। दाण्डायनस्थली। राजस्थली। भक्षास्थली। विदेह। राजगृह। सत्रासाह। मद्रकूल। गर्त्तकूल। आञ्जीकूल। द्व्याहाव। त्र्याहाव। संस्फीय। संहीय। वर्वर। वर्चगर्त्त। आनर्त्त। माठर। पाथेय। घोष। शिष्य। मित्र। बल। वर्ध। पल्ली। आराज्ञी। धार्त्तराज्ञी। अवयात। तीर्थ। कुलात् सौवीरेषु। समुद्रान्नावि मनुष्ये च। कुक्षि। अन्तरीप। द्वीप। अरुण। उज्जयनी। पटण। दक्षिणापथ। साकेत। मानवल्ली। वल्ली। सुराज्ञी॥ इति धूमादयः॥ १२६॥

भाषार्थ—गणपठित धूमादि प्रातिपदिकों से शैषिक अर्थों में 'वुञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—धौमकः। खाण्डकः। इत्यादि॥ १२६॥

नगरात् कुत्सनप्रावीण्ययोः॥ १२७॥

नगरात् —५।१। कुत्सनप्रावीण्ययोः —७।२। कुत्सनप्रावीण्ययोरिति प्रत्ययार्थविशेषणम्। कुत्सनप्रावीण्ययोरभिधेययोर्नगरप्रातिपदिकाच्छैषिको वुञ् प्रत्ययो भवति। नागरकः कुत्सितः प्रवीणो वा। कुत्सन-प्रावीण्ययोरिति किमर्थम्—नागरेयकः पशुः। नगरशब्दः कत्र्यादिषु पठ्यते तस्माद् ढकञ्॥ १२७॥

भाषार्थ—सूत्र में 'कुत्सनप्रावीण्ययोः' पद प्रत्ययार्थ विशेषण है। नगर प्रातिपदिक से कुत्सन (निन्दा) और प्रावीण्य (निपुणता) अर्थ में शैषिक 'वुञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—नागरकः। इसके कुत्सित और प्रवीण दोनों अर्थ हैं। यहाँ 'कुत्सन-प्रावीण्ययोः' पद का ग्रहण इसलिये है कि—नागरेयकः पशुः। यहाँ कुत्सन तथा प्रावीण्य की विवक्षा न होने से वुञ् नहीं हुआ और नगर शब्द के कत्र्यादिगण (अ० ४।२।९४) में पाठ होने से 'ढकञ्' प्रत्यय हुआ है॥ १२७॥

अरण्यान्मनुष्ये॥ १२८॥

अरण्यात् —५।१। मनुष्ये —७।१। मनुष्य इति प्रत्ययार्थविशेषणम्। अरण्यप्रातिपदिकान् मनुष्येऽभिधेये वुञ् प्रत्ययो भवति शैषिकः। आरण्यको विहारः। आरण्यको मनुष्यः॥ १॥

वा०—पथ्यध्यायन्यायविहारमनुष्यहस्तिष्विति वक्तव्यम्॥ १॥

पथ्यादिष्वभिधेयेषु वुञ् प्रत्ययो भवतीति विशेषविधानम्। आरण्यकः पन्थाः। आरण्यको न्यायः। आरण्यको विहारः। आरण्यको मनुष्यः। आरण्यको हस्ती॥ १॥

वा०—वा गोमयेषु॥ २॥

गोमयेष्वाभिधेयेषु विकल्पेन वुञ्। आरण्यका गोमयाः। आरण्या गोमयाः॥ २॥ एतेष्विति किमर्थम्—आरण्याः पशव इत्यादिष्वणेव॥ १२८॥

भाषार्थ—सूत्र में 'मनुष्ये' पद प्रत्ययार्थ का विशेषण है। 'अरण्य' प्रातिपदिक से मनुष्य अभिधेय में शैषिक 'वुञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—आरण्यको मनुष्यः।

वा०—पथ्यध्यायन्यायविहारमनुष्यहस्तिष्विति वक्तव्यम्॥ १॥

सूत्र में केवल मनुष्य अभिधेय में प्रत्यय विधान किया है, वार्त्तिक से पथ्यादि अर्थों में भी अरण्य शब्द से शैषिक 'वुञ्' प्रत्यय का विधान किया है। जैसे—आरण्यकः पन्थाः। आरण्यकोऽध्यायः। आरण्यको न्यायः। आरण्यको विहारः। आरण्यको मनुष्यः। आरण्यको हस्ती॥ १॥

वा०—वा गोमयेषु॥ २॥

अरण्य प्रातिपदिक से गोमय अभिधेय में विकल्प से शैषिक 'वुञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—आरण्यका गोमयाः। आरण्या गोमयाः॥ २॥

यह वार्त्तिक सूत्र में पथ्यादि का ग्रहण इसलिये है कि—आरण्याः पशवः। इत्यादि में वुञ् न होवे। यहाँ सामान्य अण् ही होता है॥ १२८॥

विभाषा कुरुयुगन्धराभ्याम्॥ १२९॥

विभाषा [अ०]। कुरुयुगन्धराभ्याम् —५।२। प्राप्ताप्राप्तविभाषेयम्। कुरुयुगन्धरौ जनपदशब्दौ, ताभ्यामवृद्धादपि बहुवचनविषयादिति वुञि प्राप्ते, कुरुशब्दः कच्छादिषु पठ्यते, तस्माद् वुञ् बाधकोऽण् विधीयते। तत्राप्राप्तविभाषा, युगन्धर-शब्दात्तु प्राप्तविभाषा। कुरुयुगन्धरप्रातिपदिकाभ्यां विकल्पेन शैषिको वुञ् प्रत्ययो भवति। कौरवकः। कौरवः। यौगन्धरकः। यौगन्धरः॥ १२९॥

भाषार्थ—यह प्राप्ताप्राप्त विभाषा है। कुरु और युगन्धर शब्द जनपदवाची हैं, उनसे 'अवृद्धादपि बहुवचनविषयात्' (४।२।१२४) सूत्र से सामान्य वुञ् प्रत्यय की प्राप्ति में और कुरु शब्द का कच्छादि गण में पाठ होने से 'वुञ्' का बाधक अण् प्रत्यय प्राप्त है, अतः वुञ् की अप्राप्ति में अप्राप्त विभाषा है और युगन्धर शब्द से तो प्राप्त विभाषा है। कुरु और युगन्धर प्रातिपदिकों से विकल्प से शेष अर्थों में वुञ् प्रत्यय होता है। जैसे—कौरवकः। कौरवः। यौगन्धरकः। यौगन्धरः॥ १२९॥

मद्रवृज्योः कन्॥ १३०॥

मद्रवृज्योः—६।२। कन् —१।१। मद्रवृजी जनपदशब्दौ। ताभ्यां वुञ् प्राप्तः स बाध्यते। मद्रवृजिप्रातिपदिकाभ्यां शैषिको वुञ् प्रत्ययो भवति। मद्रकः। वृजिकः॥ १३०॥

भाषार्थ—मद्र और वृजि शब्द जनपदवाची हैं, उनसे वुञ् की प्राप्ति में यह उसका बाधक 'कन्' का विधान किया है। मद्र और वृजि प्रातिपदिकों से शेष अर्थों में 'वुञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—मद्रकः। वृजिकः॥ १३०॥

कोपधादण्॥ १३१॥

कोपधात् —५।१।अण् —१।१।अधिकारादण् स्यादेव, पुनर्ग्रहणस्यैतत् प्रयोजनमुवर्णान्तादपि कोपधाद् वुञं बाधित्वाऽणेव स्यात्। कोपधात् प्राति-पदिकाच्छैषिकोऽण् प्रत्ययो भवति। ऋषिकेषु जात आर्षिकः। ऐक्ष्वाकः। निपातनाट्टिलोपः॥ १३१॥

भाषार्थ—महाधिकार से 'अण्' प्रत्यय स्वयं ही हा जाता, पुनः यहाँ 'अण्' ग्रहण का प्रयोजन यह है कि ककारोपध उवर्णान्त शब्दों से भी 'वुञ्' का बाधक 'अण्' प्रत्यय ही हो। ककारोपध प्रातिपदिकों से शेष अर्थों में 'अण्' प्रत्यय होता है। जैसे—ऋषिकेषु जातः आर्षिकः। इक्ष्वाकुषु जातः ऐक्ष्वाकः। यहाँ 'दाण्डिनायनहास्तिनायना०' (६।४।१७४) सूत्र में निपातन से टिलोप हुआ है॥ १३१॥

कच्छादिभ्यश्च॥ १३२॥

अण् अनुवर्त्तते। कच्छादिभ्यः ५।३। च—[अ०प०]। कच्छादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः। शैषिकोऽण् प्रत्ययो भवति। काच्छः। सैन्धवः। वार्णवः।

अथ कच्छादिः—कच्छ। सिन्धु। वर्ण। गन्धार। मधुमत्। कश्मीर। साल्व। कुरु। रङ्कु। अणु। खण्ड। द्वीप। अनूप। अजवाह। विजापक। कुलूतर।

कुलून॥ इति कच्छादय:॥ विजापकशब्दोऽत्र पठ्यते, तस्य कोपधादणि सिद्धे उत्तरार्थ: पाठ:॥ १३२॥

भाषार्थ—यहाँ अण् की अनुवृत्ति है। कच्छ इत्यादि गणपठित देशवाची प्रातिपदिकों से शेष अर्थों में 'अण्' प्रत्यय होता है। यह जनपदवाची होने से वुञादि प्रत्ययों का अपवाद है। जैसे—काच्छ:। सैन्धव:। वार्णव:। कच्छादि गण में विजापक शब्द का पाठ उत्तरार्थ है, अन्यथा ककारोपध होने से ही 'अण्' प्रत्यय सिद्ध है॥ १३२॥

मनुष्यतत्स्थयोर्वुञ्॥ १३३॥

मनुष्यतत्स्थयो:—७।२। वुञ् —१।१। अणोऽपवाद:। कच्छादिभ्य इत्यनुवर्त्तते। तत्स्थं मनुष्यस्थं कर्मादि। मनुष्ये तत्स्थे चाभिधेये कच्छादिप्रातिपदिकेभ्यो वुञ् प्रत्ययो भवति। मनुष्यतत्स्थयोरिति प्रत्ययार्थ:। काच्छको मनुष्य:। काच्छकमस्य हसितम्। जल्पितं ज्ञानम्। काच्छिकाऽस्य बुद्धि:। सैन्धवको मनुष्य:। सैन्धवकमस्य हसितम्॥ १३३॥

भाषार्थ—यह पूर्वसूत्र से प्राप्त अण् का अपवाद है। यहाँ 'कच्छादिभ्य:' पद की अनुवृत्ति है। 'तत्स्थ' शब्द से (तस्मिन् तिष्ठति यत्) मनुष्यस्थ कर्मादि का ग्रहण है। मनुष्य और मनुष्यस्थ शेष अर्थों की विवक्षा में कच्छादि प्रातिपदिकों से वुञ् प्रत्यय होता है। 'मनुष्य-तत्स्थयो:' पद से प्रत्ययार्थ का कथन किया है। जैसे—काच्छको-मनुष्य:। काच्छकमस्य हसितं जल्पितं ज्ञानं वा। काच्छिकाऽस्य बुद्धि:। सैन्धवको मनुष्य:। सैन्धवकमस्य हसितम्॥ १३३॥

अपदातौ साल्वात्॥ १३४॥

अपदातौ —७।१। साल्वात् —५।१। पादाभ्यामाति निरन्तरं गमनं पदाति:। पादस्य पदादेश:। साल्वशब्द: कच्छादिषु पठ्यते तस्य पुनर्ग्रहणं नियमार्थम्। अपदातौ मनुष्ये तत्स्थे चाभिधेये साल्वप्रातिपदिकाच्छैषिको वुञ् प्रत्ययो भवति। साल्वको मनुष्य:। साल्वकमस्येप्सितम्। हसितम्। जल्पितम्। स्मितम्। अपदाताविति किम्—साल्व: पदाति:॥ १३४॥

भाषार्थ—पैरों से निरन्तर गमन को 'पदाति' कहते हैं। 'पादाभ्याति: पदाति:' यहाँ पाद शब्द को पदादेश 'पादस्य पद०' (६।३।५१) सूत्र से हुआ है। साल्व शब्द का पाठ कच्छादि गण में है, उसका पुनर्ग्रहण 'अपदाति' अर्थ में ही नियम करने के लिये है। निरन्तर गमन अर्थ का वाच्य न हो तो मनुष्य और मनुष्यस्थ शेष अर्थों में साल्व प्रातिपदिक से 'वुञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—साल्वको मनुष्य:। साल्वकमस्येप्सितं हसितं जल्पितं स्मितं वा। यहाँ 'अपदातौ' का ग्रहण इसलिये है कि—साल्व: पदाति:, यहाँ न हो॥ १३४॥

गोयवाग्वोश्च॥ १३५॥

साल्वादित्यनुवर्त्तते। गोयवाग्वो: —७।२। च [अ०]। गोयवाग्वोरिति प्रत्ययार्थ:। गवि यवाग्वां चाभिधेयायां साल्वप्रातिपदिकाद् वुञ् प्रत्ययो

भवति। साल्वको गौः। साल्वका यवागूः। गोयवाग्वोरिति किमर्थम्—साल्वम्। अन्यत्राणेव भवति॥ १३५॥

भाषार्थ—यहाँ 'साल्वात्' पद की अनुवृत्ति है। शब्द से प्रत्ययार्थ का कथन है। गो और यवागू वाच्य शेष अर्थों में साल्व प्रातिपदिक से वुञ् प्रत्यय होता है। जैसे—साल्वको गौः। साल्वका यवागूः। यहाँ 'गो-यवाग्वोः' का ग्रहण इसलिये है कि साल्वम्। गौ और यवागू से अन्यत्र कच्छादि में पाठ होने से 'अण्' प्रत्यय ही होवे॥ १३५॥

गर्त्तोत्तरपदाच्छः॥ १३६॥

गर्त्तोत्तरपदात् —५।१। छः —१।१। गर्त्तशब्द उत्तरपदं यस्य तस्मात्। देशवाचिनो गर्तोत्तरपदात् प्रातिपदिकाच्छः प्रत्ययो शैषिको भवति। अणोऽपवादः। श्वाविद् गर्त्तीयम्। वृकगर्त्तीयम्। शृगालगर्त्तीयम्। त्रिगर्त्ताज्जनपदशब्दाद् वुञेव भवति॥ १३६॥

भाषार्थ—जिन शब्दों में उत्तरपद गर्त्त शब्द हो, उन्हें गर्त्तोत्तरपद कहते हैं। देशवाची गर्त्तोत्तरपद प्रातिपदिकों से शेष अर्थों में 'छ' प्रत्यय होता है। यह 'अण्' का अपवाद है। जैसे—श्वाविद् गर्त्तीयम्। वृकगर्त्तीयम्। शृगालगर्त्तीयम्। जनपदवाची त्रिगर्त्त शब्द से पूर्व विप्रतिषेध* से (गर्त्तोत्तरपद होने पर भी) वुञ् ही होता है। जैसे—त्रैगर्त्तकः॥ १३६॥

गहादिभ्यश्च॥ १३७॥

छ इत्यनुवर्त्तते। गहादिभ्यः —५।३। च [अ०]। गहादिभ्यो गणोपदिष्टेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः शैषिकश्छःप्रत्ययो भवति। गहीयः। अन्तःस्थीयः। देशाधिकारो वर्त्तते, परन्त्वत्र यथोपदिष्टेभ्यः प्रत्ययो विधीयते।

वा०—गहादिषु पृथिवीमध्यस्य मध्यमभावः॥ १॥

'मध्यो मध्यमं चाण् चरणे' इति गहादिषु सामान्येन वार्त्तिकम्। तत्र विशेषार्थं वार्त्तिकम्। पृथिवी मध्यशब्दस्य स्थाने मध्यमभावश्छप्रत्ययसंनियोगेन भवति। पृथिवीमध्ये भवो मध्यमीयः। चरणसम्बन्धेन निवासलक्षणोऽण्। पृथिवीमध्ये निवास एषामित्यस्मिन्नर्थे पृथिवीमध्यशब्दादण्, तस्मिंश्च मध्यमभावः। माध्यमाश्चरणाः कठादय इत्यर्थः॥ १॥

अथ गहादयः—गह। अन्तःस्थ। सम। विषम। मध्यो मध्यमं चाण् चरणे। मध्यशब्दो मध्यम भावमापद्यते तच्च विशेषत्वेन व्याख्यातम्। उत्तम। अङ्ग। वङ्ग। मगध। पूर्वपक्ष। अपरपक्ष। अधमशाख। उत्तमशाख। एकशाख। समानशाख। एकग्राम। एकवृक्ष। एकपलाश। इष्वग्र। इष्वनी। इष्वनीक। अवस्यन्दी। अवस्यन्दन। कामप्रस्थ। शालि। खाडायनि। खाण्डायनी। कावेरणि।

---

* यहाँ महाभाष्य का पाठ द्रष्टव्य है—'गर्त्तोत्तरपदाच्छविधेर्जनपदाद्वुञ् भवति पूर्वविप्रतिषेधेन' .... स तर्हि पूर्वविप्रतिषेधेन वक्तव्यः? न वक्तव्यः। उक्तमेवाऽवधिग्रहणस्य प्रयोजनम्-जनपदाज्जनपदाऽवधेर्वुञेव भवति स्याद् यदन्यत् प्राप्नोति तन्मा भूत् -**अनुवादकः**

काठेरणि। कामवेरणि। लावेरणि। सौमित्रि। शौशिरि। आसु.ू। आसुरि। शौङ्गि। आहिंसि। आमित्रि। व्याडि। वैदजि। वैजिग। आध्यश्वि। आनृशंसि। आग्निशर्मि। भौजि। पारकि। वाराटकि। अग्निशर्मन्। देवशर्मन्। श्रौति। आरटकि। वाल्मीकि। क्षेमवृद्धिन्। आश्वत्थि। औदगाहमानि। ऐकि। विन्दवि। दन्ताग्र। हंस। तंत्वग्र। उत्तर। अनन्तर। अन्तर। वेणुकादिभ्यश्छण्। वेणुकाद्याकृतिगणाच्छैषिकश्छण् प्रत्ययः। वैणुकीयम्। वैत्रकीयम्। इत्यादि॥ इति गहादयः॥

अत्र गणपाठे त्रीणि सूत्राणि लिखितानि सन्ति। 'मुखपार्श्वतसोर्लोपः'। जनपरयोः कुक् च। देवस्य च। तथैवेमानि जयादित्येनापि व्याख्यातानि। नैतद् विचारितम्। कथमेतानि संभवन्ति। भवाधिकारेऽन्तः पूर्वपदाट् ठञ् इत्यस्य सूत्रस्योपरि महाभाष्यकारेण साधितानि। यद्यत्र सूत्राणि स्युस् तर्हि कारिका व्यर्था स्यात्। देवशब्दात्तु कोपधाद् वक्ष्यमाणवार्त्तिकेन छो भविष्यति॥ १३७॥

भाषार्थ—यहाँ 'छ' प्रत्यय की अनुवृत्ति है। गण पठित गहादि प्रातिपदिकों से शेष अर्थों में 'छ' प्रत्यय होता है। जैसे—गहीयः। अन्तःस्थीयः। यहाँ 'देशे' शब्द का अधिकार है, परन्तु यथासंभव ही उसका विशेषण-भाव है, सबके साथ नहीं।

वा०—गहादिषु पृथिवीमध्यस्य मध्यमभावः॥ १॥

गहादिगण में (मध्यो मध्यमं चाण् चरणे) यह गण वार्त्तिक सामान्यरूप में पठित है। उसका विशेष कथन इस वार्त्तिक में किया है। पृथिवीमध्य शब्द से शेष अर्थों में 'छ' प्रत्यय होवे और प्रत्यय संनियोग से पृथिवीमध्य को मध्यम आदेश होवे। जैसे—पृथिवीमध्ये भवो मध्यमीयः। और पृथिवीमध्य शब्द से चरण=शाखा सम्बन्ध हो तो निवास लक्षण 'अण्' प्रत्यय होता है और पृथिवीमध्य को मध्यम आदेश होता है। जैसे—पृथिवी मध्ये निवास एषामिति माध्यमाश्चरणाः कठादयः॥ १॥

यहाँ गणपाठादि ग्रन्थों में तीन वार्त्तिकसूत्र लिखे हैं—१. मुख-पार्श्वतसोर्लोपः। २. जनपरयोः कुक् च। ३. देवस्य च। जयादित्य ने भी काशिका में वैसे ही उनकी व्याख्या की है। यहाँ उसने कुछ भी विचार नहीं किया कि इन वार्त्तिकों की क्या आवश्यकता है? जबकि महाभाष्यकार ने 'अन्तः पूर्वपदाट् ठञ्' (४।३।६०) इस भवाधिकार सूत्र पर इन वार्त्तिकों की व्याख्या की है। यदि इस गण में इन वार्त्तिकों का पाठ उचित होता तो कारिका में पाठ व्यर्थ मानना होगा। और देव शब्द से 'कुक्' आगम होने पर कोपधलक्षण[1] वाले वार्त्तिक से ही 'छ' प्रत्यय हो जायेगा॥ १३७॥

प्राचां कटादेः॥ १३८॥

---

१. कोपधलक्षण वार्त्तिक (अ० ४।२।१४०) सूत्र पर है, उससे छ प्रत्यय होता है। (सम्पादक)

देश इत्यनुवर्त्तते। प्राचाम् —६।३। कटादेः —५।१। कट शब्द आदौ यस्य तस्मात्। कटादेः प्राग्देशवाचिनः प्रातिपदिकाच्छः प्रत्ययो भवति शैषिकः। कटघोषीयम्। कटपल्वलीयम्॥ १३८॥

भाषार्थ—यहाँ 'देश' की अनुवृत्ति है। 'कट' शब्द जिनके आदि में है, उन प्राग्देशवाची प्रातिपदिकों से शेष अर्थों में 'छ' प्रत्यय होता है। जैसे—कटघोषीयम्। कटपल्वलीयम्॥ १३८॥

राज्ञः क च॥ १३९॥

राज्ञः —५।१।क —१।१।च—[अ०प०]।राजन्शब्दस्य वृद्धत्वाच्छः सिद्ध एव, पुनरारम्भ आदेशार्थः। राजन्शब्दाच्छः प्रत्ययः शैषिकस्तत्संनियोगे ककारादेशश्च। राजकीयम्॥ १३९॥

भाषार्थ—'राजन्' शब्द के वृद्धसंज्ञक होने से छ प्रत्यय तो प्राप्त ही था, यहाँ सूत्र में पाठ आदेश करने के लिए है। 'राजन्' शब्द से शेष अर्थों में 'छ' प्रत्यय होता है और प्रत्यय के संनियोग से 'राजन्' शब्द को ककारादेश होता है। जैसे—राजकीयम्॥ १३९॥

वृद्धादकेकान्तखोपधात्॥ १४०॥

वृद्धात् —५।१।अकेकान्तखोपधात् —५।१।अक, इक, इत्येवमन्तात् खोपधाच्च वृद्धप्रातिपदिकाच्छः प्रत्ययो भवति शैषिकः। कोपधादणः; वाहीकग्रामाट् ठञ्ञिठोः; रोपधेतोः प्राचामिति वुञश्चापवादः। अकान्तात् आरीहणकीयम्। ब्राह्मणकीयम्। इकान्तात्—आश्वपथिकीयम्। शाल्मलिकीयम्। खोपधात्—पारिखीयः। आयोमुखीयम्।

वा०—अकेकान्त ग्रहणे कोपधग्रहणं सौसुकाद्यर्थम्॥ १॥

अर्थाद् अकेकान्तेत्यस्य स्थाने कोपधेति वक्तव्यम्। सौसुकीयम्। सौसुकाद्यर्थामिति वचनादन्यत्रापि॥ १॥ १४०॥

भाषार्थ—अक और इक जिनके अन्त में है और खकारोपध वृद्धसंज्ञक प्रातिपदिकों से शेष अर्थों में 'छ' प्रत्यय होता है। यह सूत्र कोपध लक्षण (४।२।१३१) से प्राप्त अण् का, वाहीकग्रामवाची से (४।२।११६) ठञ्-ञिठ् प्रत्ययों का और 'रोपधेतोः प्राचाम्' (४।२।१२२) सूत्र से प्राप्त वुञ् का अपवाद है। जैसे—अकान्त=आरीहणकीयम्। ब्राह्मणकीयम्। इकान्त=आश्वपथिकीयम्। शाल्मलिकीयम्। खोपध—पारिखीयः। आयोमुखीयम्।

वा०—अकेकान्तग्रहणे कोधग्रहणं सौसुकाद्यर्थम्॥ १॥

यहाँ सूत्र में 'अक—इकान्त' के स्थान पर 'कोपध शब्द का ग्रहण करना चाहिए। जिससे सौसुक आदि शब्दों से भी छ प्रत्यय हो जावे। जैसे—सौसुकीयम्। आदि शब्द से इस प्रकार के अन्य शब्दों से भी 'छ' प्रत्यय हो जायेगा॥ १४०॥

कन्थापलदनगरग्रामह्रदोत्तरपदात्॥ १४१॥

वृद्धादित्यनुवर्त्तते। कन्था.......पदात् —५।१। कन्थाद्युत्तरपदाद्

देशवाचिनो वृद्धात् प्रातिपदिकाच्छः प्रत्ययो भवति शैषिकः। दाक्षिकन्थीयम्। सौसुमिकन्थीयम्। शैवपलदीयम्। वासिष्ठनगरीयम्। भारद्वाजग्रामीयम्। कौशिकह्रदीयम्॥ १४१ ॥

भाषार्थ—यहाँ 'वृद्धात्' पद की अनुवृत्ति है। कन्थ, पलद, नगर, ग्राम तथा ह्रद शब्द जिनके उत्तर पद में हों, उन देशवाची वृद्धसंज्ञक प्रातिपदिकों से शैषिक छ प्रत्यय होता है। जैसे—दाक्षिकन्थीयम्। सौसुमिकन्थीयम्। शैवपलदीयम्। वासिष्ठनगरीयम्। भारद्वाजग्रामीयम्। कौशिकह्रदीयम्॥ १४१ ॥

पर्वताच्च ॥ १४२ ॥

पर्वतात् —५।१। च [अ०]। वृद्धादिति नानुवर्त्तते देश इति च। पर्वतप्रातिपदिकाच्छैषिकश्छप्रत्ययो भवति। पर्वतीयो मनुष्यः। पर्वतीयो ब्राह्मणः॥ १४२ ॥

भाषार्थ—यहाँ 'वृद्धात्' और 'देशे' पदों की अनुवृत्ति नहीं है। पर्वत प्रातिपदिक से शैषिक छ प्रत्यय होता है। जैसे—पर्वतीयो मनुष्यः। पर्वतीयो ब्राह्मणः॥ १४२ ॥

विभाषाऽमनुष्ये ॥ १४३ ॥

विभाषा [अ०]। अमनुष्ये —७।१। पर्वतादित्यनुवर्त्तते। प्राप्तविभाषेयम्। पूर्वेण नित्ये प्राप्ते विकल्प उच्यते। अमनुष्ये प्रत्ययार्थे पर्वतप्रातिपदिकाद् विकल्पेन छः प्रत्ययो भवति शैषिकः। पक्षेऽण्। पर्वतीयानि फलानि। पार्वतानि फलानि। मनुष्ये तु केवलश्छः॥ १४३ ॥

भाषार्थ—यहाँ 'पर्वतात्' पद की अनुवृत्ति है। यह प्राप्त विभाषा है। पर्वसूत्र से नित्य प्रत्यय की प्राप्ति में विकल्प किया गया है। मनुष्य से भिन्न प्रत्ययार्थ वाच्य हो तो पर्वतप्रातिपदिक से विकल्प से शैषिक छ प्रत्यय होता है। पक्ष में अण् होता है। जैसे—पर्वतीयानि फलानि। पार्वतानि फलानि। मनुष्य अभिधेय में तो केवल 'छ' प्रत्यय होता है॥ १४३ ॥

कृकणपर्णाद् भरद्वाजे ॥ १४४ ॥

देश इत्यनुवर्त्तते। कृकण-पर्णात् —५।१। भरद्वाजे —७।१। भरद्वाज-शब्दोऽत्र देशविशेषणम्। भरद्वाजदेशवाचिभ्यां कृकणपर्णाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां शैषिकश्छः प्रत्ययो भवति। कृकणीयम्। पर्णीयम्। भरद्वाज इति किम्—कार्कणम्। पार्णम्॥ १४४ ॥

इति चतुर्थाध्यायस्य द्वितीयः पादः सम्पूर्णः॥

भाषार्थ—यहाँ 'देशे' पद की अनुवृत्ति है। सूत्र में 'भारद्वाजे' शब्द देश का विशेषण है। भरद्वाज देश वाची कृकण और पर्ण प्रातिपदिकों से शैषिक 'छ' प्रत्यय होता है। जैसे—कृकणीयम्। पर्णीयम्। यहाँ 'भरद्वाजे' का ग्रहण इसलिए है कि—कार्कणम्। पार्णम्॥ १४४ ॥

यह चतुर्थ अध्याय का द्वितीयपाद समाप्त हुआ॥

अथ चतुर्थाध्यायस्य तृतीयः पादः॥

युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ् च॥ १ ॥

देशाधिकारो निवृत्तः। युष्मदस्मदोः —६। २। अन्यतरस्याम् [अ०]। खञ् —१। १। च (अ०प०)। चकारग्रहणं छप्रत्ययस्यानुकर्षणार्थम्। प्राप्ताप्राप्तविभाषेयम्। युष्मदस्मदोस्त्यदादित्वाद् वृद्ध संज्ञा, वृद्धत्वाच्छप्रत्यये प्राप्ते प्राप्तविभाषा। खञ् प्रत्ययेऽप्राप्तविभाषा। युष्मदस्मद्भ्यां प्रातिपदिकाभ्यां खञ्-छौ प्रत्ययौ विकल्पेन भवतः पक्षेऽण्। यौष्माकीणः। आस्माकीनः। युष्मदीयः। अस्मदीयः। अणि— यौष्माकः। आस्माकः। वक्ष्यमाणसूत्रेणादेशौ।

अत्र महाभाष्यकारेण योगविभागः कृतः संख्यातानुदेशनिवृत्त्यर्थ इति स्मर्यताम्॥ १ ॥

भाषार्थ—'देश' का अधिकार निवृत्त हो गया है। चकार से 'छ' प्रत्यय की अनुवृत्ति है। यह प्राप्ताप्राप्त विभाषा है। युष्मद् और अस्मद् शब्द त्यदादि गणीय होने से 'त्यदादीनि च' सूत्र से वृद्ध संज्ञक हैं। अतः वृद्धसंज्ञक होने से 'छ' प्रत्यय प्राप्त है और खञ् प्रत्यय अप्राप्त होने से यह प्राप्ताप्राप्त विभाषा है। युष्मद्-अस्मद् प्रातिपदिकों से शैषिक खञ् और छ प्रत्यय विकल्प से होते हैं, पक्ष में अण् प्रत्यय होता है। जैसे—यौष्माकीणः। आस्माकीनः। छ प्रत्यय में—युष्मदीयः। अस्मदीयः। अण् प्रत्यय में यौष्माकः। आस्माकः। अण् और खञ् प्रत्ययान्तों में अगले सूत्र से आदेश हुए हैं। इस सूत्र का महाभाष्य में योग विभाग किया है। अतः यथासंख्य प्रत्यय विधि नहीं होती॥ १ ॥

तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ॥ २ ॥

तस्मिन् -७। १। अणि -७। १। च [अ.प.]। युष्माकास्माकौ -१। २। तस्मिन्निति पूर्वविहितः खञ् निर्दिश्यते। युष्मदस्मदोरित्यनुवर्त्तते नैव छः। तस्मिन् खञि परतोऽणि च [युष्मदस्मदोः स्थाने यथासंख्यम्] युष्माकास्माकावादेशौ भवतः। युष्माकं छात्रा यौष्माकीणाः। आस्माकीनाः। अणि— यौष्माकाः। आस्माकाः।

महाभाष्यकारेणात्रापि योगविभागेन संख्यातानुदेशो निवारितः। योगविभागमन्तरा खञि युष्माकोऽण्यस्माक आदेशः स्यात्॥ २ ॥

भाषार्थ—यहाँ 'तस्मिन्' पद से पूर्वसूत्र विहित खञ् का निर्देश है। 'युष्मदस्मदोः' पद की यहाँ अनुवृत्ति है, छ की नहीं। उस खञ् और अण् प्रत्यय के परे होने पर युष्मद् और अस्मद् के स्थान पर यथासंख्य युष्माक और अस्माक आदेश होते हैं। जैसे—युष्माकं छात्रा यौष्माकीणाः। आस्माकीनाः। अण् प्रत्यय

में—यौष्माका:। आस्माका:।

इस सूत्र पर भी महाभाष्य में प्रत्ययों का योग विभाग किया है, जिससे निमित्तभूत प्रत्ययों में संख्यातानुदेश नहीं हुआ। अन्यथा=योगविभाग के विना 'खञ्' प्रत्यय में युष्माकादेश और अण् प्रत्यय में अस्माकादेश हो जाना चाहिये॥ २॥

तवकममकावेकवचने॥ ३॥

युष्मदस्मदोरिति तस्मिन्नणि चेत्यनुवर्त्तते। तवकममकौ —१।२। एकवचने —७।१। पारिभाषिकस्य वचनशब्दस्यात्र ग्रहणं नास्ति। किन्तु-उच्यते तद्वचनम्। एकस्य वचनमेकवचनं तस्मिन्। तस्मिन् खञि परतोऽणि चैकवचनान्तात् प्रत्ययविधाने युष्मदस्मच्छब्दयोस्तवक-ममकावादेशौ भवत:। तवेमे छात्रास्तावकीना:। मामकीना:। अणि-तावका:। मामका:॥ ३॥

भाषार्थ—यहाँ 'युष्मदस्मदो:, तस्मिन्नणि च' पदों की अनुवृत्ति है। यहां पारिभाषिक वचन शब्द का ग्रहण नहीं है, किन्तु 'उच्यते तद वचनम् एकस्य वचनमेकवचनम्' अन्वर्थक* का ग्रहण है। खञ् और अण् प्रत्यय के परे होने पर एकार्थ के वाचक युष्मद और अस्मद् शब्दों को क्रमश: तवक और ममक आदेश होते हैं। जैसे—तवेमे छात्रास्तावकीना:। मामकीना:। तावका:। मामका:॥ ३॥

अर्द्धाद् यत्॥ ४॥

अर्धात् —५।१। यत् —१।१। अणोऽपवाद:। अर्द्ध-प्रातिपदिका-च्छैषिको यत् प्रत्ययो भवति। अर्द्ध्यम्।

वा०—अर्द्धाद् यद्विधाने सपूर्वपदाट् ठञ्॥ १॥

विद्यमानपूर्वादर्द्धशब्दादित्यर्थ:। वालेयार्द्धिक:। गौतमार्द्धिक:॥ ४॥

भाषार्थ—यह 'अण्' प्रत्यय का अपवाद है। 'अर्द्ध' प्रातिपदिक से शैषिक 'यत्' प्रत्यय होता है। जैसे—अर्द्ध्यम्।

वा०—अर्द्धाद् यद्विधाने सपूर्वपदाट् ठञ्॥ १॥

जिस अर्द्ध शब्द से पूर्व अन्य शब्द हो उससे शैषिक 'ठञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—वालेयार्द्धिक:। गौतमार्द्धिक:॥ ४॥

परावराधमोत्तमपूर्वाच्च॥ ५॥

अर्द्धादित्यनुवर्त्तते। परावराधमोत्तमपूर्वात् —५।१। च [अ.प.]। पर, अवर, अधम, उत्तम, इत्येवं पूर्वादर्द्धप्रातिपदिकात् यत् प्रत्ययो भवति। परार्द्ध्य:। अवरार्द्ध्य:। अधमार्द्ध्य:। उत्तमार्द्ध्य:। पूर्वग्रहणमर्द्धपूर्वात् प्रतिषे-धार्थम्॥ ५॥

---

* युष्मद् + ङसि-खञ् और अस्मद्+ङसि+खञ् उस अवस्था में 'कृत्तद्धितसमासाश्च' (१।२।४६) सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा और 'सुपो धातुप्रातिपदिकयो:' (२।७।७१) सूत्र से विभक्ति के लुक् होने पर 'न लुमताङ्गस्य' (१।१।६३) प्रत्यय लक्षण का प्रतिषेध होने से एकवचनपरता सम्भव नहीं है। अत: अन्वर्थग्रहण मानकर सूत्रार्थ किया गया है।
—अनुवादक

भाषार्थ—यहाँ पूर्वसूत्र से 'अर्द्धात्' पद की अनुवृत्ति है। पर, अवर, अधम तथा उत्तम शब्द जिसके पूर्व में हैं, ऐसे अर्द्ध प्रातिपदिक से शैषिक 'यत्' प्रत्यय होता है। जैसे—परार्द्ध्यः। अवरार्द्ध्यः। अधमार्द्ध्यः। उत्तमार्द्ध्यः। यहाँ सूत्र में पूर्व ग्रहण इसलिये है कि सूत्रपठित शब्द पूर्व में हो तो यत् प्रत्यय हो। इनसे भिन्न अर्द्ध शब्द पूर्व में हो तो न हो॥५॥

दिक्पूर्वपदाट् ठञ्॥ ६ ॥

अर्द्धाद् यदित्यनुवर्त्तते। [दिक् पूर्वपदात् —५।१। ठञ् —१।१।] दिक्पूर्वपदाद् अर्द्धप्रातिपदिकाट् ठञ्-यतौ प्रत्ययौ भवतः शैषिकौ। पूर्वार्द्ध्यः। पौर्वार्द्धिकः। दक्षिणार्द्ध्यः। दाक्षिणार्द्धिकः॥ ६ ॥

भाषार्थ—यहाँ 'अर्द्धात्', 'यत्' इन दोनों पदों की अनुवृत्ति है। दिशावाची पूर्व पद जिससे पहले है, उस अर्द्ध प्रातिपदिक से शैषिक ठञ् और यत् प्रत्यय होते हैं। जैसे—पूर्वार्द्ध्यः। पौर्वार्द्धिकः। दक्षिणार्द्ध्यः। दाक्षिणार्द्धिकः॥ ६ ॥

ग्रामजनपदैकदेशादञ्ठञौ॥ ७॥

ग्रामजनपदैकदेशात् —५।१। अञ् ठञौ —१।२। एकदेशशब्दोऽवयववाची, स च ग्राम-जनपदाभ्यामुभाभ्यां संबध्यते। दिक् पूर्वाद् अर्द्धान्ताद् ग्रामैकदेशवाचिनो जनपदैकदेशवाचिनश्च प्रातिपदिकाद् अञ्-ठञौ प्रत्ययौ भवतः। यत्प्राप्तः स बाध्यते। ग्रामस्य जनपदस्य वा पौर्वार्द्धाः। पौर्वार्द्धिकाः। दाक्षिणार्द्धाः। दाक्षिणार्द्धिकाः॥ ७॥

भाषार्थ—सूत्र में एकदेश शब्द अवयव वाची है, और उसका सम्बन्ध ग्राम तथा जनपद दोनों शब्दों से है। दिशावाची शब्द जिसके पूर्व हों उन ग्रामैकदेशवाची तथा जनपदैकदेशवाची प्रातिपदिकों से अञ् और ठञ् प्रत्यय होते हैं। यह 'यत्' प्रत्यय का अपवाद है। जैसे—ग्रामस्य जनपदस्य वा पौर्वार्द्धाः। पौवार्द्धिकाः। दाक्षिणार्द्धाः। दाक्षिणार्द्धिकाः॥७॥

मध्यान्मः॥ ८।

मध्यात्—५।१।मः—१।१।अण्बाधनार्थ आरम्भः। मध्यप्रातिपदिकाच्छैषिको मः प्रत्ययो भवति। मध्यमः।

जयादित्येनात्र द्वौ वर्त्तिकौ प्रतिपादितौ, तत्रादिशब्दात् सायंचिरमित्यत्र डिमच् प्रत्ययो विधास्यते। अवोऽधसोर्लोपश्चेतीदं वार्तिकं क्वापि महाभाष्ये नास्ति। अतस्तस्य वार्त्तिकप्रातिपादनं व्यर्थमेव॥८॥

भाषार्थ—यह सूत्र 'अण्' का अपवाद है। 'मध्य' प्रातिपदिक से शैषिक 'म' प्रत्यय होता है। जैसे—मध्यमः।

जयादित्य ने इस सूत्र पर दो वार्त्तिक लिखे हैं 'आदेश्चेति वक्तव्यम्' और 'अवोऽधसोर्लोपश्च'। इनमें प्रथम वार्त्तिक तो इसलिये व्यर्थ है कि 'सायं चिरं०' (४।३।२३) इस सूत्र पर वार्तिक से 'आदि' शब्द से 'डिमच्' प्रत्यय का विधान किया गया है और दूसरा वार्त्तिक महाभाष्य में कहीं भी नहीं है। अतः उसका

प्रतिपादन करना निरर्थक है॥८॥

अ सांप्रतिके॥ ९॥

[अ—लुप्तप्रथमाविभक्तिनिर्देशः। साम्प्रतिके—७। १] मध्यादित्यनुवर्त्तते। पूर्वेण मप्रत्यये प्राप्ते वचनम्। नातिनीचं नात्युच्चं समं साम्प्रतिकमुच्यते। साम्प्रतिके शेषेऽभिधेये मध्यप्रातिपदिकाद् अ-प्रत्ययो भवति। नातिन्यूनो नात्युत्कृष्टो मध्यो वैयाकरणः। मध्यं काष्ठम्। मध्यमशब्दस्तु न्यूनार्थे वर्त्तते॥ ९॥

भाषार्थ—'मध्यात्' पद की यहाँ अनुवृत्ति है। पूर्वसूत्र से 'म' प्रत्यय की प्राप्ति में यह प्रत्ययान्तर विधान किया है। साम्प्रतिक शब्द का अर्थ है, जो न तो बहुत न्यून हो और नहीं बहुत अधिक हो। साम्प्रतिक अभिधेय हो तो 'मध्य' प्रातिपदिक से शैषिक 'अ' प्रत्यय होता है। जैसे—नातिन्यूनो नात्युत्कृष्टो मध्यो वैय्याकरणः। मध्यं काष्ठम्। मध्यम शब्द तो न्यून अर्थ में प्रयुक्त होता है॥ ९॥

द्वीपादनुसमुद्रं यञ्॥ १०॥

द्वीपात् —५। १। अनुसमुद्रम् [अ.प.]। यञ् —१। १। समुद्रस्य समीपमनु-समुद्रं तस्मिन्। अव्ययीभावसमासस्याव्ययसंज्ञा। ततस्तृतीया-सप्तम्योर्बहुलमिति सप्तम्याः स्थानेऽमादेशः। अनुसमुद्रम्=समुद्रसमीपे वर्त्तमानाद् द्वीपप्रातिपदिकाच्छैषिको यञ् प्रत्ययो भवति। द्वैप्यं मधु। द्वैप्या कन्या। अनुसमुद्रमिति किम्—द्वैपकम्। द्वैपम्। कच्छादिषु पाठान्मनुष्यतत्स्थयोर्वुञ्, अन्यत्राण्॥ १०॥

भाषार्थ—सूत्र में 'अनुसमुद्रम् (समुद्रस्य समीपम्) पद में अव्ययीभाव समास है। अव्ययीभाव समास की अव्यय संज्ञा होती है और अव्यय संज्ञक इस समास में 'तृतीयासप्तम्योर्बहुलम्' (२।४।८४) इस सूत्र से सप्तमी विभक्ति को अमादेश हुआ है। समुद्र के समीप अर्थ में वर्त्तमान द्वीप प्रातिपदिक से शैषिक 'यञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—द्वैप्यं मधु। द्वैप्या कन्या। अनुसमुद्रादिति किम्—द्वैपकम्। द्वैपम्। यहां कच्छादिगण में पाठ होने से 'मनुष्यतत्स्थयोर्वुञ्' (४।२।१३३) सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय और अन्यत्र 'अण्' हुआ है॥ १०॥

कालाट्‌ ठञ्॥ ११॥

कालात् —५। १। ठञ् —१। १। अधिकारसूत्रमिदं 'तत्र जात' इत्यतः प्राक्। कालविशेषवाचिनः प्रातिपदिकाच्छैषिकष्ठञ् प्रत्ययो भवति। आर्द्ध-मासिकः। सांवत्सरिकः। वृद्धादपि कालवाचिनः परविप्रतिषेधाट्‌ ठञेव भवति। मासिकः। पौर्णमासिकः॥ ११॥

भाषार्थ—यह 'तत्र जातः' (४।३।२५) सूत्र तक अधिकार सूत्र है। काल विशेषवाची प्रातिपदिकों से शैषिक 'ठञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—आर्द्धमासिकः। सांवत्सरिकः। वृद्धसंज्ञक कालवाची प्रातिपदिक से पर विप्रतिषेध से 'छ' को बाधकर 'ठञ्' प्रत्यय ही होता है। जैसे—मासिकः। पौर्णमासिकः॥ ११॥

श्राद्धे शरदः॥ १२॥

ऋतुवाचिभ्योऽण् प्राप्तस्तस्यापवादः। श्राद्धे —७।१। शरदः —५।१। ऋतु-वाचिनः शरत्प्रातिपदिकाच्छ्राद्धेऽभिधेये ठञ् प्रत्ययो भवति। शरदि भवं शारदिकं श्राद्धं कर्म। शारदमित्यन्यत्र॥ १२॥

भाषार्थ—शरद् शब्द ऋतुवाची होने से 'सन्धिवेला०' (अ० ४।३।१६) से 'अण्' प्रत्यय प्राप्त है। यह उसका अपवाद है। ऋतुवाची शरद् प्रातिपदिक से श्राद्ध अभिधेय में शैषिक 'ठञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—शारदि भवं शारदिकं श्राद्धं कर्म। श्राद्धकर्म से अन्यत्र 'अण्' ही होता है—शारदम्॥ १२॥

विभाषा रोगातपयोः॥ १३॥

शरद इत्यनुवर्त्तते। विभाषा [अ.प.] । रोगातपयोः —७।२। अप्राप्त-विभाषेयम्। ऋत्वणि प्राप्ते ठग् विकल्प्यते। रोगातपयोः प्रत्ययार्थयोः सतोः शरत्प्रातिपदिकाद् विकल्पेन ठञ् प्रत्ययो भवति पक्षेऽण्। शारदिको रोगः। शारदिक आतपः। शारदो रोगः। शारद आतपः। रोगातपयोरिति किमर्थम्—शारदं तक्रम्॥ १३॥

भाषार्थ—यहाँ 'शरदः' पद की अनुवृत्ति है। और यह अप्राप्त विभाषा है। ऋतुवाची शब्द से 'अण्' की प्राप्ति में यह 'ठक्' का विकल्प करता है। 'शरद्; प्रातिपदिक से रोग और आतप प्रत्ययार्थ में विकल्प से शैषिक 'ठञ्' प्रत्यय होता है और पक्ष में 'अण्' होता है जैसे—शारदिको रोगः। शारदिक आतपः। शारदो रोगः। शारद आतपः। रोगातपयोरिति किमर्थम्—शारदं तक्रम् यहाँ 'अण्' होता है॥ १३॥

निशाप्रदोषाभ्यां च॥ १४॥

विभाषेत्यनुवर्तते। निशा-प्रदोषाभ्याम्—५।२। च [अ.प.] । प्राप्त-विभाषाऽत्र। कालाट् ठञ् इति नित्ये प्राप्ते विकल्पः। पक्षेऽधिकारादण्। कालवाचिभ्यां निशाप्रदोषाप्रातिपदिकाभ्यां विकल्पेन ठञ् प्रत्ययो भवति। नैशिकम्। नैशम्। प्रादोषिकम्। प्रादोषम्॥ १४॥

भाषार्थ—यहां 'विभाषा' पद की अनुवृति है। और यह प्राप्तविभाषा है। 'कालाट् ठञ्' (४।३।११) सूत्र से नित्य प्राप्ति में यह विकल्प किया है। पक्ष में अधिकार से 'अण्' होता है। कालवाची निशा और प्रदोषा प्रातिपदिक से विकल्प से 'ठञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—नैशिकम्। नैशम्। प्रादोषिकम्। प्रादोषम्॥ १४॥

श्वसस्तुट् च॥ १५॥

विभाषेत्यनुवर्त्तते। श्वसः —५।१। तुट् —१।१। च [अ.प.]। कालवाचिनोऽव्ययात् श्वसप्रातिपदिकाद् विकल्पेन ठञ् प्रत्ययो भवति [तस्य च तुडागमः] पक्षे ट्यु ट्युलौ भवतः। त्यबस्माद् विभाषा विहितो विकल्पद्वयात् त्रयः प्रयोगाः। शौवस्तिकः। श्वस्तनः। श्वस्त्यः॥ १५॥

भाषार्थ—यहाँ 'विभाषा' पद की अनुवृति है। कालवाची श्वस् अव्यय प्रातिपदिक से विकल्प से ठञ् प्रत्यय होता है और उसको तुट् आगम। पक्ष में

यथाप्राप्त 'सायं चिर०' (अ० ४।३।२३) सूत्र से ट्यु और ट्युल् प्रत्यय होते हैं। श्वस् से (अव्ययात् त्यप् ४।२।१०३) सूत्र से विकल्प से 'त्यप्' भी होता है। जैसे—शौवस्तिकः। श्वस्तनः। श्वस्त्यः॥ इस प्रकार दो विकल्प होने से तीन प्रयोग बनते हैं॥ १५॥

सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्॥ १६॥

कालादित्यनुवर्त्तते नान्यत् किमपि। सन्धि..........नक्षत्रेभ्यः—५।३। अण्—१।१। कालाट् ठञ् प्राप्तस्तस्यापवादः। अधिकारादण् स्यादेव पुनरण्-ग्रहणं वृद्धाच्छमपि बाधित्वाऽणेव यथा स्यात्। कालवाचिभ्यः सन्धिवेलादिभ्य ऋतु-नक्षत्रवाचिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्योऽण् प्रत्ययो भवति। सांधिवेलम्। सांध्यम्। ऋतुभ्यः ग्रैष्मम्। शैशिरम्। नक्षत्रेभ्यः—तैषः। पौषः। वृद्धादपि नक्षत्राद् अणेव। यथा-स्वातौ जातः सौवातो बालः। अथ सन्धिवेलादिगणः— संधिवेला। संध्या। अमावस्या। त्रयोदशी। चतुर्दशी। पंचदशी। पौर्णमासी। प्रतिपत्। संवत्सरात् फलपर्वणोः। सांवत्सरं फलम्। सावंत्सरं पर्व। इति सन्धिवेलादिः॥ १६॥

भाषार्थ—यहाँ 'कालात्' पद की अनुवृत्ति है, अन्य पदों की नहीं। यह 'कालाट् ठञ्' (४।३।११) सूत्र का अपवाद है। अधिकार होने से ही 'अण्' प्रत्यय हो जाता है, फिर 'अण्' का प्रयोजन यह है कि वृद्धसंज्ञक कालवाची शब्दों से भी 'अण्' प्रत्यय ही हो 'छ' नहीं। कालवाची सन्धिवेलादि गणपठित शब्दों से, ऋतुवाची तथा नक्षत्रवाची प्रातिपदिकों से शैषिक 'अण्' प्रत्यय होता है। जैसे—सन्धिवेलायां लब्धं सान्धिवेलम्। सांध्यम्। ऋतुवाचियों से—ग्रैष्मम्। शैशिरम्। नक्षत्रवाचियों से—तैषः। पौषः। वृद्धसंज्ञक नक्षत्रवाची से भी 'अण्' ही होता है—स्वातौ जातः सौवातो बालः॥ १६॥

प्रावृष एण्यः॥ १७॥

प्रावृषः —५।१। एण्यः —१।१। प्रावृट् शब्द ऋतुवाची, तस्माद-णोऽपवादः। ऋतुवाचिनः प्रावृट् प्रातिपदिकाद् एण्यः प्रत्ययो भवति। प्रावृषेण्यो मेघः॥ १७॥

भाषार्थ—प्रावृष् शब्द के ऋतुवाची होने से उसे पूर्वसूत्र से 'अण्' प्राप्त है, यह उसका अपवाद है। ऋतुवाची प्रावृष प्रातिपदिक से शैषिक 'एण्य' प्रत्यय होता है। जैसे—प्रावृषेण्यो मेघः॥ १७॥

वर्षाभ्यष्ठक्॥ १८॥

वर्षाभ्यः —५।३। ठक् —१।१। ऋतुवाचिनो वर्षाप्रातिपदिकाद् ठक् प्रत्ययो भवति। ऋत्वणोऽपवादः। वर्षासु क्रीतं वस्त्रं वार्षिकम्। वार्षिका गोमयाः॥ १८॥

भाषार्थ—वर्षा शब्द से ऋतुवाची होने से 'अण्' प्राप्त है, यह उसका अपवाद है। ऋतुवाची वर्षा प्रातिपदिक से शैषिक 'ठक्' प्रत्यय होता है। जैसे—वर्षासु

क्रीतं वस्त्रं वार्षिकम्। वार्षिका गोमया:॥१८॥

छन्दसि ठञ्॥१९॥

वर्षाभ्य इत्यंनुवर्त्तते। छन्दसि —७।१।ठञ् —१।१। वर्षाप्रातिपदिकाच् छन्दसि विषये ठञ् प्रत्ययो भवति। स्वरे विशेष:। नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू॥१९॥

भाषार्थ—यहाँ 'वर्षाभ्य:' पद की अनुवृत्ति है। ऋतुवाची वर्षा प्रातिपदिक से वैदिक प्रयोग विषय में शैषिक 'ठञ्' प्रत्यय होता है। ठक् और ठञ् प्रत्ययों में स्वर का ही भेद है। जैसे—नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू॥१९॥

वसन्ताच्च॥२०॥

छन्दसि ठञ् इत्यनुवर्त्तते। वसन्तात् —५।१। च [अ.प.]। वसन्त-प्रातिपदिकाच्छन्दसि विषये ठञ् प्रत्ययो भवति। मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू॥२०॥

भाषार्थ—यहाँ 'छन्दसि, ठञ्' पदों की अनुवृत्ति है। ऋतुवाची वसन्त प्रातिपदिक से वैदिक प्रयोग विषय में शैषिक ठञ् प्रत्यय होता है। जैसे—मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू॥२०॥

हेमन्ताच्च॥२१॥

छन्दसि ठञ् इत्यनुवर्त्तते। हेमन्तात् —५।१। च [अ.प.]। योगविभाग उत्तरार्थ:। अन्यथा वसन्त-हेमन्ताभ्यां चेति ब्रूयात्। ऋत्वणोऽपवाद:। ऋतु-वाचिनो हेमन्तप्रातिपदिकाच्छन्दसि विषये ठञ् प्रत्ययो भवति। सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू॥२१॥

भाषार्थ—यहाँ 'छन्दसि, ठञ्' पदों की अनुवृति है। योग विभाग अगले सूत्र में अनुवृत्ति के लिए है। अन्यथा 'वसन्त-हेमन्ताभ्यां च' एक सूत्र बनाने से 'वसन्त' शब्द की भी उत्तरत्र अनुवृत्ति हो जायेगी। यह ऋतुवाची अण् का अपवाद है। ऋतुवाची हेमन्त प्रातिपदिक से वैदिक प्रयोग विषय में शैषिक ठञ् प्रत्यय होता है। जैसे—सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू॥२१॥

सर्वत्राण् च तलोपश्च॥२२॥

ठञ् अनुवर्त्तते हेमन्तादिति च। सर्वत्र [अ.प.]। अण् —१।१। च (अ०प०)। तलोप: —१।१। च [अ.प.]। सर्वत्रेति छन्दोऽधिकार-निवृत्त्यर्थम्। हेमन्तप्रातिपदिकात् सर्वत्र लोके वेदे चाण्-ठञौ प्रत्ययौ भवत:। अणि परत: प्रकृतेस्तकारलोपश्च। हैमन: पवन:। हैमन्तिको वा। द्वौ चकारौ समुच्चयार्थौ। एकष्ठञनुकर्षणार्थो द्वितीयो लोपसमुच्चयार्थ:॥२२॥

भाषार्थ—यहाँ 'हेम्तात्, ठञ्' पदों की अनुवृत्ति है। सर्वत्र शब्द 'छन्दसि' के अधिकार की निवृत्ति के लिये हैं। ऋतुवाची हेमन्त प्रातिपदिक से लोक और वेद में शैषिक अण् और ठञ् प्रत्यय होते हैं और अण् प्रत्यय के संयोग सें हेमन्त के तकार का लोप होता है। जैसे—हेमन: पवन:। हैमन्तिको वा। सूत्र में दो चकारों

का पाठ समुच्चयार्थ है। एक चकार ठञ् की अनुवृत्ति के लिये है और दूसरा तलोप के समुच्चय के लिये है॥२२॥

सायंचिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च॥२३॥

सायं.....अव्ययेभ्यः—५।३। ट्यु-ट्युलौ—१।२। तुट्—१।१। च [अ.प.]। सायं, चिरं, प्राह्णे, प्रगे, इत्येतेभ्योऽव्ययप्रातिपदिकेभ्यश्च ट्यु-ट्युलौ प्रत्ययौ भवतस्तयोस्तुडागमश्च। षोऽन्तःकर्मणीत्यस्य घञन्तः साय-शब्दः। चिधातोरौणादिको रप्रत्ययः। तयोः साय-चिरयोः प्रत्ययसंनियोगेन मकारान्तत्वं निपात्यते। यद्यव्ययशब्दौ स्यातां पुनर्ग्रहणमनर्थकं स्यात्। एवं प्राह्ण-प्रगयोः प्रत्यय-संनियोगेनैकारान्तत्वं निपात्यते। सायन्तनम्। चिरन्तनम्। प्राह्णेतनम्। प्रगेतनम्। अव्ययेभ्यः—दिवातनम्। दोषातनम्। प्रातःशब्दाद् वृद्धसंज्ञकादपि परत्वाट् ट्यु-ट्युलौ भवतः। प्रातस्तनम्।

वा०—चिर-परुत्-परारिभ्यस्त्नः॥१॥

चिराद्यव्ययेभ्यस्त्नः प्रत्ययो भवति। चिरत्नम्। परुत्नम्। परारित्नम्।

वा०—प्रगस्य छन्दसि गलोपश्च॥२॥

त्नप्रत्ययश्चानुवृत्त्या। प्रत्नमात्मानम्।

वा०—अग्रादिपश्चाड् डिमच्॥३॥

अग्र, आदि, पश्चात् इत्येतेभ्यो डिमच् प्रत्ययो भवति। अग्रिमम्। आदिमम्। पश्चिमम्।

वा०—अन्ताच्च॥४॥

अन्तशब्दादपि डिमच्। अन्तिमम्॥२३॥

भाषार्थ—सायं, चिरं, प्राह्णे, प्रगे इन तथा अव्यय संज्ञक प्रातिपदिकों से शैषिक ट्यु और ट्युल् प्रत्यय होते हैं और प्रत्ययों को तुट् आगम होता है।

यहाँ सायं तथा चिरं अव्ययों का ग्रहण नहीं है। 'षोऽन्तकर्मणि' धातु से घञ् प्रत्ययान्त साय शब्द और 'चि' धातु से औणादिक र प्रत्यय करने से 'चिर' शब्द बना है और इन शब्दों को प्रत्यय के सन्नियोग से मकारान्तत्व निपातन से है। अन्यथा अव्यय होने से ही प्रत्ययविधि होने से पृथक् पाठ करना निरर्थक ही होता। इसी प्रकार प्राह्णे तथा प्रगे शब्दों में प्रत्यय के सन्नियोग से एकारान्तत्व निपातन से हुआ है। जैसे—सायन्तनम्। चिरन्तनम्। प्राह्णेतनम्। प्रगेतनम्। अव्ययों से दिवातनम्। दोषातनम्। 'प्रातर्' अव्यय के वृद्धसंज्ञक होने से 'छ' प्रत्यय प्राप्त है, किन्तु परविप्रतिषेध से ट्यु और ट्युल् ही होते हैं। जैसे—प्रातस्तनम्।

वा०—चिर-परुत्-परारिभ्यस्त्नः॥१॥

चिर, परुत्, परारि, इन अव्ययों से शैषिक त्न प्रत्यय होता है। यह सूत्र से प्राप्त ट्यु और ट्युल् प्रत्ययों का अपवाद है। जैसे—चिरत्नम्। परुत्नम्। परारित्नम्।

वा०—प्रगस्य छन्दसि गलोपश्च॥२॥

वैदिक प्रयोग विषय में 'प्रग' प्रातिपदिक से शैषिक 'त्न' प्रत्यय होता है और

प्रत्ययसंनियोग से गकार का लोप होता है। जैसे—प्रग्नमात्मानम्।

वा०—अग्रादिपश्चाड् डिमच्॥ ३॥

अग्र, आदि, पश्चात्, इन प्रातिपदिकों से शैषिक 'डिमच्' प्रत्यय होता है। जैसे—अग्रिमम्। आदिमम्। पश्चिमम्॥

वा०—अन्ताच्च॥ ४॥

'अन्त' प्रातिपदिक से भी शैषिक 'डिमच्' प्रत्यय होता है। जैसे—अन्तिमम्॥ २३॥

विभाषा पूर्वाह्णापराह्णाभ्याम्॥ २४॥

विभाषा [अ०]। पूर्वाह्णापराह्णाभ्याम् —५।२। ट्यु-ट्युलावनुवर्त्तेते। अप्राप्तविभाषेयम्। कालाट् ठञिति ठञि प्राप्ते विकल्पः। कालवाचिभ्यां पूर्वाह्णापराह्णाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां विकल्पेन ट्यु-ट्युलौ प्रत्ययौ भवतः। पक्षे ठञ्।पूर्वाह्णेतनम्।पौर्वाह्णिकम्।अपराह्णेतनम्।आपराह्णिकम्।'घकालतनेष्विति' सप्तम्या अलुक्॥ २४॥

भाषार्थ—यहाँ 'ट्यु-ट्युलौ' की अनुवृत्ति है। यह अप्राप्तविभाषा है। 'कालाट् ठञ्' (४।३।११) इससे ठञ् की प्राप्ति में यह विकल्प से शैषिक ट्यु और ट्युल् प्रत्यय होते हैं, पक्ष में यथाप्राप्त 'ठञ्' होता है। जैसे—पूर्वाह्णेतनम्। पौर्वाह्णिकम्। अपराहणेतनम्। आपराह्णिकम्। यहाँ ट्यु और ट्युल् प्रत्ययान्तों में 'घकालतनेषु०' (अ० ६।३।१६) सूत्र से सप्तमी विभक्ति का अलुक् हुआ है॥ २४॥

तत्र जातः॥ २५॥

घादयः प्रत्यया विहितास्तेषामर्थनिर्देशः समर्थनिर्देशश्चारभ्यते। तत्र [अ.प.]। जातः —१।१। तत्रेति सप्तमीसमर्थात् प्रातिपदिकाज् जात इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति। राष्ट्रे जातो राष्ट्रियः। अवारपारीणः। ग्राम्यः। ग्रामीणः। कात्त्रेयकः॥ २५॥

भाषार्थ—'घ' आदि प्रत्यय जो सामान्यरूप से शेष अर्थों में विधान किये हैं, उनके जातादि अर्थों तथा समर्थ विभक्तियों का निर्देश किया जाता है। सप्तमीसमर्थ प्रातिपदिकों से 'जात' अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं। जैसे—राष्ट्रे जातो राष्ट्रियः। अवारपारीणः। ग्राम्यः। ग्रामीणः। कात्त्रेयकः, इत्यादि॥ २५॥

प्रावृषष्ठप्॥ २६॥

प्रावृषः —५।१। ठप् —१।१। सप्तमीसमर्थात् प्रावृट्प्रातिपदिकाज् जातार्थे ठप् प्रत्ययो भवति। सामान्येनैण्यः प्राप्तस्तस्यापवादः। भवादावेण्य एव भवति। प्रावृषि जातः प्रावृषिकः। पित्करणमनुदात्तस्वरार्थम्॥ २६॥

भाषार्थ—सप्तमीसमर्थ प्रावृष् प्रातिपदिक से जात अर्थ में ठप् प्रत्यय होता है। प्रावृष् प्रातिपदिक से सामान्यरूप में 'प्रावृष एण्यः' (अ० ४।३।१७) सूत्र से एण्य प्रत्यय का विधान किया है, यह उसका अपवाद सूत्र है। जातार्थ से भिन्न भवादि अर्थों में एण्य प्रत्यय ही होता है। जैसे—प्रावृषि जातः प्रावृषिकः।

प्रत्यय में पितकरण अनुदात्त स्वर के लिये है॥ २६॥

संज्ञायां शरदो वुञ्॥ २७॥

संज्ञायम् —७।१।शरदः —५।१।वुञ् —१।१।ऋत्वणोऽपवादः। सप्तमीसमर्थाच्छरत्प्रातिपदिकात् संज्ञायामभिधेयायां [जातार्थे] वुञ् प्रत्ययो भवति। शारदका दर्भाः। शारदकानि कवकानि। संज्ञायामिति किम्—शारदं सस्यम्॥ २७॥

भाषार्थ—यह सूत्र ऋतुवाची शब्दों से विहित 'अण्' का अपवाद है। सप्तमी समर्थ 'शरद्' प्रातिपदिक से संज्ञा अभिधेय में जात अर्थ में वुञ् प्रत्यय होता है। जैसे—शारदका: दर्भा:। शारदकानि कवकानि। यहाँ संज्ञायाम् का ग्रहण इसलिये है कि शारदं सस्यम्। यहाँ वुञ् न होवे॥ २७॥

पूर्वाह्णापराह्णार्द्रामूलप्रदोषावस्कराद् वुन्॥ २८॥

पूर्वाह्णा.............वस्करात् —५।१। वुन् —१।१। पूर्वाह्णापराह्णाभ्यां ट्यु-ट्युलोरपवादः। आर्द्रामूलाभ्यां नक्षत्रादणोऽपवादः। प्रदोषाशब्दाट् ठञोऽपवादः। अवस्करादौत्सर्गिकस्याणः। सप्तमीसमर्थेभ्यः पूर्वाह्णादिप्रातिपदिकेभ्यो जातार्थे वुन् प्रत्ययो भवति। पूर्वाह्णकः। अपराह्णकः। आर्द्रकः। मूलकः। प्रदोषकः। अवस्करकः। भवादौ तु यथाविहितं प्रत्ययाः॥ २८॥

पूर्वाह्ण और अपराह्ण शब्दों से 'विभाषा पूर्वाह्ण०' (अ० ४।३।२४) से प्राप्त ट्यु और ट्युल् का यह अपवाद है। आर्द्रा और मूल शब्दों से नक्षत्रवाची होने से 'सन्धिवेला०' (अ० ४।३।१६) से प्राप्त अण् का अपवाद है। प्रदोष शब्द से निशा० (अ० ४।३।१४) से प्राप्त 'ठञ्' का अपवाद है। और अवस्कर शब्द से सामान्यविहित 'अण्' अपवाद है। सप्तमी समर्थ पूर्वाह्णादि प्रातिपदिकों से जात अर्थ में 'वुन्' प्रत्यय होता है। 'जात' से भिन्न 'भव' आदि अर्थों में यथाविहित प्रत्यय ही होते हैं। जैसे—पूर्वाह्णक:। अपराह्णक:। आर्द्रक:। मूलक:। प्रदोषक:। अवस्करक:॥ २८॥

पथः पन्थ च॥ २९॥

वुन् प्रत्ययोऽनुवर्त्तते। पथः —५।१।पन्थ —१।१।च [अ.प.]। सप्तमीसमर्थात् पथिन्प्रातिपदिकाद् जातार्थे वुञ् प्रत्ययो भवति। प्रत्ययसंनियोगेन च पथिन्शब्दस्य पन्थ इत्ययमादेशाः। पथि जातः पन्थकः। भवादावणेव॥ २९॥

यहाँ 'वुन्' प्रत्यय की अनुवृत्ति है। सप्तमी समर्थ पथिन् प्रातिपदिक से जातार्थ में वुन् प्रत्यय होता है। और प्रत्यय संनियोग से पथिन् शब्द को 'पन्थ' आदेश होता है। जैसे—पथि जात: पन्थक:। भव आदि अर्थों में 'अण्' ही होता है॥ २९॥

अमावास्याया वा॥ ३०॥

अमावास्यायाः —५।१।वा [अ.प.]।अप्राप्तविभाषेयम्।अमावास्या शब्दः सन्धिवेलादिषु पठ्यते, तस्मादणि प्राप्ते वुन् विकल्प्यते। सप्तमीसमर्थाद्

अमावास्या प्रातिपदिकाज्जातार्थे विकल्पेन वुन् प्रत्ययो भवति। पक्षेऽण्। अमावास्यकः। आमावास्यः। एकदेशविकृतमनन्यवद् भवतीत्यमावस्याशब्द-स्यापि ग्रहणम्। अमावस्यकः। आमावस्यः॥ ३०॥

भाषार्थ—इस सूत्र में अप्राप्तविभाषा है। अमावास्या शब्द सन्धिवेलादि में पठित है, उस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय की प्राप्ति में यह 'वुन्' का विकल्प किया गया है। सप्तमी समर्थ 'अमावस्या' प्रातिपदिक से जात अर्थ में विकल्प से 'वुन्' प्रत्यय होता है और पक्ष में अण्। जैसे—अमावास्यकः। आमावास्यः। एकदेशविकृत होने पर भिन्नता नहीं मानी जाती है, इस न्याय* से अमावस्या शब्द से भी यह प्रत्यय हो जाता है। जैसे—अमावस्यकः। आमावस्यः॥ ३०॥

अ च॥ ३१॥

अमावास्याया इत्यनुवर्तते। अ —१।१। च [अ.प.]। सप्तमीसमर्थाद् अमावास्याप्रातिपदिकाज् जातार्थेऽकारप्रत्ययो भवति। अमावास्यायां जातः अमावास्यः। अमावस्यः॥ ३१॥

भाषार्थ—पूर्वसूत्र से 'अमावस्यायाः' पद की यहाँ अनुवृत्ति है। सप्तमी समर्थ अमावास्या प्रातिपदिक से जात अर्थ में अकार प्रत्यय होता है। जैसे—अमावास्यायां जातः अमावास्यः। अमावस्यः॥ ३१॥

सिन्ध्वपकराभ्यां कन्॥ ३२॥

सिन्ध्वपकराभ्याम् —५।२। कन् —१।१। सिन्धुशब्दः कच्छादिषु पठितस्तस्मादण्वुञोरपवादः। अपकरशब्दाद् औत्सर्गिकेऽणि प्राप्तेऽपवादः। सप्तमीसमर्थाभ्यां सिन्धु-अपकराभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां जातार्थे कन् प्रत्ययो भवति। सिन्धुकः। अपकरकः॥ ३२॥

भाषार्थ—सिन्धु शब्द कच्छादि गण में पठित होने से अ० ४।२।१३१-१३२ सूत्रों से प्राप्त अण् और वुञ् का अपवाद यह विधान किया है। और अपकर शब्द से सामान्य अण् का यह बाधक है। सप्तमी समर्थ सिन्धु और अपकर प्राति-पदिकों से जात अर्थ में 'कन्' प्रत्यय होता है। जैसे—सिन्धुकः। अपकरकः॥ ३२॥

अणञौ च॥ ३३॥

सिन्ध्वपकराभ्यामित्यनुवर्त्तते। अण्-अञौ —१।२। च [अ.प.]। पृथग्योगकरणं यथासंख्यार्थम्। अन्यथा द्वाभ्यामपि त्रयः स्युः। सप्तमी-समर्थाभ्यां सिन्धु-अपकरप्रातिपदिकाभ्यां यथासंख्यम् अण्-अञौ प्रत्ययौ जातार्थे भवतः। सैन्धवः। आपकरः॥ ३३॥

भाषार्थ—यहाँ पूर्वसूत्र से 'सिन्ध्वपकराभ्याम्' पद की अनुवृत्ति है। पृथक् सूत्र बनाने का प्रयोजन यथासंख्य प्रत्यय विधान करना है। अन्यथा दोनों शब्दों से तीनों प्रत्यय प्राप्त होते। सप्तमी समर्थ सिन्धु और अपकर प्रातिपदिकों से 'जात'

---

* एकदेशविकृतमनन्यवद्भवति। यथा शुनः कर्णे पुच्छे वा छिन्ने श्वैव भवति नाश्वो न गर्दभः। महाभाष्ये प्राग्दीव्यतोऽण् (४।१।८३) इति सूत्रे पाठोऽयं दृश्यते क्वचित्। —**सम्पादकः**

अर्थ में यथासंख्य अण् और अञ् प्रत्यय होते हैं। जैसे—सैन्धवः। आपकरः॥ ३३॥

श्रविष्ठाफल्गुन्यनुराधास्वातितिष्यपुनर्वसुहस्तविशाखाषाढा-बहुलाल्लुक्॥ ३४॥

श्रविष्ठा........बहुलात् —५।१।लुक् —१।१।नक्षत्रवाचिभ्यः श्रविष्ठादि-प्रातिपदिकेभ्यो विहितस्य प्रत्ययस्य जातार्थे लुक् भवति। तस्मिन् सति 'लुक् तद्धितलुकि' इति स्त्रीप्रत्ययस्यापि लुक्। श्रविष्ठायां जातः श्रविष्ठः। फल्गुनः। अनुराधः। स्वातिः। तिष्यः। पुनर्वसुः। हस्तः। विशाखः। अषाढः। बहुलः।

वा०—लुक्प्रकरणे चित्रारेवतीरोहिणीभ्यः स्त्रियामुपसंख्यानम्॥ १॥

चित्रायां जाता चित्रा स्त्री। रेवती। रोहिणी। 'लुक् तद्धितलुकी' ति स्त्रीप्रत्ययस्य लुकि कृते गौरादित्वान् ङीष्॥ १॥

वा०—फल्गुन्यषाढाभ्यां टानौ॥ २॥

फल्गुनी-अषाढाभ्यां टानौ प्रत्ययौ भवतः। फल्गुन्यां जाता स्त्री फल्गुनी। प्रत्ययस्य टित्वान् ङीष्। अषाढा। अत्र अन् प्रत्ययान्तात् स्त्रियां टाप्॥ २॥

वा०—श्रविष्ठाषाढाभ्यां छण्॥ ३॥

श्रविष्ठायां जाताः श्राविष्ठीयाः। आषाढीयाः॥ ३॥ ३४॥

भाषार्थ—नक्षत्रवाची श्रविष्ठा, फल्गुनी, अनुराधा, स्वाति, तिष्य, पुनर्वसु, हस्त, विशाखा, अषाढा, बहुल, इन प्रातिपदिकों से विहित प्रत्यय का लुक् होता है। और तद्धित प्रत्यय के लुक् होने पर 'लुक् तद्धितलुकि' (अ० १।२।४९) सूत्र से स्त्री प्रत्यय का भी लुक् हो जाता है। जैसे—श्रविष्ठायां जातः श्रविष्ठः। फल्गुनः। अनुराधः। स्वातिः। तिष्यः। पुनर्वसुः। हस्तः। विशाखः। अषाढः। बहुलः।

वा०—लुक्प्रकरणे चित्रारेवतीरोहिणीभ्यः स्त्रियामुपसंख्यानम्॥ १॥

जातार्थ प्रकरण में नक्षत्रवाचियों से प्रत्यय के लुक् विधान में चित्रा, रेवती, रोहिणी शब्दों से विहित प्रत्यय का लुक् होता है। जैसे—चित्रायां जाता चित्रा स्त्री। रेवती। रोहिणी। यहाँ सूत्रोक्त शब्दों की भाँति तद्धित प्रत्यय के लुक् होने पर स्त्री प्रत्ययों का भी लुक् हो जाता है। तत्पश्चात् स्त्रीत्व विवक्षा में चित्रा में टाप् तथा रेवती, रोहिणी में गौरादिगण में पाठ होने से 'ङीष्' प्रत्यय होता है॥ १॥

वा०—फल्गुन्यषाढाभ्यां टानौ॥ २॥

पूर्व वार्त्तिक से 'स्त्रियाम्' की यहाँ अनुवृत्ति है। फल्गुनी और अषाढा नक्षत्रवाची प्रातिपदिकों से यथासंख्य ट और अन् प्रत्यय होते हैं। जैसे—फल्गुन्यां जाता स्त्री फल्गुनी। यहाँ प्रत्यय के टित् से ङीष् हुआ है। अषाढा। यहाँ अन् प्रत्ययान्त से स्त्रीलिङ्ग में टाप् प्रत्यय है।

वा०—श्रविष्ठाषाढाभ्यां छण्॥ ३॥

श्रविष्ठा और अषाढा प्रातिपदिकों से जातार्थ में 'छण्' प्रत्यय होता है। जैसे—श्राविष्ठीयाः। आषाढीयाः॥ ३॥ ३४॥

स्थानान्तगोशालखरशालाच्च॥ ३५॥

स्थानान्त........खरशालात् —५।१।च [अ.प.]। स्थानान्तात् प्रातिपदिकाद् गोशालात् खरशालाच्च प्रातिपदिकाज्जातार्थे विहितस्य प्रत्ययस्य लुक् भवति। अश्वस्थाने जात: अश्वस्थान:। हस्तिस्थान:। गोशाले जातो गोशाल:। खरशाल:॥ ३५॥

भाषार्थ—स्थान शब्द जिसके अन्त में है, उन प्रातिपदिकों से और गोशाल तथा खरशाल प्रातिपदिकों से जात अर्थ में विहित तद्धित प्रत्यय का लुक् होता है। जैसे—अश्वस्थाने जात: अश्वस्थान:। हस्तिस्थान:। गोशाले जातो गोशाल:। खरशाल:। यहाँ जातार्थ में विहित 'अण्' प्रत्यय का लुक् हुआ है। 'गोशाल' शब्द में 'विभाषा सेनासुरा०' (अ० २।४।२५) सूत्र से नपुंसक लिङ्ग होने से ह्रस्व हुआ है॥ ३५॥

वत्सशालाऽभिजिदश्वयुक्छतभिषजो वा॥ ३६॥

वत्सशाला........भिषज: —५।१।वा—[अ०प०]। प्राप्ताप्राप्तविभाषेयम्। वत्सशालाद् अप्राप्तोऽभिजिदादिभ्यश्च बहुलं प्राप्तो लुक् विकल्प्यते। वत्सशालादिभ्यो विहितस्य जातार्थप्रत्ययस्य विकल्पेन लुग् भवति। वत्सशालायां जातो वत्सशाल:।वात्सशाल:।अभिजित्।आभिजित:।अश्वयुक्।आश्वयुज:। शतभिषक्। शातभिषज:॥ ३६॥

भाषार्थ—यह प्राप्ताप्राप्त विभाषा है। वत्सशाला शब्द से अप्राप्त लुक् तथा अभिजिदादि शब्दों के नक्षत्रवाची होने से 'नक्षत्रेभ्यो०' (अ० ४।३।३७) से बहुल करके लुक् प्राप्त है, उसका इससे विकल्प किया गया है। वत्सशालादि प्रातिपदिकों से जातार्थ में विहित प्रत्यय का विकल्प से लुक् होता है। जैसे—वत्सशालायां जातो वत्सशाल:। वात्सशाल:। अभिजित्। आभिजित। अश्वयुक्। आश्वयुज:। शतभिषक्। शातभिषज:॥ ३६॥

नक्षत्रेभ्यो बहुलम्॥ ३७॥

नक्षत्रेभ्य: —५।३।बहुलम् —१।१।नक्षत्रवाचिभ्य: शब्देभ्यो विहितस्य जातार्थस्य प्रत्ययस्य बहुलं लुग् भवति। भरण्यां जातो भरणी। कृत्तिक:। तैष:, पौष:, इत्यत्र लुक् न भवति। मृगशिरा:। मार्गशीर्ष:। क्वचिद् भवति क्वचिन्नापि॥ ३७॥

भाषार्थ—नक्षत्रवाची प्रातिपदिकों से जातार्थ में विहित प्रत्यय का बहुल करके लुक् होता है। जैसे—भरण्यां जातो भरण्य:। कृत्तिक:। इनमें नित्यलुक् हुआ है। तैष:। पौष:। इनमें लुक् नहीं हुआ। मृगशिरा:। मार्गशीर्ष:। यहाँ विकल्प से लुक् हुआ है। यह सब बहुल का प्रपञ्च है। 'मार्गशीर्ष:' में शिरस् के स्थान पर शीर्षादेश 'अचि शीर्ष:' (अ० ६।१।६१ वा०) से हुआ है॥ ३७॥

कृतलब्धक्रीतकुशला:॥ ३८॥

लुक्प्रकरणं निवृत्तम्। तत्रेत्यनुवर्त्तते। कृतलब्धक्रीतकुशला: —१।३।

कृतादयः प्रत्ययार्था निर्दिश्यन्ते। सप्तमीसमर्थात् प्रातिपदिकात् कृताद्यर्थेषु यथाविहितं प्रत्यया भवन्ति। राष्ट्रे कृतो लब्धः क्रीतः कुशलो वा राष्ट्रियः। ग्राम्यः। ग्रामीणः। स्रौघ्नः। माथुरः। एवं सर्वे घादयः॥ ३८॥

भाषार्थ—लुक् का प्रकरण यहां निवृत्त हुआ। 'तत्र' पद की अनुवृत्ति है। कृतादि से प्रत्ययार्थों का निर्देश किया गया है। सप्तमी समर्थ प्रातिपदिकों से कृतादि अर्थों में यथाविहित प्रत्यय होते हैं। जैसे—राष्ट्रे कृतो लब्धः क्रीतः कुशलो वा राष्ट्रियः। ग्राम्यः। ग्रामीणः। स्रौघ्नः। माथुरः। इस प्रकार सब घादि के उदाहरण समझने चाहियें॥ ३८॥

प्रायभवः॥ ३९॥

तत्रेत्यनुवर्तते। प्रायभवः —१।१। प्रायेण बाहुल्येन भवतीति प्रायभवः।

भा०—अनित्यभवः प्रायभवः। नित्यभवस्तत्र भवः। अर्थाद् बहुधा यत्र भवति, न्यूनतया यत्र न भवति स प्रायभव इत्युच्यते। सप्तमीसमर्थात् प्रातिपदिकात् प्रायभव इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति। स्रुघ्ने प्रायभवः स्रौघ्नः। माथुरः। स्रौघ्नाः प्राकारा इति नित्यभवाः। अत्र तु विशेषो नास्ति, परन्तु तत्र भवाधिकारे याभ्यः प्रकृतिभ्यः प्रत्यया विधीयन्ते प्रायभवे ताभ्योऽन्य एव प्रत्यया भवन्ति॥ ३९॥

भाषार्थ—यहाँ 'तत्र' पद की अनुवृत्ति है। 'प्रायभव' का अर्थ है जो बाहुल्य से होता है। इसमें महाभाष्य का प्रमाण भी द्रष्टव्य है। जो बाहुल्य से होता है, न्यूनता से नहीं, वह प्रायभव कहलाता है। सप्तमी समर्थ प्रातिपदिक से प्रायभव अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं। जैसे—स्रुघ्ने भवः स्रौघ्नः। माथुरः। स्रौघ्नाः प्राकाराः। यह नित्यभव का उदाहरण है। यद्यपि इन उदाहरणों में कोई विशेष अन्तर नहीं है, परन्तु 'तत्र भवः' के अधिकार में जिन प्रकृतियों से प्रत्ययों का विधान किया है, उनसे प्रायभव अर्थ में दूसरे प्रत्यय ही होते हैं॥ ३९॥

उपजानूपकर्णोपनीवेष्ठक्॥ ४०॥

प्रायभव इत्यनुवर्त्तते। उपजानूपकर्णोपनीवेः —५।१। ठक् —१।१। जानुनः समीपम् उपजानु। समीपार्थे उप जान्वादीनामव्ययीभावः। सप्तमी-समर्थेभ्यः उपजान्वादिभ्यः प्रायभव इत्यस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति। उपजानु प्रायभवः औपजानुकः। औपकर्णिकः। औपनीविकः॥ ४०॥

भाषार्थ—यहाँ 'प्रायभवः' पद की अनुवृत्ति है। उपजानु आदि शब्दों में समीपार्थ में अव्ययीभाव समास है। सप्तमी समर्थ उपजानु, उपकर्ण, उपनीवि, प्रातिपदिकों से प्रायभव अर्थ में 'ठक्' प्रत्यय होता है। जैसे—उपजानु प्रायभवः औपजानुकः। 'इसुसुक्तान्तात् कः' (७।३।५१) सूत्र से 'ठ' को क आदेश हुआ है। औपकर्णिकः। औपनीविकः॥ ४०॥

सम्भूते॥ ४१॥

तत्रेत्यनुवर्त्तते, प्रायभव इति निवृत्तम्। [सम्भूते—७।१] सम्भूतः

सम्भवः। प्रत्यक्षादिप्रमाणसिद्धो गृह्यते। सप्तमीसमर्थात् प्रातिपदिकात् सम्भूत इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति। राष्ट्रे सम्भूतो राष्ट्रियः। ग्राम्यः। ग्रामीणः। शालीयः। मालीयः॥४१॥

भाषार्थ—यहाँ 'तत्र' पद की अनुवृत्ति है। प्रायभव अर्थ निवृत्त हो गया है [अर्थान्तर के कहने से] 'सम्भूत' शब्द का अर्थ सम्भव होना है। और वह प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सिद्ध होता है। सप्तमी समर्थ प्रातिपदिकों से सम्भूत (सम्भव) अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं। जैसे—राष्ट्रे सम्भूतः (सम्भवति) राष्ट्रियः। ग्राम्यः। ग्रामीणः। शालीयः। मालीयः। इत्यादि॥४१॥

कोशाड् ढञ्॥४२॥

सम्भूत इत्यनुवर्तते। कोशात् —५।१। ढञ् —१।१। धनादिसमुदाय-वाची कोशशब्दोऽत्र न गृह्यते, किन्तु प्रकृतिकारणवाची कोशशब्दः। तत्रापि सूत्रवस्त्रयोः कारणविशेषस्य संज्ञेयम्। प्राकृतभाषायां 'रेशम' इत्युच्यते, तस्य यत्कारणं तत्कोशशब्देनोच्यते। सप्तमीसमर्थात् कोशप्रातिपदिकात् सम्भूतेऽर्थे ढञ् प्रत्ययो भवति। कोशे सम्भवति वस्त्रं सूत्रं वा कौशेयम्। अन्यद् यत् किमपि तस्मात्कारणाद् भस्म, क्रिमिश्च, तत्र न भवति। कुतः। लोकप्रामाण्यात्। लौकिकमर्थं प्रत्याय्य शब्दाः प्रयुज्यन्ते। कौशेय-शब्दः सूत्रे वस्त्रे च प्रयुज्यते॥४२॥

भाषार्थ—यहाँ 'सम्भूते' पद की अनुवृत्ति है। यहाँ कोश शब्द से धनादि-समुदायवाची का ग्रहण नहीं है, किन्तु प्रकृति या कारणवाची कोश शब्द का ग्रहण है और कारण अर्थ में भी सूत्र-वस्त्र रूप विकार के कारणविशेष की कोश संज्ञा है। प्राकृतभाषा में जिसे रेशम कहते हैं, उसके कारण को कोश शब्द से यहाँ कहा गया है। सप्तमीसमर्थ कोश प्रातिपदिक से सम्भूत अर्थ में ढञ् प्रत्यय होता है। कोशे सम्भवति वस्त्रं सूत्रं वा कौशेयम्। और उस कारण से वस्त्र या सूत्र से भिन्न जो क्रिमि—रेशम का कीड़ादि होता है, उसके लिये इस शब्द का प्रयोग इसलिये नहीं होता, क्योंकि शब्द प्रयोग में लोक प्रामाण्य* होता है। लोक में क्रिमि आदि के लिये इस शब्द का प्रयोग नहीं होता। लौकिक अर्थों को बताने के लिये ही शब्दों का प्रयोग होता है और यह 'कौशेय' शब्द सूत्र=रेशम के धागे अथवा रेशमी वस्त्र के लिये ही प्रयुक्त होता है॥४२॥

कालात् साधुपुष्प्यत्पच्यमानेषु॥४३॥

कालात् —५।१। साधुपुष्प्यत् पच्यमानेषु —७।३। पुष्प्यदिति पुष्प विकसने इति दैवादिकस्य शत्रन्तः प्रयोगः। कालविशेषवाचिनः सप्तमी-

---

* इस विषय में महाभाष्य का प्रमाण द्रष्टव्य है—'विकारे कोशाट् ढञ् वक्तव्यः। सम्भूत इत्युच्यमानेऽर्थस्यानुपपत्तिः स्यात्। न ह्यदः कोशे सम्भवति। किन्तर्हि? कोशस्यादो विकारः। यदि विकार इत्युच्यते भस्मन्यपि प्राप्नोति। भस्मापि कोशस्य विकारः। अथ सम्भूत इति ह्युच्यमाने क्रिमौ कस्मान्न भवति। क्रिमिरपि कोशे सम्भवति। अनभिधानात्। यथैव तर्हि-अनभिधानात् क्रिमौ न भवत्येवं भस्मन्यपि न भविष्यति।' —अनुवादक

समर्थात् प्रातिपदिकात् साध्वादिष्वर्थेषु यथाविहितं प्रत्ययो भवति। हेमन्ते साधूनि हैमन्तानि वासांसि। वसन्ते पुष्प्यन्ति वासान्ताः पलाशाः। शरदि पच्यन्ते शारदाः शालयः॥ ४३॥

भाषार्थ—सूत्र से 'पुष्प्यत्' प्रयोग 'पुष्पविकसने' दिवादिगणीय धातु से शतृ प्रत्ययान्त का है। कालविशेषवाची सप्तमी समर्थ प्रातिपदिकों से साधु आदि अर्थों में यथाविहित प्रत्यय होते हैं। जैसे—हेमन्ते साधूनि हैमन्तानि वासांसि। वसन्ते पुष्प्यन्ति वासन्ताः पलाशाः। शरदि पच्यन्ते शारदाः शालयः॥ ४३॥

उप्ते च॥ ४४॥

तत्रेत्यनुवर्तते कालादिति च। उप्ते —७।१।च[अ०प०]। सप्तमीसमर्थात् कालवाचिनः प्रातिपदिकाद् उप्तेऽर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति। संधिवेलाया-मुप्यन्ते सान्धिवेलाः। त्रयोदश्यामुप्ता गोधूमास् त्रायोदशाः। चातुर्दशाः। शिशिरे उप्यन्त इक्षवः शैशिराः। पृथग्योग उत्तरार्थः॥ ४४॥

भाषार्थ—यहाँ 'तत्र' और 'कालात्' पदों की अनुवृत्ति है। सप्तमीसमर्थ कालवाची प्रातिपदिकों से उप्त (बोने) अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं। जैसे—संधिवेलायामुप्यन्ते सान्धिवेलाः। त्रयोदश्यामुप्ता गोधूमा त्रायोदशाः। चातुर्दशाः। शिशिरे उप्यन्त इक्षवः शैशिराः। पृथक् योग बनाने का प्रयोजन उत्तरार्थ है॥ ४४॥

आश्वयुज्या वुञ्॥ ४५॥

आश्वयुज्याः —५।१।वुञ् —१।१।अणोऽपवादः। अश्वयुजाऽश्विनी-नक्षत्रेण युक्ता पौर्णमासी आश्वयुजी। सप्तमीसमर्थाद् आश्वयुजीप्रातिपदिकाद् उप्तेऽर्थे वुञ् प्रत्ययो भवति। आश्वयुज्यामुप्यन्त आश्वयुजका यवाः॥ ४५॥

भाषार्थ—यह 'अण्' प्रत्यय का अपवाद है। अश्वयुक् अश्विनी नक्षत्र का पर्यायवाची है, उससे युक्तपौर्णमासी को आश्वयुजी कहते हैं। सप्तमी-समर्थ आश्वयुजी प्रातिपदिक से उप्त (बोने) अर्थ में 'वुञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—आश्वयुज्यामुप्यन्ते आश्वयुजका यवाः॥ ४५॥

ग्रीष्मवसन्तादन्यतरस्याम्॥ ४६॥

वुञ् अनुवर्त्तते। ग्रीष्मवसन्तात् —५।१।अन्यतरस्याम्[अ०]। अप्राप्त-विभाषेयम् ऋत्वणि प्राप्ते वुञ् विकल्प्यते। सप्तमीसमर्थाभ्यां ग्रीष्मवसन्ताभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां विकल्पेन वुञ् प्रत्ययो भवति। पक्षे चाण्। ग्रीष्मे उप्ता ग्रैष्मका ग्रैष्मा वा माषाः। वासन्तका वासन्ता वेक्षवः। उप्ताधिकारोऽत्र निवृत्तः॥ ४६॥

भाषार्थ—यहाँ वुञ्' की अनुवृत्ति है। यह अप्राप्तविभाषा है। ऋतुवाची होने से 'अण्' प्रत्यय की प्राप्ति में 'वुञ् प्रत्यय का विकल्प किया है। सप्तमीसमर्थ ग्रीष्म-वसन्त प्रातिपदिकों से विकल्प से 'वुञ्' प्रत्यय होता है। पक्ष में यथाप्राप्त अण् होता है। जैसे—ग्रीष्मे उप्ता ग्रैष्मका ग्रैष्मा वा माषाः। वासन्तका वासन्ता वा इक्षवः। 'उप्ते' का अधिकार यहीं समाप्त है॥ ४६॥

देयमृणे॥ ४७॥

तत्रेत्यनुवर्त्तते। देयम् —१।१। ऋणे —७।१। सप्तमीसमर्थात् कालवाचिनः प्रातिपदिकाद् देयमित्यर्थे ऋणेऽभिधेये यथाविहितं प्रत्ययो भवति। वैशाखे देयमृणं वैशाखम्। मासे देयं मासिकम्। आर्द्धमासिकम्। सांवत्सरिकम्। प्रावृषि देयमृणं प्रावृषेण्यम्। ऋण इति किम्—मुहूर्त्ते देयं भोजनम्॥ ४७॥

भाषार्थ—यहाँ 'तत्र' पद की अनुवृत्ति है। सप्तमी समर्थ कालवाची प्रातिपदिकों से देयमृणे=देय ऋण के अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं। जैसे—वैशाखे देयमृणं वैशाखम्। मासे देयमृणं मासिकम्। आर्द्धमासिकम्। सांवत्सरिकम्। प्रावृषि देयमृणं प्रावृषेण्यम्। सूत्र में 'ऋणे' पद इस लिये है कि ऋण से भिन्न देय अर्थ में प्रत्यय न हो। जैसे—मुहूर्ते देयं भोजनम्॥ ४७॥

कलाप्यश्वत्थयवबुसाद् वुन्॥ ४८॥

कलाप्यश्वत्थयवबुसात् —५।१। वुन् —१।१। कलापिशब्दो मयूरपर्यायः। अश्वत्थशब्दो वृक्षवाची। यवानां बुसं यवबुसम्। तत्र कालवाचिनोऽसम्भवात् कलाप्यादिसंचरितः कालो गृह्यते। कलापि, अश्वत्थ, यवबुस, इत्येतेभ्यः कालवाचिभ्यः सप्तमी समर्थेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो [देयमृणे इत्यस्मिन्नर्थे] वुन् प्रत्ययो भवति। बहुधा कलापिनो भवन्त्यस्मिन् काले स कलापी तस्मिन् कलापिनि देयमृणं कलापकम्। अश्वत्थाः फलन्त्यस्मिन् काले सोऽश्वत्थस्तस्मिन् देयमृणम् अश्वत्थकम्। यवबुसं सम्पद्यतेऽस्मिन्काले तत्र देयमृणं यवबुसकम्। अप्राप्तोऽत्र वुन् विधीयते॥ ४८॥

भाषार्थ—कलापी शब्द मयूर का पर्यायवाची है। अश्वत्थ शब्द वृक्ष (पीपल) वाची है। और यवबुस=जौ का भुस्सा (भूसा) होता है। ये शब्द कालवाची न होने से यहाँ साहचर्य वृत्ति से सम्बद्ध काल का ग्रहण किया गया है। साहचर्यात् ताच्छब्द्यं भविष्यति (महा०) यह महाभाष्य का वचन इस अर्थ की पुष्टि करता है। सप्तमी समर्थ कालवाची कलापी अश्वत्थ, यवबुस, प्रातिपदिकों से देय ऋण अर्थ में 'वुन्' प्रत्यय होता है। जिस समय मोर अधिकता से होते हैं वह कालापी अर्थात् मयूर के पुच्छस्थ चन्दे बढ़ते हैं, उस काल को कलापी कहते हैं। जिस समय अश्वत्थ=पीपल पर फल आता है, उसको अश्वत्थ काल और जब यवों का भुस्सा तैयार होता है उसको यवबुसकाल कहते हैं। जैसे—कलापिनि देयमृणं कलापकम्। अश्वत्थे देयमृणम्=अश्वत्थकम्। यवबुसे देयमृणं यवबुसकम्। यहाँ अप्राप्त 'वुन्' प्रत्यय का विधान किया गया है॥ ४८॥

ग्रीष्मावरसमाद् वुञ्॥ ४९॥

ग्रीष्मावरसमात् —५।१। वुञ् —१।१। समायाः=वर्षस्यावरभागोऽवरसमम्। सप्तमीसमर्थाभ्यां कालवाचिभ्यां ग्रीष्म-अवरसमाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां देयमृणेऽर्थे वुञ् प्रत्ययो भवति। ग्रीष्मे देयमृणं ग्रैष्मकम्। आवरसमकम्॥ ४९॥

भाषार्थ—वर्ष के पिछले (अन्तिम भाग) को 'अवरसमम्' कहते हैं। सप्तमीसमर्थ कालवाची ग्रीष्म और अवरसम प्रातिपदिकों से देय ऋण अर्थ में

'वुञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—ग्रीष्मे देयमृणं ग्रैष्मकम्। आवरसमकम्॥४९॥

संवत्सराग्रहायणीभ्यां ठञ् च॥५०॥

वुञ् चादनुवर्त्तते। संवत्सर-आग्रहायणीभ्याम् —५।२। ठञ् —१।१। च [अ०प०]। सप्तमीसमर्थाभ्यां संवत्सर-आग्रहायणीभ्यां कालवाचिप्रातिपदिकाभ्यां देयमृणे इत्यस्मिन्नर्थे ठञ्-वुञौ प्रत्ययौ भवतः। संवत्सरे देयमृणं सांवत्सरिकम्। साम्वत्सरकम्। आग्रहायणिकम् आग्रहायणकम्। अण् प्राप्तः स बाध्यते॥५०॥

भाषार्थ—यहाँ चकार से वुञ् की अनुवृत्ति है। सप्तमी समर्थ कालवाची संवत्सर और आग्रहायणी प्रातिपदिकों से ऋण देने अर्थ में ठञ् और वुञ् प्रत्यय होते हैं। जैसे—संवत्सरे देयमृणं सांवत्सरिकम्। सांवत्सरकम्। आग्रहायणिकम्। आग्रहायणकम्। यह 'सन्धिवेलादि०' (४।३।१६) सूत्र से प्राप्त 'अण्' का बाधक है॥५०॥

व्याहरति मृगः॥५१॥

[व्याहरति—क्रि०प०।] मृगः —१।१। प्रत्ययार्थनिर्देशोऽयम्। सप्तमी-समर्थात् कालवाचिनः प्रातिपदिकाद् व्याहरति क्रियायां मृगे कर्त्तर्य्यभिधेये यथा विहितं प्रत्ययो भवति। निशायां व्याहरति मृगः नैशिकः। नैशः। प्रादोषिकः। प्रादोषः। 'निशाप्रदोषाभ्यां चे' ति वा ठञ्। प्रावृषि व्याहरति मृगः प्रावृषेण्यः। कार्त्तिकः॥५१॥

भाषार्थ—इस सूत्र में प्रत्ययार्थ का निर्देश है। सप्तमी समर्थ कालवाची प्रातिपदिकों से व्याहरति क्रिया का मृग कर्त्ता वाच्य हो तो यथाविहित प्रत्यय होते हैं। जैसे—निशायां व्याहरति मृगः नैशिकः। नैशः। प्रादोषिकः। प्रादोषः। यहाँ 'निशाप्रदोषाभ्यां च' (४।३।१४) सूत्र से विकल्प से ठञ् प्रत्यय हुआ है। प्रावृषि व्याहरति मृगः प्रावृषेण्यः। कार्त्तिकः॥५१॥

तदस्य सोढम्॥५२॥

कालादित्यनुवर्त्तते तत्रेति निवृत्तम्। तत् —१।१। अस्य —६।१। सोढम् —१।१। तदिति प्रथमासमर्थात् कालवाचिनः सोढसमानाधिकरणात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति। अत्रापि सहचारोपाधिना कालवाचि सोढसमानाधिकरणं प्रातिपदिकं प्रतिपद्यते। निशा सहचरितमध्ययनं निशा, तत्सोढमस्य नैशिको नैशो वा छात्रः। ग्रीष्मः सोढमस्य ग्रैष्मः। वासन्तः। हेमन्तसहचरितं शीतं सोढमस्य हैमन्तः॥५२॥

भाषार्थ—यहाँ 'कालात्' पद की अनुवृत्ति तथा 'तत्र' पद की निवृत्ति समझनी चाहिये। प्रथमासमर्थ कालवाची सोढ (अभ्यस्तं जितं वा) समानाधिकरण प्रातिपदिकों से षष्ठ्यर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं। यहाँ भी साहचर्यवृत्ति से सोढ समानाधिकरण प्रातिपदिक कालवाची माना गया है। जैसे—निशा सहचरित-मध्ययनं निशा, तत्सोढमस्य नैशिको नैशो वा छात्रः। ग्रीष्मः सोढमस्य ग्रैष्मः।

वासन्तः। हेमन्तसहचरितं शीतं सोढमस्य हैमन्तः, इत्यादि॥५२॥

तत्र भवः॥५३॥

तत्र [अ.प.]। भवः —१।१। तत्रेत्यनुवर्त्तमाने पुनस्तत्रग्रहणं कालाधिकारनिवृत्यर्थम्। सप्तमीसमर्थात् ङ्याप्प्रातिपदिकाद् भवार्थे यथाविहितं प्रत्यया भवन्ति। अश्वपतौ भव आश्वपतः। औत्सः। दैत्यः। आदित्यः। पृथिव्यां भवः पार्थिवः। वानस्पत्यः। स्त्रैणः। पौंस्नः। राष्ट्रियः। ग्राम्यः। ग्रामीणः। ग्रामेयकः॥५३॥

भाषार्थ—यहाँ पूर्वसूत्रों की भाँति ही 'तत्र' पद की अनुवृत्ति आ रही है, फिर दुबारा 'तत्र' का ग्रहण उससे सम्बद्ध कालाधिकार की निवृत्ति के लिये किया है। सप्तमीसमर्थ प्रातिपदिक से भव=(होने) अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं। जैसे—अश्वपतौ भवः आश्वपतः। औत्सः। दैत्यः। आदित्यः। पृथिव्यां भवः पार्थिवः। वानस्पत्यः। स्त्रैणः। पौंस्नः। राष्ट्रियः। ग्राम्यः। ग्रामीणः। ग्रामेयकः। इत्यादि॥५३॥

दिगादिभ्यो यत्॥५४॥

दिगादिभ्यः —५।३। यत् —१।१। सप्तमीसमर्थेभ्यो दिगादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो भवार्थे यत् प्रत्ययो भवति। दिशि भवं दिश्यम्। वर्ग्यम्। अणोऽपवादः। अथ दिगादिगणः—दिश्। वर्ग। पूग। गण। पक्ष। धाय्या। मित्र। मेधा। अन्तर। पथिन्। रहस्। अलीक। उखा। साक्षिन्। देश। आदि। अन्त। मुख। जघन। मेघ। यूथ। उदकात् संज्ञायाम्। उदक्या रजस्वला स्त्री। संज्ञायामिति किम्—औदको मत्स्यः। न्याय। वंश। अनुवंश। विश। काल। अप्। आकाश। इति दिगादिगणः॥५४॥

भाषार्थ—सप्तमी समर्थ दिगादि प्रातिपदिकों से भवार्थ में 'यत्' प्रत्यय होता है। जैसे—दिशि भवं दिश्यम्। वर्ग्यम् इत्यादि। यह सूत्र 'अण्' का अपवाद है॥५४॥

शरीरावयवाच्च॥५५॥

शरीरावयवात् —५।१।च [अ.प.]।'यत्' अनुवर्त्तते।शरीरस्यावयवा इन्द्रियादयः। सप्तमीसमर्थाच्छरीरावयववाचिनः प्रातिपदिकाद् भवार्थे यत् प्रत्ययो भवति। दन्तेषु भवं दन्त्यम्। ओष्ठ्यम्। हनव्यम्। हृद्यम्। नाभ्यम्॥५५॥

भाषार्थ—'यत्' प्रत्यय की यहाँ अनुवृत्ति है। शरीर के अवयव इन्द्रियादि है। सप्तमीसमर्थ शरीरावयववाची प्रातिपदिकों से भव अर्थ में यत् प्रत्यय होता है। जैसे—दन्तेषु भवं दन्त्यम्। ओष्ठ्यम्। हनव्यम्। हृद्यम्। नाभ्यम् इत्यादि॥५५॥

दृतिकुक्षिकलशिवस्त्यस्त्यहेर्ढञ्॥५६॥

दृति.......स्त्यहेः —५।१।ढञ् —१।१। कुक्षि शब्दः शरीरावयववाची, तस्माद् यतोऽपवादः। अन्येभ्योऽणादीनाम्। सप्तमी समर्थेभ्यो दृत्यादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो भवार्थे ढञ् प्रत्ययो भवति। दृतौ भवं दार्त्तेयम्। कौक्षेयम्।

कालशेयम्। वारतेयम्। आस्तेयम्। आहेयम्। अस्ति शब्दः प्रातिपदिकं गृह्यते न तु तिङन्तम्॥५६॥

भाषार्थ—यहाँ सूत्र में 'कुक्षि' शब्द शरीर अवयव वाची है, उससे यत् प्राप्त था, उसका ढञ् अपवाद विधान किया है और दूसरे शब्दों से अणादि प्रत्ययों का अपवाद है। सप्तमी समर्थ दृति, कुक्षि, कलशि, वस्ति, अस्ति, अहि, इन प्रातिपदिकों से भवार्थ में ढञ् प्रत्यय होता है। जैसे—दृतौ भवं दार्तेयम्। कौक्षेयम् कालशेयम्। वास्तेयम्। आस्तेयम्। आहेयम्। यहाँ अस्ति शब्द प्रातिपदिक है, तिङन्तरूप नहीं॥५६॥

ग्रीवाभ्योऽण् च॥५७॥

चकाराड् ढञ् अनुवर्त्तते। ग्रीवाभ्यः —५।३। अण् —१।१। च [अ.प.] । ग्रीवाभ्य इति जात्याख्यायां बहुवचनम्। शरीरावयवाद् यत् प्राप्तः स बाध्यते। सप्तमीसमर्थाद् ग्रीवाप्रातिपदिकाद् भवार्थेऽण्-ढञौ प्रत्ययौ भवतः। ग्रीवासु भवं ग्रैवम्। ग्रैवेयम्॥५७॥

भाषार्थ—यहाँ चकार पद से 'ढञ्' प्रत्यय की अनुवृत्ति है। ग्रीवा शब्द से जात्याख्या में बहुवचन है। ग्रीवा शब्द से शरीरावयव वाची होने से यत् प्रत्यय प्राप्त है, उसका यह बाधक है। सप्तमी समर्थ ग्रीवा प्रातिपदिक से भवार्थ में अण् और ढञ् प्रत्यय होते हैं। जैसे—ग्रीवासु भवं ग्रैवम्। ग्रैवेयम्॥५७॥

गम्भीराञ्ज्यः॥५८॥

गम्भीरात् —५।१।ञ्यः —१।१।सप्तमीसमर्थाद् गम्भीर-प्रातिपदिकाद् भवार्थे ञ्यः प्रत्ययो भवति। गम्भीरे भवं गाम्भीर्यम्॥५८॥

भाषार्थ—सप्तमी समर्थ 'गम्भीर' प्रातिपदिक से भवार्थ में 'ञ्य' प्रत्यय होता है। जैसे—गम्भीरे भवं गाम्भीर्यम्॥५८॥

अव्ययीभावाच्च॥५९॥

ञ्य इत्यनुवर्त्तते।अव्ययीभावात् —५।१।च [अ.प.] ।सप्तमीसमर्थाद् अव्ययीभावसंज्ञकात् प्रातिपदिकाद् भवार्थे ञ्यः प्रत्ययो भवति।

वा०—ञ्यप्रकरणे परिमुखादिभ्य उपसंख्यानम्॥१॥

सूत्रेण सामान्येन विहितस्य प्रत्ययस्य वार्त्तिकेन नियमः क्रियते। अव्ययीभावसंज्ञकेभ्यः परिमुखादिभ्य एव ञ्यः प्रत्ययो भवति। परिमुखे भवं परिमुख्यम्। पार्य्योष्ठ्येम्। परिहनव्यम्। परिमुखादिभ्य इति किमर्थम्—उपकूलादिभ्यो मा भूत्। औपकूलः। औपशालः। वार्त्तिकानां सूत्रकालावच्छेदित्वात् सूत्रगणे वार्तिकगणः। अथ परिमुखादयः—परिमुख। पर्योष्ठ। परिहनु। पर्य्युलू। खल। परिसीर। अनुसीर। उपसीर। उपस्थल। उपकलाप। अनुपथ। अनुखड्ग। अनुतिल। अनुशीत। अनुमाज। अनुयव। अनुयूप। अनुवंश। प्रतिशाख। इति परिमुखादयः॥५९॥

भावार्थ—पूर्वसूत्र से 'ञ्य' प्रत्यय की अनुवृत्ति है। सप्तमी समर्थ अव्ययीभाव

संज्ञक प्रातिपदिकों से भवार्थ में 'ञ्य' प्रत्यय होता है।

वा०—ञ्यप्रकरणे परिमुखादिभ्य उपसंख्यानम्॥ १॥

सूत्र से अव्ययीभावों से सामान्यरूप से विहित प्रत्यय का वार्त्तिक से नियम किया गया है। अव्ययीभाव संज्ञकों में परिमुखादि प्रातिपदिकों से ही 'ञ्य' प्रत्यय होता है, अन्यों से नहीं। जैसे—परिमुखं भवं पारिमुख्यम्। पार्य्योष्ठ्यम्। पारिहनव्यम्। यहाँ परिमुखादि का परिगणन इसलिये है कि—उपकूलादि से 'ञ्य' प्रत्यय न हो—औपकूल:। औपशाल:। वार्त्तिक सूत्रों के सूत्रकालीन होने से सूत्रगण में वार्त्तिकगण आ जाता है॥५९॥

अन्त:पूर्वपदाट् ठञ्॥ ६०॥

अव्ययीभावादित्यनुवर्त्तते। अन्त:पूर्वपदात् —५।१। ठञ् —१।१। परिमुखादिभ्य नियमादन्त:पूर्वपदाद् अण् प्राप्त: स बाध्यते। सप्तमीसमर्थाद् अन्त:पूर्वपदादव्ययीभाव-संज्ञक-प्रातिपदिकाट् ठञ् प्रत्ययो भवार्थे भवति। आन्तर्वेश्मिकम्। आन्त:सद्मिकम्। आन्तर्गेहिकम्।

का०— समानस्य तदादेश्च अध्यात्मादिषु चेष्यते।
ऊर्ध्वं दमाच्च देहाच्च लोकोत्तरपदस्य च॥ १॥
मुखपार्श्वतसोरीय: कुग्जनस्य परस्य च।
ईय: कार्योऽथ मध्यस्य मणमीयौ प्रत्ययौ तथा॥ २॥
मध्यो मध्यं दिनण्चास्मात्स्थाम्नो लुगजिनात्तथा।
बाह्यो दैव्य: पांचजन्योऽथ गम्भीराञ्ज्य इष्यते॥ ३॥

समानात् समानादेश्च प्रातिपदिकाट् ठञ् प्रत्ययो भवति। समाने भव: सामानिक:। तदादे:—सामानग्रामिक:। सामानदेशिक:। अध्यात्मादिप्रातिपदिकेभ्यश्च ठञ् प्रत्यय इष्यते। आध्यात्मिकम्। आधिदैविकम्। आधिभौतिकम्। ऊर्ध्वं पूर्वपदाभ्यां दम-देहाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां ठञ् प्रत्यय:। और्ध्वदमिकम्। और्ध्वदेहिकम्। लोकोत्तरपदात् प्रातिपदिकाट् ठञ् प्रत्यय:। इह लोके भवम् ऐहलौकिकम्। पारलौकिकम्। अत्रानुशतिकादित्वादुभयपदवृद्धि:॥ १॥

मुखपार्श्वाभ्यां तसन्ताभ्यां प्रातिपदिकाभ्यामीय: प्रत्ययो भवति। छे कर्तव्ये छन्द: पूर्त्यर्थमीय: प्रत्यय:। मुखतीयम्। पार्श्वतीयम्। अव्ययानां सायं प्रातिकाद्यर्थमिति वार्तिकेन (६।४।१४४) टिलोप:। जनपरप्रातिपदिकाभ्यामीय: प्रत्ययस्तयो: कुगागमश्च। जनकीय:। परकीय:। मध्यप्रातिपदिकादीय: प्रत्यय: कार्य:। मध्ये भवो मध्यीय:। तथा मध्यप्रातिपदिकान् मणमीयौ भवत:। माध्यम:। मध्यमीय:। गहादिषु मध्यमीय इति साधितं तत्र पृथिवीमध्यस्य मध्यमादेश:। अत्र तु केवलान्मध्यशब्दान्मीयप्रत्यय:॥ २॥

मध्यशब्दो मध्यमिति मकारान्तभावमापद्यते, तस्मान्मान्ताद् दिनण् प्रत्ययश्च भवति। मध्ये भवो माध्यन्दिन उपगायति। स्थामन्शब्दान्तात् प्रातिपदिकाद् विहितस्य प्रत्ययस्य लुग् भवति। अश्वत्थामनि भवोऽश्वत्थामा। अत्र

पृषोदरादित्वात् सकारस्य तकारादेशः। तथा अजिनान्तात् प्रातिपदिकाद् विहितस्य भवार्थस्य प्रत्ययस्य लुक्। कृष्णाजिने भवः कृष्णाजिनः। उष्ट्राजिनः। सिंहाजिनः। व्याघ्राजिनः। गम्भीर शब्दाद् यथा ञ्यः प्रत्ययो भवति तथाऽस्मिन् भवार्थे-बाह्यः, दैव्यः, पांचजन्यः। इति शब्दत्रये* ञ्यः प्रत्यय इष्यते। बहिः शब्दाञ्ञ्यप्रत्ययस्तस्य टिलोपश्च। देवपञ्चजनाभ्यां च ञ्यः॥ ६०॥

भाषार्थ—पूर्वसूत्र से 'अव्ययीभावात्' की यहाँ अनुवृत्ति है। 'परिमुखादिभ्यः' इस नियम से गणपठित शब्दों से भिन्न अन्तः पूर्वपद अव्ययीभाव प्रातिपदिक से अण् प्रत्यय ही प्राप्त होता है। यह सूत्र उस अण् का अपवाद है। सप्तमीसमर्थ अव्ययीभाव संज्ञक अन्तः पूर्वपद प्रातिपदिकों से भवार्थ में ठञ् प्रत्यय होता है। जैसे—अन्तर्वेश्मनि भवम् आन्तर्वेश्मिकम्। आन्तःसद्मिकम्। आन्तर्गेहिकम्। इस सूत्र पर तीन कारिकाएँ भी दी हैं, उनका अर्थ इस प्रकार है—

१. समान शब्द से और समान शब्द जिनके आदि में हों, उन प्रातिपदिकों से भवार्थ में ठञ् प्रत्यय होता है। जैसे—समाने भवः सामानिकः। तदादि से—समानग्रामिकः। समानदेशिकः इत्यादि। तथा अध्यात्मादि प्रातिपदिकों से भवार्थ में 'ठञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—अध्यात्मनि भवमाध्यात्मिकम्। आधिदैविकम्। आधिभौतिकम्। और मकारान्त 'ऊर्ध्वम्' शब्द जिसके पूर्व हो, ऐसे दम और देह प्रातिपदिकों से ठञ् प्रत्यय होता है। जैसे—उर्ध्व दमे भवम्-और्ध्वदमिकम्। और्ध्वदेहिकम्। और लोक शब्द जिनके उत्तर पद में हो उन प्रातिपदिकों से भी 'ठञ्' प्रत्यय हो। जैसे—इह लोके भवम्—ऐहलौकिकम्। पारलौकिकम्। इन अधिदेवादि शब्दों के अनुशतिकादिगण में पाठ होने से उभयपद वृद्धि हुई है॥ १॥

२. तसि प्रत्ययान्त मुख और पार्श्व प्रातिपदिकों से भवार्थ में 'ईय' प्रत्यय होता है। 'छ' के स्थान पर ईयादेश हो जाता है, फिर 'ईय' का निर्देश कारिका में छन्दः पूर्ति के लिये ही किया गया है। जैसे—मुखतो भवं मुखतीयम्। पार्श्वतीयम्। यहाँ भसंज्ञा होने से 'अव्ययानां (६।४।१४४ वा०) से तसन्त अव्यय के टिभाग का लोप हुआ है। और जन तथा पर प्रातिपदिकों से ईय प्रत्यय और इन प्रातपदिकों को कुगागम भी होवे। जैसे—जने भवो जनकीयः। परकीयः। और मध्य प्रातिपदिक से ईय, मण, मीय प्रत्यय होते हैं। जैसे—मध्ये भवो मध्यीयः। माध्यमः। मध्यमीयः। यह मध्यमीय प्रयोग गहादि गण में भी सिद्ध किया है। वहाँ पृथिवीमध्य के स्थान पर मध्यमादेश हुआ है और यहाँ केवल 'मध्य' शब्द से 'मीय' प्रत्यय करके रूप बना है। इनमें यद्यपि शब्दभेद नहीं है, किन्तु दोनों में अर्थों का भेद है॥ २॥

३. और मध्य शब्द से भवार्थ में दिनण् प्रत्यय हो और 'मध्यम्' यह मकारान्त आदेश हो। जैसे—मध्ये भवो माध्यन्दिन उपगायति। और स्थामन् तथा अजिन शब्द जिनके अन्त में हों, उन प्रातिपदिकों से भवार्थ में विहित प्रत्यय का लुक्

---

* अत्र जयादित्येनैतत्त्रयप्रयोगसाधनाय 'गम्भीराञ्ञ्यः' (अ० ४।३।५८) सूत्रे वार्त्तिकमिदमुपन्यस्तम्—'बहिर्देवपञ्चजनेभ्यश्चेति वक्तव्यम्।' एतच्चिन्त्यमेव। महाभाष्ये कारिकयैव प्रयोगानां साधनात्।

—**अनुवादकः**

होता है। जैसे—अश्वत्थामनि भवोऽश्वत्थामा। इस शब्द में पृषोदरादि से सकार को तकारादेश हुआ है। अजिनान्त से कृष्णाजिने भवः कृष्णाजिनः। उष्ट्राजिनः। सिंहाजिनः। व्याघ्राजिनः। और जैसे गम्भीर शब्द से भवार्थ में 'ञ्य' प्रत्यय होता है, वैसे ही 'बाह्यः, दैव्यः, पांचजन्यः' प्रयोगों में भी 'ञ्य' प्रत्यय इष्ट है। बहिः शब्द में 'ञ्य' प्रत्ययसन्नियोग से टिभाग का लोप होता है। और देव, पंचजन शब्दों से 'ञ्य' प्रत्यय ही होता है॥ ६०॥

ग्रामात् पर्यनुपूर्वात्॥ ६१॥

ठञ् अनुवर्त्तते, अव्ययीभावादिति च। ग्रामात् —५।१। पर्यनुपूर्वात् —५।१। सप्तमीसमर्थात् पर्यनुपूर्वादव्ययीभावसंज्ञकाद् ग्रामात् प्रातिपदिकाद् भवार्थे 'ठञ्' प्रत्ययो भवति। अणोऽपवादः। परिग्रामं भवः पारिग्रामिकः। अनुग्रामं भव आनुग्रामिकः॥ ६१॥

यहाँ ठञ् और 'अव्ययीभावात्' की अनुवृत्ति है। सप्तमीसमर्थ परि तथा अनु जिसके पूर्व में हो, उस ग्रामान्त अव्ययीभावसंज्ञक प्रातिपदिक से भवार्थ में 'ठञ्' प्रत्यय होता है। यह 'अण्' का अपवाद है। जैसे—परिग्रामं भवः पारिग्रामिकः। अनुग्रामं भव आनुग्रामिकः॥ ६१॥

जिह्वामूलाङ्गुलेश्छः॥ ६२॥

अव्ययीभावादिति निवृत्तम्। जिह्वामूलाङ्गुलेः —५।१। छः —१।१। जिह्वामूलाङ्गुली शरीरावयवौ, ताभ्यां यतोऽपवादः। सप्तमी समर्थाभ्यां जिह्वामूलाङ्गुलिप्रातिपदिकाभ्यां भवार्थे छः प्रत्ययो भवति। जिह्वामूले भवं जिह्वामूलीयम्। अङ्गुलीयम्॥ ६२॥

भाषार्थ—यहाँ 'अव्ययीभावात्' पद निवृत्त हो गया है। जिह्वामूल तथा अङ्गुलि दोनों शरीरावयव हैं, उनसे 'यत्' प्रत्यय की प्राप्ति में यह अपवाद विधान किया है। सप्तमी समर्थ जिह्वामूल और अङ्गुलि प्रातिपदिकों से भवार्थ में 'छ' प्रत्यय होता है। जैसे—जिह्वामूले भवं जिह्वामूलीयम्। अङ्गुलीयम्॥ ६२॥

वर्गान्ताच्च॥ ६३॥

छ इत्यनुवर्त्तते। वर्गान्तात् —५।१। च [अ.प.]। वर्गान्तात् सप्तमी-समर्थात् प्रातिपदिकाद् भवार्थे छः प्रत्ययो भवति। कवर्गीयम्। चवर्गीयम्। टवर्गीयम्॥ ६३॥

भाषार्थ—यहाँ 'छ' प्रत्यय की अनुवृत्ति है। सप्तमी समर्थ वर्गान्त प्रातिपदिकों से भवार्थ में छ प्रत्यय होता है। जैसे—कवर्गे भवं कवर्गीयम्। चवर्गीयम्। टवर्गीयम्॥ ६३॥

अशब्दे यत्खावन्यतरस्याम्॥ ६४॥

वर्गान्तादित्यनुवर्त्तते। अशब्दे —७।१। यत्खौ —१।२। अन्यतरस्याम् [अ०]। अप्राप्तविभाषेयम्। पूर्वेण वर्गान्ताच्छः प्राप्तो यत्खौ विकल्प्येते। अशब्द इति प्रत्ययार्थप्रतिषेधः। सप्तमीसमर्थाद् वर्गान्तात् प्रातिपदिकाद् अशब्दे

प्रत्ययार्थेऽभिधेये विकल्पेन यत्खौ प्रत्ययौ भवतः। पक्षे छः। अक्रूरवर्गे भवोऽक्रूरवर्ग्यः। अक्रूरवर्गीणः। अक्रूरवर्गीयः। वर्गान्ताद् वृद्धादपि परविप्रतिषेधाद् यत्खावेव भवतः। वासुदेववर्ग्यः। वासुदेववर्गीणः। वासुदेववर्गीयः। अशब्द इति किम्—कवर्गीयो वर्णः॥ ६४॥

भाषार्थ—यहाँ 'वर्गान्तात्' पद की अनुवृत्ति है। यह अप्राप्त विभाषा है। पूर्वसूत्र से वर्गान्त प्रातिपदिक से छ प्रत्यय प्राप्त है, इससे यत्-ख प्रत्ययों का विकल्प किया गया है। पक्ष में 'छ' भी होता है। 'अशब्दे' इस पद से प्रत्ययार्थ का निषेध है। सप्तमीसमर्थ वर्गान्त प्रातिपदिकों से, शब्द से भिन्न प्रत्ययार्थ अभिधेय हो तो विकल्प से 'यत्' और ख प्रत्यय होते हैं। पक्ष में 'छ' होता है। जैसे—अक्रूरवर्गे भवोऽक्रूरवर्ग्यः। अक्रूरवर्गीणः। अक्रूरवर्गीयः। वृद्धसंज्ञक वर्गान्त प्रातिपदिक से परविप्रतिषेध से यत् ख प्रत्यय ही होते हैं। जैसे—वासुदेववर्ग्यः। वासुदेववर्गीणः। वासुदेववर्गीयः। 'अशब्दे' का ग्रहण इसलिये है कि—कवर्गीयो वर्णः॥ यहाँ यत्, ख न होवें॥ ६४॥

कर्णललाटात् कनलङ्कारे॥ ६५॥

कर्णललाटात्—५।१।कन्—१।१।अलङ्कारे—७।१।शरीरावयवाद् यतोऽपवादः। सप्तमीसमर्थाभ्यां कर्ण-ललाटशब्दाभ्यां भवार्थेऽलङ्कारेऽभिधेये कन् प्रत्ययो भवति। कर्णिका। ललाटिका। अलङ्कार इति किम्। कर्ण्यम्। ललाट्यम्॥ ६५॥

भाषार्थ—यह सूत्र कर्ण ललाट शब्दों के शरीरावयव होने से यत् प्रत्यय का अपवाद है। सप्तमी-समर्थ कर्ण और ललाट शब्दों से भवार्थ में अलङ्कार अभिधेय में कन् प्रत्यय होता है। जैसे—कर्णिका। ललाटिका। यहाँ 'अलङ्कार' का ग्रहण इसलिये है कि कर्ण्यम्। ललाट्यम्। यहाँ कन् न होवे॥ ६५॥

तस्य व्याख्यान इति च व्याख्यातव्यनाम्नः॥ ६६॥

तत्र भव इत्यनुवर्त्तते। तस्य —६।१। व्याख्याने —७।१। इति [अ.प.]। च [अ.प.]। व्याख्यातव्यनाम्नः —५।१। चकारग्रहणाद् भवाधिकारः समुच्चीयते। व्याख्यातव्यस्य नाम व्याख्यातव्यनाम तस्मात्। व्याख्यायतेऽदो व्याख्यानम्। तस्येति षष्ठीसमर्थाद् व्याख्यातव्यनामवाचिनः प्रातिपदिकाद् व्याख्यान इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति। व्याख्यातव्यनाम्नः सप्तमीसमर्थाद् भवार्थे च। सुपां व्याख्यानो ग्रन्थः सौपः। तैङः। कार्त्तः। सुप्सु भवोऽनुबन्धः सौपः। तैङः। कार्त्तः। व्याख्यातव्यनाम्न इति किम्—पाटलिपुत्रस्य व्याख्यानम्, अत्र न भवति। शब्दग्रन्थयोरेव व्याख्यानं विस्तरेण भवति॥ ६६॥

भाषार्थ—'तत्र भव' पदों की यहाँ अनुवृत्ति है। चकार से भवाधिकार का समुच्चय किया गया है। जिसकी व्याख्या करनी है, उसको 'व्याख्यातव्य' कहते हैं। और जो व्याख्या की जाती है वह व्याख्यान कहलाता है। षष्ठी समर्थ व्याख्या-

तव्यनाम वाची प्रातिपदिकों से व्याख्यान अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं। और सप्तमीसमर्थ व्याख्यातव्यनाम शंब्दों से भवार्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं। जैसे—सुपां व्याख्यानो ग्रन्थः सौपः। तैङः। कृतां व्याख्यानो ग्रन्थः कार्त्तः। सुप्सु भवोऽनुबन्धः सौपः। तैङः। कार्त्तः। यहाँ 'व्याख्यातव्यनाम्नः' का ग्रहण इसलिये है कि—पाटलिपुत्रस्य व्याख्यानम्। यहाँ प्रत्यय नहीं होता है। क्योंकि शब्द और ग्रन्थ का ही विस्तर से व्याख्यान होता है॥ ६६॥

बह्वचोऽन्तोदात्ताट् ठञ्॥ ६७॥

उभावप्यधिकारावनुवर्त्तेते। बह्वचः —५।१। अन्तोदात्तात् —५।१। ठञ् —१।१। षष्ठीसमर्थात् सप्तमीसमर्थाच्च बह्वचोऽन्तोदात्ताद् व्याख्यातव्यनाम्नः प्रातिपदिकाद् भव-व्याख्यानयोरर्थयोष्ठञ् प्रत्ययो भवति। षत्वणत्वयोर्व्याख्यानं षात्वणत्विकम्। षत्वणत्वयोर्भवं षात्वणत्विकम्। वार्तिकानां व्याख्यानं वार्त्तिकिकम्। षत्व-णत्व शब्दे समासस्यान्तोदात्तः। वार्त्तिकशब्दष्ठगन्तोऽन्तोदात्तः। बह्वच इति किम्—सौपम्। अन्तोदात्तादिति किम् संहिताया व्याख्यानं सांहितम्। संहिताशब्दे पूर्वपदप्रकृतिस्वरः॥ ६७॥

भाषार्थ—यहाँ भव, व्याख्यान दोनों अर्थों की अनुवृत्ति है। षष्ठी और सप्तमी-समर्थ बह्वच् अन्तोदात्त व्याख्यातव्यनाम प्रातिपदिकों से भव और व्याख्यान अर्थों में 'ठञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—षत्व-णत्वयोर्व्याख्यानं षात्वणत्विकम्। षत्व-णत्वयोर्भवं षात्वणत्विकम्। वार्तिकानां व्याख्यानं वार्त्तिकिकम्। इनमें षत्व-णत्व शब्द में समासस्य (६।१।२१७) सूत्र से अन्तोदात्त है और वार्तिक शब्द ठक्-प्रत्ययान्त कित् होने से अन्तोदात्त है। यहाँ 'बह्वचः' का ग्रहण इसलिये है कि—सौपम्। यहां बह्वच् न होने से 'ठक्' नहीं हुआ। 'अन्तोदात्त' का ग्रहण इसलिये है कि—संहिताया व्याख्यानं सांहितम्। संहिता शब्द में गति-स्वर से पूर्वपद प्रकृति स्वर होने से शेषानुदात्त है, अतः अन्तोदात्त नहीं है॥ ६७॥

क्रतुयज्ञेभ्यश्च॥ ६८॥

क्रतुयज्ञेभ्यः —५।३। च [अ.प.]। ठञ् अनुवर्त्तते। अणोऽपवादः। क्रतुवाचिभ्यो यज्ञवाचिभ्यश्च षष्ठी-सप्तमीसमर्थेभ्यो व्याख्यातव्यनामप्रातिपदिकेभ्यो भवव्याख्यानयोरर्थयोष्ठञ् प्रत्ययो भवति। क्रतुभ्यः—अग्निष्टोमस्य व्याख्यानो ग्रन्थः, आग्निष्टोमिकः। राजसूयिकः। वाजपेयिकः। यज्ञेभ्यः—नावयज्ञिकः। पाकयज्ञिकः। क्रतुभ्यो यज्ञेभ्यो वेत्येकस्मादुच्यमाने येषां क्रतुसंज्ञा यज्ञसंज्ञा वा तेभ्य एव स्याद्। द्वयोर्ग्रहणादिहापि सिद्धम्—पाञ्चौदनिकः। साप्तौदनिकः। दाशौदनिकः। शातौदनिक इत्यादि॥ ६८॥

भाषार्थ—यहाँ 'ठञ्' प्रत्यय की अनुवृत्ति है। और अन्तोदात्त न होने से सामान्य अण् प्रत्यय ही प्राप्त है, यह उसका बाधक है। क्रतुवाची और यज्ञवाची षष्ठी और सप्तमी समर्थ व्याख्यातव्यनाम प्रातिपदिकों से व्याख्यान और भव अर्थों में ठञ् प्रत्यय होता है। जैसे—क्रतुवाची से—अग्निष्टोमस्य व्याख्यानो ग्रन्थः, आग्निष्टोमिकः।

राजसूयिकः। वाजपेयिकः। यज्ञवाची से—नावयज्ञिकः। पाकयज्ञिकः। क्रतु तथा यज्ञ शब्द दोनों पर्यायवाची होने से दोनों का ग्रहण इसलिये है—जिनकी क्रतुसंज्ञा अथवा यज्ञसंज्ञा प्रसिद्ध हैं, उनमें दोनों से तथा सोमपानादि के न होने से गौण पंचौदनादि से भी प्रत्यय विधि हो जाये। इससे गौण मुख्य समस्त यज्ञार्थ प्रयुक्त शब्दों से प्रत्यय हो जाता है। जैसे—पांचौदनिकः। सातौदनिकः। दाशौदनिकः। शातौदनिकः, इत्यादि॥ ६८॥

अध्यायेष्वेवर्षे॥ ६९॥

अध्यायेषु —७।३। एव [अ.प.]। ऋषेः —५।१। ऋषिशब्दोऽत्र प्रकरणाद् ग्रन्थसहचरितो गृह्यते। अध्यायेष्वेवेति प्रत्ययार्थविशेषणम्। षष्ठी-सप्तमीसमर्थेभ्यो व्याख्यातव्यनामभ्य ऋषिप्रातिपदिकेभ्यो भवव्याख्यानेष्व-ध्यायेष्वेव ठञ् प्रत्ययो भवति। वसिष्ठसहचरितो ग्रन्थो वसिष्ठः। विश्वामित्रः। वसिष्ठस्य व्याख्यानस्तत्रभवो वा वासिष्ठिकोऽध्यायः। वैश्वामित्रिकः। अध्यायेष्वेवेति किम्—वासिष्ठी ऋक्॥ ६९॥

भाषार्थ—इस व्याख्यातव्यनाम प्रकरण में ऋषि शब्द से, साहचर्य से, ऋषिसम्बद्ध ग्रन्थ का ग्रहण किया गया है। 'अध्यायेष्वेव' शब्द प्रत्ययार्थ का विशेषण है। षष्ठी और सप्तमी समर्थ व्याख्यातव्यनाम ऋषि सहचरित ग्रन्थवाची प्रातिपदिकों से भव और व्याख्यान अर्थों में अध्याय अभिधेय हो तो 'ठञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—वसिष्ठ से सहचरित (वसिष्ठ मुनि ने जिनका प्रथम अर्थ दर्शन किया हो) ग्रन्थ वसिष्ठ कहलाता है। वसिष्ठस्य व्याख्यानस्तत्रभवो वा वासिष्ठि-कोऽध्यायः। वैश्वामित्रिकोऽध्यायः। यहाँ 'अध्यायेषु' का ग्रहण इसलिये किया है कि—अध्याय अभिधेय में ही यह प्रत्यय हो अन्यत्र नहीं। जैसे—वासिष्ठी ऋक्॥ ६९॥

पौरोडाशपुरोडाशात् ष्ठन्॥ ७०॥

पौरोडाश-पुरोडाशात् —५।१। ष्ठन् —१।१। पुरोडाशो देवताऽस्य पौरोडाशो मन्त्रः। पुरोडाशसहचरितो ग्रन्थः पुरोडाशः। सप्तमी-षष्ठीसमर्थाभ्यां व्याख्यातव्यनामभ्यां पौरोडाश-पुरोडाशप्रातिपदिकाभ्यां भवव्याख्यानयोः ष्ठन् प्रत्ययो भवति। पौरोडाशस्य व्याख्यानस्तत्र भवो वा पौरोडाशिकः। पौरोडाशिकी। पुरोडाशिकः। पुरोडाशिकी। षित्करणं ङीषर्थम्। अस्मिन् प्रकरणे भव-व्याख्यानयोर्युगपदाधिकारष्ठञादिभिरणादिबाधनार्थः॥ ७०॥

भाषार्थ—पुरोडाश शब्द हवि विशेष के लिए रूढ है। वह देवता जिसका हो वह मन्त्र पौरोडाश कहलाता है। और पुरोडाशसहचरित ग्रन्थ पुरोडाश कहलाता है। षष्ठी और सप्तमी समर्थ व्याख्यातव्यनाम पौरोडाश और पुरोडाश प्रातिपदिकों से व्याख्यान और भव अर्थों में 'ष्ठन्' प्रत्यय होता है। पौरोडाशस्य व्याख्यानस्तत्र भवो वा पौरोडाशिकः। पौरोडाशिकी। पुरोडाशिकः। पुरोडाशिकी। षित्करण स्त्रीलिंग में 'ङीष्' प्रत्यय के लिये है। इस प्रकरण में भव और व्याख्यान का एक साथ

अधिकार इसलिये किया है कि ये ठञादि प्रत्यय सामान्य अणादि के अपवाद हो सकें॥७०॥

छन्दसो यदणौ॥७१॥

छन्दसः —५।१। यदणौ —१।२। सप्तमी-षष्ठीसमर्थाद् व्याख्यातव्य-नाम्नः छन्दसः प्रातिपदिकाद् यत्-अणौ प्रत्ययौ [भव-व्याख्यानयोरर्थयोः] भवतः। छन्दसि भवश्छन्दसो व्याख्यानं वा छन्दस्यः। छान्दसः। वक्ष्यमाणसूत्रेण द्व्यच् इति ठकि प्राप्ते वचनम्॥७१॥

भाषार्थ—सप्तमी और षष्ठी समर्थ व्याख्यातव्यनाम छन्दस् प्रातिपदिक से भव और व्याख्यान अर्थों में यत् तथा अण् प्रत्यय होते हैं। जैसे—छन्दसि भवश्छन्दसो व्याख्यानं वा छन्दस्यः। छान्दसः। इससे अगले सूत्र से छन्दस् शब्द के द्व्यच्क होने से 'ठक्' प्रत्यय की प्राप्ति में यह विधान किया है॥७१॥

द्व्यजृद्ब्राह्मणर्क्प्रथमाध्वरपुरश्चरणनामाख्याताट् ठक्॥७२॥

द्व्यजृद्......नामाख्यातात् —५।१।ठक् —१।१।सप्तमी-षष्ठीसमर्थेभ्यो व्याख्यातव्यनामद्व्यजादि-प्रातिपदिकेभ्यो भवव्याख्यानयोरर्थयोष्ठक् प्रत्ययो भवति। द्व्यच्—वेदस्य व्याख्यानो ग्रन्थो वैदिकः। इष्टेर्व्याख्या ऐष्टिकः। ऋत्—प्रशासितुर्व्याख्यानं तत्रभवो वा प्रशासितृकः। पांचहोतृकः। ब्राह्मणिकः। आर्चिकः। प्राथमिकः। आध्वरिकः। पौरश्चरणिकः।

वा०—नामाख्यातग्रहणं संघात-विगृहीतार्थम्॥१॥

समस्तान्नामाख्यातशब्दात् पृथक् पृथगपि ठक् स्यादित्यर्थः। नामिकः। आख्यातिकः। नामाख्यातिकः। अन्यथा नामशब्दाद् द्व्यच् इत्येव सिद्धम्। पुनर्वचनं संघातादपि यथास्यात्॥७२॥

भाषार्थ—सप्तमी और षष्ठी समर्थ व्याख्यातव्यनाम द्व्यच्, ऋकारान्त, ब्राह्मण, ऋच्, प्रथम, अध्वर, पुरश्चरण, नामाख्यात, इन प्रातिपदिकों से भव और व्याख्यान अर्थों में 'ठक्' प्रत्यय होता है। जैसे—द्व्यच्—वेदस्य व्याख्यानो ग्रन्थो वैदिकः। ऐष्टिकः। ऋकारान्त—प्रशासितुर्व्याख्यानं तत्र भवो वा प्रशासितृकः। पांचहोतृकः। ब्राह्मणिकः। आर्चिकः। प्राथमिकः। आध्वरिकः। पौरश्चरणिकः।

वा०—नामाख्यातग्रहणं संघात-विगृहीतार्थम्॥

यहाँ 'नामाख्यात' समस्त शब्द से तथा पृथक् पृथक् नाम और आख्यात शब्दों से 'ठक्' प्रत्यय होता है। जैसे—नामिकः। आख्यातिकः। नामाख्यातिकः। इसका ज्ञापक यह है कि नाम शब्द द्व्यच् है, अतः ठक् प्रत्यय प्राप्त ही था, पुनः नाम शब्द का पाठ समस्त शब्द से भी प्रत्यय विधानार्थ है॥७२॥

अण् ऋगयनादिभ्यः॥७३॥

अण् —१।१। ऋगयनादिभ्यः —५।३। अणित्यधिकारादेव स्यात्, पुनर्ग्रहणं बाधकानां ठञादीनां बाधनार्थम्। सप्तमी-षष्ठीसमर्थेभ्यो व्याख्या-तव्यनाम-ऋगयनादिप्रातिपदिकेभ्यो भव-व्याख्यानयोरण् प्रत्ययो भवति।

ऋगयनस्य व्याख्यानं तत्र भवो वा आर्गयन:। पादव्याख्यान:। केचिदत्र द्व्यचस्तेभ्यष्ठक् प्राप्तः, ये च बह्वचोऽन्तोदात्तास्तेभ्यष्ठञ्, तयोर्बाधकोऽयं योग:। अथ ऋगयनादय:—ऋगयन। पदव्याख्यान। छन्दोमान। छन्दोभाषा। छन्दोविचिति। न्याय। पुनरुक्त। निरुक्त। व्याकरण। निगम। वास्तुविद्या। अङ्गविद्या। क्षत्रविद्या। विद्या। उत्पात। उत्पाद। उद्याव। संवत्सर। मुहूर्त्त। निमित्त। उपनिषद्। शिक्षा। भिक्षा। इति ऋगयनादिगण:॥ ७३॥

भाषार्थ—अण् प्रत्यय अधिकार होने से प्राप्त था, उसका पुनर्ग्रहण इसलिये है कि 'अण्' प्रत्यय के बाधक ठञादि प्रत्ययों का बाधन इससे हो जावे। सप्तमी और षष्ठी समर्थ व्याख्यातव्यनाम ऋगयनादि प्रातिपदिकों से भव और व्याख्यान अर्थों में 'अण्' प्रत्यय होता है। जैसे—ऋगयनस्य व्याख्यानं तत्र भवो वा आर्गयन:। पादव्याख्यान: इत्यादि। इस गण में जो द्व्यच् शब्द हैं, उनसे 'ठक्' प्रत्यय प्राप्त था और जो बह्वच् अन्तोदात्त शब्द हैं, उनसे ठञ् प्रत्यय। यह अण् दोनों प्रत्ययों का बाधक है॥ ७३॥

तत आगत:॥ ७४॥

भव-व्याख्यानावधिकारौ निवृत्तौ। तत: —५।१। आगत: —१।१। तत इति पंचमीसमर्थात् प्रातिपदिकाद् आगत इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति। उत्सेभ्य आगत औत्स:। दैत्य:। आदित्य:। स्त्रैण:। पौंस्न:। राष्ट्रादागतो राष्ट्रिय:। ग्राम्य:। ग्रामीण:॥ ७४॥

भाषार्थ—[अर्थान्तर का निर्देश होने से] भव और व्याख्यान के अधिकार यहाँ निवृत्त हो गये हैं। पञ्चमी समर्थ प्रातिपदिकों से आगत=आगमन कर्त्तृक अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं। जैसे—उत्सेभ्य आगत औत्स:। दैत्य:। आदित्य:। स्त्रैण:। पौंस्न:। राष्ट्रादागतो राष्ट्रिय:। ग्राम्य:। ग्रामीण:। इत्यादि॥ ७४॥

ठगायस्थानेभ्य:॥ ७५॥

ठक् —१।१। आयस्थानेभ्य: —५।३। बहुवचननिर्देश: स्वरूपविधि-निवृत्त्यर्थ:। आयस्य लाभस्य स्थानानि=आयस्थानानि, तेभ्य:। पञ्चमीसमर्थेभ्य आयस्थानेभ्य: प्रातिपदिकेभ्य आगत इत्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति। शुल्कशालाया आगतं धनम्, शौल्कशालिकम्। विपणेरागतं वैपणिकम्। आयस्थानेभ्यो वृद्धेभ्योऽपि छं बाधित्वा ठगेव भवति। आपणादागतं धनमापणिकम्। हाटकादागतं हाटकिकम्॥ ७५॥

भाषार्थ—सूत्र में बहुवचन का निर्देश स्वरूपविधि निरास के लिये है। आयस्थान से अभिप्राय है जिन स्थानों से लाभ=स्वामिग्राह्यभाग=आमदनी होती है। पंचमी समर्थ आयस्थानवाची प्रातिपदिकों से आगत अर्थ में 'ठक्' प्रत्यय होता है। जैसे—शुल्कशालाया आगतं धनं शौल्कशालिकम्। विपणेरागतं वैपणिकम्। वृद्धसंज्ञक और आयस्थानवाची शब्दों से पर विप्रतिषेध से 'छ' प्रत्यय का अपवाद 'ठक्' ही होता है। जैसे—आपणादागतं धनम् आपणिकम्। हाटकादागतं हाटकिकम्

इत्यादि ॥ ७५ ॥

शुण्डिकादिभ्योऽण् ॥ ७६ ॥

शुण्डिकादिभ्यः —५।३। अण् —१।१। आयस्थानेभ्यष्ठकोऽपवादः अण् ग्रहणं बाधक-बाधनार्थम्। पंचमीसमर्थेभ्यः शुण्डिकादिप्रातिपदिकेभ्य आगतार्थेऽण् प्रत्ययो भवति। शुण्डिकादागतः शौण्डिकः। कार्कणः। अथ शुण्डिकादयः —शुण्डिक। कृकण। कृपण। स्थण्डिल। उदपान। उपल। तीर्थ। भूमि। तृण। पर्ण। इति शुण्डिकादिः॥ ७६ ॥

भाषार्थ—शुण्डिकादि से आयस्थान होने से ठक् प्राप्त है, यह उसका अपवाद है। अण् का अधिकार होने पर भी पुनर्ग्रहण बाधकों के बाधनार्थ है। पंचमी समर्थ गणपठित शुण्डिकादि प्रातिपदिकों से आगत अर्थ में अण् प्रत्यय होता है। जैसे—शुण्डिकादागतः शौण्डिकः। कार्कणः इत्यादि ॥ ७६ ॥

विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो वुञ् ॥ ७७ ॥

विद्यायोनिसंबन्धेभ्यः —५।३। वुञ् —१।१। विद्यायोन्योः सम्बन्धो येषु तेभ्यः। सहसुपेति समासः। पंचमीसमर्थेभ्यो विद्याकृतसम्बन्धेभ्यो योनिकृतसम्बन्धेभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्य आगतार्थे वुञ् प्रत्ययो भवति। अणोऽपवादः। उपाध्यायादागतम्=औपाध्यायकम्। वृद्धादपि परत्वाद् वुञ्। आचार्यकम्। योनिसम्बन्धेभ्यः—पैतामहकम्। मातुलकम्। मातामहकम्। श्वाशुरकम्॥ ७७ ॥

भाषार्थ—''विद्यायोन्योः सम्बन्धो येषु तेभ्यः'' यहाँ 'सहसुपा' (२।१।४) सूत्र से समास हुआ है। पंचमी समर्थ विद्याकृत सम्बन्धवाची तथा योनिकृत सम्बन्धवाची प्रातिपदिकों से आगत अर्थ में 'वुञ्' प्रत्यय होता है। यह 'अण्' प्रत्यय का अपवाद है। जैसे—उपाध्यायादागतम् औपाध्यायकम्। वृद्ध संज्ञक विद्या-योनिसम्बन्धवाची शब्दों से पर विप्रतिषेध से 'छ' न होकर 'वुञ्' प्रत्यय ही होता है। जैसे—आचार्यकम्। योनिकृतसम्बन्धवाची—पैतामहकम्। मातुलकम्। माता-महकम्। श्वाशुरकम् इत्यादि ॥ ७७ ॥

ऋतष्ठञ् ॥ ७८ ॥

विद्यायोनिसम्बन्धेभ्य इत्यनुवर्त्तते। ऋतः —५।१। ठञ् —१।१। पूर्वेण वुञ् प्राप्तस्तस्यापवादः। विद्यायोनिसम्बन्धवाचिभ्यः पंचमीसमर्थेभ्य ऋकारान्तप्रातिपदिकेभ्य आगतार्थे ठञ् प्रत्ययो भवति। छप्रत्ययादपि विप्रतिषेधाट् ठञ्। होतुरागतं हौतृकम्। शास्तृकम्। योनिसम्बन्धेभ्यः—स्वसुरागतं स्वासृकम्। भ्रातृकम्। मातृकम्॥ ७८ ॥

भाषार्थ—यहाँ 'विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यः' पद की अनुवृत्ति है। पूर्वसूत्र से प्राप्त 'वुञ्' का यह अपवाद है। पंचमी समर्थ विद्यासम्बन्धवाची और योनिसम्बन्धवाची ऋकारान्त प्रातिपदिकों से आगतार्थ में 'ठञ्' प्रत्यय होता है। वृद्ध संज्ञकों से प्राप्त 'छ' प्रत्यय का भी यह पर विप्रतिषेध से अपवाद है। जैसे—होतुरागतं हौतृकम्। [शास्तुरागतं] शास्तृकम्। योनिसम्बन्धवाची—स्वसुरागतं स्वासृकम्। भ्रातृकम्।

मातृकम् इत्यादि॥७८॥

पितुर्यच्च॥७९॥

ठञ् चादनुवर्त्तते। पितुः —५।१। यत् —१।१। च [अ.प.]। ठञोऽपवादः। पंचमी-समर्थात् पितृप्रातिपदिकाद् यत्-ठञौ प्रत्ययौ भवत आगत इत्यस्मिन्नर्थे। पितुरागतं पित्र्यम्। पैतृकम्॥७९॥

भाषार्थ—यहाँ चकार से 'ठञ्' प्रत्यय की अनुवृत्ति है। पूर्वसूत्र से ठञ् की प्राप्ति में यह विधान किया है। पंचमीसमर्थ 'पितृ' प्रातिपदिक से आगत अर्थ में यत् और ठञ् प्रत्यय होते हैं। जैसे—पितुरागतं पित्र्यम्*। पैतृकम्॥७९॥

गोत्रादङ्कवत्॥८०॥

गोत्रात् —५।१। अङ्कवत् [अ.प.]। अतिदेशोऽयम्। अङ्क इवाङ्कवत्। सप्तमीसमर्थाद् वतिः। गोत्रप्रत्ययान्तात् पंचमीसमर्थात् प्रातिपदिकाद् आगतार्थेऽङ्कवद् वुञ् प्रत्ययो भवति। यथा औपगवानामङ्क इति विगृह्य औपगवकः। कापटवकः। नाडायनकः, इत्येतद् भवति। तथैव औपगवादागतम्। औपगवकम्। कापटवकम्। नाडायनकम्॥८०॥

भाषार्थ—यह अतिदेश सूत्र है। अङ्क इव=अङ्कवत्, इसमें सप्तमी समर्थ से वति प्रत्यय है। पंचमीसमर्थ गोत्रप्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से आगत अर्थ में अङ्क** अर्थ की भाँति 'वुञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—'औपगवानामङ्क—यह विग्रह करके औपगवकः, कापटवकः, नाडायनकः आदि प्रयोग बनते हैं, वैसे ही औपगवादागतम्—औपगवकम्, कापटवकम्, नाडायनकम् [इत्यादि प्रयोग वुञ्—प्रत्ययान्त सिद्ध होते हैं।]॥८०॥

हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः॥८१॥

हेतु-मनुष्येभ्यः —५।३। अन्यतरस्याम् [अ०]। रूप्यः —१।१। अप्राप्तविभाषेयम्। नैव हेतु-मनुष्येभ्यो रूप्यः केनापि प्राप्तः। हेतुवाचिभ्यो मनुष्यवाचिभ्यश्च पंचमीसमर्थेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो विकल्पेन रूप्यः प्रत्ययो भवति, आगत इत्यर्थे। समादागतं समरूप्यम्। विषमरूप्यम्। पक्षे गहादित्वाच्छः। समीयम्। विषमीयम्। देवदत्तरूप्यम्। देवदत्तीयम्। दैवदत्तम्। पक्षे वा नामधेयस्य वृद्धसंज्ञा, तेन-छस्य विकल्पः। परविप्रतिषेधाद् वृद्धादपि मनुष्याद्

---

* पित्र्यम्=पितृ+यत्। 'रीङ् ऋतः' (अ० ७।४।२७) सूत्र से रीङ्। 'यस्येति च' (अ० ६।४।१४८) सूत्र से ईकार लोप हुआ है।

** 'तस्येदम्' (४।३।११९) सूत्र के अधिकार में 'गोत्रचरणाद् वुञ्' (अ० ४।३।१२५) तथा 'संघांकलक्षणेष्वञ्यञिञामण्' (अ० ४।३।१२६) क्रमशः सूत्र पाठ है। इनमें अंक अर्थ में अण् प्रत्यय का विधान होने से अण् का ही अतिदेश प्राप्त होता है। इसका समाधान यह समझना चाहिये। जैसे 'काकेभ्यो दधि रक्ष्यताम्' में काक शब्द दधि के उपघातक बिल्ली आदि का भी उपलक्षण है वैसे ही यहाँ 'अङ्क' शब्द 'तस्येदम्' अधिकार का उपलक्षण है। इससे 'गोत्रचरणाद् (४।३।१२५) सूत्र का भी अतिदेश होता है। —अनुवादक

रूप्य एव भवति। वायुदत्तरूप्यम्। वायुदत्तीयम्॥ ८१॥

भाषार्थ—यह अप्राप्त विभाषा है। क्योंकि हेतुवाची और मनुष्यवाचियों से किसी सूत्र से भी 'रूप्य' प्रत्यय प्राप्त नहीं है। पंचमीसमर्थ हेतुवाची और मनुष्यवाची प्रातिपदिकों से आगत अर्थ में विकल्प से रूप्य प्रत्यय होता है। जैसे—समादागतं समरूप्यम्। विषमरूप्यम्। पक्ष में गहादिगण में इन शब्दों का पाठ होने से 'छ' प्रत्यय होता है। समीयम्। विषमीयम्। मनुष्यवाची-देवदत्तरूप्यम्। देवदत्तीयम्। दैवदत्तम्। मनुष्यवाची शब्दों में ''वा नामधेयस्य'' वार्त्तिक से विकल्प से वृद्धसंज्ञा होने से 'छ' प्रत्यय तथा वृद्ध संज्ञा के अभाव में 'अण्' प्रत्यय होता है। परविप्रतिषेध से वृद्धसंज्ञक मनुष्यवाची शब्दों से 'रूप्य' प्रत्यय ही विकल्प से होता है। जैसे—वायुदत्तरूप्यम्। वायुदत्तीयम्॥ ८१॥

मयट् च॥ ८२॥

हेतुमनुष्येभ्य इत्यनुवर्त्तते। मयट् —१।१। च [अ०प०]। पृथग्योगः संख्यातानुदेशनिवृत्त्यर्थः। पंचमीसमर्थेभ्यो हेतु-मनुष्यवाचिप्रातिपदिकेभ्य आगतार्थे मयट् प्रत्ययो भवति। सममयम्। विषममयम्। देवदत्तमयम्। वायुदत्तमयम्। टित्करणं ङीबर्थम्॥ ८२॥

भाषार्थ—यहाँ पूर्वसूत्र से 'हेतुमनुष्येभ्यः' पद की अनुवृत्ति है। पृथक् सूत्र बनाने का प्रयोजन संख्यातानुदेश की निवृत्ति करना है। पंचमी समर्थ हेतुवाची और मनुष्यवाची प्रातिपदिकों से आगतार्थ में 'मयट्' प्रत्यय होता है। जैसे—सममयम्। विषममयम्। देवदत्तमयम्। वायुदत्तमयम् इत्यादि। प्रत्यय में टित्करण स्त्रीलिंग में ङीप् के लिये है। सममयी इत्यादि॥ ८२॥

प्रभवति॥ ८३॥

तत इत्यनुवर्त्तते। आगत इति निवृत्तम्। प्रभवति [क्रि०प०]। पंचमीसमर्थान् ङ्याप्प्रातिपदिकात् प्रभवतीत्यस्याः क्रियायाः कर्त्तरि यथाविहितं प्रत्ययो भवति। हिमालयात् प्रभवति हैमालयी गङ्गा। सुमेरोः प्रभवति सौमेरवी। राष्ट्रात् प्रभवति राष्ट्रियः। ग्राम्यः। ग्रामीणः॥ ८३॥

भाषार्थ—यहाँ 'ततः' पद की अनुवृत्ति है। यहाँ 'आगतः' पद 'प्रभवति' पद अर्थान्तर का निर्देश होने से निवृत्त हो गया है। पंचमी समर्थ ङ्याप् प्रातिपदिकों से प्रभवति=उत्पन्न होनेवाली क्रिया के कर्त्तृवाच्य में यथाविहित प्रत्यय होता है। जैसे—हिमालयात् प्रभवति हैमालयी गङ्गा। सुमेरोः प्रभवति सौमेरवी। राष्ट्रात् प्रभवति राष्ट्रियः। ग्राम्यः। ग्रामीणः इत्यादि॥ ८३॥

विदूराञ् ञ्यः॥ ८४॥

विदुरात् —५।१। ञ्यः —१।१। **पंचमीसमर्थाद् विदूरप्रातिपदिकात् प्रभवतीत्यस्याः क्रियायाः कर्त्तरि ञ्यः प्रत्ययो भवति। विदूरात् प्रभवति वैदूर्य्यो मणिः।**

का०— वालवायो विदूरं वा प्रकृत्यन्तरमेव वा।
न वै तत्रेति चेद् ब्रूयाज् जित्वरीवदुपाचरेत्॥ १॥

लौकिके प्रयोगे वैदूर्य्यं यस्य मणेर्नाम, स वालवाय-नामकात् पर्वतात् प्रभवति। विदूरशब्दो नगरवाची पर्वतवाची च। विदूर-नगरे च तस्य मणेः संस्कारो भवति। अत इदं विचार्य्यते कथं विदूर-शब्दात् प्रभवे प्रत्ययः स्यादिति। समाधीयते। वेति निश्चयेन वालवाय शब्दस्य स्थाने विदूर आदेशो भवति अथवा वालवायस्य पर्य्यायः प्रकृत्यन्तरं विदूर शब्दः। (न वै तत्रेति चे०) तत्रायं सन्देहः। वालवायसंनिहिता वालवायं विदूर इति नैव कथयन्ति। पुनः कथं समाधानं स्यात्? (जित्वरीवदुपाचरेत्) यथा वणिजो वाराणसीं जित्वरीमुपाचरन्ति। एवं वैयाकरणा वालवायं विदूर इत्युपाचरन्ति॥ ८४॥

भाषार्थ—पंचमी समर्थ विदूर प्रातिपदिक से प्रभवति=उत्पन्न होनेवाली क्रिया के कर्त्तृवाच्य में 'ञ्य' प्रत्यय होता है। जैसे—विदूरात् प्रभवति वैदूर्यो मणिः।

का०— वालवायो विदूरं वा प्रकृत्यन्तरमेव वा।
न वै तत्रैति चेद् ब्रूयाज् जित्वरीवदुपाचरेत्॥ १॥

लोक में जिस मणि को वैदूर्य्य कहते हैं, वह वालवाय नामक पर्वत से उत्पन्न होती है। विदूर शब्द नगरवाची तथा पर्वतवाची है। परन्तु विदूरनगर में उस मणि का संस्कार किया जाता है। इसलिये यह विचारणीय है कि विदूर शब्द से प्रभव अर्थ में प्रत्यय कैसे हो? क्योंकि वैदूर्य्यमणि की उत्पत्ति तो वालवाय पर्वत से होती है।

इसका समाधान यह है कि निश्चय से वालवाय शब्द के स्थान में विदूर आदेश होता है अथवा वालवाय का विदूरशब्द पर्यायवाची है। (न वै तत्रेति चे०) इसमें यह सन्देह अवश्य होता है कि वालवाय पर्वत के आस-पास रहनेवाले लोग वालवाय को विदूर नहीं कहते। फिर पर्यायवाची कैसे माना जा सकता है। (जित्वरीवदुपाचरेत्) यद्यपि यह ठीक है कि व्यवहार में लोग पर्यायवाची मानकर व्यवहार नहीं करते। किन्तु जैसे वाराणसी को केवल व्यापारीवर्ग ही जित्वरी शब्द से व्यवहार करता है, दूसरे नहीं। इसी प्रकार वैयाकरण सम्प्रदाय में परम्परा से 'वालवाय' को 'विदूर' शब्द से कहते चले आये हैं॥ ८४॥

तद् गच्छति पथिदूतयोः॥ ८५॥

तत इति निवृत्तं प्रभवतीति च। तत् —२।१। गच्छति [क्रि०प०]। पथिदूतयोः —७।२। द्वितीयासमर्थात् प्रातिपदिकाद् गच्छतीति क्रियायाः पथिदूतयोः कर्त्रोरभिधेययोर्यथाविहितं प्रत्ययो भवति। पाठशालां गच्छति पन्था दूतो वा पाठशालीयः। वाराणसीं गच्छति पन्था दूतो वा वाराणसेयः। नद्यादित्वाड् ढक्। ऐन्द्रप्रस्थः॥ ८५॥

भाषार्थ—'ततः' तथा 'प्रभवति' पदों की यहाँ अनुवृत्ति नहीं है। द्वितीया-समर्थ प्रातिपदिकों से गच्छति=जानेवाली क्रिया का पन्था और दूत कर्ता वाच्य हों तो यथाविहित प्रत्यय होते हैं। जैसे—पाठशालां गच्छति पन्था दूतो वा पाठशालीयः। वाराणसीं गच्छति पन्था दूतो वा वाराणसेयः। यहाँ नद्यादि में पाठ

होने से 'ढक्' प्रत्यय हुआ है। ऐन्द्रप्रस्थ: इत्यादि॥ ८५॥

अभिनिष्क्रामति द्वारम्॥ ८६॥

तदित्यनुवर्त्तते। अभिनिष्क्रामति [क्रि.प.]। द्वारम् —१।१। अभिनिष्क्रमणं चेतनस्य भवति। अत्राचेतने चेतनवदुपचाराद् द्वारेण सम्बन्ध्यते। द्वितीयासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अभिनिष्क्रामति क्रियाया: कर्तरि द्वारेऽभिधेये यथाविहितं प्रत्ययो भवति। वाराणसीमभिनिष्क्रामति द्वारम् वाराणसेयं द्वारम्। इन्द्रप्रस्थमभिनिष्क्रामति ऐन्द्रप्रस्थम्। लावपुरम्। अभिशब्द आभिमुख्ये वर्त्तते। निष्क्रामति निस्सरतीत्यर्थ:॥ ८६॥

भाषार्थ—यहाँ पूर्वसूत्र से 'तत्' पद की अनुवृत्ति है। निकलना, जानादि व्यवहार चेतनों में होता है। यहाँ अचेतन 'द्वार' में चेतन की भाँति जो निर्देश है वह औपचारिक (गौण) प्रयोग है। द्वितीया समर्थ प्रातिपदिकों से अभिनिष्क्रमण क्रिया का 'द्वार' कर्ता वाच्य हो तो यथाविहित प्रत्यय होते हैं। जैसे—वाराणसी-मभिनिष्क्रामति द्वारं वाराणसेयं द्वारम्। इन्द्रप्रस्थमभि निष्क्रामति ऐन्द्रप्रस्थम्। लावपुरम् इत्यादि। 'अभि' शब्द आभिमुख्य अर्थ में है। 'निष्क्रामति' का अर्थ निकलना है॥ ८६॥

अधिकृत्य कृते ग्रन्थे॥ ८७॥

तदित्यनुवर्त्तते। अधिकृत्य [अ.प.]। कृते —७।१। ग्रन्थे —७।१। अधिकृत्य क्रियाया: कर्मणो द्वितीयासमर्थात् प्रातिपदिकात् कृते ग्रन्थ इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति। वर्णाश्रममधिकृत्य कृतो ग्रन्थो वार्णाश्रम:। वेदान्तमधिकृत्य कृतो ग्रन्थो वैदान्त:। सुभद्रामधिकृत्य कृतो ग्रन्थ: सौभद्र:॥ ८७॥

द्वितीया समर्थ अधिकृत्य (विषय बनाकर) क्रिया के कर्मभूत प्रातिपदिकों से कृते ग्रन्थे-ग्रन्थ बनाने अर्थ में यथाविहितं प्रत्यय होते हैं। जैसे—वर्णाश्रम-मधिकृत्य कृतो ग्रन्थो वार्णाश्रम:। वेदान्तमधिकृत्य कृतो ग्रन्थो वैदान्त:। सुभद्रामधि-कृत्य कृतो ग्रन्थ: सौभद्र: इत्यादि॥ ८७॥

शिशुक्रन्द यमसभद्वन्द्वेन्द्रजननादिभ्यश्छ:॥ ८८॥

तदित्यनुवर्त्तते। शिशु.....जननादिभ्य: —५।३। छ: —१।१। द्वितीया-समर्थेभ्य: शिशुक्रन्दादिभ्य: प्रातिपदिकेभ्योऽधिकृत्य कृते ग्रन्थ इत्येतस्मिन् विषये छ: प्रत्ययो भवति। अणोऽपवाद:। शिशूनां बालानां क्रन्दनं शिशुक्रन्द:। शिशुक्रन्दमधिकृत्य कृतो ग्रन्थ: शिशुक्रन्दीय:। यमस्य सभा यमसभम्। 'सभा राजामनुष्य पूर्वेति' नपुंसकत्वम्। यमसभमधिकृत्य कृतो ग्रन्थो यमसभीय:। द्वन्द्व:—अष्टाध्यायी-महाभाष्यमधिकृत्य कृतो ग्रन्थोऽष्टाध्यायीमहाभाष्यीय:। शब्दार्थसम्बन्धीय:। इन्द्रजननादिभ्य:—इन्द्रजननमधिकृत्य कृतो ग्रन्थ इन्द्र-जननीय:। सीतान्वेषणीय:। प्रद्युम्नागमनीय:। इन्द्रजननाद्याकृतिगण:। दृष्टप्रयोगेषु छ: कर्त्तव्य:।

वा०—द्वन्द्वे देवासुरादिभ्यः प्रतिषेधः॥ १॥

देवासुरादिभ्यः कृतद्वन्द्वेभ्यश्छः प्रतिषिध्यतेऽधिकारादण् भवत्येव। देवाश्चासुराश्च दैवासुरम्। राक्षोऽसुरम्। दैवासुरी। राक्षोऽसुरी॥ ८८॥

भाषार्थ—'तत्' पद की यहाँ अनुवृत्ति है। द्वितीयासमर्थ शिशुक्रन्दादि प्रातिपदिकों से अधिकृत्य कृते ग्रन्थे=जिस विषय को लेकर ग्रन्थ रचा जाये, उस अर्थ में 'छ' प्रत्यय होता है। यह 'अण्' प्रत्यय का अपवाद है। जैसे—शिशुक्रन्दमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः शिशुक्रन्दीयः। यमस्य सभा यमसभम्। यहाँ 'सभा राजामनुष्यपूर्वा' (अ० २।४।२३) सूत्र से नपुंसक होकर ह्रस्व हुआ है। यमसभमधिकृत्य कृतो ग्रन्थो यमसभीयः। द्वन्द्व अष्टाध्यायीमहाभाष्यमधिकृत्य कृतो ग्रन्थोऽष्टाध्यायीमहाभाष्यीयः। शब्दार्थसम्बन्धीयः। इन्द्रजननादिभ्यः—इन्द्रजननमधिकृत्य कृतो ग्रन्थ इन्द्रजननीयः। सीतान्वेषणीयः। प्रद्युम्नागमनीयः। यह इन्द्रजननादि आकृतिगण है। लोक में ऐसे प्रयोगों में यथादृष्ट 'छ' प्रत्यय करना चाहिये।

वा०—द्वन्द्वे देवासुरादिभ्यः प्रतिषेधः॥ २॥

यह देवासुरादि द्वन्द्व समासों से सूत्र से प्राप्त 'छ' प्रत्यय का निषेध है। इनसे सामान्य अधिकार प्राप्त 'अण्' प्रत्यय ही होता है। जैसे—देवाश्चासुराश्च दैवासुरम्। राक्षोऽसुरम्। दैवासुरी। राक्षोऽसुरी। इत्यादि॥ ८८॥

सोऽस्य निवासः॥ ८९॥

सः —१।१। अस्य —६।१। निवासः —१।१। निवसन्त्यस्मिन्निति निवासः। स इति प्रथमासमर्थाद् अस्येति षष्ठीसमानाधिकरणप्रातिपदिकान् निवासार्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति। स्रुघ्नो निवासोऽस्य स्रौघ्नः। माथुरः। ग्रामो निवासोऽस्य ग्राम्यः। ग्रामीणः। ग्रामेयकः। वाराणसेयः॥ ८९॥

भाषार्थ—'निवास' शब्द में अधिकरण में घञ् प्रत्यय है—'निवसन्त्यस्मिन्निति निवासः' प्रथमासमर्थ से 'अस्य' इस षष्ठी समानाधिकरण प्रातिपदिकों से निवास अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं। जैसे—स्रुघ्नो निवासोऽस्य स्रौघ्नः। माथुरः। ग्रामो निवासोऽस्य ग्राम्यः। ग्रामीणः। ग्रामेयकः। वाराणसेयः इत्यादि॥ ८९॥

अभिजनश्च॥ ९०॥

सोऽस्येत्यनुवर्त्तते। अभिजनः —१।१। च [अ.प.]। पूर्वस्मात् कुलनिवास उच्यते। प्रथमासमर्थादस्येति षष्ठीसमानाधिकरणात् प्रातिपदिकाद् अभिजन इत्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति। इन्द्रप्रस्थोऽभिजनोऽस्य ऐन्द्रप्रस्थः। लावपुरः। स्रौघ्नः। ग्राम्यः। ग्रामीणः। ग्रामेयकः। वाराणस्यभिजनोऽस्य वाराणसेयः। नद्यादित्वाद् ढक्।

भा०—'अथ निवासाभिजनयोः को विशेषः। निवासो नाम यत्र संप्रत्युष्यते। अभिजनो नाम यत्र पूर्वैरुषितम्॥'

अयमेव विशेष उक्तः। स्पष्टम्। योगविभाग उत्तरार्थः॥ ९०॥

भाषार्थ—पूर्वसूत्र से 'सोऽस्य' पदों की यहाँ अनुवृत्ति है। जहाँ पहले से

कुल का निवास हो उसे अभिजन कहते हैं। प्रथमासमर्थ 'अस्य' इस षष्ठीसमानाधिकरण प्रातिपदिकों से अभिजन अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं। जैसे—इन्द्रप्रस्थोऽभिजनोऽस्य ऐन्द्रप्रस्थः। लावपुरः। स्रौघ्नः। ग्राम्यः। ग्रामीणः। ग्रामेयकः। वाराणसी अभिजनोऽस्य वाराणसेयः। यह नद्यादि गणीय होने से ठक् प्रत्यय हुआ है।

निवास और अभिजन में क्या भेद है? इसका उत्तर महाभाष्यकार ने दिया है—(अथ निवासा०) निवास उसे कहते हैं, जहाँ वर्त्तमान समय में रहते हैं। और अभिजन उसे कहते हैं जहाँ पूर्वज रहे हैं। योग का पृथक्करण उत्तरार्थ किया है॥९०॥

आयुधजीविभ्यश्छः पर्वते॥९१॥

सोऽस्याभिजन इत्यनुवर्त्तते। आयुधजीविभ्यः —४।३। छः —१।१। पर्वते —७।१। आयुधैर्जीवितुं शीलमेषां त आयुधजीविनस्तेभ्यस्तादर्थ्ये चतुर्थी। आयुधजीव्यर्थमायुधजीविभ्यः। पर्वत इति प्रकृतिविशेषणम्। तत्रार्थवशाद् विभक्तिविपरिणामः क्रियते। पर्वतवाचिनः प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् आयुधजीव्यर्थमस्याभिजन इत्यस्मिन् विषये छः प्रत्ययो भवति। हृद्गोलः पर्वतोऽभिजनो एषां हृद्गोलीया आयुधजीविनः। रैवतकः पर्वतोऽभिजन एषां रैवतकीया आयुधजीविनः। वालवायीयाः। आयुधजीविभ्य इति किम्—ऋक्षोदः पर्वतोऽभिजन एषाम्-आर्क्षोदा ब्राह्मणाः। पर्वत इति किम्—सांकाश्यमभिजन एषां सांकाश्यका आयुधजीविनः। 'धन्वयोपधाद् वुञ् प्रत्ययः॥९१॥

भाषार्थ—यहाँ 'सोऽस्याभिजन' पदों की अनुवृत्ति है। आयुध= शस्त्रास्त्रों की शिल्प-विद्या से जीविका करने का जिनका स्वभाव है, वे आयुधजीवी कहलाते हैं। 'पर्वते' पद प्रकृति का विशेषण है, अतः अर्थ से विभक्ति का परिवर्त्तन हो जाता है। प्रथमासमर्थ पर्वतवाची प्रातिपदिकों से षष्ठ्यर्थ अभिजन विषय में आयुधजीवी वाच्य हो तो छ प्रत्यय होता है। जैसे—हृद्गोलः पर्वतोऽभिजन एषां हृदगोलीया आयुधजीविनः। रैवतकः पर्वतोऽभिजन एषां रैवतकीया आयुधजीविनः। वालवायीयाः। इत्यादि।

यहाँ 'आयुधजीविभ्यः' का ग्रहण इसलिये है—ऋक्षोदः पर्वतोऽभिजन एपाम्—आर्क्षोदा ब्राह्मणाः। इसमें 'छ' प्रत्यय न हो। और 'पर्वते' ग्रहण इसलिये है—सांकाश्यमभिजन एषां सांकाश्यका आयुधजीविनः। यहाँ 'छ' प्रत्यय न होकर 'धन्वयोपधाद् वुञ्' (४।२।१२१) से 'वुञ्' प्रत्यय हुआ है॥९१॥

शण्डिकादिभ्यो ञ्यः॥९२॥

'सोऽस्याभिजन' इत्यनुवर्त्तते। शण्डिकादिभ्यः -५।३। ञ्यः -१।१। प्रथमासमर्थेभ्यः शण्डिकादिप्रातिपदिकेभ्योऽस्याभिजन इत्यस्मिन् विषये ञ्यः प्रत्ययो भवति। शण्डिकोऽभिजनोऽस्य शाण्डिक्यः। सार्वकेश्यः। अथ

शण्डिकादयः। शण्डिक। सर्वसेन। सर्वकेश। शक। सट। शर। रक। शंख। बोध। इति शण्डिकादिः॥ ९२॥

भाषार्थ—'सोऽस्याभिजनः' पदों की यहाँ अनुवृत्ति है। प्रथमासमर्थ गणपठित शण्डिकादि प्रातिपदिकों से षष्ठ्यर्थ अभिजन विषय में 'ञ्य' प्रत्यय होता है। जैसे—शण्डिकोऽभिजनोऽस्य शाण्डिक्यः। सार्वकेश्यः॥ ९२॥

सिन्धु-तक्षशिलादिभ्योऽणञौ॥ ९३॥

सिन्धु-तक्षशिलादिभ्यः —५।३। अण् अञौ —१।१। आदिशब्द उभाभ्यां सम्बध्यते। प्रथमासमर्थेभ्यः सिन्ध्वादिभ्यः तक्षशिलादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो यथासंख्यम् अण्-अञौ प्रत्ययौ भवतोस्याभिजन इत्यस्मिन् विषये। सिन्धुरभिजनोऽस्य सैन्धवः। वार्णवः। ताक्षशिलः॥ अथ सिन्ध्वादयः॥ सिन्धु। वर्णु। गन्धार। मधुमत्। काम्बोज। साल्व। उरस्। कश्मीर। गब्दिका। किष्किन्धा। दरद्। इति सिन्ध्वादयः। अथ तक्षशिलादयः। तक्षशिला। वत्सोद्धरण। कौमेदुर। काण्डवारण। ग्रामणी। सरालक। छागल। कंस। किन्नर। संकुचित। सिंहकोष्ठ। कर्णकोष्ठ। बर्बर। अवसान। कोष्टुकर्ण। काण्डधारा। पर्वत। इति तक्षशिलादयः॥ ९३॥

भाषार्थ—सूत्र में आदि शब्द सिन्धु और तक्षशिला दोनों से सम्बद्ध है। प्रथमासमर्थ सिन्ध्वादि और तक्षशिलादि गणपठित प्रातिपदिकों से षष्ठ्यर्थ अभिजन विषय में यथासंख्य अण् और अञ् प्रत्यय होते हैं। जैसे—सिन्धुरभिजनोऽस्य सैन्धवः। वार्णवः। ताक्षशिलः। वात्सोद्धरणः इत्यादि॥ ९३॥

तूदी-शलातुर-वर्मती-कूचवाराड् ढक्छण्ढञ्यकः॥ ९४॥

तूदी......कूचवारात् —५।१। ढक्-छण्-ढञ्-यकः —१।३। प्रथमासमर्थेभ्यः तूदी-आदिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्याभिजन इत्यस्मिन् विषये [ढक्-छण्-ढञ्-यक्] चत्वारः प्रत्यया यथासंख्येन भवन्ति। तूदी अभिजनोऽस्य तौदेयः। शालातुरीयः। वार्मतेयः। कौचवार्यः॥ ९४॥

भाषार्थ—प्रथमासमर्थ तूदी, शलातुर, वर्मती, कूचवार, इन प्रातिपदिकों से षष्ठ्यर्थ अभिजन विषय में यथासंख्य ढक्, छण्, ढञ् और यक् ये चार प्रत्यय होते हैं। जैसे—तूदी अभिजनोऽस्य तौदेयः। शालातुरीयः। वार्मतेयः कौचवार्यः॥ ९४॥

भक्तिः॥ ९५॥

सोऽस्येत्यनुवर्त्तते। अभिजन इति निवृत्तम्। भक्तिः —१।१। प्रथमासमर्थाद् भक्तिसमानाधिकरणात् प्रातिपदिकादस्येत्यन्यपदार्थे यथा विहितं प्रत्ययो भवति। ग्रामो भक्तिरस्य ग्रामेयकः। ग्राम्यः। ग्रामीणः। राष्ट्रियः। माथुरः॥ ९५॥

भाषार्थ—यहाँ 'सोऽस्य' पदों की अनुवृत्ति है। 'अभिजन' पद निवृत्त हो गया है। प्रथमासमर्थ भक्ति समानाधिकरण प्रातिपदिकों से षष्ठ्यर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं। जैसे—ग्रामो भक्तिरस्य ग्रामेयकः। ग्राम्यः। ग्रामीणः। राष्ट्रियः।

माथुरः। ['भक्ति' शब्द में 'भज् सेवायाम्' धातु से कर्म में क्तिन् प्रत्यय है, भज्यते सेव्यत इति भक्तिः। अर्थात् सेवनीय अर्थ को बताता है]॥९५॥

अचित्ताददेशकालाट्ठक्॥ ९६॥

सोऽस्य भक्तिरित्यनुवर्त्तते। अचित्तात् -५।१। अदेशकालात् -५।१। ठक् —१।१। देशकालावपि चेतनारहितौ तस्मात् प्रतिषेधः। भक्तिसमानाधिकरणात् प्रथमासमर्थाद् अदेशकालाद् अचित्ताज्=जडात् प्रातिपदिकाद् अस्य भक्तिरित्यस्मिन् विषये ठक् प्रत्ययो भवति। अपूपा भक्तिरस्य आपूपिकः। शाष्कुलिकः। वृद्धादपि—पायसिकः। अचित्तादिति किम्-देवदत्तो भक्तिरस्य दैवदत्तः। अदेशकालादिति किम्-स्रौघ्नः। ग्रैष्मः॥ ९६॥

भाषार्थ—यहाँ 'सोऽस्य भक्तिः' पदों की अनुवृत्ति है। देश, काल भी अचित्त=अचेतन वाची हैं, इसलिये इनका प्रतिषेध किया है। प्रथमासमर्थ, भक्ति समानाधिकरण, देश और काल से भिन्न अचेतन (जड़) वाची प्रातिपदिकों से षष्ठ्यर्थ में 'ठक्' प्रत्यय होता है। जैसे—अपूपा भक्तिरस्य आपूपिकः। शाष्कुलिकः। वृद्धसंज्ञकों से भी परविप्रतिषेध से 'ठक्' ही होता है। जैसे—पायसिकः। यहाँ 'अचित्त' ग्रहण इसलिए है—देवदत्तो भक्तिरस्य दैवदत्तः। यहाँ 'ठक्' न होवे। और 'अदेशकालात्' ग्रहण इसलिये है कि स्रौघ्नः। ग्रैष्मः। इत्यादि में 'ठक्' न हो॥ ९६॥

महाराजाट्ठञ्॥ ९७॥

महाराजात् —५।१। ठञ् —१।१। ठगित्यनुवर्त्तमाने ठञ् ग्रहणं स्वरार्थम्। प्रथमासमर्थाद् भक्तिसमानाधिकरणान् महाराजप्रातिपदिकाद् अस्येत्यन्यपदार्थे ठञ् प्रत्ययो भवति। महाराजो भक्तिरस्य माहाराजिकः॥ ९७॥

भाषार्थ—यहाँ 'ठक्' प्रत्यय की अनुवृत्ति करके ही रूप सिद्धि हो जाती, फिर 'ठञ्' प्रत्ययान्तर करना स्वरविशेष के लिये है। प्रथमासमर्थ भक्तिसमानाधिकरण 'महाराज' प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में 'ठञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—महाराजो भक्तिरस्य माहाराजिकः॥ ९७॥

वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन्॥ ९८॥

वासुदेवार्जुनाभ्याम् —५।२।वुन् —१।१।वासुदेवशब्दो गोत्रक्षत्रियाख्यो नैवात्र गृह्यते। किन्तु सच्चिदानन्दादिलक्षणस्य परमात्मनः संज्ञा, न तु वसुदेवस्यापत्यं गृह्यते। तदेतत् पूर्वनिपातकरणादेव ज्ञायते। अल्पाच्तरस्यार्जुनशब्दस्य पूर्वनिपाते प्राप्ते सर्वत एवाभ्यर्हितं पूर्वं निपततीति वार्त्तिकेन पूज्येभ्योऽपि पूज्यतमस्य परमात्मनो वासुदेवस्य पूर्वनिपातः। यदि गोत्रक्षत्रियाख्यो वासुदेवः स्यात् तर्हि वक्ष्यमाणसूत्रेण वुञ् स्यादेव, पुना रूपस्वरयोर्विशेषाभावाद् वुन् विधानमनर्थकं स्यात्। प्रथमासमर्थाभ्यां भक्तिसमानाधिकरणाभ्यां वासुदेवअर्जुन प्रातिपदिकाभ्यामस्येत्यन्यपदार्थे वुन् प्रत्ययो भवति। वासुदेवो भक्तिरस्य वासुदेवकः। अर्जुनकः॥ ९८॥

भाषार्थ—इस सूत्र में वासुदेव शब्द से गोत्रक्षत्रियाख्या का ग्रहण नहीं है। किन्तु सच्चिदानन्द लक्षणवाले परमात्मा का नाम है। 'वासुदेव नाम व्यक्ति के अपत्य का ग्रहण नहीं है। इस रहस्य का बोध सूत्र में वासुदेव शब्द के पूर्व निपातन करने से होता है। क्योंकि अर्जुन शब्द वासुदेव की अपेक्षा अल्पाच्तर है, अत: व्याकरण नियम से अर्जुन शब्द का पूर्वप्रयोग* होना चाहिये। किन्तु यहाँ पाणिनि मुनि ने जो ऐसा नहीं किया है, उससे स्पष्ट है कि जो सबसे अधिक पूज्य होता है, उसका अल्पाच्तर न होने पर भी पूर्वनिपात होता है। 'अभ्यर्हितं पूर्वं निपतति'' इस वार्त्तिकोक्त नियम से जो पूज्यों से भी पूजनीय है, उस परमात्मा के वाचक वासुदेव शब्द का यहाँ ग्रहण होता है। यदि गोत्रक्षत्रियवाची वासुदेव शब्द का यहाँ ग्रहण करें तो वासुदेव शब्द पढ़ना निरर्थक हो जाता, क्योंकि उससे तो अगले सूत्र 'गोत्रक्षत्रियाख्येभ्य:' (४।३।९९) से वुञ् प्रत्यय होने से रूप सिद्धि हो ही जाती। और वुन् करने से स्वरभेद भी नहीं होता। अत: गोत्रक्षत्रियाख्य वासुदेव से यहाँ विधान करना अनर्थक ही होता।

प्रथमासमर्थ भक्ति समानाधिकरण वासुदेव-अर्जुन प्रातिपदिकों से षष्ठ्यर्थ में 'वुन्' प्रत्यय होता है। जैसे—वासुदेव भक्तिरस्य वासुदेवक:। अर्जुनक:॥९८॥

गोत्रक्षत्रियाख्येभ्यो बहुलं वुञ्॥९९॥

गोत्र-क्षत्रियाख्येभ्य: —५।३। बहुलम् —१।१। वुञ् —१।१। प्रथमासमर्थेभ्यो भक्तिसमानाधिकरणेभ्यो गोत्राख्येभ्य क्षत्रियाख्येभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्योऽस्येत्यन्यपदार्थे बहुलं वुञ् प्रत्ययो भवति। ग्लुचुकायनो भक्तिरस्य ग्लौचुकायनक:। त्रैगर्त्तक:। वृद्धादपि परत्वाद् वुञेव। गार्गक:। वात्सक:। मालवक:। बहुलग्रहणात् क्वचिन्न भवति—पाणिनो भक्तिरस्य पाणिनीय:॥९९॥

भाषार्थ—प्रथमा समर्थ भक्ति समानाधिकरण प्रसिद्ध गोत्रवाचक तथा प्रसिद्ध क्षत्रिय वाचक प्रातिपदिकों से षष्ठ्यर्थ में बहुल करके 'वुञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—ग्लुचुकायनो भक्तिरस्य ग्लौचुकायनक:। त्रैगर्त्तक:। वृद्धसंज्ञकों से भी परत्व से 'वुञ्' ही होता है। जैसे—गार्गक:। वात्सक:। मालवक:। बहुलग्रहण से कहीं नहीं भी होता है। जैसे—पाणिनो भक्तिरस्य पाणिनीय:॥९९॥

जनपदिनां जनपदवत् सर्वं जनपदेन समानशब्दानां बहुवचने॥१००॥

जनपदिनाम् —६।३। जनपदवत् [अ.प.]। सर्वम् —१।१। जनपदेन— ३।१। समानशब्दानाम् —६।३। बहुवचने —७।१। जनपदशब्दो देशवाची, स एषामस्तीति स्व-स्वामिसम्बन्ध इनि: प्रत्यय:। जनपदिनो जनपदस्वामिन: क्षत्रिया: जनपदवदित्यतिदेश:। बहुवचने जनपदेन समान-शब्दानां जनपदिनां सर्वं जनपदवत् कार्यं भवति, सोऽस्य भक्तिरित्यस्मिन्नर्थे।

---

* अल्पचातरम् (२।२।३४) —**सम्पादक**

'जनपदतदवध्योश्च' इत्यादि शेषसामान्ये देशवाचिनां जनपदानां यत्कार्यं विधीयते तद् भक्तिसमानाधिकरणानां जनपदिनामतिदिश्यत इत्यर्थः यथा अङ्गेषु देशेषु भवम्-आङ्गकम्। वाङ्गकम्-इत्यादि भवति। एवमङ्गानां राजा आङ्गः। वाङ्गः। मागधः। आङ्गो भक्तिरस्येति विगृह्य जनपदवद् वुञ्—आङ्गकः। वाङ्गकः। मागधकः। कालिङ्गकः।

जनपदिनामिति किमर्थम्—पंचाला वैश्या भक्तिरस्य पांचालः। जनपदवदित्येव सिद्धे सर्वग्रहणस्यैतत् प्रयोजनं प्रकृतिरपि जनपदवत् स्यात्। यथा–मद्रवृज्योः कन्निति मद्र–वृजिजनपदशब्दाभ्यां शेषसामान्ये कन् विधीयते। एवं मद्राणां राजा माद्रः। द्व्यज्-मगधेत्यण्। वृजीनां राजा वार्ज्यः। वार्ज्यौ। वृद्धेत्कोशलेति ञ्यङ्। भक्तिसमानाधिकरणाभ्यां माद्र–वार्ज्यप्रातिपदिकाभ्यां कृतवृद्ध्यभावाभ्यां कन् यथा स्यात्। अर्थात् माद्र–वार्ज्ययोः स्थाने मद्र–वृजी प्रकृती स्याताम्। तदैव मद्र–वृज्योः कनित्युपपन्नो भवति। माद्रो माद्रौ वा भक्तिरस्य मद्रकः। वार्ज्यो वार्ज्यौ—भक्तिरस्य वृजिकः। अङ्गादयो जनपदशब्दा बहुवचने जनपदिभिः क्षत्रियसमाना एव भवन्ति। तद्राजप्रत्ययस्य बहुवचने च लुग्वचनप्रामाण्यात्॥ १००॥

भाषार्थ—जनपद शब्द देशवाची है, उससे स्व–स्वामी सम्बन्ध में 'इनि' प्रत्यय करने से 'जनपदी' शब्द बना है। अर्थात् जनपदिनः=जनपदस्वामिनः क्षत्रियाः। 'जनपदवत्' यह अतिदेश=तुल्यतया विधान का सूचक है। बहुवचन में जनपद=देशवाची शब्दों के समान जो जनपदी अर्थात् देश के स्वामी क्षत्रियवाची शब्द हैं, उन को जनपदवत् कार्य षष्ठ्यर्थ भक्ति विषय में होता है। अर्थात् 'जनपद-तदवध्योश्च' (४।२।१२४) इस शेष प्रकरण में देशवाची जनपद शब्दों को जो प्रत्ययविधीरूप कार्य किया गया है, वह भक्ति समानाधिकरण जनपदी=जनपद स्वामी क्षत्रियवाची शब्दों से होवे। जैसे—अङ्गेषु देशेषु भवम् आङ्गकम्। वाङ्गकम्। इत्यादि उदाहरण बनते हैं, इसी प्रकार अङ्गानां राजा आङ्गः। वाङ्गः। मागधः। 'आंगो भक्तिरस्येति विगृह्य' जनपदवाचियों की भाँति वुञ् प्रत्यय होता है–आंगकः। वांगकः। मागधकः। कालिङ्गकः।

यहाँ 'जनपदिनाम्' का ग्रहण इसलिये है—पञ्चाला वैश्या भक्तिरस्य पाञ्चालः। यहाँ जनपदवत् 'वुञ्' न हो। 'जनपदवत्' इतने कहने से कार्य सिद्धि होने पर 'सर्वम्' शब्द के ग्रहण का प्रयोजन यह है कि प्रकृति भी जनपद के समान हो जावे। जैसे—'मद्र–वृज्योः (४।२।१३१) कन्' इस सूत्र से मद्रवृजि जनपदवाची शब्दों से शेष सामान्य में कन् विधान किया है। इसी प्रकार 'मद्राणां राजा माद्रः' यहाँ 'द्व्यज्–मगधः' (४।२।१७०) सूत्र से अण् प्रत्यय हुआ है। और वृजीनां राजा वार्ज्यः। वार्ज्यौ। यहाँ 'वृद्धेत्कोसल०' (४।१।१७०) सूत्र से 'ञ्यङ्' प्रत्यय हुआ है। इन भक्ति समानाधिकरण माद्र–वार्ज्य प्रातिपदिकों से वृद्धि रहित दशा में 'कन्' प्रत्यय करना 'सर्वम्' शब्द का प्रयोजन है। अर्थात् भक्ति समानाधकरण में माद्र और वार्ज्य शब्दों की प्रकृति मद्र–वृजि ही होवे। जैसे—

माद्रौ माद्रौ वा भक्तिरस्य मद्रक:। वार्ज्यौ वार्ज्यौ वा भक्तिरस्य वृजिक:। अंगादि जनपदवाची शब्द बहुवचन में जनपद देश के स्वामी क्षत्रियवाची शब्दों के समान ही हो जाते हैं। क्योंकि 'तद्राजस्य बहुषु०' (२।४।६२) इत्यादि प्रमाण से बहुवचन में तद्राजसंज्ञक प्रत्यय का लुक् हो जाता है॥१००॥

तेन प्रोक्तम्॥१०१॥

भक्त्यधिकारो निवृत्त:। तेन —३।१। प्रोक्तम् —१।१। तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकात् प्रोक्तमित्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति। उत्सेन प्रोक्तम् औत्सम्। दैत्यम्। आदित्यम्। स्त्रिया प्रोक्तं स्त्रैणम्। पौंस्नम्। पाणिनीयम्। आपिशलम्। प्रोक्ताधिकारो ग्रन्थेष्वेव संपद्यते। रचना तु पदार्थान्तराणामपि भवाति। द्विविधं चेह प्रोक्तं गृह्यते-स्वकृतं परकृतं च। स्वयमेव यत् सृज्यते परसृष्टं च यद् व्याख्यानेन प्रकाश्यते। स्वसृष्टं यथा-पाणिनिना प्रोक्तं पाणिनीयमष्टकम्। अन्यकृतस्येश्वरकृतस्य वेदस्य ऋषिभि: प्रकाशनस्य शाखानामानि सम्पद्यन्ते। यथा-तित्तिरिणा प्रोक्तां शाखामधीयते ते तैत्तिरीया:। एवं च कृत्वा वेदानां नित्यत्वमेव सम्पद्यते, ऋषिकृत्यं प्रोक्तविषय:। छन्दोब्राह्मणान्यध्येतृ-वेदितृ-विषयेष्वेव भवन्ति। इदं सामान्येनाधिकारसूत्रमेव। पाणिनिना प्रोक्तं व्याकरणं पाणिनीयम्। काणादम्। गौतमम्॥१०१॥

भाषार्थ—यहाँ से 'भक्ति' का अधिकार निवृत्त हो गया है। तृतीया समर्थ प्रातिपदिकों से प्रोक्त अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं। जैसे—उत्सेन प्रोक्तम् औत्सम्। दैत्यम्। आदित्यम्। स्त्रिया प्रोक्तम्=स्त्रैणम्। पौंस्नम्। पाणिनीयम्। आपिशलम्। इत्यादि।

प्रोक्ताधिकार ग्रन्थों में ही संगत होता है। रचना तो दूसरे पदार्थों की भी होती है। प्रोक्त शब्द से यहाँ दो प्रकार के ग्रन्थों का ग्रहण है—स्वयं बनाये हुए और दूसरे के बनाये हुए व्याख्यात ग्रन्थ। जो ग्रन्थ स्वयं बनाया गया है अथवा दूसरे के द्वारा बनाया गया हो और उसकी व्याख्या के द्वारा प्रकाश किया गया हो, दोनों का ही प्रोक्त से ग्रहण है; जैसे—पाणिनिना प्रोक्तं पाणिनीयमष्टकम्। और दूसरे ईश्वर के ज्ञानस्वरूप वेद का ऋषियों के द्वारा जो व्याख्यान किया गया है, उन ग्रन्थों को शाखा कहते हैं। जैसे तित्तिरिणा प्रोक्तां शाखामधीयते ते तैत्तिरीया:। इस प्रकार वेदों का नियत्व ही सिद्ध होता है। और ऋषियों के ग्रन्थ प्रोक्त विषयक हैं। छन्द और ब्राह्मण वाचक प्रोक्त प्रत्ययान्त शब्द अध्येता (पढ़नेवाले) और वेदिता (जाननेवाले) प्रत्ययार्थ विषयक ही होते हैं। अर्थात् प्रोक्त प्रत्ययान्त छन्द और ब्राह्मण के वाचक शब्दों का अध्ययन और वेदन प्रत्ययार्थ के विना पृथक् प्रयोग नहीं होता है। यह सामान्य अधिकार सूत्र है। जैसे—पाणिनिना प्रोक्तं व्याकरणं पाणिनीयम्। काणादम्। गौतमम्॥१०१॥

तित्तिरिवरतन्तुखण्डिकोखाच्छण्॥१०२॥

तित्तिरि-कोखात् —५।१। छण् —१।१। तृतीयासमर्थेभ्यस् तित्तिरि-

आदिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः प्रोक्ते छन्दसि छण् प्रत्ययो भवति। छन्दो ब्राह्मणानि चेति तद्विषयता। तित्तिरिणा प्रोक्तं छन्दोऽधीयते तैत्तिरीयाः। वारतन्तवीयाः। खाण्डिकीयाः। औखीयाः। छन्द इति किम्-तित्तिरिणा प्रोक्ताः श्लोकाः। अत्र मा भूत्॥ १०२॥

भाषार्थ—तृतीया समर्थ तित्तिरि, आदि प्रातिपदिकों से प्रोक्त छन्द विषय में 'छण्' प्रत्यय होता है। छन्द और ब्राह्मण ग्रन्थों की तद्विषयता है अर्थात् पढने और जानने अर्थ के विना प्रोक्त प्रत्ययान्त छन्द और ब्राह्मणों का पृथक् प्रयोग नहीं होता। जैसे—तितिरिणा प्रोक्तं छन्दोऽधीयते तैत्तिरीयाः। वारतन्तवीयाः। खाण्डिकीयाः। औखीयाः। इस सूत्र में 'शौनकादिभ्यश्छन्दसि' (अ० ४।३।१०६) सूत्र से सिंहावलोकनन्याय से 'छन्दसि' पद की अनुवृत्ति है। 'छन्दसि' का ग्रहण इसलिये है—तित्तिरिणा प्रोक्ताः श्लोकाः। यहाँ छन्द (वेदशास्त्र) न होने से प्रत्यय नहीं हुआ है॥ १०२॥

काश्यपकौशिकाभ्यामृषिभ्यां णिनिः॥ १०३॥

काश्यप-कौशिकाभ्याम् —५।२। ऋषिभ्याम् —५।२। णिनिः —१।१। वृद्धाच्छः प्रासस्तद् बाधनार्थ आरम्भः। काश्यप-कौशिकाभ्याम् ऋषिवाचिभ्यां तृतीयासमर्थाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां प्रोक्तार्थे णिनिः प्रत्ययो भवति। आभ्यामृषिभ्यां कल्पशास्त्रं प्रोक्तं तेन छन्दो ग्रहणं नात्र सम्बध्यते। परन्तु छन्दोऽधिकारे पठनात् तद्विषयता भवत्येव। काश्यपेन प्रोक्तं कल्पमधीयते काश्यपिनः। कौशिकिनः। ऋषिभ्यामिति किम्-इदानीन्तनः कश्चित् काश्यपः कौशिको वा स्यात् तस्माच्छ एव भवति॥ १०३॥

भाषार्थ—सूत्र पठित दोनों शब्दों के वृद्ध संज्ञक होने से छ प्रत्यय प्राप्त था, यह सूत्र उसका बाधक है। तृतीया समर्थ ऋषिवाची काश्यप और कौशिक प्रातिपदिकों से प्रोक्त अर्थ में णिनि प्रत्यय होता है। इन दोनों ऋषियों ने कल्पशास्त्र का प्रवचन किया है, इसलिये 'छन्दसि' पद की यहाँ अनुवृत्ति नहीं की गई है। परन्तु 'छन्दसि' के अधिकार में सूत्र पाठ होने से छन्दोविषयता है। जैसे—काश्यपेन प्रोक्तं कल्पमधीयते काश्यपिनः। कौशिकिनः। सूत्र में 'ऋषिभ्याम्' पद का ग्रहण इसलिये है कि वर्तमान में किसी व्यक्ति का काश्यप अथवा कौशिक नाम यदि है, तो उससे 'णिनि' प्रत्यय न हो 'छ' प्रत्यय ही होवे। [काश्यपीयम्]॥ १०३॥

कलापिवैशम्पायनान्तेवासिभ्यश्च॥ १०४॥

कलापि.......वासिभ्यः —५।३। च [अ.प.]। णिनिग्रहणमनुवर्त्तते। अन्तेवासिशब्दः शिष्यपर्यायः, स चोभाभ्यां संबध्यते। कालाप्यन्तेवासिनः। वैशम्पायनान्तेवासिनश्च। अन्तेवासिनां येऽन्तेवासिनस्तेभ्यस्तु नैव भवति ज्ञापकात्। कलापिन्शब्दो वैशम्पायनान्तेवासिषु वर्त्तते। यद्यन्तेवासिनामन्तेवासिभ्योऽपि स्यात् तर्हि कलाप्यन्तेवासिभ्योऽपि स्यादेव। पुनर्ग्रहणमनर्थकं स्यात्। तेन ज्ञायते विद्यमानस्य कलापिनो वैशम्पायनस्य च येऽन्तेवासिनस्तेभ्य

एव भवतीति। तृतीयासमर्थेभ्यः कलाप्यन्तेवासिभ्यो वैशम्पायनान्तेवासिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः प्रोक्तार्थे णिनिः प्रत्ययो भवति। कलाप्यन्तेवासिनश्चत्वारः— हरिद्रुः तुम्बुरुः। छगलिन्। उलपः। हरिद्रुणा प्रोक्तमधीयते हारिद्रविणः। तौम्बुरविणः। औलपिनः। छगलिन्शब्दाद् ढिनुग्विधास्यते। वैशम्पायनान्तेवासिनो नव-आलम्बि। पलङ्ग। कमल। ऋचाभ। आरुणि। ताण्ड्य। श्यामायन। कठ। कलापी। आलम्बिनः। पालङ्गिनः। कामलिनः। कलापिशब्दादण् विधास्यते। कठशब्दाच्च लुक्। तावस्यैवापवादौ॥ १०४॥

भाषार्थ—यहाँ 'णिनि' प्रत्यय की अनुवृत्ति है। अन्तेवासी शब्द शिष्य का पर्यायवाची है। और अन्तेवासी का सम्बन्ध सूत्र पठित दोनों शब्दों से हैं अर्थात् जो कलापी के अन्तेवासी है, तथा वैशम्पायन के अन्तेवासी हैं, दोनों से यह प्रत्यय होता है। और जो इनके शिष्यों के शिष्य हैं, उनसे यह प्रत्यय नहीं होता। इसमें यह ज्ञापक है—कलापी शब्द वैशम्पायन के शिष्यों में पठित है, यदि शिष्यों के शिष्यों से भी प्रत्यय हो जाता, तब कलापी के शिष्यों से भी प्रत्यय सिद्ध ही था, पुनः इस सूत्र में 'कलापी' का पृथक् पाठ अनर्थक ही हो जाता। इससे स्पष्ट है कि कलापी तथा वैशम्पायन के अन्तेवासियों से ही प्रत्यय होता है। अर्थात् वैशम्पायन के अन्तेवासियों में से केवल कलापी के अन्तेवासियों से यह प्रत्यय इष्ट है, अन्यों के शिष्यों से नहीं।

तृतीयासमर्थ कलापी के अन्तेवासी तथा वैशम्पायन के अन्तेवासी प्रातिपदिकों से प्रोक्त अर्थ में 'णिनि' प्रत्यय होता है। जैसे कलापी के अन्तेवासी चार हैं— हरिद्रु। तम्बुरु। छगलिन्। उलप। हरिद्रुणा प्रोक्तमधीयते हारिद्रविणः। तौम्बुरविणः। औलपिनः। छगलिन् शब्द से ढिनुक् प्रत्यय का विधान आगे किया गया है। वैशम्पायन के शिष्य नौ हैं—औलम्बि। पलङ्ग। कमल। ऋचाभ। आरुणि। ताण्ड्य। श्यामायन। कठ। कलापी। आलम्बिनः। पालङ्गिनः। कामलिनः। इनमें कलापी शब्द से अण् तथा कठ शब्द से प्रत्यय का लुक् आगे विधान किया गया है। वे दोनों सूत्र इसी के अपवाद हैं॥ १०४॥

पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु॥ १०५॥

अत्र छन्दो ग्रहणं नानुवर्त्तते। पुराणप्रोक्तेषु-७। ३। ब्राह्मणकल्पेषु-७। ३। पुराणैः प्राचीनैर्ऋषिभिः प्रोक्ताः पुराणप्रोक्ताः। ब्राह्मणानि च कल्पाश्च ते ब्राह्मणकल्पाः। ब्राह्मणस्याभ्यर्हितत्वात् पूर्वनिपातः। ब्राह्मणकल्पानां पुराण-प्रोक्तेष्विति विशेषणम्। तत्सर्वं प्रत्ययार्थेन सह सम्बन्ध्यते। तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकात् पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेष्वभिधेयेषु णिनिः प्रत्ययो भवति। शाट्यायनेन प्रोक्तानि ब्राह्मणान्यधीयते शाट्यायनिनः। भाल्लविनः। ऐतरेयिणः।

कल्पेषु—पिङ्गेन प्रोक्तः कल्पः पैङ्गीकल्पः। आरुणपराजीकल्पः। छन्दो-ब्राह्मणानि चेत्युक्तत्वात् कल्पेषु तद्विषयता न भवति।

वा०—पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु याज्ञवल्क्यादिभ्यः प्रतिषेधः॥ १॥

याज्ञवल्क्येन प्रोक्तानि ब्राह्मणानि याज्ञवल्कानि। सौलभानि। यज्ञवल्क-

शब्दः कण्वादिषु पठ्यते, तस्मादण्। णिनिः प्रतिषिध्यते।

जयादित्येनात्रोक्तम्—याज्ञवल्कादयोऽचिरकाला इत्याख्यानेषु वार्त्ता। एवं हि मत्वा याज्ञवल्कानि ब्राह्मणानीति प्रत्युदाहृतम्। तदिदं महाभाष्याद् विरुद्धतरम्। महाभाष्यकारेणोक्तम्—''एतान्यपि तुल्यकालानि।' शाट्यायनादिप्रोक्तैरेक-कालवच्छेदकानि याज्ञवल्क्यादिब्राह्मणानि सन्तीत्यर्थः। जयादित्यो जानाति याज्ञवल्कानि पुराणप्रोक्तानि न सन्ति। तदिदं को मर्षयेत्। यदा याज्ञवल्क्येन प्रोक्तानि तदैव शाट्यायनादिभिरपि॥ १०५॥

इस सूत्र में 'छन्दसि' पद की अनुवृत्ति नहीं है। 'पुराण' शब्द प्राचीन अर्थ में विशेषण है, नवीन काल्पनिक ग्रन्थों का वाचक नहीं है। पुराणैः-प्राचीनैर्ऋषिभिः प्रोक्ताः पुराणप्रोक्ताः। 'ब्राह्मणानि च कल्पाश्च ते ब्राह्मणकल्पाः। इसमें 'ब्राह्मण' शब्द का अभ्यर्हित होने से पूर्वप्रयोग हुआ है। 'पुराणप्रोक्तेषु' पद 'ब्राह्मण-कल्प' शब्द का विशेषण है। और सूत्रोक्त सब पद प्रत्ययार्थ के साथ सम्बद्ध हैं। तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से प्राचीन ऋषियों से प्रोक्त ब्राह्मण और कल्प ग्रन्थों के अभिधेय में 'णिनि' प्रत्यय होता है। जैसे—शाट्यायनेन प्रोक्तानि ब्राह्मणान्यधीयते शाट्यायनिनः। भाल्लविनः। ऐतरेयिणः। कल्प वाच्य में—पिङ्गेन प्रोक्तः कल्पः पैङ्गीकल्पः। आरुणपराजीकल्पः। 'छन्दो ब्राह्मणानि च०' (४।२।६५) सूत्र में कहने से कल्पों में तद्विषयता नहीं होती। अर्थात् कल्पवाचियों से प्रोक्तार्थ में विहित प्रत्यय अध्ययन और वेदन अर्थों में नहीं होता है।

वा०—पुराण प्रोक्तेषु ब्राह्मण कल्पेषु याज्ञवल्क्यादिभ्यः प्रतिषेधः॥ १॥

पुराण-प्रोक्त होने से सूत्र से याज्ञवल्क्यादि से प्रत्यय प्राप्त है, इसलिये वार्त्तिक से 'णिनि' प्रत्यय का निषेध किया है। जैसे—याज्ञवल्क्येन प्रोक्तानि ब्राह्मणानि याज्ञवल्कानि ब्राह्मणानि। सौलभानि इत्यादि। 'यज्ञवल्क' शब्द के कण्वादि गण में पढा होने से 'अण्' प्रत्यय हुआ है। और णिनि का निषेध हुआ है।

यहाँ जयादित्य ने लिखा है—याज्ञवल्क्यादि ब्राह्मण पुराण-प्रोक्त नहीं हैं, किन्तु वे पीछे बने हैं, ऐसी आख्यानों में प्रसिद्धि है। इसलिये उसने 'याज्ञवल्कानि ब्राह्मणानि' यह प्रत्युदाहरण लिखा है। यह महाभाष्य से विरुद्ध होने से मिथ्या है। महाभाष्य में—'तुल्यकालानि' लिखकर याज्ञवल्क्यादि को भी प्राचीन स्वीकार किया है। जिससे स्पष्ट है कि याज्ञवल्क्यादि ब्राह्मणग्रन्थ भी शाट्यायनादि ऋषियों के द्वारा प्रोक्त ब्राह्मणग्रन्थों के समकालीन हैं। जयादित्य का यह विचार कौन स्वीकार करेगा कि याज्ञवल्क्यादि ब्राह्मण ग्रन्थ प्राचीन नहीं है। जब कि जिस समय में याज्ञवल्क्यादि ने ब्राह्मणग्रन्थ का प्रवचन किया, उसी समय शाट्यायनादि ऋषियों ने भी प्रवचन किया था॥ १०५॥

शौनकादिभ्यश्छन्दसि॥ १०६॥

शौनकादिभ्यः —५।३। छन्दसि —७।१। वृद्धेभ्यश्छः प्राप्तोऽवृद्धेभ्य-श्चाण्। तयोरपवादः। छन्दोग्रहणं ब्राह्मणकल्पनिवृत्त्यर्थम्। तृतीयासमर्थेभ्यः

शौनकादिप्रातिपदिकेभ्यश्छन्दसि प्रोक्तेऽभिधेये णिनिः प्रत्ययो भवति। शौनकेन प्रोक्तमधीयते शौनकिनः। वाजसनेयिनः। छन्दसीति किम्-शौनकेन प्रोक्ता शिक्षा शौनकीया। वृद्धत्वाच्छो भवति। अथ शौनकादिगणः—शौनक। वाजसनेय। साङ्गरव। शार्ङ्गरव। सापेय। शापेय। शाष्पेय। शाखेय। खाडायन। स्तम्भ। स्कन्ध। स्कन्द। देवदर्शन। देवदत्त शठ। रज्जुभार। रज्जुकण्ठ। कठशाठ। कशाय। तलवकार। दण्ड। पुरुषासक। अश्वपेय। इति शौनकादयः॥ १०६॥

भाषार्थ—शौनकादि गण में जो वृद्धसंज्ञक शब्द हैं, उनसे 'छ' प्रत्यय और अवृद्ध संज्ञकों से 'अण्' प्राप्त है। यह सूत्र दोनों का अपवाद है। यहाँ 'छन्दसि' का ग्रहण ब्राह्मण कल्प की निवृत्ति के लिये है। तृतीयासमर्थ गणपठित शौनकादि शब्दों से छन्दस् वाच्य हो तो प्रोक्त अर्थ में 'णिनि' प्रत्यय होता है। जैसे—शौनकेन प्रोक्तमधीयते शौनकिनः वाजसनेयिनः। यहाँ 'छन्दसि' का ग्रहण इसलिये हैं कि—शौनकेन प्रोक्ता शिक्षा शौनकीया। यहाँ णिनि न हो। वृद्धसंज्ञक होने से यथाप्राप्त 'छ' प्रत्यय यहाँ हुआ है॥ १०६॥

कठचरकाल्लुक्॥ १०७॥

छन्दसीत्यनुवर्त्तते। कठचरकात् —५।१।लुक् —१।१।तृतीयासमर्थाभ्यां कठ-चरकप्रातिपदिकाभ्यां विहितस्य प्रोक्तप्रत्ययस्य लुग्भवति। कठशब्दो वैशंपायनान्तेवासिषु वर्त्तते, तस्माण्णिनेः। चरकशब्दाच्चाणः। कठेन प्रोक्तमधीयते कठाः। चरकाः। छन्दसीति किमर्थम्। काठाः श्लोकाः। चारकाः श्लोकाः॥ १०७॥

भाषार्थ—यहाँ 'छन्दसि' पद की अनुवृत्ति है। तृतीयासमर्थ कठ और चरक प्रातिपदिकों से प्रोक्तार्थ में विहित प्रत्यय का लुक् होता है। कठ शब्द से वैशम्पायनान्तेवासियों में पाठ होने से 'णिनि' प्रत्यय का और चरक शब्द से अण् का [लुक् होता है]। जैसे—कठेन प्रोक्तमधीयते कठाः। चरकाः। यहाँ 'छन्दसि' का ग्रहण इसलिये है कि—काठाः श्लोकाः। चारकाः श्लोकाः। यहाँ वेद से भिन्न होने से प्रोक्तार्थक प्रत्यय का लुक् न होवे॥ १०७॥

कलापिनोऽण्॥ १०८॥

कलापिनः—५।१।अण्—१।१। कलापिशब्दो वैशम्पायनान्तेवासिषु पठ्यते, तस्माण्णिनेरपवादः। तृतीयासमर्थात् कलापि-प्रातिपदिकाच्छन्दसि प्रोक्तेऽण् प्रत्ययो भवते। कलापिना प्रोक्तमधीयते कलापाः। 'इनण्यनपत्ये' इति प्रकृतिभावे प्राप्ते' नान्तस्य टिलोपे सब्रह्मचारीति' वार्तिकेन प्रतिषिध्यते॥ १०८॥

भाषार्थ—'कलापिन्' शब्द भी वैशम्पायनान्तेवासियों में पठित है, अतः यह सूत्र 'णिनि' प्रत्यय का अपवाद है। तृतीया समर्थ 'कलापिन्' प्रातिपदिक से छन्दस् अभिधेय हो तो प्रोक्त अर्थ में अण् प्रत्यय होता है। जैसे—कलापिना प्रोक्तमधीयते

कालापाः। 'कलापिन्+अण्' यहाँ 'इनण्यनपत्ये' (६।४।१६४) सूत्र से टिलोप के अपवाद प्रकृतिभाव के प्राप्त होने पर 'नान्तस्य टिलोप सब्रह्मचारि०' (६।४।१४४ वार्त्तिक) वार्त्तिक से उपसंख्यान होने से प्रकृतिभाव का निषेध होने से टिलोप हुआ है॥१०८॥

छगलिनो ढिनुक्॥१०९॥

छगलिनः —५।१। ढिनुक् —१।१। कलाप्यन्तेवासी छगलिन् शब्द-स्तस्माण्णिनेरपवादः। तृतीयासमर्थाच्छगलिन्प्रातिपदिकाच्छन्दसि प्रोक्ते ढिनुक् प्रत्ययो भवति। छगलिना प्रोक्तमधीयते छागलेयिनः। उकारोऽनुबन्धो नकार-रक्षणार्थः। ककारोऽनुबन्धो वृद्ध्यर्थः स्वरार्थश्च॥१०९॥

भाषार्थ—'छगलिन्' शब्द से कलापि का अन्तेवासी होने से 'कलापी' (४।३।१०४) सूत्र से प्रोक्तार्थं में 'णिनि' प्राप्त है। यह उसका अपवाद है। तृतीयासमर्थ छगलिन् प्रातिपदिक से छन्दस् अभिधेय में प्रोक्त अर्थ में 'ढिनुक्' प्रत्यय होता है। जैसे—छगलिप्रोक्तमधीयते छागलेयिनः। यहाँ प्रत्यय में उकारानुबन्ध नकार की रक्षा के लिये है, और ककारानुबन्ध वृद्धि तथा स्वर के लिये है॥१०९॥

पाराशर्य्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः॥११०॥

णिनिग्रहणमनुवर्त्तते, न ढिनुक्। पाराशर्य्यशिलालिभ्याम् —५।२। भिक्षुनटसूत्रयोः —७।२। सूत्रशब्द उभाभ्यां सम्बध्यते। तृतीयासमर्थाभ्यां पाराशर्य्यशिलालिप्रातिपदिकाभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः प्रोक्तयोर्णिनिः प्रत्ययो भवति। भिक्षुसूत्रं नट-सूत्रं च छन्दोवन्मत्वा तद्विषयता भवत्येव। पाराशर्य्येण प्रोक्तमधीयते पाराशरिणो भिक्षवः। शैलालिनो नटाः। भिक्षुनटसूत्रयोरिति किम्-पाराशरम्। शैलालम्॥११०॥

भाषार्थ—इस सूत्र में 'णिनि' प्रत्यय की अनुवृत्ति है, 'ढिनुक्' की नहीं। सूत्र का सम्बन्ध भिक्षु और नट दोनों के साथ है। तृतीयासमर्थ पाराशर्य्य और शिलालिन् प्रातिपदिकों से यथासंख्य भिक्षुसूत्र तथा नटसूत्र अभिधेय हों तो प्रोक्तार्थ में 'णिनि' प्रत्यय होता है। भिक्षुसूत्र तथा नटसूत्र को छन्दोवत् मानकर तद्विषयता अर्थात् अध्ययन वेदन विषयता होती ही है। जैसे—पाराशर्य्येण प्रोक्तमधीयते पाराशरिणो भिक्षवः। शैलालिनो नटाः। यहाँ 'भिक्षुनटसूत्रयोः' का ग्रहण इसलिये किया है कि पाराशरम्। शैलालम्। यहाँ णिनि न होवे॥११०॥

कर्मन्दकृशाश्वादिनिः॥१११॥

भिक्षुनटसूत्रयोरित्यनुवर्त्तते। कर्मन्द-कृशाश्वात् —५।१। इनिः —१।१। तृतीयासमर्थाभ्यां कर्मन्दकृशाश्वाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः प्रोक्तयोरिनिः प्रत्ययो भवति। कर्मन्देन प्रोक्तमधीयते कर्मन्दिनः। कृशाश्विनः। इति प्रोक्ताधिकारः॥१११॥

भाषार्थ—यहाँ भिक्षुनटसूत्रयोः पद की अनुवृत्ति है। तृतीया समर्थ कर्मन्द और कृशाश्व प्रातिपदिकों से प्रोक्त भिक्षुसूत्र तथा नटसूत्र अभिधेय हो तो 'इनि'

प्रत्यय होता है। जैसे—कर्मन्देन प्रोक्तमधीयते कर्मन्दिनो [भिक्षवः]। कृशाश्विनो [नटाः]। प्रोक्त का अधिकार यहाँ समाप्त हो गया है॥१११॥

तेनैकदिक्॥११२॥

तेन —३।१। एकदिक् —१।१। तेनेत्यनुवर्त्तमाने पुनस्तेन ग्रहणं छन्दोधिकारनिवृत्त्यर्थम्। तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकाद् यथाविहितं प्रत्ययो भवति। एकदिक् समानदिगित्यर्थः। इन्द्रप्रस्थेनैकदिक् ऐन्द्रप्रस्थो ग्रामः। वाराणस्या एकदिक् वाराणसेयो ग्रामः॥११२॥

भाषार्थ—यहाँ 'तेन प्रोक्तम्' (४।३।१०१) सूत्र से 'तेन' पद की अनुवृत्ति होने पर भी पुनः 'तेन' का ग्रहण 'छन्दसि' की निवृत्ति के लिये है। तृतीया-समर्थ प्रातिपदिकों से एक दिक्=समानदिशा अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं। जैसे—इन्द्रप्रस्थेनैकदिक् ऐन्द्रप्रस्थो ग्रामः। वाराणस्या एकदिक् वाराणसेयो ग्रामः॥११२॥

तसिश्च॥११३॥

पूर्वं सूत्रमनुवर्त्तते। तसिः —१।१। च। अणादेः प्रत्ययस्यापवादः। तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकात् तसिः प्रत्ययो भवति। नासिकया एकदिक् नासिकातः। अङ्गुल्या एकदिक् अङ्गुलितः। वाराणसीतः। हिमवतः॥१०३॥

भाषार्थ—यहाँ पूर्वसूत्र की अनुवृत्ति है। यह यथाप्राप्त अणादि प्रत्ययों का अपवाद है। तृतीया समर्थ प्रातिपदिकों से एकदिक्=समान दिशा अर्थ में 'तसि' प्रत्यय होता है। जैसे—नासिकया एकदिक् नासिकातः। अङ्गुल्या एकदिक् अङ्गुलितः। वाराणसीतः। हिमवतः॥११३॥

[उरसो यच्च*॥११४॥

उरसः —५।१। यत् —१।१। च —अ०प०। अणोऽपवादः। तृतीया-समर्थात् उरस्प्रातिपदिकात् एकदिग्विषये यत् प्रत्ययो भवति चकारात् तसिश्च। उरसा एकदिक् उरस्यः। उरस्तः॥११४॥

भाषार्थ—यह सूत्र 'अण्' प्रत्यय का अपवाद है। तृतीयासमर्थ उरस् प्रातिपदिक से एकदिक् विषय में यत् और तसि प्रत्यय होते हैं। जैसे—उरसा एकदिक् उरस्यः। उरस्तः॥११४॥]

उपज्ञाते॥११५॥

उपज्ञाते —७।१। तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकाद् उपज्ञात इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति। सृष्ट्यादौ वेदान् दृष्ट्वा स्वबुद्ध्युत्कृष्टं त्वाद्यं ग्रन्थं यः प्रकाशयति स ग्रन्थस्तेनोपज्ञातो भवति। पाणिनिणोपज्ञातं व्याकरणं पाणिनीयम्। पातञ्जलं योगशास्त्रम्। आपिशलम्॥११५॥

भाषार्थ—तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से उपज्ञात (प्रथम प्रकाशित) अर्थ में

---

* महर्षिदयानन्दकृतभाष्ये सूत्रमिदं नोपलभ्यते। —अनुवादकः

यथाविहित प्रत्यय होते हैं। सृष्टि के आरम्भ में परमेश्वरोपदिष्ट वेदों को समझकर अपनी बुद्धि से जो प्रथम एवं उत्कृष्ट ग्रन्थ को प्रकाशित करता है वह ग्रन्थ उससे उपज्ञात कहलाता है। जैसे—पाणिनिनोपज्ञातं व्याकरणं पाणिनीयम्। पातञ्जलं योगशास्त्रम्। आपिशलम्॥ ११५॥

कृते ग्रन्थे॥ ११६॥

तेनेत्यनुवर्त्तते। कृते —७।१। ग्रन्थे —७।१। तृतायसमर्थात् प्रातिपदिकात् कृते ग्रन्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति। वररुचिना कृतं वाररुचं काव्यम्। जालूको ग्रन्थः। अथ कृतोपज्ञातयोः को विशेषः। नित्याया विद्याया आविर्भाव उपज्ञानम्। करणमभूतपूर्वस्यापि भवति। वररुचिनाऽभूतपूर्वाः श्लोकाः कृता इत्यर्थः। यथा च तक्षकृताः प्रासादाः। कुलालकृतो घटः। तन्तुवायकृतः पट इत्यादि॥ ११६॥

भाषार्थ—यहाँ 'तेन' पद की अनुवृत्ति है। तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से जो किया हो वह ग्रन्थ हो तो इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है। जैसे—वररुचिना कृतं वाररुचं काव्यम्। जालूको ग्रन्थः, इत्यादि।

कृत और उपज्ञात अर्थों में क्या अन्तर है? नित्य विद्या का आविर्भाव (प्रकट करना) उपज्ञात कहलाता है और जो पहले न हो उसको बनाना कृत कहलाता है। वररुचि के अभूतपूर्व श्लोक कृत कहलाते है। जैसे तक्षा (शिल्पी) द्वारा बनाया प्रासाद (भवन) कुम्भकार द्वारा बनाया घट और तन्तुवाय (जुलाहा) के द्वारा बनाया वस्त्र कृत कहलाते हैं*॥ ११६॥

संज्ञायां कुलालादिभ्यो वुञ्॥ ११७॥

संज्ञायाम् —७।१। कुलालादिभ्यः —५।३। वुञ् —१।१। तृतीयासमर्थेभ्यः कुलालादिभ्यःप्रातिपदिकेभ्यः संज्ञायां सत्यां कृते इत्यस्मिन्नर्थे वुञ् प्रत्ययो भवति। कुलालेन कृतं कौलालकम्। वारुडकम्।

अत्र महाभाष्यकारेण 'संज्ञायाम्' इति योग विभागः कृतः। तेन यथाविहितं प्रत्ययः साध्यते। मक्षिकाभिः कृतं माक्षिकम्। सरघाभिः कृतं सारघम्। ग.र्मुतम्। पौत्तिकम्। प्रकृतिप्रत्ययसमुदायेन संज्ञा गम्यते।

जयादित्येनात्र योगविभागो नैव ज्ञातः। किन्तु संज्ञायामिति सूत्रं पृथग् व्याख्यातम्। परन्तु योगविभागकरणेन ज्ञायते पृथङ् नास्तीति। यदि पृथगेव स्याद् योगविभागोऽनर्थकः स्यात्।

अथ कुलालादयः—कुलाल॥ वरुड। चण्डाल। निषाद। कर्मार। सेना। सिरिध्र। सेन्द्रिय। देवराज। परिषत्। बधू। रुरु। मधु। ध्रुव। रुद्र। अनडुह।

---

* 'विनोपदेशेन ज्ञातमुपज्ञातम्' यह काशिका का वचन चिन्त्य ही है। क्योंकि ज्ञान के लिये गुरु का होना आवश्यक है। सृष्टि के आदि में भी परमेश्वर ने वेद का ज्ञान दिया, तभी मानव का बौद्धिक विकास हो सका और ऐसे अनेक परीक्षण किये गये हैं कि अब भी बिना गुरु के मानव को ज्ञान नहीं हो सकता है।

—अनुवादक

ब्रह्मन्। कुम्भकार। श्वपाक॥ इति कुलालादिः॥ ११७॥

भाषार्थ—तृतीया समर्थ गणोपदिष्ट कुलालादि प्रातिपदिकों से संज्ञा विषय में और कृत अर्थ में 'वुञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—कुलालेन कृतं कौलालकम्। वारुडकम्, इत्यादि।

इस सूत्र पर महाभाष्य में योग विभाग किया है। तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से कृत अर्थ में यथाविहित प्रत्यय संज्ञाविषय में होते हैं। जैसे—मक्षिकाभिः कृतं माक्षिकम्। सरघाभिः कृतं सारघम्। गार्मुतम्। पौत्तिकम्। यहाँ प्रकृति प्रत्यय के समुदाय से [मधु=शहद] संज्ञा का बोध होता है।

जयादित्य ने इस योगविभाग को नहीं समझा और 'संज्ञायाम्' एक पृथक् सूत्र मानकर व्याख्या की है, किन्तु महाभाष्य में योगविभाग करने से यह नितान्त स्पष्ट है कि यह पृथक् सूत्र नहीं है। यदि सूत्र पृथक् पृथक् ही होते तो योगविभाग करना निरर्थक ही हो जाता है॥ ११७॥

क्षुद्राभ्रमरवटरपादपादञ्॥ ११८॥

तेन कृते संज्ञायामिति सर्वमनुवर्त्तते। क्षुद्रा...पादपात्–५।१। अञ्–१।१। क्षुद्रादिभ्यस्तृतीयासमर्थेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः कृत इत्यस्मिन्नर्थे संज्ञायां गम्यमानायाम् अञ् प्रत्ययो भवति। क्षुद्राभिः कृतं क्षौद्रम्। भ्रामरम्। वाटरम्। पादपम्॥ ११८॥

भाषार्थ—यहाँ 'तेन, कृते, संज्ञायाम्' पदों की अनुवृत्ति आती है। तृतीया समर्थ क्षुद्रा, भ्रमर, वटर और पादप प्रातिपदिकों से कृत अर्थ में संज्ञा विषय में अञ् प्रत्यय होता है। जैसे—क्षुद्राभिः कृतं क्षौद्रम्। भ्रामरम्। वाटरम्। पादपम्। यह 'अण्' का अपवाद है। अण् और अञ् में स्वर में भेद होता है॥ ११८॥

तस्येदम्॥ ११९॥

तस्य —६।१। इदम् —१।१। इदंशब्दः प्रत्यक्षे वर्त्तते। तत्र सामान्येन त्यादादीनामेकशेषनिर्देशः कृतोऽस्ति तेन प्रत्यक्षपरोक्षषष्ठ्यर्थमात्रस्येह ग्रहणं भवति। तच्च, अदश्च, इदं च, इदमित्येकशेषः। यद्येकशेषो न मन्येत तर्हि परोक्षस्य षष्ठ्यर्थस्य ग्रहणं कथं स्यात्। षष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकाद् इदमिति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति। वनस्पतेरयं दण्डो वानस्पत्यः। राज्ञः कुमारी राजकीया। राज्ञो भृत्यो राजकीयः। 'राज्ञः क चेति ककारादेशः। असंख्याताः षष्ठ्यर्थास्तेषु प्रत्ययो विधीयते। उपगोरिदमौपगवम्। अनन्तरादयोऽपि षष्ठ्यर्थास्तेष्वनभिधानात् प्रत्ययो नोत्पद्यते। राष्ट्रस्यानन्तरं राष्ट्रस्य समीपमित्यर्थो राष्ट्रियशब्देन नाभिधीयते।

वा०—वहेस्तुरण् इट् च॥ १॥

तृच्प्रत्ययान्ताद् वहधातोरण् प्रत्ययो भवति, तृच्प्रत्ययस्येडागमश्च भवति। संवोढुः स्वं सांवहित्रम्॥ १॥

वा०—अग्नीधः शरणे रञ् भं च॥ २॥

षष्ठीसमर्थादग्नीत् प्रातिपदिकाच्छरणे षष्ठ्यर्थेऽभिधेये रञ् प्रत्ययो भवति। प्रत्यये परतः पूर्वस्य भसंज्ञा च। होता अग्नीदित्युच्यते। पदसंज्ञाया बाधिका भसंज्ञा विधीयते। पदसंज्ञायां जश्त्वं स्यात्तन्मः भूत्। अग्नीधा=होतुः शरणम्= गृहम् आग्नीध्रम्॥ २॥

वा०—समिधामाधाने षेण्यण्॥ ३॥

समित्प्रातिपदिकादाधाने षष्ठ्यर्थे षेण्यण् प्रत्ययो भवति। षित्करणं स्त्रियां ङीषर्थम्। समिधामाधानो मन्त्रः सामिधेन्यो मन्त्रः। सामिधेनी ऋक्॥ ११९॥

भाषार्थ—'इदम्' शब्द सर्वनाम है और प्रत्यक्ष संनिहित यह है, इस अर्थ में प्रयुक्त होता है। परन्तु इस सूत्र में (तच्च, अदश्च, इदं चेतीदम्) यह 'त्यदादीनि च' (१।२।७२) सूत्र से एकशेष* करके निर्देश किया है। इससे प्रत्यक्ष और परोक्ष षष्ठ्यर्थ मात्र का यहाँ ग्रहण होता है। यदि एक शेष निर्देश स्वीकार नहीं किया जाये तो परोक्ष षष्ठ्यर्थ का ग्रहण कैसे हो सकता है? षष्ठी समर्थ प्रातिपदिकों से इदम्=प्रत्यक्ष और परोक्ष (यह और वह) षष्ठ्यर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं। जैसे—वनस्पतेरयं दण्डो वानस्पत्यः। राज्ञः कुमारी राजकीया। राज्ञो भृत्यो राजकीयः। यह 'राज्ञः क च' (४।२।१३९) सूत्र से यहाँ ककारादेश हुआ है। षष्ठी के सम्बन्धवाचक असंख्य अर्थ होते हैं, उन सभी अर्थों में यह प्रत्यय विधान किया है। जैसे—उपगोरिदमौपगवम्। किन्तु षष्ठी के अनन्तरादि अर्थों में अनभिधान होने से प्रत्यय नहीं होता है। जैसे—राष्ट्रस्यानन्तरं, राष्ट्रस्य समीपम्, इत्यादि अर्थों की प्रतीति राष्ट्रिय शब्द से नहीं होती।

वा०—वहेस्तुरण् इट् च॥ १॥

तृच् प्रत्ययान्त वह् धातु से इदम् अर्थ में 'अण्' प्रत्यय होता है और तृच् प्रत्यय को 'इट्' का आगम होता है। प्रत्यय तो सूत्र से ही प्राप्त है, इडागम के लिये वार्तिक बनाया है। जैसे—संवोढुः स्वं सांवहित्रम्॥ १॥

वा०—अग्नीधः शरणे रञ् भं च॥ २॥

षष्ठी समर्थ 'अग्नीध्' प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ शरण (गृह) अर्थ में 'रञ्' प्रत्यय होता है और प्रत्यय से पूर्व की भसंज्ञा होती है। अग्नीध् 'होता' कहलाता है। यहाँ पद संज्ञा की बाधिका भसंज्ञा का विधान किया है। पद संज्ञा में जश्त्व दकारादेश प्राप्त होता, वह न हो, इसलिये भसंज्ञा का विधान किया है। जैसे—अग्नीधः (होतुः) शरणम् (गृहम्) आग्नीध्रम्॥ २॥

वा०—समिधामाधाने षेण्यण्॥ ३॥

षष्ठीसमर्थ 'समिध' प्रातिपदिक से आधान षष्ठ्यर्थ में षेण्यण् प्रत्यय होता है। षित्करण स्त्रीलिंग में ङीष् के लिये है। जैसे—समिधामाधानो मन्त्रः सामिधेन्यो मन्त्रः। सामिधेनी ऋक्॥ ११९॥

---

* 'इहापि तर्ह्येकशेषनिर्देशो भविष्यति—तच्च अदश्च इदं च—इदमित्येव' (महाभाष्ये)।
—अनुवादकः

रथाद् यत्॥ १२०॥

रथात् —५।१। यत् —१।१। अणोऽपवादः। षष्ठीसमर्थाद् रथप्रातिपदिकाद् इदम् इति षष्ठ्यर्थे यत् प्रत्ययो भवति। षष्ठ्यर्थश्चात्रावयव इष्यते। रथ्यशब्देम यस्याभिधानं न दृश्यतेऽतो नोत्पद्यते प्रत्ययः। रथस्य चक्रं युगं वा रथ्यम्। वक्ष्यमाणसूत्रेण ज्ञायते तदन्तादपि यद् भवतीति। शोभनरथ्यम्। दर्शनीयरथ्यम्॥ १२०॥

भाषार्थ—यह सूत्र 'अण्' का अपवाद है। षष्ठीसमर्थ रथ प्रातिपदिक से इदम्=षष्ठ्यर्थ में यत् प्रत्यय होता है। यहाँ अवयव षष्ठ्यर्थ का ग्रहण इष्ट है। 'रथ्य' शब्द से जिसका अभिधान नहीं होता, वहाँ प्रत्यय नहीं होता है। जैसे—रथस्य चक्रं युगं वा रथ्यम्। इससे अगले सूत्र 'पत्रपूर्वादञ्' (४।३।१२१) से ज्ञात होता हैं कि यहाँ तदन्त विधि भी होती है। इससे शोभनरथ्यम्। दर्शनीयरथ्यम्, इत्यादि प्रयोग भी सिद्ध होते हैं॥ १२०॥

पत्रपूर्वादञ्॥ १२१॥

रथादित्यनुवर्त्तते। पत्रपूर्वात् —५।१।अञ् —१।१।यौगिकः पत्रशब्दोऽत्र गृह्यते। पतन्ति गच्छन्त्यनेनेति पत्रम् अश्वादिवाहनमुच्यते। पत्रं पूर्वं यस्मादिति। पत्रपूर्वात् षष्ठीसमर्थाद्रथप्रातिपदिकाद् इदमर्थेऽञ् प्रत्ययो भवति। पूर्वेण तदन्तविधिना यत् प्राप्तः स बाध्यते। उष्ट्ररथस्येदं चक्रम् औष्ट्ररथम्। आश्वरथम्। वृद्धादपि प्रातिपदिकात् परत्वादञ्। वामीरथम्। रासभरथम्॥ १२१॥

भाषार्थ—यहाँ 'रथात्' पद की अनुवृत्ति है। 'पतन्ति गच्छन्त्यनेनेति पत्रम् अश्वादिवाहनम्' इस निर्वचन के अनुसार यहाँ यौगिक 'पत्र' शब्द का ग्रहण है। पत्र=वाहनवाची शब्द जिससे पूर्व हो, उस षष्ठी समर्थ रथ प्रातिपदिक से इदम् अर्थ में 'अञ्' प्रत्यय होता है। पूर्वसूत्र से तदन्त विधि मानकर 'यत्' प्रत्यय प्राप्त है, यह उसका अपवाद है। जैसे उष्ट्ररथस्येदं चक्रम् औष्ट्ररथम्। आश्वरथम्। वृद्धसंज्ञक प्रातिपदिकों से भी पर विप्रतिषेध से 'अञ्' प्रत्यय ही होता है। जैसे—वामीरथस्येदं वामीरथम्। रासभरथम्, इत्यादि॥ १२१॥

पत्राध्वर्युपरिषदश्च॥ १२२॥

अञनुवर्त्तते पत्रा......षदः —५।१।च[अ०] पत्रशब्देन पूर्ववद् वाहनमुच्यते। षष्ठीसमर्थेभ्यः पत्राध्वर्युपरिषद्भ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽञ् प्रत्यय इदमर्थे भवति। गर्दभस्येदं गार्दभम्। आश्वम्। औष्ट्रम्। अध्वर्योरिदम् आध्वर्य्यवम्। पारिषदम्॥ १२२॥

भाषार्थ—यहाँ 'अञ्' प्रत्यय की अनुवृत्ति है। 'पत्र' शब्द से पूर्वसूत्र की भाँति यौगिकार्थ वाहन का ग्रहण है। षष्ठीसमर्थ पत्रवाचक और अध्वर्यु तथा परिषद् प्रातिपदिकों से इदम् षष्ठ्यर्थ में अञ् प्रत्यय होता है। जैसे—गर्दभस्येदं गार्दभम्। आश्वम्। औष्ट्रम्। अध्वर्योरिदम् आध्वर्यम्। पारिषदम्॥ १२२॥

हलसीराट् ठक्॥ १२३॥

हलसीरात् —५।१।ठक् —१।१।अणोऽपवादः। सीरशब्दो हलावयवः। षष्ठीसमर्थाभ्यां हल-सीरप्रातिपदिकाभ्यामिदमर्थे ठक् प्रत्ययो भवति। हालिकम्। सैरिकम्॥ १२३॥

भाषार्थ—यह सूत्र 'अण्' का अपवाद है। सीर शब्द हल के अवयव का वाचक है। षष्ठीसमर्थ हल और सीर प्रातिपदिकों से इदम् षष्ठ्यर्थ में ठक् प्रत्यय होता है। जैसे—हलस्येदं हालिकम्। सैरिकम्॥ १२३॥

द्वन्द्वाद् वुन् वैरमैथुनिकयोः॥ १२४॥

द्वन्द्वात् —५।१।वुन् —१।१।वैरमैथुनिकयोः —७।२।वैरमैथुनिके प्रकृत्यर्थविशेषणे। वैरमैथुनिकात् षष्ठीसमर्थाद् द्वन्द्वप्रातिपदिकाद् वुन् प्रत्ययो भवति। वैरद्वन्द्वात्तावत्—अहिनकुलिका। वृद्धादपि परविप्रतिषेधाद् वुनेव भवति। काकोलूकिका। श्वावराहिका। मैथुनिकद्वन्द्वात्—गर्गकुशिकिका। अत्रिभरद्वाजिका। अत्र लोकाश्रयत्वाल् लिङ्गस्य स्त्रीत्वमेव भवति।

जयादित्येनात्रोक्तं वैरमैथुनिकयोः प्रत्ययार्थविशेषणयोः। तदसंगतमेवास्ति। कुतः। अहिनकुलम्। मूषकमार्जारम्। इत्यादि प्रयोगेषु तथा अत्रिभारद्वाजौ। गर्गकुशिकावित्यादिषु च वुन् प्रत्ययमन्तरैव वैरमैथुनिकयोर्विद्यमानत्वात्। अतो ज्ञायते कृतद्वन्द्वं प्रातिपदिकं वैरमैथुनिकयोर्वर्त्तते। सम्बन्धश्चात्र प्रत्ययार्थोऽस्त्येव।

वा०—वैरे देवासुरादिभ्यः प्रतिषेधः॥

वुन् प्रतिषिध्यते। अधिकारादण् तु भवत्येव। दैवासुरम्। राक्षोऽसुरम्॥ १२४॥

भाषार्थ—इस सूत्र में 'वैरमैथुनिकयोः' पद प्रकृत्यर्थ का विशेषण है। जिन-जिन का परस्पर स्वाभाविक वैर हो और योनिसम्बन्ध हो, उनके वाची षष्ठी समर्थ द्वन्द्व समास किये प्रातिपदिकों से इदम् षष्ठ्यर्थ में 'वुन्' प्रत्यय होता है। जैसे—वैर द्वन्द्व से—अहिनकुलिका। वृद्धसंज्ञक वैरद्वन्द्व से भी पर विप्रतिषेध से वुन् ही होता है। जैसे—काकोलूकिका। श्वावराहिका। मैथुनिक द्वन्द्व से गर्गकुशिकिका। अत्रिभरद्वाजिका, इत्यादि। यहाँ लिङ्गप्रयोग में लोकाश्रय ही मुख्य होता है, अतः इन शब्दों में स्त्रीत्व का प्रयोग है।

इस सूत्र पर जयादित्य ने लिखा है—'वैरमैथुनिकयोः प्रत्ययार्थविशेषणयोरिति।' अर्थात् 'वैरमैथुनिकयोः' शब्द प्रत्ययार्थ का विशेषण है। यह असंगत ही जानना चाहिये। क्योंकि—'अहिनकुलम्, मूषकमार्जारम्' इत्यादि प्रयोगों में वैरभाव और 'अत्रिभरद्वाजौ, गर्गकुशिकौ' इत्यादि में मैथुनिकभाव वुन् प्रत्यय के विना भी विद्यमान है। इससे स्पष्ट है कि ये कृतद्वन्द्व प्रातिपदिक ही वैरमैथुनिक अर्थों में प्रयुक्त होते हैं। और षष्ठी सम्बन्ध अर्थ को प्रत्यय बताता है।

वा०—वैरे देवासुरादिभ्यः प्रतिषेधः॥ १॥

वैर अर्थ में देवासुर इत्यादि द्वन्द्वसमासों से इदम् अर्थ में 'वुन्' प्रत्यय नहीं होता है। किन्तु सामान्य अधिकार से प्राप्त 'अण्' प्रत्यय तो होता ही है। जैसे—

दैवासुरम्। राक्षोऽसुरम्, इत्यादि॥१॥१२४॥

गोत्रचरणाद् वुञ्॥ १२५॥

गोत्रचरणात् —५।१। वुञ् —१।१।

वा०—चरणाद् धर्माम्नाययोः॥ १॥

सूत्रे विशेषं सम्पादयति। गोत्रवाचिभ्यश्चरणवाचिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो वुञ् प्रत्ययो भवति। गोत्रवाचिभ्यस्तु सामान्येन षष्ठ्यर्थे चरणवाचिभ्यश्च धर्माम्नाययोरिति विशेषः। ग्लुचुकायनेरिदं ग्लौचुकायनकम्। आहिचुम्बकायनकम्। वृद्धादपि परत्वाद् वुञ्। गार्गकम्। वात्सकम्। चरणवाचिभ्यः—कठानां धर्म आम्नायो वा काठकम्। कालापकम्। मौदकम्। पैप्पलादकम्। अधिकारादण् प्राप्तः स बाध्यते॥ १२५॥

भाषार्थ—वा०—चरणाद् धर्माम्नाययोः॥ १॥

इस वार्त्तिक से सूत्र में यह विशेषता बताई गई है—षष्ठीसमर्थ गोत्रवाची शब्दों से और चरण (शाखावाची) शब्दों से इदम् अर्थ में 'वुञ्' प्रत्यय होता है। इस सूत्रार्थ में गोत्रवाचियों से सामान्य षष्ठी के अर्थ में और चरण=शाखावाचियों से धर्म तथा आम्नाय विशेष षष्ठ्यर्थ में 'वुञ्' प्रत्यय समझना चाहिये। जैसे-गोत्रवाची से ग्लुचुकायनेरिदं ग्लौचुकायनकम्। आहिचुम्बकायनकम्। वृद्धसंज्ञक गोत्रवाचियों से भी परत्व से 'वुञ्' ही होता है। जैसे—गार्गकम्। वात्सकम्, इत्यादि। चरण-वाचियों से—कठानां धर्म आम्नायो वा काठकम्। कालापकम्। मौदकम्। पैप्लादकम्। यह सूत्र सामान्य अधिकार से प्राप्त 'अण्' का बाधक है॥ १२५॥

संघाङ्कलक्षणेष्वञ्यञिञामण्॥ १२६॥

संघाङ्कलक्षणेषु —७।३। अञयञिञाम् —६।३। अण् —१।१। पूर्वसूत्रेण वुञ् प्राप्तः स बाध्यते। अञन्ताद् यञन्ताद् इञन्ताच्च गोत्रप्रत्ययान्तात् षष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकादिदमर्थेऽण् प्रत्ययो भवति। [संघांकलक्षणेषु प्रत्यार्थेषु] यथासंख्यमत्र न भवति। वार्त्तिकेन घोषग्रहणे वैषम्यात्। अञन्तात्—विदानां संघोऽङ्को लक्षणं वा वैदः। यञन्तात्—गार्गः संघोऽङ्को लक्षणं वा। वात्सः। इञन्तात्—दाक्षः संघोऽङ्को लक्षणं वा।

वा०—संघादिषु घोषग्रहणं कर्त्तव्यम्॥

गार्गो घोषः। वात्सो घोषः॥ १२६॥

भाषार्थ—पूर्वसूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय प्राप्त है, उसका यह अपवाद है। अञन्त, यञन्त और इञन्त षष्ठी समर्थ गोत्रवाची प्रातिपदिकों से संघ, अंक और लक्षण षष्ठ्यर्थ विशेष अभिधेय हो तो इदम् अर्थ में 'अण्' प्रत्यय होता है। संघादि प्रत्ययार्थ तथा अञन्तादि भी तीन-तीन हैं, अतः यथासंख्य होने से यथासंख्य कार्य होने चाहिएँ, किन्तु वार्त्तिक में 'घोष' अर्थ का ग्रहण करने से विषमता होने से यथा संख्यता नहीं होती है। जैसे—अञन्त से—विदानां संघोऽङ्को लक्षणं वा वैदः। यञन्त से—गार्गः संघोऽङ्को लक्षणं वा। वात्सः। इञन्त से दाक्षः संघोऽङ्को लक्षणं वा।

वा०—संघादिषु घोषग्रहणं कर्त्तव्यम्॥ १ ॥

अञन्तादि शब्दों से संघादि अर्थों में जो प्रत्यय विधान किया है, वह घोष अर्थ में भी उन्हीं प्रातिपदिकों से होवे। जैसे—गार्गो घोष:। वात्सो घोष:। दाक्षो प्लाक्षो वा घोष:, इत्यादि॥ १२६॥

शकलाद्वा॥ १२७॥

शकलात् —५।१।वा [अ०]। प्राप्तविभाषेयम्। शकलाशब्दो गर्गादिषु पठ्यते। तस्माद् यञन्तान्नित्येऽणि प्राप्ते विभाषाऽऽरभ्यते। षष्ठीसमर्थाद् गोत्र-प्रत्ययान्ताच्छकलप्रातिपदिकाद् विकल्पेनाण् प्रत्ययो भवति [इदमर्थे] पक्षे गोत्रचरणादिति वुञ्। शाकल्यस्य संघोऽङ्को लक्षणं घोषो वेति शाकल:। शाकलक:।

अस्मिन् सूत्रे जयादित्यभट्टोजिदीक्षितादय: कौमुदीकारास्तत् पाठिनश्च वदन्ति। 'शाकलाद्वा' ईदृशं सूत्रं लिखित्वा व्याख्यां कुर्वन्ति। शकलशब्दात् प्रोक्तेऽर्थेऽण्। शकले प्रोक्तमधीयते ते शाकला:। तेषां संघोऽङ्को लक्षणं घोषो वा शाकल:। शाकलक:। पक्षे चरणत्वाद् वुञ्। लक्षणे क्लीबता-इति, तदेतत् सर्वमसंगतमेवास्ति। कथम्। यदि 'शाकलाद्वा' इति सूत्रं न्याय्यं तर्हि तेषां मते शाकलं प्रातिपदिकं चरणवाचकं, पक्षेचरणत्वाद् वुञ् इत्युक्तत्वात्। 'चरणाद् धर्माम्नाययो:' इति वार्तिकनियमात् संघादिषु तद्धितोत्पति: कथं स्यात्। एतत् तु तेषां कथनं पूर्वापरं विरुध्यते। यदि ते शाकलशब्दं चरणवाचकं न मन्येरन् तर्हि प्रोक्तप्रत्ययान्तस्यागोत्रत्वाद् तद्धितोत्पत्ति: स्यादेव न गोत्रचरणादित्य-धिकारात्। अथास्मिन् विषये महाभाष्यकारो भगवान् पतञ्जलिमुनि:— 'इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च' 'संबुद्धौ शाकल्येस्येतावनार्षे' 'लोप: शाकल्यस्य' इत्यादि सूत्रव्याख्यानावसरे शाकल्यस्येमानि लक्षणानि सूत्राणि शाकलानीति मत्वा शाकलं न प्रसज्यते, इत्यादि कथनं बहुषु स्थलेषु करोति, तेन ज्ञायते 'शाकलाद्वे' ति सूत्रं नास्ति। यदि शाकलशब्दश्चरणवाची स्यात्तर्हि शाकलशब्दाद् धर्माम्नाययोरेवाण् प्रत्यय: स्यात्, पुनस्तेषां मते शाकलं सूत्रस्य नाम कथं स्यात्। तस्मात्तेषां शाकलाद्वेत्यस्य व्याख्यानं सद्भिर्वैय्याकरणैर्नाद-रणीयम्। स्त्रीलिङ्गप्रकरणे 'सर्वत्रलोहितादिकतन्तेभ्य' इत्यत्रोक्तम्।

कण्वात्तु शकल: पूर्व: कण्वादुत्तर इष्यते।
पूर्वोत्तरौ तदन्तादी ष्फाणौ तत्र प्रयोजनम्॥ १॥
अस्य व्याख्यानमपि तत्र कृतमेवम्॥ १२७॥

भाषार्थ—इस सूत्र में प्राप्तविभाषा इसलिये है कि शकल शब्द का गर्गादिगण में पाठ है। और गोत्रवाची यञन्त शब्द से पूर्वसूत्र से नित्य 'अण्' प्राप्त है, उसका यह विकल्प करता है। षष्ठीसमर्थ गोत्र प्रत्ययान्त 'शकल' प्रातिपदिक से इदम् अर्थ में विकल्प से 'अण्' प्रत्यय होता है और पक्ष में 'गोत्रचरणाद्वुञ्' (४।३।१२५) सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—शाकल्यस्य संघोऽङ्को लक्षणं

घोषो वेति शाकलः। शाकलकः।

इस सूत्र पर [काशिकाकार] जयादित्य और सिद्धान्त कौमुदी बनानेवाले भट्टोजिदीक्षितादि तथा उसको पढनेवाले लोग कहते हैं कि 'शाकलाद्वा' ऐसा सूत्र समझना चाहिये। इसलिये वे ऐसा सूत्र ही लिखकर व्याख्या करते हैं। वे लोग 'शकल' शब्द से प्रोक्त अर्थ में 'अण्' प्रत्यय करके ''शकलेन प्रोक्तमधीयते ते शाकलाः। तेषां संघोऽङ्को लक्षणं घोषो वा शाकलः। शाकलकः। पक्षे चरणत्वाद् वुञ्'' इस 'शाकल' शब्द को चरणवाची मानकर संघादि अर्थों में निर्वचन करके प्रत्यय करते हैं। यह उनका अर्थ असंगत (मिथ्या) ही है। क्योंकि यदि 'शाकलाद्वा' ऐसा सूत्र मानें तो शाकल शब्द चरणवाची हुआ, और चरणवाची मानकर पक्ष में 'वुञ्' प्रत्यय होगा, गोत्रवाची मानकर नहीं। किन्तु 'चरणाद् धर्माम्नाययोः' इस वार्त्तिक नियम से चरणवाची से संघादि अर्थों में प्रत्यय कैसे होगा? और इसलिये उनकी यह व्याख्या पूर्वापर विरुद्ध तथा महाभाष्य के भी विरुद्ध है। और यदि ये ऐसा कहें कि हम शाकल शब्द को चरणवाची नहीं मानते हैं, तो यह दोष आयेगा कि प्रोक्त प्रत्ययान्त शाकल शब्द को चरणवाची तो आप मानते नहीं हैं, और गोत्र प्रत्ययान्त भी नहीं है, फिर 'गोत्रचरणात्०' (४।३।१२५) के अधिकार में तद्धितोत्पत्ति नहीं हो सकेगी।

और इस विषय में महाभाष्यकार के अन्यवचन भी विचारणीय हैं— 'इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च' (६।१।१२४) सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे (१।१।१६) लोपः शाकल्यस्य (८।३।१९) इत्यादि सूत्रों के व्याख्याप्रसंग में 'शाकल्यस्येमानि लक्षणानि सूत्राणि शाकलानि'' ऐसा मानकर ''शाकलं न प्रसज्यते'' इत्यादि वचन महाभाष्यकार ने अनेक स्थानों पर प्रयुक्त किये हैं, इनसे भी स्पष्ट होता है कि ''शाकलाद्वा'' सूत्र नहीं है। क्योंकि भाष्यकार शाकल्याचार्य के सूत्रों को 'शाकल' लिखते हैं। और यदि शाकल शब्द चरणवाची होता तो उससे धर्माम्नाय अर्थों में ही प्रत्यय होता, लक्षण अर्थ में नहीं, तो शाकल्य के सूत्रों का नाम 'शाकल' कैसे होता? इसलिये सभी सज्जन वैयाकरणों को—

महाभाष्य से विरोध और परास्परिक विरोध को ध्यान में रखकर इन कौमुदीकारादि की मान्यता का आदर नहीं करना चाहिये और 'शकलाद्वा' ऐसा ही सूत्र मानना चाहिये। इस विषय में स्त्रीलिंग प्रकरण में 'सर्वत्रलोहितादिकतन्तेभ्यः' (४।१।१८) सूत्रस्थ 'कण्वात्तु शकलः पूर्वः' कारिका पर भी ध्यान देना चाहिये, जो 'शाकलाद्वा' सूत्र का विरोध कर रही है। इस कारिका में शकल शब्द के गर्गादिगण में किये पाठ पर विचार किया है और यह निर्णय किया है कि कुछ पाठ परिवर्त्तन करने से यञ् प्रत्ययान्त 'शाकल्य' शब्द से स्त्रीलिंग में 'ष्फ' प्रत्यय और 'कण्वादिभ्यो गोत्रे' (४।२।११०) सूत्र से 'अण्' प्रत्यय सिद्ध हो जाते हैं। और 'शाकल्यस्य छात्राः शाकलाः' इस शैषिक अण्-प्रत्ययान्त 'शाकल' शब्द की सिद्धि से 'शाकल' शब्द का चरणवाचित्व सन्दिग्ध हो जाता है॥१२७॥

छन्दोगौक्थिकयाज्ञिकबह्वृचनटाञ् ञ्यः॥१२८॥

छन्दोगौ...नटात् —५।१। ञ्यः —१।१। छन्दोगादयः शब्दाश्चरण-वाचिनः। तेषु संघादयोऽर्था न सम्बध्यते। चरणाद् धर्माम्नाययोरिति नियमात्। षष्ठीसमर्थेभ्यश्छन्दोगादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो ञ्यः प्रत्ययो भवति धर्माम्नाययो-रभिधेययोः। छन्दोगानां धर्म आम्नायो वा छान्दोग्यम्। औक्थिक्यम्। याज्ञिक्यम्। बाह्वृच्यम्। नटानां धर्म आम्नायो वा नाट्यम्। धर्माम्नाययोरिति किम्—छान्दोगं कुलमित्यादि॥१२८॥

भाषार्थ—छन्दोगादि शब्द चरण (शाखा) वाची हैं, अतः ''चरणाद् धर्माम्नाययोः'' इस नियम के अनुसार उन से संघादि अर्थों का सम्बन्ध नहीं है। षष्ठी समर्थ छन्दोग, ओक्थिक, याज्ञिक, बह्वृच और नट प्रातिपदिकों से धर्म और आम्नाय अर्थों में 'ञ्य' प्रत्यय होता है। जैसे—छन्दोगानां धर्म आम्नायो वा छान्दोग्यम्। औक्थिक्यम्। याज्ञिक्यम्। बाह्वृच्यम्। नटानां धर्म आम्नायो वा नाट्यम्। यहाँ 'धर्माम्नाययोः' अर्थों के कथन से इनसे अन्यत्र 'ञ्य' प्रत्यय नहीं होता जैसे—छान्दोगं कुलम्, इत्यादि॥१२८॥

न दण्डमाणवान्तेवासिषु॥१२९॥

न[अ०]।दण्डमाणवान्तेवासिषु—७।३।दण्डमाणवशब्द उत्तरपदलोपी समासः। दण्डः प्रधानं येषां ते दण्डप्रधानाः। दण्डप्रधानाश्च ते माणवा दण्डमाणवाः। दण्डमाणवान्तेवासिष्विति प्रत्ययार्थविशेषणमेतत्। दण्डमाण-वान्तेवासिष्वभिधेयेषु गोत्रवाचिभ्यः षष्ठीसमर्थेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो वुञ् प्रत्ययो प्राप्तः स न भवतीति। किन्त्वधिकारादण् भवत्येव। वैशम्पायनस्य दण्डमाणवा अन्तेवासिनो वैशम्पायनाः। कौत्सायनाः। ग्लौचुकायनाः। गोत्रग्रहणमत्रानु-वर्त्तते॥१२९॥

भाषार्थ—यहाँ 'गोत्र' की अनुवृत्ति है। 'दण्डमाणव' शब्द में उत्तरपद का लोप हुआ है—''दण्डः प्रधानं येषां ते दण्डप्रधानाः। दण्डप्रधानाश्च ते माणवा दण्डमाणवाः। और ''दण्डमाणवान्तेवासिषु'' पद प्रत्ययार्थ का विशेषण है। षष्ठी समर्थ गोत्रवाची प्रातिपदिकों से दण्डमाणवा अन्तेवासी अभिधेय में 'वुञ्' प्रत्यय नहीं होता है। किन्तु सामान्य 'अण्' ही होता है। जैसे—वैशम्पायनस्य दण्डमाणवा अन्तेवासिनो वैशम्पायनाः। कौत्सायनाः। ग्लौचुकायनाः, इत्यादि॥१२९॥

रैवतिकादिभ्यश्छः॥१३०॥

रैवतिकादिभ्यः —५।३।छः —१।१।रेवत्यादिभ्यष्ठगिति रेवतीशब्दाट् ठक्। सर्वे रैवतिकादयो गोत्रप्रत्ययान्ताः। रैवतिकादिभ्यो गोत्रप्रत्ययान्तेभ्यः षष्ठीसमर्थेभ्यः प्रातिपदिकेभ्य इदमर्थे छः प्रत्ययो भवति। वुञोऽपवादः। रैवतिकानां संघो रैवतिकीयः। स्वापिशीयः। अङ्को लक्षणं घोषो वा।

अथ रैवतिकादिगणः—रैवतिक। स्वापिशि। क्षैमवृद्धि। गौरग्रीवि। औदमेघि। औदमेयि। औदवापि। औदवाहि। वैजवापि। इति रैवतिकादिगणः॥

वा०—कौपिंजलहास्तिपदादण्॥१॥

कौपिंजल-हास्तिपदगोत्रप्रत्ययान्तप्रातिपदिकाभ्यां वुञ् प्राप्तः स बाध्यते। कौपिंजलस्य संघः कौपिंजलः। हास्तिपदः॥ १॥

वा०—आथर्वणिकस्येकलोपश्च॥ २॥

चकारग्रहणादण् अनुवर्त्तते। अथर्वाणमधीतेऽसावाथर्वणिकः। वसन्तादि-पाठाद् ठक्। आथर्वणिकशब्दश्चरणवाचकस्तस्माद् वुञ् बाधकोऽण् विधीयते।

आथर्वणिकस्य धर्म आम्नायो वाऽऽथर्वणः। अणि परतः इकलोपश्च भवति। 'कौपिंजलहास्तिपदादण्' 'आथर्वणिकस्येकलोपश्च' इमे द्वे वार्त्तिके जयादित्येन सूत्रे कृत्वा व्याख्याते। इदानीन्तनेषु लिखितमुद्रितपुस्तकेष्वपि सूत्र-पाठे दृश्येते। परन्तु महाभाष्ये वार्तिकयोः प्रतिपादनाज् ज्ञायते सूत्रे न स्त इति। कैय्यटेनापि लिखितम् अपाणिनीयः सूत्रेषु पाठ इति। तेन ज्ञायते बहुकालात् केनचित् सूत्रेषु मेलिते। अतो जयादित्यादीनां व्याख्यानमसंगतम्॥ १३०॥

भाषार्थ—'रेवत्यादिभ्यष्ठक्' (४।१।१४६) सूत्र से 'रेवती' शब्द से 'ठक्' प्रत्यय करके 'रैवतिक' शब्द बना है। सभी रैवतिकादि शब्द गोत्र प्रत्ययान्त हैं। षष्ठी समर्थ गोत्र प्रत्ययान्त रैवतिकादि गण-पठित प्रातिपदिकों से इदम् अर्थ में 'छ' प्रत्यय होता है। यह सूत्र 'वुञ्' का अपवाद है। जैसे—रैवतिकानामङ्कः संघो लक्षणं घोषो वा रैवतिकीयः। स्वापिशीयः, इत्यादि।

वा०—कौपिंजलहास्तिपदादण्॥ १॥

गोत्रप्रत्ययान्तों से 'वुञ्' की प्राप्ति में यह 'अण्' का विधान किया है। षष्ठी समर्थ गोत्र प्रत्ययान्त कौपिंजल और हास्तिपद प्रातिपदिकों से इदम् अर्थ में 'अण्' प्रत्यय होता है। जैसे—कौपिंजलस्य सङ्घः कौपिञ्जलः। हास्तिपदः॥ १॥

वा०—आथर्वणिकस्येकलोपश्च॥ २॥

यहाँ चकार से अण् की अनुवृत्ति है। अथर्वन् शब्द वसन्तादि गण में पठित हैं, उससे अध्ययन अर्थ में 'ठक्' प्रत्यय होता है—अथर्वाणमधीतेऽसावाथर्वणिकः। आथर्वणिक शब्द चरणवाची होने से 'गोत्रचरणाद् वुञ्' (४।३।१२५) सूत्र से 'वुञ्' प्राप्त है, उसका बाधक यह 'अण्' विधान किया है। आथर्वणिक शब्द से धर्म और आम्नाय अर्थों में अण् प्रत्यय और प्रकृति के इकभाग का लोप होता है। जैसे—आथर्वणिकस्य धर्म आम्नायो वा आथर्वणः।

जयादित्य ने (कौपिंजल०) और (आथर्वणिक०) इन दोनों वार्त्तिकों को सूत्र मानकर व्याख्या की है। और वर्त्तमान में उपलब्ध लिखित और मुद्रित सूत्रपाठ की पुस्तकों में भी ये सूत्ररूप में मिलते हैं। परन्तु महाभाष्य में इनको वार्त्तिक मानकर व्याख्या की है, इससे स्पष्ट है कि ये दोनों सूत्र नहीं हैं। कैय्यट ने भी इस बात की पुष्टि की है—'अपाणिनीयः सूत्रेषु पाठ इति'। इससे ज्ञात होता है कि इनको किसी ने सूत्रों में कैय्यट से भी पहले ही मिला दिया था। इसलिये सूत्र मानकर जयादित्यादि की व्याख्या मिथ्या ही है॥ १३०॥

तस्य विकारः॥ १३१॥

तस्य —६।१। विकारः —१।१। तस्येत्यनुवर्त्तमाने पुनस्तस्य ग्रहणं शैषिकनिवृत्त्यर्थम्। अर्थात् विकारावयवयोर्घादयः प्रत्यया मा भूवन्निति। षष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकाद् विकारेऽभिधेये यथाविहितं प्रत्ययो भवति। मृत्तिकाया विकारो घटो मार्त्तिकः। आश्मः। विकारावयवप्रकरणं तस्येदमित्यस्यैव बाधकम्॥ १३१॥

भाषार्थ—इस सूत्र में 'तस्य' पद की अनुवृत्ति 'तस्येदम्' (४।३।११९) सूत्र से होने पर भी पुनः 'तस्य' शेषाधिकार की निवृत्ति के लिये है। अर्थात् विकार, अवयव अर्थों में शैषिक घादि प्रत्यय नहीं होते हैं। षष्ठी समर्थ प्रातिपदिकों से विकार अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं। जैसे—मृत्तिकाया विकारो घटो मार्त्तिकः। आश्मः। यह विकार-अवयव अर्थों का प्रकरण 'तस्येदम्' (४।३।११९) सूत्र का ही बाधक है॥ १३१॥

अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः॥ १३२॥

अवयवे —७।१। च [अ०]। प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः —५।३। विकार इत्यनुवर्त्तते। नियमार्थोऽयं पृथङ्निर्देशः। प्राण्यादिभ्य इतराणि प्रातिपदिकानि तेभ्यो विकार एव प्रत्यय उत्पत्स्यते। प्राण्यादिभ्यस्तु विकारावयवयोरेव। तस्येदमिति षष्ठ्यर्थे सामान्येन घादयः शैषिकाः प्रत्यया विधीयन्ते तेषामपवादौ विकारावयवौ। प्राण्योषधिवृक्षवाचिभ्यः षष्ठीसमर्थेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो विकारावयवयोरभिधेययोर्यथाविहितं प्रत्ययो भवति। प्राणिवाचिभ्यस्तावदञ् विधास्यते। [ओषधिवाचिभ्यः] लवङ्गस्य विकारोऽवयवो वा लावङ्गम्। दैवदारवम्। निर्वश्या विकारोऽवयवो वा नैर्वशम्। वृक्षेभ्यः—खदिरस्य विकारोऽवयवो वा खादिरम्। बार्बुरम्। कारीरम्। एतत् सूत्रद्वयमधिकाराय क्रियते। इत उत्तरं प्राण्योषधिवृक्षेभ्यो ये प्रत्यया विधास्यन्ते ते विकारावयवयोर्भविष्यन्ति। इतरेभ्यो विधीयमानास्तु विकार एवेति विज्ञातव्यम्॥ १३२॥

भाषार्थ—पूर्वसूत्र से 'विकारः' पद की अनुवृत्ति है। यह सूत्र नियमार्थ होने के लिये पृथक् किया है। नियम यह है कि इस प्रकरण में प्राणी, ओषधि और वृक्षवाची शब्दों से विकार-अवयव दोनों अर्थों में प्रत्यय होते हैं और प्राणी आदि से भिन्न शब्दों से विकार अर्थ में ही प्रत्यय होते हैं। 'तस्येदम्' (४।३।११९) सूत्र से षष्ठ्यर्थ में सामान्यरूप से घादि शैषिक प्रत्ययों का विधान किया है। यह विकार और अवयव उसका अपवाद हैं। षष्ठी समर्थ प्राणी, ओषधि और वृक्षवाची प्रातिपदिकों से विकार और अवयव अर्थों में यथाविहित प्रत्यय होते हैं। प्राणीवाचियों से तो इसी प्रकरण में आगे 'अञ्' प्रत्यय का विधान किया जायेगा, अतः उदाहरण भी वहीं द्रष्टव्य है। ओषधीवाची—लवङ्गस्य विकारोऽवयवो वा लावङ्गम्। दैवदारवम्। निर्वश्या विकारोऽवयवो वा नैर्वशम्। वृक्षवाची—खदिरस्य विकारोऽवयवो वा खादिरम्। बार्बुरम्। कारीरम्। ये दोनों सूत्र 'तस्य विकारः (४।३।१३१) और 'अवयवे च' (४।३।१३२) अधिकार के लिये हैं। इससे आगे प्राणी, ओषधि और वृक्षवाची शब्दों से जो प्रत्यय विधान करेंगे,

वे विकार और अवयव अर्थों में होंगे, और प्राणी आदि से भिन्न शब्दों से विकार अर्थ में ही, यह सर्वत्र जानना चाहिये॥ १३२॥

बिल्वादिभ्योऽण्॥ १३३॥

बिल्वादिभ्यः— ५।३। अण्— १।१। विकारावयवावनुवर्त्तेते। षष्ठी-समर्थेभ्यो बिल्वादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो विकारावयवयोरभिधेययोरण् प्रत्ययो भवति। बिल्वस्य विकारोऽवयवो वा बैल्वम्। व्रैहम्। गवेधुकाशब्दो बिल्वादिषु पठ्यते, तस्माद् वक्ष्यमाणसूत्रेण कोपधत्वादणि सिद्धे पुनः पाठो मयड् बाधनार्थः। अन्येभ्यो बिल्वादिभ्यस्तुविभाषा मयट्, पक्षेऽण् भवत्येव। गवेधुकाया विकारोऽवयवो वा गावेधुकम्।

अथ बिल्वादिगणः—बिल्व। व्रीहि। काण्ड। मुद्ग। मसूर। गोधूम। इक्षु। वेणु। गवेधुका। कर्पासी। पाटली। कर्कन्धू। कुटीर॥ इति बिल्वादयः॥ १३३॥

भाषार्थ—यहाँ 'विकार और अवयव' अर्थों की अनुवृत्ति है। षष्ठी समर्थ बिल्वादि प्रातिपदिकों से विकार और अवयव अर्थों में 'अण्' प्रत्यय होता है। जैसे—बिल्वस्य विकारोऽवयवो वा बैल्वम्। व्रैहम्। बिल्वादि गण में ककारोपध गवेधुका शब्द का पाठ है, उससे 'कोपधाच्च' (४।३।१३४) सूत्र से ही 'अण्' प्राप्त है, पुनः यहाँ पाठ 'मयट्' के बाधनार्थ किया है। गवेधुका से भिन्न बिल्वादि शब्दों से 'मयट्' विकल्प से होता है, पक्ष में 'अण्' ही होता है। जैसे—गवेधुकाया विकारोऽवयवो वा गावेधुकम्। महाभाष्य में 'गवीधुका' पाठ है॥ १३३॥

कोपधाच्च॥ १४॥

अणित्यनुवर्त्तते। कोपधात् —५।१। च [अ०प०] षष्ठीसमर्थात् कोपधात् पातिपदिकाद् विकार-अवयवयोरण् प्रत्ययो भवति। ऋश्यकस्य विकारोऽ-वयवो वा आर्श्यकम्। तित्तिडीक—तैत्तिडीकम्। तर्कु-तार्कवम्। उवर्णान्ता-दनुदात्तादेश्चाञ् प्राप्तः स बाध्यते॥ १३४॥

भाषार्थ—यहाँ 'अण्' की अनुवृत्ति है। षष्ठीसमर्थ ककारोपध प्रातिपदिकों से विकार और अवयव अर्थों में 'अण्' प्रत्यय होता है। जैसे—ऋश्यकस्य विकारोऽवयवो वा आर्श्यकम्। तित्तिडिक—तैत्तिडीकम्। तर्कु-तार्कवम्। उकारान्त तर्कु शब्द से 'अनुदात्तादेश्च' (४।३।१३७) सूत्र से 'अञ्' प्राप्त है, उसका यह अपवाद है॥ १३४॥

त्रपुजतुनोः षुक्॥ १३५॥

त्रपुजतुनोः —६।२। षुक् —१।१। वक्ष्यमाणसूत्रेणोवर्णान्तत्वादञ् प्राप्तो बाध्यते। षष्ठीसमर्थाभ्यां त्रपुजतुप्रातिपदिकाभ्यां विकारावयवयोरण् प्रत्ययो भवति। षुगागमश्च। त्रपुणो विकारस्त्रापुषम्। जातुषम्। प्राण्यादि-नियमाद् अवयवे न भवति॥ १३५॥

भाषार्थ—त्रपु और जतु उकारान्त शब्दों से अगले सूत्र से 'अञ्' प्राप्त है, उसका यह अपवाद है। षष्ठी समर्थ त्रपु और जतु प्रातिपदिकों से विकार और

अवयव अर्थों में 'अण्' प्रत्यय होता है और प्रत्यय संनियोग से 'षुक्' आगम होता है। जैसे—त्रपुणो विकारस्। त्रापुषम्। जातुषम्। यहाँ पूर्वोक्त प्राण्यादि नियम से अवयव अर्थ में प्रत्यय नहीं होता है॥ १३५ ॥

ओरञ्॥ १३६ ॥

ओः —५। १। अञ् —१। १। अधिकारादण् प्राप्तः स बाध्यते। षष्ठी-समर्थादुवर्णान्तात् प्रातिपदिकादञ् प्रत्ययो भवति [विकारावयवयोः]। देवदारोर्विकारोऽवयवो वा दैवदारवम्। तरोर्विकारोऽवयवो वा तारवम्। धैनवम्॥ १३६ ॥

भाषार्थ—यह अधिकार से प्राप्त 'अण्' का अपवाद है। षष्ठी समर्थ उकारान्त प्रातिपदिकों से विकार और अवयव अर्थों में 'अञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—देवदारोर्विकारोऽवयवो वा दैवदारवम्। तरोर्विकारोऽवयवो वा तारवम्। धैनवम्, इत्यादि॥ १३६ ॥

अनुदात्तादेश्च॥ १३७॥

अञनुवर्त्तते। अनुदात्तादेः —५। १। च[अ०]। अधिकृतस्याणोऽपवादः। षष्ठीसमर्थाद् अनुदात्तादेः प्रातिपदिकादञ् प्रत्ययो भवति [विकारावयवयोरर्थयोः]। ताण्डुलानां विकारस्ताण्डुलम्। वायोर्विकारो वायवम्। कापित्थम्॥ १३७॥

भाषार्थ—यहाँ 'अञ्' की अनुवृत्ति है। यह अधिकार से प्राप्त 'अण्' का अपवाद है। षष्ठी समर्थ अनुदात्तादि प्रातिपदिकों से विकार और अवयव अर्थों में 'अञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—तण्डुलानां विकारस्ताण्डुलम्। वायोर्विकारो वायवम्। कापित्थम्* ॥ १३७॥

पलाशादिभ्यो वा॥ १३८ ॥

पालाशादिभ्यः —५। ३। वा[अ०]। प्राप्ताप्राप्तविभाषेयम्। पलाशादिषु येऽनुदात्तादयस्तेभ्यः प्राप्तविभाषा, ये चान्ये शब्दास्तेभ्योऽप्राप्ता। षष्ठीसमर्थे-भ्यः पलाशादिप्रातिपदिकेभ्यो विकल्पेनाञ् प्रत्ययो-[विकारावयवयोरर्थयो]-र्भवति। पालाशम्। खादिरम्। पक्षेऽण् भवति। रूपं तदेव स्वरे विशेषः।

अथ पलाशादिगणः—पलाश। खदिर। शिंशपा। स्यन्दन। पूलास। करीर। यवास। विकङ्कत। इति पलाशादयः॥ १३८ ॥

भाषार्थ—यह प्राप्ताप्राप्तविभाषा है। पलाशादिगण में जो अनुदात्तादि शब्द हैं, उनसे प्राप्तविभाषा है और दूसरे शब्दों से अप्राप्तविभाषा है। षष्ठीसमर्थ गणपठित पलाशादि प्रातिपदिकों से विकार और अवयव अर्थों में विकल्प से 'अञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—पालाशम्। खादिरम्। पक्ष में 'अण्' प्रत्यय होता है। अञ् और

---

* तण्डुलशब्दः (तडिधातोरौणादिक उलच्) चित्स्वरेणान्तोदात्तः। वायुशब्दः (वाधातोरौणादिक उण्) प्रत्ययस्वरेणान्तोदात्तः। कपित्थशब्दश्च (कपौ तिष्ठतीति उपपदसमासः) समास-स्वरेणान्तोदात्तः।

—अनुवादकः

अण् के रूप में भेद नहीं है, स्वर में भेद होता है॥ १३८॥

शम्याष् ष्लञ्॥। १३९॥

शम्याः —५। १। ष्लञ् —१। १। शमीशब्दस्यानुदात्तादित्वादञ् प्राप्तः स बाध्यते। षष्ठीसमर्थात् शमीप्रातिपदिकात् ष्लञ् प्रत्ययो भवति। विकारवयवयोरभिधेययोः। शम्या विकारः शामीलं भस्म। शामीली यष्टिका॥ १३९॥

भाषार्थ—शमी शब्द गौरादिगणपठित होने से ङीष् प्रत्ययान्त है और प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त है। उससे अनुदात्तादि होने से 'अञ्' प्राप्त है। यह उसका अपवाद है। षष्ठीसमर्थ शमी प्रातिपदिक से विकार और अवयव अर्थों में 'ष्लञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—शम्या विकारः शामीलं भस्म। शामिली यष्टिका॥ १३९॥

मयड् वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः॥ १४०॥

मयट् —१। १। वा [अ०]। एतयोः —७। २। भाषायाम् —७। १। अभक्ष्याच्छादनयोः —७। २। अप्राप्तविभाषेयम्। एतयोरिति विकारवयवौ निर्दिश्येते। अभक्ष्याच्छादनयोरिति प्रत्ययार्थविशेषणम्। भक्ष्याच्छादनवर्जितयोर्विकारावयवयोरभिधेययोः षष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकमात्राद् भाषायां लौकिकप्रयोगविषये विकल्पेन मयट् प्रत्ययो भवति। अश्मनो विकारोऽश्ममयम्। आश्मनम्। वनस्पतेर्विकारो वानस्पत्यम्। वनस्पतिमयम्। भाषायामिति किमर्थम्—बैल्वः खादिरो वा यूपः स्यात्। अभक्ष्याच्छादनयोरिति किमर्थम्—मुद्गस्य विकारो मौद्गः सूपः ऊर्णाया विकार और्ण आच्छादनम्। एतयोरिति विकारावयवविशेषणम्॥ १४०॥

भाषार्थ—यह अप्राप्त विभाषा है। 'एतयोः' सर्वनामपद से विकार और अवयव अर्थों का निर्देश है। और 'अभक्ष्याच्छादनयोः' पद प्रत्ययार्थ का विशेषण है। भक्ष्य और आच्छादन से अन्यत्र विकार और अवयव अर्थों में षष्ठी समर्थ प्रातिपदिक मात्र से भाषा (लौकिक प्रयोगविषय) में विकल्प से मयट् प्रत्यय होता है। जैसे—अश्मनो विकारोऽश्ममयम्। आश्मनम्। वनस्पतेर्विकारो वानस्पत्यम्। वनस्पतिमयम्। यहाँ 'भाषायाम्' का ग्रहण इसलिये है कि बैल्वः खादिरो वा यूपः स्यात्। यहाँ मयट् न हो। और 'अभक्ष्याच्छादनयोः' का ग्रहण इसलिये है कि—मुद्गस्य विकारो मौद्गः सूपः। ऊणार्या विकार और्णाच्छादनम्। यहाँ भक्ष्य और आच्छादन में मयट् न होवे॥ १४०॥

नित्यं वृद्धशरादिभ्यः॥ १४१॥

नित्यम् —१। १। वृद्धशरादिभ्यः —५। ३। भाषायामभक्ष्याच्छादनयोरित्यनुवर्त्तते। नित्यग्रहणं विकल्पनिवृत्त्यर्थम्। भक्ष्याच्छादनवर्जितविकारावयवयोरभिधेययोः षष्ठीसमर्थेभ्यो वृद्धेभ्यः शरादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो भाषायां लौकिकप्रयोगविषये नित्यं मयट् प्रत्ययो भवति। नित्यार्थोऽयमारम्भः। आम्रस्य विकार आम्रमयम्। शालमयम्। शाकमयम्। शरमयम्। दर्भमयम्।

अथ शरादिगणः—शर। दर्भ। मृत। कुटी। तृण। सोम। वल्वज। इति

शरादिगणः॥ १४१॥

भाषार्थ—यहाँ 'भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः' पदों की अनुवृत्ति आती है। नित्य का ग्रहण विकल्प की निवृत्ति के लिये है। भक्ष्य और अच्छादन से अन्यत्र विकार-अवयव अर्थों में षष्ठीसमर्थ वृद्धसंज्ञक तथा गणोपदिष्ट शरादि प्रातिपदिकों से लौकिक प्रयोग विषय में नित्य 'मयट्' प्रत्यय होता है। यह सूत्र नित्य प्रत्यय के लिये हैं। जैसे—वृद्धसंज्ञक आम्रस्य विकार आम्रमयम्। शालमयम्। शाकमयम्। शरादि—शरमयम्। दर्भमयम्, इत्यादि॥ १४१॥

गोश्च पुरीषे॥ १४२॥

गोः —५।१।पुरीषे —७।१।मयडनुवर्त्तते।षष्ठीसमर्थाद् गोप्रातिपदिकात् पुरीषेऽभिधेये मयट् प्रत्ययो भवति। गोः पुरीषं गोमयः। पुरीष इति किम्—गव्यं पयः॥ १४२॥

भाषार्थ—यहाँ मयट् की अनुवृत्ति है। षष्ठीसमर्थ गो-प्रातिपदिक से पुरीष अभिधेय में विकार और अवयव अर्थों में 'मयट्' प्रत्यय होता है। जैसे—गोः पुरीषं गोमयः। 'पुरीष' का ग्रहण इसलिये है कि गव्यं पयः। पुरीष से अन्यत्र 'गोपयसोर्यत्' (४।३।१५७) सूत्र से यत् होता है॥ १४२॥

पिष्टाच्च॥ १४३॥

पिष्टात् —५।१। च [अ०]। षष्ठीसमर्थात् पिष्टप्रातिपदिकान्नित्यं विकारेऽभिधेये मयट् प्रत्ययो भवति। पिष्टस्य विकारः पिष्टमयम्॥ १४३॥

भाषार्थ—षष्ठी समर्थ पिष्ट-प्रातिपदिक से विकार अर्थ में नित्य मयट् प्रत्यय होता है। जैसे—पिष्टस्य विकारः पिष्टमयम्॥ १४३॥

संज्ञायां कन्॥ १४४॥

पिष्टादित्यनुवर्त्तते। संज्ञायाम् —७।१।कन् —१।१।पूर्वेण मयट् प्राप्तः स बाध्यते। संज्ञायामभिधेयायां षष्ठीसमर्थात् पिष्टप्रातिपदिकात् कन् प्रत्ययो भवति [विकारे]। पिष्टस्य विकारः पिष्टकः। असंज्ञायां मयडेव॥ १४४॥

भाषार्थ—यहाँ 'पिष्टात्' पद की अनुवृत्ति है। पूर्वसूत्र से 'मयट्' प्रत्यय प्राप्त है, यह उसका अपवाद है। संज्ञा अभिधेय में षष्ठी समर्थ पिष्ट प्रातिपदिक से विकार अर्थ में 'कन्' प्रत्यय होता है। जैसे—पिष्टस्य विकारः पिष्टकः। संज्ञा से अन्यत्र 'मयट्' ही होता है॥ १४४॥

व्रीहेः पुरोडाशे॥ १४५॥

व्रीहेः —५।१। पुरोडाशे —७।१। व्रीहिशब्दो बिल्वादिषु पठ्यते, तस्मादणोऽपवादः। षष्ठीसमर्थाद् व्रीहिप्रातिपदिकात् पुरोडाशे विकारेऽभिधेये मयट् प्रत्ययो भवति। व्रीहेर्विकारः पुराडाशो व्रीहिमयः। अन्यत्र बिल्वादित्वादण्॥ १४५॥

भाषार्थ—व्रीहि 'शब्द का पाठ विल्वादि गण में है, इसलिये यह 'अण्' का अपवाद है। षष्ठीसमर्थ 'व्रीहि' प्रातिपदिक से पुरोडाश अभिधेय में विकार

अर्थ में 'मयट्' प्रत्यय होता है। जैसे—व्रीहेर्विकार: पुरोडाशो व्रीहिमय:। पुरोडाश से अन्यत्र बिल्वादि से 'अण्' ही होता है॥ १४५॥

असंज्ञायां तिलयवाभ्याम्॥ १४६॥

असंज्ञायाम् —७।१। तिलयवाभ्याम् —५।२। षष्ठीसमर्थाभ्यां तिल-यवप्रातिपदिकाभ्यां विकारावयवयोरभिधेययोर्मयट् प्रत्ययो भवति [असंज्ञा-याम्]। तिलमयम्। यवमयम्। असंज्ञायामिति किमर्थम्—तैलम्। यावकः। अत्राधिकारत्वादण्। यावादिभ्य: कन्निति स्वार्थे कन् च॥ १४६॥

भाषार्थ—षष्ठी समर्थ तिल और यव प्रातिपदिकों से विकार और अवयव अर्थों में संज्ञा अभिधेय न हो तो 'मयट्' प्रत्यय होता है। जैसे—तिलमयम्। यवमयम्। यहाँ 'असंज्ञायाम्' का ग्रहण इसलिये है कि—तैलम्। यावक:। यहाँ संज्ञा में मयट् न होवे। यहाँ अधिकार होने से 'तैलम्' में अण् और 'यावक:' में 'यावादिभ्य: कन्' (५।४।२९) सूत्र से 'कन्' स्वार्थ में हुआ है॥ १४६॥

द्व्यचश्छन्दसि॥ १४७॥

द्व्यचः —५।१। छन्दसि —७।१। भाषायां मयड् विहितश्छन्दस्यप्राप्तो विधीयते। षष्ठीसमर्थाद् द्व्यच्प्रातिपदिकाच्छन्दसि विषये विकारावयवयो-रभिधेययोर्मयट् प्रत्ययो भवति। दर्भमयं वासः। शरमयं बर्हिः॥ १४७॥

भाषार्थ—लौकिक प्रयोगविषय में 'मयट्' का विधान पहले किया है, अब छन्द (वैदिकप्रयोगविषय) में अप्राप्त 'मयट्' का विधान किया है। षष्ठी समर्थ द्व्यच् (जिसमें दो स्वर हों) प्रातिपदिकों से वैदिक प्रयोगविषय में विकार और अवयव अर्थों में 'मयट्' प्रत्यय होता है। जैसे—दर्भमयं वास:। शरमयं बर्हि:॥ १४७॥

नोत्वद्वदर्ध्रबिल्वात्॥ १४८॥

न [अ०] उत्वद् वदर्ध्रबिल्वात् —५।१। उकारो विद्यतेऽस्मिन् तदु-कारवत् प्रातिपदिकम्। द्व्यच् इत्यनुवर्त्तनीयम्। पूर्वसूत्रेण प्राप्तस्य मयटः प्रतिषेधः। षष्ठीसमर्थाद् उकारवतः प्रातिपदिकाद् वदर्ध्र-बिल्वाभ्यां च छन्दसि विषये मयट् प्रत्ययो न भवति। मुञ्जस्य विकारो मौञ्जम्। गार्मुतम्। वादर्ध्रम्। बैल्वम्। मयटि प्रतिषिद्धेऽधिकारादण् प्रत्ययः। तपरकरणं तत्कालार्थम्॥ १४८॥

भाषार्थ—उकार जिसमें हो वह प्रातिपदिक 'उत्वत्' कहलाता है। उकारान्त से ही निषेध न हो, इसलिये मतुबन्त निर्देश किया है। पूर्वसूत्र से 'द्व्यच:' पद की अनुवृत्ति है, इससे उकारवान् द्व्यच् से प्रत्यय होगा। पूर्वसूत्र से प्राप्त 'मयट्' का यह प्रतिषेध करता है।

षष्ठीसमर्थ उकारवान् द्व्यच् प्रातिपदिकों से और वदर्ध-बिल्व प्रातिपदिकों से वैदिक प्रयोग विषय में विकार और अवयव अर्थों में 'मयट्' प्रत्यय नहीं होता है। जैसे—मुञ्जस्य विकारो मौञ्जम्। गार्मुतम्। वदर्ध्र—वादर्ध्रम्। बैल्वम्। मयट् के प्रतिषेध होने पर सामान्याधिकार होने से अण् होता है। 'उत्वत्' में तपरकरण

तत्काल के लिये है॥ १४८॥

तालादिभ्योऽण्॥ १४९॥

तालादिभ्यः —५। ३। अण् —१। १। मयडादीनामपवादोऽयम्। षष्ठी-समर्थेभ्य-स्तालादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो विकारावयवयोरर्थयोरण् प्रत्ययो भवति। तालशब्दाद् गणपाठोपदिष्टाद् विशेषेऽर्थे धनुषि प्रत्ययः। अन्येभ्यस्तु सामान्येन। तालं धनुः। तालमयमित्यन्यत्र। ऐन्द्रालिशम्।

अथ तालादिः—तालाद् धनुषि। बार्हिण। इन्द्रालिश। इन्द्रादृश। इन्द्रायुध। इन्द्रायुष। चाप। श्यामक। पीयुक्षा॥ इति तालादिगणः॥ १४९॥

भाषार्थ—यह सूत्र मयट आदि का अपवाद है। षष्ठी समर्थ गणपठित तालादि प्रातिपदिकों से विकार और अवयव अर्थों में अण् प्रत्यय होता है। गणपाठ में पठित ताल शब्द से धनुष् अभिधेय में प्रत्यय होता है और दूसरे शब्दों से सामान्य रूप से। जैसे—तालं धनुः। (धनुष् से अन्यत्र 'तालमयम्' रूप बनता है। ऐन्द्रालिशम् इत्यादि॥ १४९॥

जातरूपेभ्यः परिमाणे॥ १५०॥

जातरूपेभ्यः —५। ३। परिमाणे —७। १। जातरूपशब्दः सुवर्णपर्यायः। बहुवचननिर्देशाद् तद्वाचिनो गृह्यन्ते। परिमाणम्=इयत्ताविकारस्य विशेषणम्। षष्ठीसमर्थेभ्यो जातरूपवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो विकारे परिमाणेऽण् प्रत्ययो भवति। अष्टापदस्य विकार आष्टापदम्। जातरूपम्। सौवर्णम्। रौक्मम्। परिमाण इति किम्—सुवर्णमयः प्रासादः। मयटोऽपवादः॥ १५०॥

भाषार्थ—'जातरूप' शब्द सुवर्ण का पर्यायवाची है। सूत्र में बहुवचननिर्देश से जातरूप अर्थात् सुवर्ण के वाचक शब्दों से भी प्रत्यय होता है। परिमाण (इयत्ता=निश्चित नाप तोल करना) शब्द विकार अर्थ का विशेषण है।

शेष विकार अर्थ में अण् प्रत्यय होता है। जैसे—अष्टापदस्य विकार आष्टापदम्। जातरूपम्। सौवर्णम्। रौक्मम्। यहाँ 'परिमाणे' का ग्रहण इसलिये है कि—सुवर्णमयः प्रासादः। यहाँ अण् न होवे। यह सूत्र 'मयट्' का अपवाद है॥ १५०॥

प्राणिरजतादिभ्योऽञ्॥ १५१॥

प्राणि-रजतादिभ्यः —५। ३। अञ् —१। १। अणादेरपवादः। षष्ठी-समर्थेभ्यः प्राणिवाचिभ्यो रजतादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो विकारावयवयोरञ् प्रत्ययो भवति। प्राणिभ्यस्तावत्—कपोतस्य विकारः कापोतम्। मायूरम्। तैत्तिरम्। अनुदात्तादेरञ् विधीयते। विभाषा मयट् प्राप्तः सोऽप्यनेन बाध्यते। रजतादिभ्यः—राजतम्। सैसम्। रजतादिषु यानि कानिचिदनुदात्तादीनि प्रातिपदिकानि तेषां पुनर्वचनं मयड् बाधनार्थम्।

अथ रजतादिगणः—रजत। सीस। लोह। उदुम्बर। नीच। नीप। दारु। रोहितक। बिभीतक। पीतदारु। तीव्रदारु। त्रिकण्टक। कण्टकार॥ इति रजतादिगणः॥ १५१॥

भाषार्थ—यह सूत्र 'अण्' आदि का अपवाद है। षष्ठीसमर्थ प्राणीवाची शब्दों और गणोपदिष्ट रजत आदि प्रातिपदिकों से विकार और अवयव अर्थों में अञ् प्रत्यय होता है। जैसे—प्राणीवाची—कपोतस्य विकारः कापोतम्। मायूरम्। तैत्तिरम्। अनुदात्तादिशब्दों से 'अनुदात्तादेरञ्' (४।२।४३) सूत्र से अञ् का विधान पहले किया गया है। उससे भिन्न उदाहरण जो अनुदात्तादि नहीं है यहाँ समझने चाहिये। 'मयड्वा०' (४।३।१४०) सूत्र से जो विकल्प से 'मयट्' प्राप्त होता है, उसका भी यह अपवाद है। रजतादि—राजतम्। सैसम्। रजतादि गण में जो अनुदात्तादि शब्द (रजत,* कण्टकारादि) पढ़े हैं, उनसे पुनः 'अञ्' का विधान 'मयट्' के बाधनार्थ है॥ १५१॥

ञितश्च तत्प्रत्ययात्॥ १५२॥

ञितः —५।१। तत्प्रत्ययात् —५।१। अञ् अनुवर्त्तते। ञ् इद् यस्य प्रत्ययस्य तस्मात्। तत्-ग्रहणेन विकारवयव प्रत्ययो विशेष्यते। विकारावयवयोर्विहितो यो ञित्प्रत्ययस्तदन्तात् षष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकाद् अञ् प्रत्ययो भवति। मयट् प्राप्तः स बाध्यते। शामीलस्य विकारः शामीलम्। कापोतस्य विकारः कापोतम्। कापित्थो रसः। ञित इति किम्—बैल्वमयम्। तत्प्रत्ययादिति किम्—गार्ग्यमयम्। गोत्रान्तान्मा भूत्॥ १५२॥

भाषार्थ—यहाँ 'अञ्' प्रत्यय की अनुवृत्ति है। 'ञ्' जिस का इत् संज्ञक हो, उस प्रत्यय को ञित् कहते हैं। 'तत्प्रत्ययात्' पद में 'तत्' शब्द से विकारावयव अर्थों का निर्देश किया है। विकार और अवयव अर्थों में जो ञित् प्रत्यय विहित है, तदन्त षष्ठीसभर्थ प्रातिपदिकों से विकार-अवयव अर्थों में ही 'अञ्' प्रत्यय होता है। यह 'मयट्' का अपवाद है। जैसे 'शम्याष्ष्लञ्' (४।३।१३९) शामीलस्य विकारः शामीलम्। 'प्राणि......अञ्' (४।३।१५१) कापोतस्य विकारः कापोतम्। 'अनुदात्तादेश्च' (४।३।१३७) कापित्थो रसः। इत्यादि। यहाँ 'ञितः' का ग्रहण इसलिये है कि बैल्वस्य विकारो बैल्वमयम्। यहाँ अण् प्रत्यय ञित् नहीं है। 'तत्प्रत्ययात्' का ग्रहण इसलिये है कि—गार्ग्यमयम्। यहाँ गोत्रापत्य में यञ् है इससे अञ् नहीं हुआ॥ १५२॥

क्रीतवत् परिमाणात्॥ १५३॥

क्रीतवत्[अ०] परिमाणात् —५।१। क्रीत इव क्रीतवत्। सप्तमीसमर्थाद् वतिः। षष्ठीसमर्थात् परिमाणवाचिनः प्रातिपदिकाद् यथा क्रीते प्रत्यया भवन्ति तथैव विकारवयवयोरपि यथा स्युः। यथा निष्केण क्रीतं नैष्किकम्। एवं निष्कस्य विकारो नैष्किकः। शत्यः। शतिकः। क्रीतस्थं परिमाणात् सर्वं कार्यमतिदिश्यते। अध्यर्धपूर्वाद् द्विगोर्लुगसंज्ञायामित्यपि यथा स्यात् द्विनिष्कः। द्विनैष्किकः॥ १५३॥

भाषार्थ—'क्रीतवत्' शब्द में (क्रीत इव) सप्तमीसमर्थ से वति प्रत्यय है।

---

* रजतशब्दो घृतादिपाठादन्तोदात्तः। कण्टं करोतीति कण्टकारः। —अनुवादकः

षष्ठी समर्थ परिमाण (इयत्ता) वाची प्रातिपदिकों से जैसे क्रीत अर्थ में प्रत्यय होते हैं, वैसे ही विकार अवयव अर्थों में भी होवें। अर्थात् जिस जिस परिमाण वाचक प्रातिपदिक से क्रीत अर्थ में जो जो प्रत्यय विधान किया है, उस उस प्रातिपदिक से वही वही प्रत्यय विकार और अवयव अर्थ में भी होवे। जैसे—निष्केण क्रीतं नैष्किकम्। इसी प्रकार निष्कस्य विकारो नैष्किकः। इसी प्रकार शत्यः। शतिकः, इत्यादि उदाहरण भी जानने चाहिएँ। यहाँ क्रीत अर्थ में विहित सब कार्य परिमाणवाची शब्दों से अतिदेश किया है। इससे 'अध्यर्द्धपूर्वाद् द्विगोर्लुग्' (५।१।२८) सूत्र से विहित लुक् भी होता है। जैसे—द्विनिष्कः। द्विनैष्किकः॥ १५३॥

उष्ट्राद् वुञ्॥ १५४॥

उष्ट्रात् —५।१। वुञ् —१।१। प्राण्यञोऽपवादः। षष्ठीसमर्थाद् उष्ट्र-प्रातिपदिकाद् विकारावयवयोर्वुञ् प्रत्ययो भवति। उष्ट्रस्य विकारोऽवयवो वा औष्ट्रकः॥ १५४॥

भाषार्थ—यह सूत्र प्राणीवाचियों से 'अञ्' प्रत्यय का अपवाद है। षष्ठीसमर्थ 'उष्ट्र' प्रातिपदिक से विकार और अवयव अर्थों में 'वुञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—उष्ट्रस्य विकारोऽवयवो वा औष्ट्रकः॥ १५४॥

उमोर्णयोर्वा॥ १५५॥

उमोर्णयोः —६।२। वा [अ०]। वुञनुवर्त्तते। अप्राप्तविभाषेयम्। उमा-ऊर्णाप्रातिपदिकाभ्यां विकारावयवयोरर्थयोर्वा वुञ् प्रत्ययो भवति। पक्षेऽधिकाराद् अण्। उमाया विकार औमकम्। औमम्। और्णकम्। और्णम्॥ १५५॥

भाषार्थ—पूर्वसूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय की अनुवृत्ति है। यह अप्राप्तविभाषा है। उमा और ऊर्णा प्रातिपदिकों से विकार और अवयव अर्थों में विकल्प से बुञ् प्रत्यय होता है। अण् का अधिकार होने से पक्ष में अण् प्रत्यय होता है। उमाया विकार औमकम्। औमम्। ऊर्णाया विकारोऽवयवो वा और्णकम्। और्णम्॥ १५५॥

एण्या ढञ्॥ १५६॥

एण्याः—५।१। ढञ्—१।१। प्राणिवाचिनोऽञ् प्राप्तः स बाध्यते। षष्ठीसमर्थाद् एणीप्रातिपदिकाद् ढञ् प्रत्ययो भवति विकारावयवयोरर्थयोः। एण्या विकार ऐणेयं मांसम्। ऐणेयं चर्म। पुल्लिंगात्त्वञेव—एणस्य मांसम् ऐणम्॥ १५६॥

भाषार्थ—प्राणीवाचियों से 'अञ्' प्राप्त था, उसका यह बाधक है। षष्ठीसमर्थ 'एणी' प्रातिपदिक से विकार और अवयव अर्थों में ढञ् प्रत्यय होता है। जैसे—एण्या विकार ऐणेयं मांसम्। ऐणेयं चर्म। पुल्लिंग 'एण' शब्द से तो अञ् प्रत्यय ही होता है। जैसे—एणस्य मांसम् ऐणम्॥ १५६॥

गोपयसोर्यत्॥ १५७॥

गोपयसोः —६।२। यत् —१।१। षष्ठीसमर्थाभ्यां गो-पयस्प्राति-पदिकाभ्यां विकारावयवयोरभिधेययोर्यत् प्रत्ययो भवति। गोर्विकारो गव्यं

पयः। पयस्यम्। 'सर्वत्र गोरजादिप्रसंगे यद्' इति वार्त्तिकेन सामान्यविधानम्॥ १५७॥

भाषार्थ—षष्ठीसमर्थ गो और पयस् प्रातिपदिकों विकार और अवयव अर्थों में 'यत्' प्रत्यय होता है। जैसे—गोर्विकारो गव्यं पयः। पयस्यम्। ''सर्वत्र गोरजादिप्रसंगे यत्'' (४।१।८५) वार्त्तिक से गो शब्द से सामान्यरूप में 'यत्' प्रत्यय का विधान किया है॥ १५७॥

द्रोश्च॥ १५८॥

यदनुवर्त्तते। द्रोः—५।१। च [अ०]। ओरञोऽपवादः। षष्ठीसमर्थाद् द्रु-प्रातिपदिकाद् विकारावयवयोरर्थयोर्यत् प्रत्ययो भवति। द्रोर्विकारो द्रव्यम्॥ १५८॥

भाषार्थ—पूर्वसूत्र से 'यत्' प्रत्यय की अनुवृत्ति है। यह 'ओरञ्' (४।३।१३६) सूत्र का अपवाद है। षष्ठी समर्थ द्रु प्रातिपदिक से विकार और अवयव अर्थों में 'यत्' प्रत्यय होता है। जैसे—द्रोर्विकारो द्रव्यम्॥ १५८॥

माने वयः॥ १५९॥

माने —७।१। वयः —१।१। द्रोरित्यनुवर्त्तते। मानेऽभिधेये षष्ठीसमर्थाद् द्रु-प्रातिपदिकाद् वयः प्रत्ययो भवति। पूर्वेण यत् प्राप्तः स बाध्यते। द्रोर्विकारो मानं द्रुवयम्॥ १५९॥

भाषार्थ—यहाँ पूर्वसूत्र से 'द्रोः' की अनुवृत्ति है। पूर्वसूत्र से प्राप्त 'यत्' का यह अपवाद है। षष्ठीसमर्थ 'द्रु' प्रातिपदिक से मान अभिधेय में 'वय' प्रत्यय होता है। जैसे—द्रोर्विकारो मानं द्रुवयम्॥ १५९॥

फले लुक्॥ १६०॥

फले —७।१। लुक् —१।१। विकारावयवयोरित्यनुवर्त्तते। फलेऽभिधेये विकारावयवविहितस्य प्रत्ययस्य लुग् भवति। आमलक्याः फलं विकारोऽवयवो वा आमलकम्। बदर्य्याः फलानि बदराणि। कुवलम्। बिम्बम्। लुक् तद्धित-लुकीति स्त्रीप्रत्ययस्य लुक्। फलशब्दस्य विशेषवाचिनो गृह्यन्ते न तु स्वरूपम्॥ १६०॥

भाषार्थ—यहाँ विकार और अवयव अर्थों की अनुवृत्ति है। फल अर्थ अभिधेय हो तो विकार और अवयव अर्थों में विहित प्रत्यय का लुक् होता है। जैसे—आमलक्याः फलं विकारोऽवयवो वा आमलकम्। बदर्य्याः फलानि बदराणि। कुवलकम्। बिम्बम्। यहाँ सर्वत्र तद्धित प्रत्यय का लुक् होने पर 'लुक् तद्धितलुकि' (१।२।४९) सूत्र से स्त्री प्रत्यय का भी लुक् हो जाता है। यहाँ फल शब्द के स्वरूप का ग्रहण न होकर फल विशेषवाची शब्दों का ग्रहण है॥ १६०॥

प्लक्षादिभ्योऽण्॥ १६१॥

फल इत्यनुवर्त्तते। पूर्वेण लुकि प्राप्त आरम्भः। प्लक्षादिभ्यः —५।३। अण् —१।१। षष्ठीसमर्थेभ्यः प्लक्षादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो विकारावयवयोरण्

प्रत्ययो भवति। विधानसामर्थ्याल्लुङ् न भवति। प्लक्षस्य विकारः प्लाक्षम्। नैयग्रोधम्।

अथ प्लक्षादिगणः—प्लक्ष। न्यग्रोध। अश्वत्थ। इङ्गुदी। शिग्रु। कर्कन्धु। रुरु। कक्षतु। बृहती। ऋक्रतु। कर्कन्तु। काक्ष। टुम्रु॥ इति प्लक्षादिगणः॥ १६१॥

भाषार्थ—यहाँ 'फले' पद की अनुवृत्ति है। पूर्वसूत्र से लुक् की प्राप्ति में इस सूत्र को बनाया है। फल अभिधेय में षष्ठीसमर्थ गणपठित प्लक्ष आदि प्रातिपदिकों से विकार और अवयव अर्थों में 'अण्' प्रत्यय होता है। विधान सामर्थ्य से इस 'अण्' का लुक् नहीं होता है। जैसे—प्लक्षस्य विकारः प्लाक्षम्। नैयग्रोधम्, इत्यादि॥ १६१॥

जम्ब्वा वा॥ १६२॥

लुग् इत्यनुवर्त्तते। जम्ब्वाः —५।१। वा [अ०]। अप्राप्तविभाषेयम्। षष्ठीसमर्थाज्जम्बूप्रातिपदिकाद् विकारावयवयोर्विकल्पेनाण् प्रत्ययः पक्षे विकारावयवविहितस्य प्रत्ययस्य लुक्। जम्ब्वाः फलानि जाम्बवानि। जम्बूनि वा॥ १६२॥

भाषार्थ—यहाँ लुक् की अनुवृत्ति है। यह अप्राप्त विभाषा है। फल अभिधेय में षष्ठी समर्थ 'जम्बू' प्रातिपदिक से विकार और अवयव अर्थों में विकल्प से 'अण्' प्रत्यय होता है। पक्ष में विकार और अवयव अर्थों में विहित प्रत्यय का लुक् होता है। जैसे—जम्ब्वाः फलानि जाम्बवानि। जम्बूनि वा॥ १६२॥

लुप् च॥ १६३॥

वेत्यनुवर्त्तते फल इति च। लुप् —१।१। च [अ०]। षष्ठीसमर्थाज्जम्बूप्रातिपदिकाद् विहितस्य विकारवयवप्रत्ययस्य विकल्पेन लुब्भवति। पूर्वेण लुका सिद्धे लुब् ग्रहणं युक्तवद् भावार्थम्। जम्ब्वा विकारः फलं जम्बूः फलम्। 'लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचन' इति युक्तवद्भावः। लुकि सति तु जम्ब्वाः फलं जम्बुफलम्। इत्येव यथा स्यात्।

वा०—फलपाकशुषामुपसंख्यानम्॥ १॥

फलानां पाक इति कर्मणि समासः। फलपाकसमये ये वृक्षाः शुष्यन्ति तेभ्यो विहितस्यापि विकारावयवप्रत्ययस्य नित्यं लुब् भवति। व्रीहीणां फलानि व्रीहयः। यवाः। माषाः। तिलाः। मुद्गाः। मसूराः॥ १॥

वा०—पुष्पमूलेषु बहुलम्॥ २॥

पुष्पाणि च मूलानि च तेषु। विकारवयव विशिष्टेषु पुष्पमूलेषु बहुलं प्रत्ययस्य लुब् भवति। मल्लिकायाः पुष्पं मल्लिका। मूलं वा मल्लिका। करवीरम्। बिसम्। मृणालस्य पुष्पं मूलं वा मृणालम्। न च भवति पाटलानि पुष्पाणि मूलानि वा। बहुलवचनाद् विविधा व्यवस्था दृश्यते। बैल्वानि फलानीति॥ २॥ १६३॥

भाषार्थ—यहाँ 'वा, फले' पदों की अनुवृत्ति है। फल अभिधेय में षष्ठीसमर्थ 'जम्बू' प्रातिपदिक से विकार और अवयव अर्थों में विहित प्रत्यय का विकल्प से लुप् होता है। पूर्वसूत्र से लुक् प्राप्त होने पर लुप् का विधान इसलिये है कि 'लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने' (१।२।५१) सूत्र से लिंग और वचन भी युक्तवत् (पूर्ववत्) हो जायें। जैसे लुप्—जम्ब्वाः फलं जम्बूफलम्। और लुक् होने पर—जम्ब्वाः फलं जम्बुफलम् होने पर फल अभिधेय का नपुंसकलिंग होता है और 'ह्रस्वो नपुंसके' (१।२।४७) सूत्र से ह्रस्व हो जाता है।

वा०—फलपाकशुषामुपसंख्यानम्॥ १॥

फलानां पाकः फल पाकः। (कर्म में षष्ठ्यन्त का समास) फलपाकेन शुष्यन्ति तेषाम् अर्थात् जो वृक्ष फलों के पकने के समय सूख जाते हैं, उन गेहूँ, धानादि के वाचक शब्दों से विकार और अवयव अर्थों में विहित प्रत्यय का नित्य लुप् होता है। जैसे—व्रीहीणां फलानि व्रीहयः। यवाः। माषाः। तिलाः। मुद्गाः। मसूराः॥ १॥

वा०—पुष्पमूलेषु बहुलम्॥ २॥

पुष्प और मूलरूप विकार और अवयव अर्थ में विहित प्रत्यय का बहुल करके लुप् होता है। जैसे—मल्लिकायाः पुष्पं मूलं वा मल्लिका। करवीरम्। बिसम्। मृणालस्य पुष्पं मूलं वा मृणालम्। यहाँ बहुलवचन से कहीं नहीं भी होता है। जैसे—पाटलानि पुष्पाणि मूलानि वा। बैल्वानि फलानि। बहुलवचन से यह विविध व्यवस्था दिखायी देती है॥ २॥ १६३॥

हरीतक्यादिभ्यश्च॥ १६४॥

फले लुबित्यनुवर्त्तते। हरीतक्यादिभ्यः—५।३। च। [अ०प०]। षष्ठीसमर्थेभ्यो हरीतक्यादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो विकारवयवयोर्विहितस्य प्रत्ययस्य लुब् भवति। लुकि प्राप्ते युक्तवद्भावार्थं लुब्विधानम्। हरीतक्याः फलानि हरीतक्यः फलानि। कोशातक्याः फलानि कोशातक्यः फलानि। नखरजनी फलम्। हरीतक्यादिषु व्यक्तिर्भवति युक्तवद्भावेनेत्युक्तं वार्त्तिकेन। स्त्रीत्वमेव भवति युक्तवदभावेन् न त्वेकवचनेन विग्रह एकवचनम्। अथ हरीतक्यादिगणः—हरीतकी। कोशातकी। नखरजनी। शष्कण्डी। शाकण्डी। दण्डी। दोडी दडी। श्वेतपाकी। अर्जुनपाकी। काला। द्राक्षा। ध्वाङ्क्षा। गमीका। गर्गरिका। कण्टकारिका। पिप्पली। चिंचा। शेफालिका॥ इति हरीतक्यादिगणः॥ १६४॥

भाषार्थ—यहाँ 'फले, लुप्' पदों की अनुवृत्ति है। षष्ठीसमर्थ हरीतकी आदि गणपठित प्रातिपदिकों से विकार और अवयव अर्थों में विहित प्रत्यय का लुप् होता है। लुक् की प्राप्ति में लुप् का विधान युक्तवद् (पूर्ववत् लिंग) के लिये किया है। जैसे—हरीत्क्याः फलानि हरीतक्यः फलानि। कोशातक्याः फलानि कोशातक्यः फलानि। नखरजनी फलम्। हरीतकी आदि से प्रत्यय का लुप् होने पर भी लुप् का कार्य व्यक्ति-लिंग ही 'हीरतक्यादिषु व्यक्तिः' इस वार्त्तिक वचन

से पूर्ववत् होता है, वचन नहीं। इसलिये लुप् होने पर अभिधेय फल के अनुसार बहुवचन हुआ है, विग्रह के अनुसार एकवचन नहीं॥ १६४॥

कंसीयपरशव्ययोर्यञञौ लुक् च॥ १६५॥

कंसीय-परशव्ययोः —६।२। यञ्-अञौ —१।२। लुक् —१।१। च [अ०]॥ कंसशब्दादधितार्थे छः कंसाय हितः कंसीयः। परशुशब्दाद् गवादिभ्यो यदिति यत्। परशवे हितः परशव्यः। लुम्निवृत्त्यर्थं लुग्ग्रहणम्। षष्ठीसमर्थाभ्यां कंसीयपरशव्यप्रातिपदिकाभ्यां विकारावयवयोरर्थयोर्यञ्-अञौ प्रत्ययौ संख्यातानुदिष्टौ भवतः। तयोः संनियोगेन कंसीय-परशव्ययोः प्रातिपदिकयोर्लुक्। 'प्रत्ययस्य लुक् श्लुलुप इति नियमाच्छयतोः प्रत्यययोरेव लुग् विधीयते। कंसीयस्य विकारः कांस्यः। परशव्यस्य विकार; पारशवः॥ १६५॥

इति चुतर्थाध्यायस्य तृतीयः पादः समाप्तः॥

भाषार्थ—''कंसाय हितः कंसीयः'' यहाँ कंस शब्द से हित अर्थ में छ प्रत्यय है। और ''परशवे हितः परशव्यः'' यहाँ परशु शब्द से 'उगवादिभ्यो यत्' (५।१।२) सूत्र से हितार्थ में 'यत्' है। यह लुक् का विधान लुप् की निवृत्ति के लिये है। षष्ठीसमर्थ कंसीय और परशव्य प्रातिपदिकों से विकार और अवयव अर्थों में यञ् और अञ् प्रत्यय यथासंख्य होते हैं और प्रत्यय संनियोग से कंसीय और परशव्य प्रातिपदिकों से प्रत्ययों का लुक् होता है। 'प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः' (१।१।६१) इस सूत्रनियम से लुक् संज्ञा प्रत्यय के अदर्शन की है, इसलिये छ और यत् प्रत्ययों का ही लुक् होता है। जैसे—कंसीयस्य विकारः कांस्यः। परशव्यस्य विकारः पराशवः॥ १६५॥

यह चतुर्थ अध्याय का तृतीयपाद समाप्त हुआ॥

अथ चतुर्थाध्यायस्य चतुर्थः पादः

प्रागवहतेष्ठक्॥ १॥

प्राक् [अ०]। वहतेः — ५। १। ठक् — १। १। तद्वहतीत्यतः पूर्वं पूर्वं येऽर्था निर्दिश्यन्ते तेषु सामान्येन ठगधिकारो वेदितव्यः। यथा-अक्षैर्दीव्यति= आक्षिकः। एवमन्यत्र। प्राग्दीव्यतोऽणिति प्रथमपादेऽधिकारः कृतः। स इदानीं निवर्त्तते। अतः परस्मिन् सूत्रे दीव्यतिशब्दोऽस्ति। तस्मात्पूर्वमेव द्वितीयोऽधिकारः स्थापितः। तत्र लौकिकोऽयं दृष्टान्तः। राज्यव्यवस्थायां पितरि जीवति पुत्रोऽभि-षिच्यते। एवमत्राप्यधिकारनिवृत्तेः पूर्वमेव ठगधिकृतः।

वा०—ठक्प्रकरणे तदाहेति माशब्दादिभ्य उपसंख्यानम्॥ १॥

तदित्याहधातोः कर्म निर्दिश्यते न तु द्वितीयासमर्थम्। माशब्द इत्याह= माशब्दिकः। नित्याः शब्दा इत्याह=नैत्यशब्दिकः। कार्यशब्दिकः॥ १॥

वा०—आहौ प्रभूतादिभ्यः॥ २॥

आहविति पुनः क्रियाग्रहणं तदिति द्वितीयासमर्थार्थम्। प्रभूतमाह प्राभूतिकः। पार्याप्तिकः॥ २॥

वा०—पृच्छतौ सुस्नातादिभ्यः॥ ३॥

तदित्यनुवर्त्तते। द्वितीयासमर्थेभ्यः सुस्नातादिभ्यः पृच्छतावभिधेये ठक्। सुस्नातं पृच्छति सौस्नातिकः। सुखरात्रिं पृच्छति सौखरात्रिकः। सुखशयनं पृच्छति सौखशयनिकः॥ ३॥

वा०—गच्छतौ परदारादिभ्यः॥ ४॥

तदित्येव। परदारान् गच्छति पारदारिकः। गौरुतल्पिकः॥ ४॥ १॥

भाषार्थ—यह अधिकार सूत्र है। 'तद्वहति०' (४। ४। ७६) इस सूत्रपर्यन्त जो जो अर्थ कहे हैं, उन सब में सामान्य रूप से 'ठक्' प्रत्यय होगा। जैसे—अक्षैर्दीव्यति=आक्षिकः। इसी प्रकार अन्य अर्थों में भी 'ठक्' प्रत्यय होगा। इस चतुर्थाध्याय के प्रथम पाद में 'प्राग्दीव्यतोऽण्' (४। १। ८३) यह अधिकार किया गया है, उसकी यहाँ से निवृत्ति समझो, क्योंकि अगले सूत्र में 'दीव्यति' शब्द पढ़ा है, अण् के अधिकार की समाप्ति होने से प्रथम ही दूसरे ठक् प्रत्यय का अधिकार कर दिया है। इस विषय में लौकिक दृष्टान्त है कि राज्य की प्रशासन व्यवस्था में पिता के जीवित रहते हुए ही पुत्र का राजतिलक कर दिया जाता है। इसी प्रकार यहाँ भी 'अण्' के अधिकार की निवृत्ति से पूर्व ही 'ठक्' का अधिकार कर दिया गया है।

वा०—ठक्प्रकरणे तदाहेति माशब्दादिभ्य उपसंख्यानम्॥ १॥

माशब्दादि प्रातिपदिकों से 'तदाह' (ऐसा वह कहता है) इस अर्थ में ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—माशब्द इत्याह=माशब्दिक:। नित्या: शब्दा इत्याह=नैत्यशब्दिक:। कार्यशब्दिक:, इत्यादि।

वा०—आहौ प्रभूतादिभ्य: ॥ २ ॥

द्वितीयासमर्थ प्रभूतादि प्रातिपदिकों से 'ठक्' प्रत्यय होवे, 'आह=कहता है' इस अर्थ में। जैसे—प्रभूतमाह प्राभूतिक:। पर्याप्तमाह=पार्य्याप्तिक:॥

वा०—पृच्छतौ सुस्नातादिभ्य: ॥ ३ ॥

द्वितीया समर्थ सुस्नातादि प्रातिपदिकों से 'पृच्छति=पूछता है' इस अर्थ में ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—सुस्नातं पृच्छति सौस्नातिक:। सौखरात्रिक:। सौखशयनिक:, इत्यादि।

वा०—गच्छतौ परदारादिभ्य: ॥ ४ ॥

द्वितीया समर्थ परदारादि प्रातिपदिकों से 'गच्छति=जाता है' इस अर्थ में ठक् प्रत्यय होवे। जैसे—परदारान् गच्छति-पारदारिक:। गुरुतल्पं गच्छति-गौरुतल्पिक:, इत्यादि ॥ ४ ॥ १ ॥

तेन दीव्यतिखनतिजयतिजितम् ॥ २ ॥

तेन —३।१। दीव्यति........जितम् —१।१। तेनेति तृतीयासमर्थात् प्रातिपादिकाद् दीव्यत्यादीनां कर्त्तर्य्यभिधेये जितमिति कर्मणि क्त:, तत्र च कर्मण्यभिधेये ठक् प्रत्ययो भवति। अक्षैर्दीव्यति आक्षिक:। परशुना खनति पारशविक:। कौद्दालिक:। शलाकाभिर्जयति शालाकिक:। शलाकाभिर्जितम् शालाकिकं धनम्। अत्र जिधातो: कर्मण्यपि ठगेव यथा स्यादित्यर्थं जितमिति पृथगुपात्तम् ॥ २ ॥

भाषार्थ—तृतीया समर्थ प्रातिपदिकों से 'दीव्यति' आदि क्रियाओं के कर्त्तृ-वाच्य में तथा 'जितम्' क्रिया के कर्मवाच में भी ठक् प्रत्यय होता है। जैसे—अक्षैर्दीव्यति आक्षिक:। परशुना खनति पारशविक:। कौद्दालिक:। शलाकाभिर्जयति शालाकिक:। शलाकाभिर्जितं शालाकिकं धनम्, इत्यादि। सूत्र में 'जयति' क्रिया के पाठ होने पर भी 'जितम्' पद का पृथक् निर्देश इसलिए किया है कि 'जि' धातु के प्रयोग में कर्मवाच्य में भी ठक् प्रत्यय ही होवे ॥ २ ॥

संस्कृतम् ॥ ३ ॥

तेनेति तृतीयासमर्थविभक्तिरनुवर्त्तते। संस्कृतम् —१।१। संस्कृतमिति प्रत्ययार्थो निर्दिश्यते। तच्चाधिकारार्थं वेदितव्यम्। तृतीयासमर्थात् प्राति-पदिकात् संस्कृतमित्यस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति। घृतेन संस्कृतं घार्त्तिकम्। दाधिकम्। तैलिकम् ॥ ३ ॥

भाषार्थ—यहाँ पहले सूत्र से 'तेन' पद की अनुवृत्ति है। तृतीया समर्थ प्रातिपदिकों से संस्कृतम्=संस्कार (गुणाधान) करने अर्थ में 'ठक्' प्रत्यय होता है। जैसे—घृतेन संस्कृतं घार्त्तिकम्। दध्ना संस्कृतं दाधिकम्। तैलेन संस्कृतं

तैलिकम्, इत्यादि॥ ३॥

कुलत्थकोपधादण्॥ ४॥

कुलत्थ-कोपधात् —५।१।अण् —१।१।तृतीयासमर्थाभ्यां कुलत्थ-कोपध-प्रातिपदिकाभ्याम् अण् प्रत्ययो भवति संस्कृतमित्यस्मिन्नर्थे। पूर्वेण ठक् प्राप्तस्तस्यापवादः। कुलत्थेन संस्कृतम्=कौलत्थम्। तित्तिडीकैः संस्कृतं तैत्तिडीकम्। यावकेन संस्कृतं यावकम्॥ ४॥

भाषार्थ—इससे पूर्व सूत्र से प्रातिपदिक मात्र से 'संस्कृतम्' अर्थ में ठक् प्रत्यय प्राप्त था, यह उसका अपवाद सूत्र है। तृतीय समर्थ कुलत्थ और ककारोपध प्रातिपदिकों से संस्कृत=संस्कार अर्थ में 'अण्' प्रत्यय होता है। जैसे—कुलत्थेन संस्कृतं कौलत्थम्। ककारोपध का—तित्तिडीकैः संस्कृतं तैत्तिडीकम्। यावकेन संस्कृतं यावकम्॥ ४॥

तरति॥ ५॥

तेनेत्यनुवर्त्तते। तरतीत्यस्य कर्ता प्रत्ययार्थः। तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकात् तरतीत्यस्य कर्तरि ठक् प्रत्ययो भवति। वृषभेण तरति वार्षभिकः। माहिषिकः॥ ५॥

भाषार्थ—यहाँ पूर्व सूत्र से 'तेन' पद की अनुवृत्ति है। तृतीया समर्थ प्रातिपदिकों से तरति=तैरने अर्थ वाली क्रिया के कर्त्तृवाच्य में 'ठक्' प्रत्यय होता है। जैसे—वृषभेण तरति वार्षभिकः। माहिषिकः, इत्यादि॥ ५॥

गौपुच्छाट्ठञ्॥ ६॥

गोपुच्छात् —५।१। ठञ् —१।१ पूर्वेणाधिकाराट्ठकि प्राप्ते ठञ् विधीयते। तृतीयासमर्थाद् गोपुच्छप्रातिपदिकात् तरतीत्यस्य कर्तरि ठञ् प्रत्ययो भवति। स्वरविशेषार्थं प्रत्ययान्तरविधिः। गोपुच्छेन तरति गौपुच्छिकः॥ ६॥

भाषार्थ—इससे पूर्वसूत्र से अधिकार होने से 'ठक्' प्रत्यय की प्राप्ति में 'ठञ्' प्रत्ययान्तर का विधान स्वरविशेष के लिए किया गया है। तृतीयासमर्थ 'गोपुच्छ' प्रातिपदिक से 'तरति=तैरने अर्थ वाली' क्रिया के कर्त्तृवाच्य में 'ठञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—गोपुच्छेन तरति गौपुच्छिकः॥ ६॥

नौ द्व्यचष्ठन्॥ ७॥

तरतीत्येव। नौद्व्यचः —५।१। ठन् —१।१ तृतीयासमर्थान् नौप्राति-पदिकाद् द्व्यचश्च ठञ् प्रत्ययो भवति तरतीत्यस्य कर्त्तरि। नावा तरति नाविकः। घटेन तरति घटिकः। बाहुभ्यां तरति बाहुकः॥ ७॥

भाषार्थ—इस सूत्र में 'तरति' पद की अनुवृत्ति है। तृतीयासमर्थ नौ और द्व्यच् (दो अच् वाले) प्रातिपदिकों से तरति=तैरना क्रिया के कर्त्तृवाच्य में 'ठन्' प्रत्यय होता है। जैसे—नावा तरति नाविकः। द्व्यच् का—घटेन तरति घटिकः। बाहुभ्यां तरति बाहुकः, इत्यादि॥ ७॥

चरति॥ ८॥

तेनेत्यनुवर्त्तते। चरतीत्यस्य गतिकर्म्मणः कर्त्ता प्रत्ययार्थः। तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकाच् चरतीत्यस्य कर्त्तरि ठक् प्रत्ययो भवति। शकटेन चरति शाकटिकः। हस्तिना चरति हास्तिकः॥ ८॥

भाषार्थ—यहाँ 'तेन' पद की अनुवृत्ति आ रही है। तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से 'चरति=गति करना' अर्थ वाली क्रिया के कर्तृवाच्य में ठक् प्रत्य होता है। जैसे—शकटेन चरति=शाकटिकः। हस्तिना चरति=हास्तिकः, इत्यादि॥ ८॥

आकर्षात् ष्ठल्॥ ९॥

चरतीत्यनुवर्त्तते। आकर्षात् —५।१। ष्ठल् —१।१ पूर्व सूत्रेण ठक् प्रत्ययः प्राप्तस्स बाध्यते। तृतीयासमर्थाद् आकर्षप्रातिपदिकाच् चरतीत्यर्थे ष्ठल् प्रत्ययो भवति। आकर्षेण चरतीति आकर्षिकः। आकर्षिकी। षित्करणं ङीषर्थम्। लित्करणं—स्वरार्थम्।

भा०—इह केषांचित् सांहितिकं षत्वं केषांचित् षिदर्थम्। तत्र न ज्ञायते केषां सांहितिकं केषां षिदर्थमिति। इह ठगधिकारे केषांचित् प्रत्ययानां सांहितिकं विभक्तेः सकारस्य षत्वं, केषांचित् स्त्रीप्रत्ययार्थं षत्वम्। तत्र सन्देहनिवृत्त्यर्थो यत्नः कर्त्तव्य इत्यभिप्रायः।

का०— आकर्षात् पर्पादेर्भस्त्रादिभ्यः कुसीदसूत्राच्च।
आवसथात् किशरादेः षितः षडेते ठगधिकारे॥ १॥

आर्याछन्दः। पूर्वोक्तसन्देहोऽनया कारिकया निवर्त्त्यते। आकर्षात् ष्ठल्। पर्पादिभ्यः ष्ठन्। भस्त्रादिभ्यः ष्ठन्। कुसीददशैकदेशात् ष्ठन्ष्ठचौ। आवसथात् ष्ठल्। किशरादिभ्यः ष्ठन्। इति ठगधिकारे षट्स्वेव सूत्रेषु विहिताः प्रत्ययाः षितः। स्त्रीप्रत्ययार्थस्तेषु षकारो वेद्यः॥ ९॥

भाषार्थ—यहाँ 'चरति' पद की अनुवृत्ति है। पूर्व सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय की प्राप्ति में ष्ठल् प्रत्ययान्तर का विधान किया है। प्रत्ययस्थ षकार ङीष् प्रत्यय के लिए और लित् करण स्वर के लिये है। तृतीयासमर्थ *आकर्ष प्रातिपदिक से 'चरति=गति करना' अर्थवाली क्रिया के कर्त्तृवाच्य में 'ष्ठल्' प्रत्यय होता है। जैसे—आकर्षेण चरति=आकर्षिकः। आकर्षिकी।

इस सूत्र पर महाभाष्य में यह विशेष कहा है—यहाँ ठक् प्रत्यय के अधिकार में किन्हीं प्रातिपदिकों में विभक्ति के सकार को संहिता=सन्धि में षत्व हो जाता है और किन्हीं प्रत्ययों में ङीष् होने के लिए षित् किया है। इससे सन्देह होता है कि किन प्रत्ययों में औपदेशिक षत्व है और किनमें संहिता के कारण विभक्ति का है। इस सन्देह की निवृत्ति के लिये कारिका द्वारा परिगणन किया गया है। अर्थात् इस ठक् प्रत्यय के अधिकार में छः सूत्रों से विहित प्रत्ययों में औपदेशिक षत्व है (यहाँ यह भी ध्यान रखना आवश्यक है यहाँ विधि-सूत्रों की अपेक्षा

---

* आकर्ष इति सुवर्ण-परीक्षार्थो निकषोत्पल उच्यते। लोकेभाषायां च 'कसौटी' इति नाम्ना प्रसिद्धः।

—सम्पादकः

छः संख्या बतायी गई है, वैसे प्रत्यय सात हैं।) अर्थात् (१) आकर्षात् ष्ठल् (४।४।९), (२) पर्पादिभ्यष्ठन् (४।४।१०), (३) भस्त्रादिभ्यष्ठन् (४।४।१६), (४) कुसीददशैकादशात् ष्ठन्ष्ठचौ (४।४।३१), (५) आवसथात् ष्ठल् (४।४।७४), (६) किशरादिभ्यष्ठन् (४।४।५३) इन छः सूत्रों से विहित प्रत्यय औपदेशिक षित्ववाले हैं। इनमें षकार स्त्रीप्रत्यय करने के लिए हैं।

पर्पादिभ्यः ष्ठन्॥ १०॥

पर्पादिभ्यः —५।३।ष्ठन् —१।१।तृतीयासमर्थेभ्यः पर्पादिप्रातिपदिकेभ्यश्चरतीत्यर्थे ष्ठन् प्रत्ययो भवति।ठकोऽपवादः।पर्पाभ्यां चरति पर्पिकः। पर्पिकी। अश्विकः। अश्विकी। षित्वं ङीषर्थम्। नित्त्वं स्वरार्थम्।

अथ पर्पादिगणः। पर्प।अश्व।अश्वत्थ।रथ।जाल।न्यास।व्याल।पादः पच्च। इति पर्पादिः॥ १०॥

भाषार्थ—तृतीया समर्थ पर्पादि प्रातिपदिकों से 'चरति=गति करना' अर्थवाली क्रिया के कर्त्तृवाच्य में 'ष्ठन्' प्रत्यय होता है। अधिकार होने से ठक् प्रत्यय की प्राप्ति में 'ष्ठन्' का विधान किया है। प्रत्ययस्थ षकार ङीष् प्रत्यय के लिए है और नित्व स्वर के लिए है। जैसे—पर्पाभ्यां चरति=पर्पिकः। पर्पिकी। अश्विकः। अश्विकी, इत्यादि॥ १०॥

श्वगणाट् ठञ् च॥ ११॥

ष्ठन्नित्यनुवर्त्तते। श्वगणात् —५।१।ठञ् —१।१।च —[अ०प०]। तृतीया-समर्थात् श्वगणप्रातिपदिकात् [चरतीत्यस्मिन्नर्थे] ठञ्-ष्ठनौ प्रत्ययौ भवतः।श्वगणेन चरति श्वागणिकः।श्वागणिकी।ष्ठन् प्रत्यये—श्वगणिकः। श्वगणिकी।

जयादित्येनात्र चकाराट् ठन् प्रत्ययं कृत्वा श्वगणिकेत्युदाहृतम्। ष्ठनि प्रकृते षित्वं न जाने तेन कथं नाश्रितम्॥ ११॥

भाषार्थ—पूर्व सूत्र से 'ष्ठन् प्रत्यय की यहाँ अनुवृत्ति है। तृतीया समर्थ 'श्वगण' प्रातिपदिक से 'चरति=गति करना' अर्थवाली क्रिया के कर्त्तृवाच्य में ठञ् तथा ष्ठन् प्रत्यय होते हैं। जैसे ठञ्—श्वगणेन चरति=श्वागणिकः। श्वागणिकी। ष्ठन् श्वगणिकः। श्वगणिकी।

इस सूत्र में जयादित्य ने चकार से 'ठन्' प्रत्यय करके 'श्वगणिका' उदाहरण दिया है। यह उसकी भूल है, क्योंकि ष्ठन् प्रत्यय की अनुवृत्ति में षित्व को उसने पता नहीं क्यों नहीं समझा? [प्रत्ययस्थ षित्व को मानकर तो 'श्वगणिकी' प्रयोग बनता है 'श्वगणिका' नहीं]॥ ११॥

वेतनादिभ्यो जीवति॥ १२॥

तेनेत्यनुवर्त्तते। चरतीति निवृत्तम्। वेतनादिभ्यः—५।३। जीवति—[क्रि०प०]। जीवतीत्यस्य कर्त्ता प्रत्ययार्थः। तृतीयासमर्थेभ्यो वेतनादिप्रातिपदिकेभ्यो जीवतीत्यस्य कर्तरि ठक् प्रत्ययो भवति। वेतनेन

जीवति वैतनिकः। जालेन जीवति जालिकः।

वेतनादिगणः—वेतन। वाह। अर्धवाह। धनुर्दण्ड। जाल। वेश। उपवेश। प्रेषण। उपस्ति। सुख। शय्या। शक्ति। उपनिषत्। उपदेश। उपनेष। स्फिज। स्रक्। पाद। उपस्थ। उपस्थान। उपहस्त। इति वेतनादिगणः॥ १२॥

भाषार्थ—यहाँ 'तेन' पद की अनुवृत्ति है और 'चरति' पद की निवृत्ति है, यह जीवति क्रियान्तर का पाठ करने से जाना जाता है। तृतीया समर्थ वेतनादि प्रातिपदिकों से जीवतिः=जीवन निर्वाह वाली क्रिया के कर्त्तृवाच्य में 'ठक्' प्रत्यय होता है। जैसे—वेतनेन जीवति=वैतनिकः। जालेन जीवति जालिकः, इत्यादि॥ १२॥

वस्त्रक्रयविक्रयाट् ठन्॥ १३॥

वस्त्रक्रयविक्रयात् —५। १। ठन् —१। १। वस्त्रश्च क्रयविक्रयौ चैषां समाहारः। संघातात् क्रयविक्रयशब्दात् प्रत्यय उत्पद्यते। तृतीयासमर्थाभ्यां वस्त्रक्रयविक्रयप्रातिपदिकाभ्यां जीवतीत्यर्थे ठन् प्रत्ययो भवति। ठकोऽपवादः। वस्त्रेन जीवति वस्त्रिकः। क्रयविक्रयेण जीवति क्रयविक्रयिकः॥ १३॥

भाषार्थ—सूत्र में वस्त्र और क्रय विक्रय शब्दों का समाहारद्वन्द्व समास है। 'क्रयविक्रय' समस्त शब्द से प्रत्यय होता है। तृतीयासमर्थ वस्त्र और क्रयविक्रय प्रातिपदिकों से जीवति=जीवन निर्वाहवाली क्रिया के कर्त्तृवाच्य में 'ठन्' प्रत्यय होता है। यह 'ठक्' प्रत्यय का अपवाद है। जैसे—वस्त्रेन जीवति=वस्त्रिकः। क्रय-विक्रयेण जीवति=क्रयविक्रयिकः॥ १३॥

आयुधाच्छ च॥ १४॥

ठन्नित्यनुवर्त्तते। आयुधात्—५। १। छ—१। १। च—[अ०प०]। तृतीयासमर्थाद् आयुधप्रातिपदिकाज् जीवतीत्यर्थे छ-ठनौ प्रत्ययौ भवतः। आयुधेन जीवति आयुधीयः। आयुधिकः। इत्यर्थे वा चकारः। जीवतीत्य-स्याधिकारः समाप्तः॥ १४॥

भाषार्थ—पूर्वसूत्र से 'ठन्' की अनुवृत्ति है। तृतीयासमर्थ आयुध प्रातिपदिक से जीवति=जीवन निर्वाहवाली क्रिया के कर्त्तृवाच्य में छ और ठन् प्रत्यय होते हैं। जैसे—आयुधेन जीवति=आयुधीयः। आयुधिकः। यहाँ चकार का पाठ इति= समाप्ति अर्थ में है। जिससे 'जीवति' का अधिकार यहाँ समाप्त हो जाता है॥ १४॥

हरत्युत्सङ्गादिभ्यः॥ १५॥

तेनेत्यनुवर्त्तते। जीवतीति निवृत्तम्। हरति —[क्रि०प०]। उत्सङ्गादिभ्यः —५। ३। तृतीयासमर्थेभ्य उत्सङ्गादिगणप्रातिपदिकेभ्यो हरतीत्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति। उत्सङ्गेन हरति औत्सङ्गिकः। औडुपिकः।

अथोत्संगादिः उत्सङ्ग। उडुप। उत्पत। उत्सन्न। उत्पुट। पिटक। इत्युत्सङ्गादिगणः समाप्तः॥ १५॥

भाषार्थ—यहाँ 'तेन' पद की अनुवृत्ति है। तृतीयासमर्थ उत्सङ्गादि प्रातिपदिकों से हरतिः=हरने अर्थवाली क्रिया के कर्त्तृवाच्य में ठक् प्रत्यय होता है। जैसे—

उत्सङ्गेन हरति=औत्सङ्गिकः। औडुपिकः। इत्यादि॥ १५॥

भस्त्रादिभ्यः ष्ठन्॥ १६॥

हरतीत्यनुवर्त्तते। भस्त्रादिभ्यः —५।३। ष्ठन् —१।१। तृतीयासमर्थेभ्यो भस्त्रादिप्रातिपदिकेभ्यो हरतीत्यस्मिन्नर्थे ष्ठन् प्रत्ययो भवति। भस्त्रेण हरति भस्त्रिकः। भस्त्रिकी। भरटिक.। भरटिकी। षित्करणं ङीषर्थम्।

[अथ भस्त्रादिः]—भस्त्र। भरट। भरण। भारण। शीर्षभार। शीर्षेभार। अंसभार। अंसेभार। इति भस्त्रादिगणः॥ १६॥

भाषार्थ—पूर्वसूत्र से 'हरति' पद की अनुवृत्ति है। तृतीया समर्थ भस्त्रादि प्रातिपदिकों से हरति=हरने अर्थवाली क्रिया के कर्त्तृवाच्य में 'ष्ठन्' प्रत्यय होता है। जैसे—भस्त्रेण हरति=भस्त्रिकः। भस्त्रिकी। भरटिकः। भरटिकी। प्रत्यय में षित्करण 'ङीष्' के लिये है॥ १६॥

विभाषा विवधात्॥ १७॥

विभाषा [अ०]। विवधात् —५।१। अप्राप्तविभाषेयम्। ष्ठन्नित्यनुवर्त्तते। तृतीयासमर्थाद् विवधप्रातिपदिकाद् हरतीत्यर्थे विकल्पेन ष्ठन् प्रत्ययो भवति। पक्षेऽधिकाराट् ठक्। विवधेन हरति विवधिकः। विवधिकी। ठक्—वैवधिकः। वैवधिकी।

वा०—वीवधाच्चेति वक्तव्यम्॥ १॥

विवध-वीवध शब्दौ समानार्थौ, स्वं रूपं शब्दस्येति ग्रहणादप्राप्तो विधिः। वीवधेन हरति वीवधिकः वीवधिकी। वैवधिकः। वैवधिकी। इदं वार्त्तिकं जयादित्येन सूत्रे मेलितमिदानींतनेषु पुस्तकेष्वपि तथैव दृश्यते। तद् भ्रमात् केनापि लिखितं जयादित्येन व्याख्यातं च। कुतः। पाणिनीयपाठे सति वार्त्तिक-स्यानर्थकत्त्वात्॥ १७॥

भाषार्थ—इस सूत्र में अप्राप्तविभाषा है। ष्ठन् प्रत्यय की अनुवृत्ति है। तृतीया-समर्थ विवध प्रातिपदिक से हरति=हरण करनेवाली क्रिया के कर्त्तृवाच्य में विकल्प करके 'ष्ठन्' प्रत्यय होता है। पक्ष में 'ठक्' प्रत्यय होता है। जैसे—विवधेन हरति=विवधिकः। विवधिकी। ठक् वैवधिकः। वैवधिकी।

वा०—वीवधाच्च॥ १॥

विवध और वीवध शब्द समानार्थक हैं। शब्द के स्वरूप का ही व्याकरण शास्त्र में ग्रहण होता है, इस नियम से 'वीवध' शब्द से प्रत्यय की प्राप्ति नहीं थी, अतः वार्त्तिक से विधान किया गया है। तृतीयासमर्थ 'वीवध' प्रातिपदिक से हरने अर्थ में विकल्प से 'ष्ठन्' प्रत्यय होता है, पक्ष में ठक्। जैसे वीवधेन हरति=वीवधिकः। वीवधिकी। ठक्=वैवधिकः। वैवधिकी।

काशिका में जयादित्य ने इस वार्त्तिक को सूत्र में मिला दिया है। और वर्त्तमान में उपलब्ध पुस्तकों में भी वैसा ही पाठ मिलता है। वह किसी के द्वारा भ्रान्ति से ही लिखा गया है, और जयादित्य ने भी वैसे ही व्याख्या की है। यदि यह

सूत्र का भाग होता तो वार्त्तिक बनाना निरर्थक ही था॥१७॥

अण् कुटिलिकायाः॥ १८॥

अण् —१।१। कुटिलिकायाः —५।१। तृतीयासमर्थात् कुटिलिका-प्रातिपदिकाद् हरतीत्यर्थेऽण् प्रत्ययो भवति। अयोमय=शस्त्रविशेषस्य अयस्कार-साधनस्य कुटिलिका नाम। कुटिलिकया हरति कौटिलिकोऽयस्कारः॥ १८॥

भाषार्थ—तृतीयासमर्थ कुटिलिका प्रातिपदिक से हरति=हरण के अर्थ वाली क्रिया के कर्तृवाच्य में 'अण्' प्रत्यय होता है। कुटिलिका अयस्कार=लुहार की लोहे की एक छड़ी होती है। जैसे—कुटिलिकया हरति=कौटिलिकोऽयस्कारः॥१८॥

निर्वृत्तेऽक्षद्यूतादिभ्यः॥ १९॥

तेनेत्यनुवर्त्तते। निर्वृत्ते। अक्षद्यूतादिभ्यः —५।३। तृतीयासमर्थेभ्योऽ-क्षद्यूतादिगणप्रातिपदिकेभ्यो निर्वृत्त इत्यस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति। अक्षद्यूतेन निर्वृत्तम्-आक्षद्यूतिकं वैरम्। जानुप्रहृतिकम्।

अथ अक्षाद्यूतादिः—अक्षद्यूत। जानुप्रहृत। जङ्घाप्रहृत। पादस्वेन। कण्टकमर्दन। गतागत। यातोपयात। अनुगत। इत्यक्षद्यूतादिगणः॥ १९॥

भाषार्थ—यहाँ 'तेन' पद की अनुवृत्ति है। तृतीयासमर्थ गण पठित अक्ष-द्यूतादि प्रातिपदिकों से निर्वृत्त=सिद्ध होने अर्थ में 'ठक्' प्रत्यय होता है। जैसे—अक्षद्यूतेन निर्वृत्तम्=आक्षद्यूतिकं वैरम्। जानुप्रहृतिकम्, इत्यादि॥१९॥

त्रेर्मम्नित्यम्*॥ २०॥

निर्वृत्त इत्यनुवर्त्तते। त्रेः —५।१। मप् —१।१। नित्यम् —१।१। 'ड्वितः क्त्रिः' इत्यस्य क्त्रिप्रत्ययान्तस्य ग्रहणम्। त्रिप्रत्ययान्तात् तृतीया-समर्थात् प्रातिपदिकान् निर्वृत्त इत्यर्थे नित्यं मप् प्रत्ययो भवति। नित्यग्रहणं वाक्यनिर्वृत्त्यर्थम् त्रिप्रत्ययान्तं मब्विषयमेव यथा स्यात्। पक्त्रिमा यवागूः। उप्त्रिमं बीजम्। कृत्रिमः संसारः।

वा०—भाव इति प्रकृत्य इमब्वक्तव्यः॥ १॥

कुट्टिमा भूमिः। सेकिमोऽसिरित्येवमर्थम्। भाववाचिनः प्रातिपदिकाद् इमप् प्रत्ययः कर्त्तव्य इति सूत्रेणापि नार्थः॥ २०॥

भाषार्थ—यहाँ 'निर्वृत्ते' पद की अनुवृत्ति है। 'ड्वितः क्त्रि; (अ० ३।३।८८) इस क्त्रि प्रत्ययान्त का 'त्रेः' पद से ग्रहण किया गया है। तृतीया समर्थ त्रि-प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से निर्वृत्त=सिद्ध होने अर्थ में नित्य मप्-प्रत्यय होता है। सूत्र में नित्य का ग्रहण महाविभाषा से प्राप्त वाक्य की निवृत्ति के लिये है। त्रि-प्रत्ययान्त का नित्य मप्-प्रत्ययान्त का ही प्रयोग होना चाहिये। केवल त्रि प्रत्ययान्त का प्रयोग न हो। जैसे—पक्त्रिमा यवागूः। उप्त्रिमं बीजम्। कृत्रिमः संसारः।

---

* क्त्रेरिति पाठोऽनार्ष एव —सम्पादकः।

वा०—भाव इति प्रकृत्य इमब् वक्तव्यः ॥ १ ॥

भाववाची (भाव-विहित प्रत्ययान्त) प्रातिपदिकों से इमप् प्रत्यय कहना चाहिये। ऐसा वार्त्तिक बनाने से सूत्र से सिद्ध होनेवाले शब्द तथा अन्य शब्द भी सिद्ध हो जायेंगे। जैसे—कुट्टिमा भूमिः। सेकिमोऽसिः॥ २० ॥

अपमित्ययाचिताभ्यां कक्कनौ ॥ २१ ॥

निर्वृत्त इत्यनुवर्त्तते। अपमित्य-याचिताभ्याम् —५। २। कक्कनौ — १। २। तृतीयासमर्थाभ्याम् अपमित्य-याचितप्रातिपदिकाभ्यां निर्वृत्त इत्यर्थे यथासंख्यं कक्कनौ प्रत्ययौ भवतः। आपमित्यकम्। याचितकम्॥ २१ ॥

भाषार्थ—यहाँ 'निर्वृत्ते पद की अनुवृत्ति है। तृतीया समर्थ अपमित्य और यचित प्रातिपदिकों से निर्वृत्त=सिद्ध होने अर्थ में यथासंख्य कक्, कन् प्रत्यय होते हैं। 'अपमित्य' शब्द क्त्वा प्रत्ययान्त होने से अव्यय है। अतः तृतीयासमर्थ के अधिकार होने पर भी इस शब्द से तृतीया समर्थ की संगति नहीं है। जैसे—आपमित्यकम्। याचितकम्॥ २१ ॥

संसृष्टे ॥ २२ ॥

तेनेति तृतीयासमर्थविभक्तिरनुवर्त्तते। संसृष्टे —७। १। संसृष्टं मेलनमुच्यते। तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकात् संसृष्ट इत्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति। दध्ना संसृष्टं शाकं दाधिकम्। तक्रेण संसृष्टं ताक्रिकम्। दौग्धिकी यवागूः। गौडिका गोधूमाः॥ २२ ॥

भाषार्थ—यहाँ 'तेन' पद की अनुवृत्ति है। तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से संसृष्ट=मिश्रित मिलाने अर्थ में 'ठक्' प्रत्यय होता है। जैसे—दध्ना संसृष्टं शाकम्= दाधिकम्। तक्रेण संसृष्टं ताक्रिकम्। दौग्धिकी यवागूः। गौडिका गोधूमाः, इत्यादि॥ २२ ॥

चूर्णादिनिः ॥ २३ ॥

चूर्णात् —५। १। इनिः —१। १। तृतीयासमर्थाच्चूर्णप्रातिपदिकात् संसृष्टेऽर्थे इनिः प्रत्ययो भवति। चूर्णेन संसृष्टाश्चूर्णिनो धानाः॥ २३ ॥

भाषार्थ—तृतीया समर्थ चूर्ण प्रातिपदिक से संसृष्ट=मिलाने अर्थ में इनि प्रत्यय होता है। जैसे—चूर्णेन संसृष्टा=चूर्णिनो धानाः॥ २३ ॥

लवणाल्लुक् ॥ २४ ॥

लवणात् —५। १। लुक् —१। १। तृतीयासमर्थात् लवणप्रातिपदिकाद् उत्पन्नस्य संसृष्टार्थस्य प्रत्ययस्य लुग् भवति। लवणेन संसृष्टो लवणः सूपः। लवणं शाकम्। लवणा यवागूः। प्रत्ययार्थस्य प्रधानतया त्रिलिङ्गता॥ २४॥

भाषार्थ—तृतीया समर्थ 'लवण' प्रातिपदिक से संसृष्टार्थ में उत्पन्न प्रत्यय का लुक् होता है। जैसे—लवणेन संसृष्टो लवणः सूपः। लवणं शाकम्। लवणा यवागूः। यहाँ प्रत्यय के लुक् होने पर भी प्रत्ययार्थ की मुख्यता होने से 'लवण'

शब्द का तीनों लिङ्गों में प्रयोग हुआ है॥ २४॥

मुद्गादण्॥ २५॥

मुद्गात् —५।१। अण् —१।१। तृतीयासमर्थाद् मुद्गप्रातिपदिकात् संसृष्टेऽर्थेऽण् प्रत्ययो भवति। ठकोऽपवादः। मुद्गेन संसृष्टा मौद्गा ओदनाः। मौद्गी यवागूः॥ २५॥

भाषार्थ—यह सूत्र 'ठक्' प्रत्यय का अपवाद है। तृतीया समर्थ 'मुद्ग' प्रातिपदिक से संसृष्ट=मिलाने अर्थ में 'अण्' प्रत्यय होता है। जैसे—मुद्गेन संसृष्टा=मोद्गा ओदनाः। मौद्गी यवागूः॥ २५॥

व्यञ्जनैरुपसिक्ते॥ २६॥

संसृष्ट इति निवृत्तम्। तेनेत्यनुवर्त्तते। व्यञ्जनैः —३।३। उपसिक्ते —७।१। तृतीयासमर्थेभ्यो व्यञ्जनवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्य उपसिक्त इत्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति। दध्ना उपसिक्तं दाधिकम्। ताक्रिकम्। गौडिकम्। व्यञ्जनैरिति किम्—अद्भिरुपसिक्तं शाकम्। अत्र मा भूत्॥ २६॥

भाषार्थ—यहाँ 'संसृष्टे' पद निवृत्त हो गया है और 'तेन' पद की अनुवृत्ति है। [सूत्र में 'व्यञ्जनैः' पद में बहुवचन स्वरूप विधि के निरास के लिये है, अतः व्यञ्जनवाची प्रातिपदिकों से प्रत्यय होता है] तृतीया समर्थ व्यञ्जनवाची प्रातिपदिकों से उपसिक्त=सींचने अर्थ में 'ठक्' प्रत्यय होता है। जैसे—दध्ना उपसिक्तम्=दाधिकम्। ताक्रिकम्। गौडिकम्। सूत्र में 'व्यञ्जनैः' पद होने से व्यञ्जनवाचियों से ही प्रत्यय होता है। जो व्यञ्जनवाची नहीं हैं, उनसे नहीं होता। जैसे—अद्भिरूपसिक्तं शाकम्। यहाँ 'अप्' (जल) शब्द से प्रत्यय नहीं हुआ॥ २६॥

ओजःसहोऽम्भसा वर्त्तते॥ २७॥

उपसिक्त इति निवृत्तम्। तेनेत्यनुवर्त्तते। ओजःसहोऽम्भसा —३।१। वर्त्तते-[क्रिया०]। ओजस्, सहस्, अम्भस्, इत्येतेभ्यस्तृतीयासमर्थेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो वर्त्तत इत्यस्य कर्त्तरि ठक् प्रत्ययो भवति। ओजसा वर्त्तते इत्यौजसिकः क्षत्रियः। सहसा वर्तते साहसिकश्चौरः। अम्भसा वर्त्तते आम्भसिको नक्रः॥ २७॥

भाषार्थ—इस सूत्र में 'उपसिक्ते' पद की निवृत्ति तथा 'तेन' पद की अनुवृत्ति है। तृतीयासमर्थ ओजस्, सहस्, अम्भस् प्रातिपदिकों से वर्त्तते=वर्त्तमान होनेवाली क्रिया के कर्तृवाच्य में 'ठक्' प्रत्यय होता है। जैसे—ओजसा वर्त्तते= औजसिकः क्षत्रियः। सहसा वर्त्तते=साहसिकश्चौरः। अम्भसा वर्त्तते=आम्भसिको नक्रः॥ २७॥

तत्प्रत्यनुपूर्वमीपलोमकूलम्॥ २८॥

तेनेति निवृत्तम्। वर्त्तत इत्यनुवर्त्तते। तत् —२।१। प्रत्यनुपूर्वम् —२।१। ईपलोमकूलम् —२।१। वृतुधातुरकर्मकः। वर्तनक्रियाविशेषणं द्वितीया-समर्थग्रहणम्। द्वितीया-समर्थेभ्यः प्रत्यनुपूर्वेभ्यः ईपलोमकूलेभ्यः प्राति-पदिकेभ्यो वर्त्तत इत्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति। प्रतीपं वर्त्तते प्रातीपिकः।

आन्वीपिकः। प्रतिलोमं वर्त्तते प्रातिलोमिकः। आनुलोमिकः। प्रतिकूलं वर्त्तते प्रातिकूलिकः। आनुकूलिकः॥ २८॥

भाषार्थ—इस सूत्र में 'तेन' पद की निवृति तथा 'वर्त्तते' पद की अनुवृत्ति है। 'वृतु' धातु अकर्मक है। अतः द्वितीया समर्थ विभक्ति वर्त्तन क्रिया का विशेषण है। द्वितीया समर्थ प्रति तथा अनु जिनके पूर्व हों, ऐसे ईप, लोम और कूल प्रातिपदिकों से वर्त्तते=वर्तन अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है। जैसे—प्रतीपं* वर्त्तते= प्रातीपिकः। आन्वीपिकः। प्रतिलोमं§ वर्त्तते=प्रातिलोमिकः। आनुलोमिकः¶। प्रतिकूलं वर्त्तते=प्रातिकूलिकः। आनूकूलिकः॥ २८॥

परिमुखञ्च॥ २९॥

तदित्यनुवर्त्तते वर्त्तत इति च। परिमुखम् —२।१। च —[अ०प०]। द्वितीयासमर्थात् परिमुखप्रातिपदिकाद् वर्त्तत इत्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति। परिमुखं वर्त्तते पारिमुखिकः॥ २९॥

भाषार्थ—इस सूत्र में 'तद्' तथा 'वर्त्तते' पदों की अनवृत्ति है। द्वितीया समर्थ परिमुख प्रातिपदिक से वर्त्तते=वर्त्तन अर्थ में 'ठक्' प्रत्यय होता है। जैसे—परिमुखं वर्त्तते=पारिमुखिकः॥ २९॥

प्रयच्छति गर्ह्यम्॥ ३०॥

प्रयच्छति —[क्रि०प०]। गर्ह्यम् —१।१। तदित्यनुवर्त्तते, वर्त्तत इति निवृत्तम्। द्वितीयासमर्थात् प्रातिपदिकात् प्रयच्छतीत्यस्य गर्हे प्रत्ययार्थे ठक् प्रत्ययो भवति।

भा०— यदसावल्पं दत्त्वा बहु गृह्णाति तद् गर्ह्यम्।
प्रयच्छति दानकर्माऽदानस्य पुनरधिकमादानं गर्ह्यं कर्म।

वा०— मे स्याल्लोपो वा॥ १॥

मे स्यादिति पदद्वयस्य प्रत्यय उत्पन्ने वा लोपो भवति। द्विगुणं मे स्यादिति प्रयच्छति द्वैगुणिकः। त्रैगुणिकः। विकल्पग्रहणस्यैतत् प्रयोजनम्—द्विगुणं मे स्यादिति वाक्यमपि यथा स्यात्।

वा०—वृद्धेर्वृधुषिभावः॥ २॥

मे स्याल्लोपो वेत्यनुवर्त्तते। वृद्धिर्मे स्यादिति प्रयच्छति वार्धुषिकः॥ ३०॥

भाषार्थ—इस सूत्र में 'तद्' पद की अनुवृत्ति है। द्वितीया समर्थ प्रातिपदिकों से प्रयच्छति=देने अर्थवाली क्रिया के कर्तृवाच्य में, यदि देय पदार्थ अल्प देकर अधिक लेने से निन्दित (गर्ह्य) वाच्य हो तो 'ठक्' प्रत्यय होता है। महाभाष्यकार ने गर्ह्य की परिभाषा करते हुए लिखा है कि जो अल्पमात्रा में देकर अधिक लेता है, वह गर्ह्य है। सूत्र में ऐसा भाव स्पष्ट होता न देखकर वार्त्तिककार ने यह लिखा है—

---

* प्रतीपम्=प्रतिगता आपोऽस्मिन्निति बहुव्रीहिः।

§ प्रतिलोमम्=प्रतिगतानि लोमान्यस्येति बहुव्रीहिः।

¶ अनुलोमम्=अनुगतानि लोमान्यस्येति बहुव्रीहिः।

—सम्पादकः

वा०—मे स्याल्लोपो वा॥ १॥

अर्थात् गर्ह्य अभिधेय में प्रत्यय करने पर 'मे स्यात्' पदों का विकल्प से लोप हो जाता है। जैसे—द्विगुणं मे स्यादिति प्रयच्छति=द्वैगुणिकः। त्रैगुणिकः। विकल्प का ग्रहण 'द्विगुणं मे स्यात्' वाक्य प्रयोग के लिये है।

वा०—वृद्धेर्वृधुषिभावो वा॥ २॥

यहाँ 'मे, स्यात्' पदों की अनुवृत्ति है। वृद्धि प्रातिपदिक से 'प्रयच्छति गर्ह्यम्' अर्थ में 'ठक्' प्रत्यय होता है और वृद्धि के स्थान पर वृधुषि आदेश हो जाता है। जैसे—वृद्धिर्मे स्यादिति प्रयच्छति=वार्धुषिकः।

कुसीददशैकादशात् ष्ठन्ष्ठचौ॥ ३१॥

पूर्वसूत्रं सर्वमनुवर्त्तते। कुसीददशैकादशात् —५।१। ष्ठन्-ष्ठचौ —१।२। कुसीद-दशैकादश इत्येताभ्यां द्वितीयासमर्थाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां प्रयच्छति गर्ह्यमित्यर्थे ष्ठन्-ष्ठचौ प्रत्ययौ यथासंख्येन भवतः। एकादशार्था दश दशैकादश। कुसीदं प्रयच्छति कुसीदिकः। कुसीदिकी। दशैकादशिकः। दशैकादशिकी। षित्करणं ङीषर्थम्॥ ३१॥

भाषार्थ—पूर्वसूत्र की यहाँ अनुवृत्ति है। द्वितीया समर्थ कुसीद और दशैकादश प्रातिपदिकों से प्रयच्छति गर्ह्यम्=द्विगुणादि के निमित्त से निन्दित देनेवाले कर्त्तृवाच्य में यथासंख्य करके ष्ठन् और ष्ठच् प्रत्यय होते हैं। कुसीदं (वृद्ध्यर्थम्) प्रयच्छति=कुसीदिकः। कुसीदिकी। दशैकादशिकः। दशैकादशिकी। जो दश रुपये इसलिये देता है कि एकादश मेरे हो जायें, वह दशैकादशिक कहलाता है। प्रत्ययों में षित्करण स्त्रीलिंग में 'ङीष्' प्रत्यय के लिये है॥ ३१॥

उञ्छति॥ ३२॥

[उञ्छति—क्रि०प०] तदित्यनुवर्त्तते। उञ्छतीत्यस्य कर्त्ता प्रत्ययार्थः। भूमिगतस्यैकैकस्य कणस्यादान-मुञ्छनम्। द्वितीयासमर्थात् प्रातिपदिकाद् उञ्छतीत्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति। श्यामाकान् उञ्छति श्यामाकिकः। गोधूमान् उञ्छति गौधूमिकः॥ ३२॥

भाषार्थ—इस सूत्र में 'तद्' पद की अनुवृत्ति है। 'उञ्छति' क्रिया का कर्त्ता प्रत्यय का अर्थ है। फसल कटने पर खेतों में पड़े एक-एक कण का उठाना उञ्छन (शिल्ला) कहलाता है। द्वितीया समर्थ प्रातिपदिकों से उञ्छति=शिल्ला चुगने अर्थ की क्रिया के कर्त्तृवाच्य में 'ठक्' प्रत्यय होता है। जैसे—श्यामाकान् उञ्छति श्यामाकिकः। गोधूमान् उञ्छति गौधूमिकः इत्यादि॥ ३२॥

रक्षति॥ ३३॥

[रक्षति—क्रि०प०] द्वितीयासमर्थात् प्रातिपदिकाद् रक्षतीत्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति। समाजं रक्षति सामाजिकः। गोमण्डलं रक्षति गौमण्डलिकः। कौटुम्बिकः॥ ३३॥

भाषार्थ—द्वितीया समर्थ प्रातिपदिकों से रक्षति=रक्षा करनेवाली क्रिया के कर्त्तृवाच्य में 'ठक्' प्रत्यय होता है। जैसे—समाजं रक्षति=सामाजिकः। गोमण्डलं रक्षति=गौमण्डलिकः। कौटुम्बिकः, इत्यादि॥ ३३॥

शब्ददर्दुरं करोति॥ ३४॥

शब्द-दर्दुरम् —२।१। करोति —[क्रि०प०]। द्वितीयासमर्थाभ्यां शब्ददर्दुर* इत्येताभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां करोतीत्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति। करोत्यत्र रचनसाधने वर्तते। शब्दं करोति शाब्दिको वैयाकरण:। दार्दुरिक:॥ ३४॥

भाषार्थ—द्वितीया समर्थ शब्द और दर्दुर प्रातिपदिकों से करोति=रचना करनेवाली क्रिया के कर्त्तृवाच्य में ठक् प्रत्यय होता है। जैसे—शब्दं करोति=शाब्दिको वैय्याकरण:। दार्दुरिक:॥ ३४॥

पक्षिमत्स्यमृगान् हन्ति॥ ३५॥

पक्षि-मत्स्य-मृगान्—२।३। हन्ति—[क्रि०प०]। पक्षि-मत्स्य-मृगेभ्यो द्वितीयासमर्थेभ्य: प्रातिपदिकेभ्यो हन्तीत्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति। झित्तद् विशेषाणां मत्स्याद्यर्थमित्युक्तवार्त्तिकेनात्र§ पर्य्यायवाचिनां तद् विशेषाणां च ग्रहणं भवति। पक्षिभ्यस्तावत्—पक्षिणो हन्ति पाक्षिक:। शाकुनिक:। खैचरिक:। तद्विशेषेभ्य:—मायूरिक:। कपोतान् हन्ति कापोतिक:। शौकिक:। बाकिक:। मत्स्येभ्य:। शाफरिक:। शाकुलिक:। मृगेभ्य:—मृगान् हन्ति मार्गिक:। हारिणिक:। तद्विशेषेभ्य:—रौरविक:। पार्षतिक:। सारङ्गिक:॥ ३५॥

भाषार्थ—द्वितीय समर्थ पक्षी, मत्स्य तथा मृग प्रातिपदिकों से हन्ति=मारने अर्थ में क्रिया के कर्त्तृवाच्य में 'ठक्' प्रत्यय होता है। इस व्याकरण शास्त्र में 'स्वं रूपं०' (अ० १।१।६८) सूत्र के अनुसार शब्द के अपने स्वरूप का ही ग्रहण होता है, पर्यायवाची आदि का नहीं। किन्तु कुछ इस नियम के अपवाद भी हैं। उनमें 'झित्तद् विशेषाणां०' यह अपवाद भी है। इससे सूत्रपठित प्रातिपदिकों के स्वरूपों, पर्यायवाची तथा विशिष्ट शब्दों से भी प्रत्यय हो जाता है। जैसे—पक्षीवाचियों से—पक्षिणो हन्ति=पाक्षिक:। शाकुनिक:। खैचरिक:। तद्विशेषों से—मायूरिक:। कपोतान् हन्ति=कापोतिक:। शौकिक:। बाकिक:। मत्स्यवाचियों से—मत्स्यान् हन्ति=मात्स्यिक:। मीनान् हन्ति=मैनिक:। तद्विशेषों से—शाफरिक:। शाकुलिक:। मृगवाचियों से—मृगान् हन्ति=मार्गिक:। हारिणिक:। तद्विशेषों से—रौरविक:। पार्षतिक:। सारङ्गिक:॥ ३५॥

परिपन्थं च तिष्ठति॥ ३६॥

हन्तीत्यनुवर्त्तते। **परिपन्थम्-२।१। च [अ०]। तिष्ठति—[क्रि०प०]। द्वितीयासमर्थात् परिपन्थप्रातिपदिकात् तिष्ठतीत्यर्थे हन्त्यर्थे च ठक् प्रत्ययो भवति। परिपन्थं¶ तिष्ठति पारिपन्थिको दस्यु:। परिपन्थं हन्ति पारिपन्थिक:॥ ३६॥**

---

* दर्दुर-शब्द: पात्रविशेषवाची, अनुकृतौ वा वर्त्तते।

§ इदं वार्त्तिकं (अ० १।१।६८) सूत्रे वर्त्तते। —सम्पादक:

¶ ननु च तिष्ठतिरकर्मक:। तत् कथं द्वितीयया सह सम्बन्ध:? नैष दोष:। अकर्मकाणामपि हि कालभावाध्वान: कर्मसंज्ञा: प्रतिपद्यन्ते। तथा च...'कालभावाध्वगन्तव्या: कर्मसंज्ञा ह्यकर्मणामिति। (१।४।५१ वा०) (भाष्ये)। —अनुवादक:

भाषार्थ—'हन्ति' पद की अनुवृत्ति आती है। द्वितीया समर्थ प्रातिपदिकों से तिष्ठति=ठहरने अर्थवाली तथा हन्ति=मारने अर्थवाली क्रिया के कर्त्तृवाच्य में ठक् प्रत्यय होता है। जैसे—परिपन्थं तिष्ठति=पारिपन्थिको दस्युः। परिपन्थं हन्ति=पारिपन्थिकः॥ ३६॥

माथोत्तरपदपदव्यनुपदं धावति॥ ३७॥

माथोत्तरपद.....पदम्—२।१। धावति—[क्रि०प०]। **समाहारद्वन्द्वः। माथशब्दो मार्गपर्याय उत्तरपदं यस्य तस्मात्, पदवीअनुपद इत्येताभ्यां च द्वितीयासमर्थाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां धावतीत्यस्य कर्त्तरि ठक् प्रत्ययो भवति। विद्यामाथं धावति वैद्यामाथिकः। धार्ममाथिकः। दाण्डमाथिकः। पदवीं धावति पादविकः। आनुपदिकः॥ ३७॥**

भाषार्थ—सूत्र में माथोत्तरपद, पदवी, अनुपद शब्दों का समाहार द्वन्द्व समास है। माथ शब्द मार्ग का पर्यायवाची है। माथ शब्द जिसके उत्तरपद में हों ऐसे प्रातिपदिकों तथा पदवी, अनुपद प्रातिपदिकों से धावति=शुद्ध्यर्थक तथा गत्यर्थक धाव क्रिया के कर्त्तृवाच्य में 'ठक्' प्रत्यय होता है। जैसे—विद्यामाथं धावति वैद्यामाथिकः। धार्ममाथिकः। दाण्डमाथिकः, इत्यादि। पदवीं धावति पादविकः। आनुपदिकः।

आक्रन्दाट् ठञ् च॥ ३८॥

धावतीत्यनुवर्त्तते। आक्रन्दात्—५।१। ठञ्—१।१। च—[अ०प०]। **द्वितीयासमर्थाद् आक्रन्दप्रातिपदिकाद् धावतीत्यर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति, चकाराट् ठक् च। ठक्-ठञोः स्वरभेदः। आक्रन्दं धावति आक्रन्दिकः। आक्रन्दिकी॥ ३८॥**

भाषार्थ—पूर्वसूत्र से 'धावति' पद की अनुवृत्ति है। द्वितीया समर्थ आक्रन्द प्रातिपदिक से धावति=शुद्ध्यर्थक तथा गत्यर्थक 'धाव' क्रिया के कर्त्तृवाच्य में ठञ् प्रत्यय होता है और चकार से ठक्। ठक् और ठञ् प्रत्ययों में स्वर का भेद है। जैसे—आक्रन्दं* धावति आक्रन्दिकः। आक्रन्दिकी॥ ३८॥

पदोत्तरपदं गृह्णाति॥ ३९॥

पदोत्तरपदम्—२।१। गृह्णाति—[क्रि०प०]।[१] **पदशब्द उत्तरपदं यस्य तस्मात्। द्वितीयासमर्थात् पदोत्तरपदप्रातिपदिकाद् गृह्णातीत्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति। पूर्वपदं गृह्णाति पौर्वपदिकः। औत्तरपदिकः। पदान्तादित्युच्यमाने बहुच्पूर्वादपि स्यात्॥ ३९॥**

भाषार्थ—पद शब्द उत्तरपद में है जिनके, उन द्वितीय समर्थ प्रातिपदिकों से गृह्णाति=ग्रहण करने अर्थवाली क्रिया के कर्त्तृवाच्य में 'ठक्' प्रत्यय होता है। जैसे—पूर्वपदं गृह्णाति पौर्वपदिकः। औत्तरपदिकः, इत्यादि। सूत्र में 'पदान्तात्' ग्रहण करने में यद्यपि लाघव था, किन्तु वैसा इसलिये नहीं किया, जहाँ बहुच् प्रत्यय

---

* आक्रन्दन्त्यस्मिन्नित्याक्रन्दो देशः।

१ पदग्रहणेन स्वरूपमेव गृह्यते, न सुप्तिङन्तं पदम्। —सम्पादकः

पूर्व में होता है, वहाँ प्रत्ययविधि न हो॥३९॥

प्रतिकण्ठार्थललामं च॥४०॥

गृह्णातीत्यनुवर्त्तते। प्रतिकण्ठार्थललामम्—२।१। च—[अ०प०]। समाहारद्वन्द्वः। प्रतिकण्ठ, अर्थ, ललाम, इत्येतेभ्यो द्वितीयासमर्थेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो गृह्णातीत्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति। प्रतिकण्ठं गृह्णाति प्रातिकण्ठिकी वेष्या। आर्थिकः। लालामिकः॥४०॥

भाषार्थ—यहाँ 'गृह्णाति' पद की अनुवृत्ति है। प्रतिकण्ठ, अर्थ तथा ललाम शब्दों का समाहारद्वन्द्व समास है। द्वितीया समर्थ प्रतिकण्ठ, अर्थ और ललाम प्रातिपदिकों से गृह्णाति=ग्रहण करने अर्थवाली क्रिया के कर्त्तृवाच्य में 'ठक्' प्रत्यय होता है। जैसे—प्रतिकण्ठं गृह्णाति प्रातिकण्ठिकी वेष्या। आर्थिकः। लालामिकः॥४०॥

धर्मं चरति॥४१॥

धर्मम् —२।१।चरति—[क्रि०प०]।द्वितीयासमर्थाद् धर्मप्रातिपदिकाच् चरतीत्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति। धर्मं चरति धार्मिकः॥

वा०—अधर्माच्च॥१॥

अधर्मं चरत्याधर्मिकः॥४१॥

भाषार्थ—द्वितीया समर्थ धर्म प्रातिपदिक से चरति=पुनः पुनः आचरण करने अर्थवाली क्रिया के कर्त्तृवाच्य में 'ठक्' प्रत्यय होता है। जैसे—धर्मं चरति धार्मिकः।

वा०—अधर्माच्च॥१॥

और चरति=आचरण अर्थ में अधर्म* प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय होवे। अधर्मं चरति=आधर्मिकः॥४१॥

प्रतिपथमेति ठंश्च॥४२॥

प्रतिपथम्—२।१।एति—[क्रि०प०]।ठन्—१।१।च—[अ०प०]। चकारग्रहणं ठक्समुच्चयार्थम्। द्वितीयासमर्थात् प्रतिपथप्रातिपदिकाद् एतीत्यर्थे ठन् प्रत्ययो भवति, चाट् ठक् च। प्रतिपथमेति प्रतिपथिकः। प्रातिपथिकः॥४२॥

भाषार्थ—सूत्र में चकार से ठक् प्रत्यय का समुच्चय है। द्वितीया समर्थ 'प्रतिपथ' प्रातिपदिक से एति=गत्यर्थक इण् धातु के अर्थ में 'ठन्' प्रत्यय होता है और चकार से 'ठक्'। जैसे—प्रतिपथमेति-प्रतिपथिकः। ठक्-प्रातिपथिकः॥४२॥

समवायान् समवैति॥४३॥

समवायान्—२।३। समवैति—[क्रि०प०]। 'झित्तद् विशेषाणां मत्स्याद्यर्थमिति' वचनाद् बहुवचननिर्देशाच्च स्वरूपविधिर्न भवति। समवायवाचिभ्यो§ द्वितीयासमर्थेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः समवैतीत्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति। समवायं समवैति सामवायिकः। सामाजिकः। सान्घिकः। सामूहिकः।

---

* ग्रहणवता प्रातिपदिकेन तदन्तविधेर्निषेधात् प्रत्ययस्याप्राप्तौ विधानम्।

§ समवायशब्दः समूहवाची। —सम्पादक

सान्निवेशिकः॥ ४३॥

भाषार्थ—इस सूत्र में बहुवचन निर्देश करने से स्वरूप विधि नहीं होती और 'झित्तद्* विशेषाणां मत्स्याद्यर्थम्' इस वार्त्तिककार के नियम से समवायवाची शब्दों से प्रत्यय होता है। द्वितीया समर्थ समवायवाची प्रातिपदिकों से समवैति=मिलने अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है। जैसे—समवायं समवैति सामवायिकः। सामाजिकः। सांघिकः। सामूहिकः। सान्निवेशिकः, इत्यादि॥ ४३॥

परिषदो ण्यः॥ ४४॥

समवैतीत्यनुवर्त्तते। परिषदः —५।१। ण्यः —१।१। परिषच्छब्दोऽपि समवायवाची, तस्मात् पूर्वेण ठक् प्राप्तः, स बाध्यते। द्वितीयासमर्थात् परिषत्प्रातिपदिकाण् ण्यः प्रत्ययो समवैतीत्यर्थे भवति। परिषदं समवैति पारिषद्यः॥ ४४॥

भाषार्थ—पूर्वसूत्र से 'समवैति' पद की अनुवृत्ति है। परिषद् शब्द के भी समवायवाची होने से पूर्वसूत्र से ठक् प्रत्यय प्राप्त था, उसका इस सूत्र से अपवाद विधान किया है। द्वितीयासमर्थ परिषत् प्रातिपदिक से समवैति=मिलने अर्थ में 'ण्य' प्रत्यय होता है। जैसे-परिषदं समवैति पारिषद्यः॥ ४४॥

सेनाया वा॥ ४५॥

ण्योऽनुवर्त्तते। सेनायाः —५।१। वा —[अ०प०]। सेना शब्दोपि समवायपर्यायस्तस्माट्ठकि प्राप्ते ण्यो विकल्प्यते। अत एवाप्राप्तविभाषा। द्वितीयासमर्थात् सेनाप्रातिपदिकाद् समवैतीत्यर्थे ण्यप्रत्ययो भवति विकल्पेन, पक्षे ठगेव। सेनां समवैति सैन्यः। सैनिकः। अतोऽग्रे समवैतीति नानुवर्त्तते॥ ४५॥

भाषार्थ—पूर्वसूत्र से 'ण्य' प्रत्यय की अनुवृत्ति है। सेना शब्द भी समवाय का पर्यायवाची है, उससे समवायान् (अ० ४।४।४३) ठक् प्रत्यय की प्राप्ति में 'ण्य' प्रत्यय का विकल्प किया है। इसीलिये यह अप्राप्त विभाषा है। द्वितीया समर्थ 'सेना' प्रातिपदिक से समवैति=मिलने अर्थ में 'ण्य' प्रत्यय विकल्प से होता है पक्ष में 'ठक्' ही होता है। जैसे—सेनां समवैति सैन्यः। सैनिकः। इससे आगे 'समवैति' पद की अनुवृत्ति नहीं है॥ ४५॥

संज्ञायां ललाटकुक्कुट्यौ पश्यति॥ ४६॥

संज्ञायाम्—७।१।ललाट-कुक्कुट्यौ—२।२।पश्यति—[क्रि०प०]। द्वितीयासमर्थाभ्यां ललाट-कुक्कुटीप्रातिपदिकाभ्यां संज्ञायामभिधेयायां पश्यतीत्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति। ललाटं पश्यति लालाटिकः सेवकः। कुक्कुटीं पश्यति कौक्कुटिको भिक्षुकः। ललाटं पश्यतीत्यनेन स्वामिकार्य्याणि सम्यङ् न करोतीति गम्यते॥ ४६॥

भाषार्थ—द्वितीया समर्थ ललाट-कुक्कुटी प्रातिपदिकों से संज्ञावाच्य हो तो पश्यति=देखने अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है। जैसे—ललाटं पश्यति लालाटिकः

---

* द्रष्टव्यम् (अ० १।१।६८ वा० सू०)। —सम्पादकः

सेवकः। जो मालिक के मुख पर ही देखता रहे और काम अच्छी प्रकार न करता हो, उस सेवक को लालाटिक कहते हैं। कुक्कुटीं* पश्यति कौक्कुटिको भिक्षुः॥ ४६॥

तस्य धर्म्यम्॥ ४७॥

तदिति निवृत्तम्। तस्य —६।१। धर्म्यम् —१।१। धर्मादनपेतमच्युतं न्याय्यं धर्म्यम्[§]। तस्येति षष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकाद् धर्म्यमित्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति। हाटकस्य धर्म्यं हाटकिकम्। आकरिकम्। आपणिकम्॥ ४७॥

भाषार्थ—'तद्' पद की अनुवृत्ति अब नहीं है। धर्म से अनपेत=युक्त न्याय्य हो उसे धर्म्य कहते हैं। षष्ठी समर्थ प्रातिपदिकों से धर्म्य=धर्म से अविरुद्ध न्याय्य अर्थ में ठ्क प्रत्यय होता है। जैसे—हाटकस्य धर्म्यं हाटकिकम्। आकरिकम्। आपणिकम्, इत्यादि॥ ४७॥

अण् महिष्यादिभ्यः॥ ४८॥

अण् —१।१। महिष्यादिभ्यः —५।३। तस्येत्यनुवर्तते। पूर्वेण सामान्यतष्ठक् प्राप्तस्तस्यापवादः। षष्ठीसमर्थेभ्यो महिष्यादिप्रातिपदिकेभ्यो धर्म्यमित्यर्थेऽण् प्रत्ययो भवति। महिष्या धर्म्यम्=माहिषम्। प्राजावतम्।

अथ महिष्यादि—महिषी। प्रजापति। प्रजावती। प्रलेपिका। विलेपिका। अनुलेपिका। पुरोहित। मणिपाली। अनुचारक। होतृ। यजमान। इति महिष्यादयः॥ ४८॥

भाषार्थ—यहाँ समस्त पूर्वसूत्र की अनुवृत्ति है। पूर्वसूत्र से सामान्यरूप से ठक् प्रत्यय प्राप्त है, उसका अपवाद अण् का विधान किया है। षष्ठी समर्थ गणपठित महिष्यादि प्रातिपदिकों से धर्म्य=धर्म से अविरुद्ध न्याय्य अर्थ में 'अण्' प्रत्यय होता है। जैसे महिष्या धर्म्यं माहिषम्। प्राजावतम्, इत्यादि॥ ४८॥

ऋतोऽञ्॥ ४९॥

ऋतः —५।१। अञ् —१।१। ठकोऽपवादः। षष्ठीसमर्थाद् ऋकारान्तात् प्रातिपदिकाद् धर्म्यमित्यर्थेऽञ् प्रत्ययो भवति। होतुर्धर्म्यम्=हौत्रम्। पौत्रम्। दौहित्रम्। स्वास्त्रम्।

वा०—नृनराभ्यामञ्वचनम्॥ १॥

नृशब्दात् सूत्रेणैवाञि सिद्धे वार्त्तिके पुनर्ग्रहणं दृष्टान्तार्थम्। यथा नृशब्दाद् अञ् भवति, एवं नरशब्दादपि यथा स्यात्। यथा नुर्धर्म्या नारी, एवं नरस्य-अपि नारी॥ १॥

वा०—विशसितुरिड्लोपश्च॥ २॥

---

* अविक्षिप्तदृष्टिर्यो दृष्टिपूतं न्यसेत् पादं स भिक्षुः कौक्कुटिक उच्यते। कुक्कुटीशब्देन कुक्कुटीपातो गृह्यते। —अनुवादकः

§ धर्मशब्दात् 'धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते' (४।४।९२) सूत्रेण यत्। —सम्पादकः

४।४।५०॥

विशसितृशब्दादञ् प्रत्ययस्तस्मिन्निड्लोपश्च भवति। विशसितुर्धर्म्यं वैशस्त्रम्॥ २॥

वा०—विभाजयितुर्णिलोपश्च॥ ३॥

विभाजयितृप्रातिपदिकाद् ञ्प्रत्ययस्तस्मिन् णिलोपश्च भवति। विभाजयितुर्धर्म्यम्=वैभाजित्रम्॥ ३॥ ४९॥

भाषार्थ—पूर्वसूत्र से प्राप्त 'ठक्' प्रत्यय का अपवाद है। षष्ठीसमर्थ ऋकारान्त प्रातिपदिकों से धर्म्य=धर्म से अविरुद्ध न्याय्य अर्थ में 'अञ्' प्रत्यय होता है। जैसे—होतुर्धर्म्यं हौत्रम्। पौत्रम्। दौहित्रम्। स्वास्त्रम्, इत्यादि।

वा०—नृनराभ्यामञ्वचनम्॥ १॥

'नृ' शब्द से सूत्र से ही अञ् प्रत्यय प्राप्त है, फिर वार्त्तिक से विधान दृष्टान्त के लिये किया है। जैसे—नृ शब्द से धर्म्य अर्थ में 'अञ्' होता है, वैसे नर शब्द से भी होवे। जैसे—नुर्धर्म्या नारी, वैसे ही नरस्यापि नारी॥ १॥

वा०—विशसितुरिड् लोपश्च॥ २॥

'विशसितृ' शब्द से धर्म्य अर्थ में 'अञ्' प्रत्यय हो और उसके परे होने पर इडागम का लोप हो जावे। जैसे—विशसितुर्धर्म्यम्=वैशस्त्रम्॥ २॥

वा०—विभाजयितुर्णिलोपश्च॥ ३॥

'विभाजयितृ' शब्द से धर्म्य अर्थ में 'अञ्' प्रत्यय हो और उसके संयोग से 'णि' का लोप हो जावे। जैसे—विभाजयितुर्धर्म्यं वैभाजित्रम्॥ ३॥ ४९॥

अवक्रयः॥ ५०॥

अवक्रयः—१।१। प्रत्ययार्थो निर्दिश्यते। अवपूर्वात् क्रीधातोः कर्त्तृभिन्ने कारके भावे वाऽच् प्रत्ययः। षष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकाद् अवक्रय इत्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति। गोशालाया अवक्रयो गौशालिकः। खारशालिकः॥ ५०॥

भाषार्थ—सूत्र में प्रत्यय के अर्थ का निर्देश किया है। 'अवक्रय' शब्द में अव पूर्वक क्रीञ् धातु से कर्त्ता से भिन्न कारक अथवा भाव में अच् प्रत्यय है। षष्ठी समर्थ प्रातिपदिकों से अवक्रय=द्रव्य विनिमय=खरीदने और बेचने अर्थ में 'ठक्' प्रत्यय होता है। जैसे—गोशालाया अवक्रयः=गौशालिकः। खारशालिकः, इत्यादि॥ ५०॥

तदस्य पण्यम्॥ ५१॥

तत्—१।१। अस्य—६।१। पण्यम्—१।१। पण्यसमानाधिकरणात् प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकादस्येति षष्ठ्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति। शाष्कुली पण्यमस्य शाष्कुलिकः। मोदकाः पण्यमस्य मौदकिकः। औषधिकः॥ ५१॥

भाषार्थ—प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से षष्ठ्यर्थ में 'ठक्' प्रत्यय होता है, यदि जो प्रथमासमर्थ है, वह पण्य=विक्रय के लिये हो। जैसे—शष्कुली पण्यमस्य शाष्कुलिकः। मोदकाः पण्यमस्य मौदकिकः। औषधिकः, इत्यादि॥ ५१॥

लवणाट् ठञ्॥५२॥

लवणात् —५।१।ठञ् —१।१।पूर्वेण ठक् प्राप्तस्तस्यापवादः। पण्यसमानाधिकरणात् प्रथमासमर्थाल्लवणप्रातिपदिकादस्येति षष्ठ्यर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति। ठक्ठञोः स्वरभेदः। लवणं पण्यमस्य लावणिकः॥५२॥

भाषार्थ—पूर्वसूत्र से 'ठक्' प्रत्यय प्राप्त था, यह 'ठञ्' उसका अपवाद है। ठक् और ठञ् प्रत्ययों में स्वर का ही भेद है। प्रथमा समर्थ लवण प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में 'ठञ्' प्रत्यय होता है, जो प्रथमासमर्थ लवण है, वह पण्य होना चाहिये। जैसे—लवणं पण्यमस्य लावणिकः॥५२॥

किशरादिभ्यः ष्ठन्॥५३॥

किशरादिभ्यः —५।३।ष्ठन् —१।१।प्रथमासमर्थेभ्यः पण्यसमानाधिकरणेभ्यः किशरादिप्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थे ष्ठन् प्रत्ययो भवति। किशरादयः शब्दा गन्धविशेषवाचकाः। किशराः पण्यमस्य किशरिकः। किशरिकी। नरदिकः। नरदिकी। षित्करणं ङीषर्थम्।

अथ किशरादिः—किशर। नरद। नलद। स्थागल। तगर। गुग्गुल। उशीर। हरिद्रा। हरिद्रायणी। इति किशरादिगणः॥५३॥

भाषार्थ—प्रथमासमर्थ गणपठित किशर आदि प्रातिपदिकों से षष्ठ्यर्थ में 'ष्ठन्' प्रत्यय होता है, जो प्रथमासमर्थ किशरादि हैं, वे पण्य होने चाहिएँ। किशरादि शब्द गन्धविशेष के वाचक हैं। प्रत्यय का षित्करण ङीष् के लिये है। जैसे—किशराः पण्यमस्य किशरिकः। किशरिकी। नरदिकः। नरदिकी, इत्यादि॥५३॥

शलालुनोऽन्यतरस्याम्॥५४॥

ष्ठन्नित्यनुवर्त्तते। शलालुनः —५।१।अन्यतरस्याम्[अ०]। सामान्येनाधिकाराट् ठक् प्राप्तः ष्ठन् विकल्प्यते। अतोऽप्राप्तविभाषेयम्। शलालुशब्दो गन्धविशेषवाची। प्रथमासमर्थात् पण्यसमानाधिकरणाच् छलालुप्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे विकल्पेन ष्ठन् प्रत्ययो भवति पक्षे ठक्। शलालुपण्यमस्यास्या वा शलालुकः। शलालुकी। शालालुकः। शालालुकी॥५४॥

भाषार्थ—यहाँ ष्ठन् प्रत्यय की अनुवृत्ति है। सामान्याधिकार से 'ठक्' प्रत्यय प्राप्त था इससे 'ष्ठन्' प्रत्यय का विकल्प किया गया है। इसलिये यह अप्राप्तविभाषा है। शलालु शब्द गन्ध विशेष का वाचक है। प्रथमासमर्थ शलालु प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में विकल्प से ष्ठन् प्रत्यय होता है, पक्ष में ठक्। यदि वह प्रथमासमर्थ शलालु पण्य हो। जैसे—शलालु पण्यमस्य, अस्या वा शलालुकः। शलालुकी। शालालुकः। शालालुकी॥५४॥

शिल्पम्॥५५॥

पण्यमिति निवृत्तम्। तदस्येत्यनुवर्त्तते। शिल्पम् —१।१। शिल्पशब्दः क्रियायाः कौशल्ये वर्त्तते। शिल्पसमानाधिकरणात् प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाट् ठक् प्रत्ययो भवति, अस्येति षष्ठ्यर्थे। मृदङ्गस्य वादनं मृदङ्गवादनम्।

अत्र महाभाष्यप्रामाण्यादुत्तरपद लोपो भवति। शिल्पमिव शिल्पम्। इव शब्दो लुप्यते। मृदङ्गे मुख्यं शिल्पं कुम्भकारस्य*, तेन मृदङ्गवादयितोपमीयते। कुतः मार्दङ्गिक इति शब्देन लोके मृदङ्गवादयितुरभिधानात्। अन्यथा मार्दङ्गिकः कुम्भकारः स्यात्। मृदङ्गवादनं शिल्पमस्य मार्दङ्गिकः। एवम्—मौरजिकः। पाणविकः। पैठरिकः॥५५॥

भाषार्थ—यहाँ 'पण्यम्' पद की निवृत्ति तथा 'तद् अस्य' पदों की अनुवृत्ति है। प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में ठक् प्रत्यय होता है। जो प्रथम समर्थ हो वह शिल्प होना चाहिये। मृदङ्गादि के प्रयोग में दो प्रकार की क्रिया (शिल्प) होती है। एक मृदङ्ग के बनाने वा मढने में कुशलता, दूसरी उसे बजाने में। इस सूत्र से बनाने रूप शिल्प में प्रत्यय न हो, एतदर्थ महाभाष्य में उत्तरपद का लोप मानकर 'शिल्पमिव शिल्पम्' समाधान किया है। शिल्पकर्म मुख्यरूप से मृदङ्ग के बनाने में है, उसी की भांति यहाँ मृदङ्ग के बजानेवाले के वाच्य में प्रत्यय अभीष्ट है। जैसे—मृदङ्गवादनं शिल्पमस्य मार्दङ्गिकः। मौरजिकः। पाणविकः। पैटरिकः। इत्यादि॥५५॥

मड्डुकझर्झरादणन्यतरस्याम्॥५६॥

मड्डुक-झर्झरात् —५।१। अण् —१।१। अन्यतरस्याम् [अ०]। अप्राप्तविभाषेयम्। ठकि प्राप्तेऽण् विकल्प्यते। शिल्पसमानाधिकरणाभ्यां प्रथमासमर्थाभ्यां मड्डुक-झर्झरप्रातिपदिकाभ्यामस्येति षष्ठ्यर्थे विकल्पेनाण् प्रत्ययो भवति। पक्षे ठक्। अत्रापि मड्डुक-झर्झरयोर्वादयितोपमीयते। मड्डुकवादनं शिल्पमस्य माड्डुकः। माड्डुकिकः। झर्झरवादनं शिल्पमस्य झार्झरः। झार्झरिकः॥५६॥

भाषार्थ—यहाँ 'ठक्' प्रत्यय की प्राप्ति में 'अण्' का विकल्प किया गया है, अतः अप्राप्तविभाषा है। प्रथमासमर्थ मड्डुक और झर्झर प्रातिपदिकों से षष्ठ्यर्थ में विकल्प से 'अण्' प्रत्यय होता है पक्ष में 'ठक्'। जो प्रथम समर्थ हैं, वे शिल्प समानाधिकरण हों। यहाँ भी पूर्वसूत्र की भाँति मड्डुक और झर्झर के बनानेवाले के समान वादयिता=बजानेवाले की कारीगरी ही प्रत्ययार्थ है। जैसे—मड्डुक वादनं शिल्पमस्य माड्डुकः। माड्डुकिकः। झर्झरवादनं शिल्पमस्य झार्झरः। झार्झरिकः॥५६॥

प्रहरणम्॥५७॥

शिल्पमिति निवृत्तम्। तदस्येति वर्त्तते। प्रहरणम् —१।१। प्रहरण-समानाधिकरणात् प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति। कौक्षेयकः प्रहरणमस्य कौक्षेयकिकः। असिः प्रहरणमस्य,आसिकः। दाण्डिकः॥५७॥

---

* मृदङ्गादिषु द्विविधा क्रिया अभ्याहननलक्षणा निष्पादनलक्षणा च। तत्र निष्पादनलक्षणायां प्रत्ययो मा भूदिति कृतोऽत्रोत्तरपदलोपः। अभ्यासपूर्वकं क्रियासु कौशलम् शिल्पम्।

—अनुवादकः

भाषार्थ—इस सूत्र में 'शिल्पम्' पद की निवृत्ति तथा 'तद् अस्य' पदों की अनुवृत्ति है। प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से षष्ठ्यर्थ में ठक् प्रत्यय होता है। जो प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक है, वह प्रहरण होना चाहिये। जैसे—कौक्षेयकः प्रहरणमस्य कौक्षेयकिकः। असिः प्रहरणमस्य आसिकः। दाण्डिकः॥५७॥

परश्वधाद् ठञ् च॥५८॥

प्रहरणमित्यनुवर्त्तते। परश्वधात् —५।१।ठञ् —१।१।च – [अ.प.] प्रहरणसमानाधिकरणात् प्रथमासमर्थात् परश्वधप्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति। ठक्-ठञोः स्वरभेदः। परश्वधः शस्त्रविशेषः प्रहरणमस्य पारश्वधिकः॥५८॥

भाषार्थ—पूर्वसूत्र से 'प्रहरणम्' की अनुवृत्ति है। प्रथमासमर्थ प्रहरण समानाधिकरणवाले परश्वध प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है। ठक् और ठञ् प्रत्ययों में स्वर का ही भेद होता है। जैसे—परश्वधः=शस्त्रविशेषः प्रहरणमस्य पारश्वधिकः॥५८॥

शक्तियष्ट्योरीकक्॥५९॥

शक्ति-यष्ट्योः —६।२। ईकक् —१।१। अर्थाद् विभक्तेर्विपरिणाम इति पंचमी विपरिणम्यते। प्रहरणसमानाधिकरणाभ्यां प्रथमासमर्थाभ्यां शक्ति-यष्टिप्रातिपदिकाभ्याम्-अस्येति षष्ठ्यर्थे ईकक् प्रत्ययो भवति। शक्तिः प्रहरणमस्य शाक्तीकः। याष्टीकः॥५९॥

भाषार्थ—अर्थ से विभक्ति का विपरिणाम=परिवर्त्तन हो जाता है, इस नियम से प्रहरणम् शब्द में सूत्र में पंचमी करके अर्थ किया गया है। प्रथमासमर्थ प्रहरण समानाधिकरणवाले शक्ति तथा यष्टि प्रातिपदिकों से षष्ठ्यर्थ में 'ईकक्' प्रत्यय होता है। जैसे—शक्तिः प्रहरणमस्य शाक्तीकः। याष्टीकः॥५९॥

अस्तिनास्तिदिष्टं मतिः॥६०॥

अस्ति नास्ति दिष्टम् —१।१। मतिः —१।१। प्रहरणमिति निवृत्तम्। तदस्ये-त्यनुवर्त्तते। प्रथमासमर्थेभ्यो मतिसमानाधिकरणेभ्योऽस्ति नास्ति दिष्ट इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति। अस्तीति सत्तामात्रं नैव गृह्यते, किन्तु यो वेदादेः सत्यशास्त्राद् अविरुद्धः। तेषु सर्वथा श्रद्धालुः। इयमत्र शंका जागर्त्ति—कश्चिद्विशेषोऽत्र नोक्तः। अस्ति मतिरस्येति चौरेऽपि प्राप्नोति। तस्मिन्नपि मतिर्वर्त्तते एव। तस्मादिति लोपोऽत्र द्रष्टव्यः। अस्तीत्यस्यमतिः स आस्तिकः। सापेक्षत्वात् प्रेत्यभावादिकमस्तीत्याक्षिप्यते। तद्विपरीतो नास्तिकः। दिष्टं प्रारब्धमस्तीत्यस्य मतिः स दैष्टिकः। अन्यथा नास्तिक इत्यस्य जडपदार्थे प्रवृत्तिः स्यात्॥६०॥

भाषार्थ—इस सूत्र में 'प्रहरणम्' पद की निवृत्ति तथा 'तदस्य' की अनुवृत्ति है। प्रथमासमर्थ मति समानाधिकरणवाले अस्ति, नास्ति, दिष्ट प्रातिपदिकों से षष्ठ्यर्थ में 'ठक्' प्रत्यय होता है। यहाँ 'अस्ति' पद से सत्तामात्र का ग्रहण नहीं है, किन्तु

जो वेदादि सत्य शास्त्रों की पुनर्जन्मादि मान्यताओं पर श्रद्धा रखता है, ऐसी बुद्धि रखनेवाला आस्तिक और इसके विरुद्ध नास्तिक समझा जाये। इस विषय में यहाँ यह शंका उत्पन्न होती है कि सूत्र में कोई विशेष बात न कहने से जिसकी बुद्धि हो, ऐसा निर्वचन करने से चोरादि को भी आस्तिक मानना पड़ेगा। क्योंकि मति उनमें भी है। इसका समाधान महाभाय के अनुसार यह है कि यहाँ 'इति' शब्द का लोप समझना चाहिये। 'अस्तीत्यस्य मतिः स आस्तिकः' यहाँ सापेक्ष होने से प्रेत्य भाव=पुनर्जन्म, ईश्वरादि की सत्ता का आक्षेप कर लिया जायेगा। अन्यथा 'नास्तिक' शब्द का बुद्धिरहित जड़पदार्थों के लिये भी प्रयोग होना चाहिये। जैसे— अस्तीत्यस्य मतिः, आस्तिकः। नास्तीत्यस्य, नास्तिकः। दिष्टं=प्रारब्धमस्तीत्यस्य मतिः स दैष्टिकः॥ ६०॥

शीलम्॥ ६१॥

तदस्येत्यनुवर्त्तते। शीलम् —१।१। प्रथमासमर्थात् शीलसमानाधिकरणात् प्रातिपदिकादस्येति षष्ठ्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति। अत्रापि लौकिकप्रयोगेणा-पूपादेर्भक्षयिताऽभिधीयते। अतो भक्षणशब्दस्याक्षेपोऽत्र द्रष्टव्यः। अपूपभक्षणं शीलमस्येत्यापूपिकः। शाष्कुलिकः। दौग्धिकः। मौदकिकः॥ ६१॥

भाषार्थ—यहाँ 'तद् अस्य' पदों की अनुवृत्ति है। प्रथमासमर्थ शील समाना-धिकरणवाले प्रातिपदिकों से षष्ठ्यर्थ में ठक् प्रत्यय होता है। यहाँ भी 'शिल्पम्' सूत्र की भाँति लौकिक प्रयोग के अनुसार उत्तरपद का लोप समझना चाहिये। जिससे अपूप=पूडा आदि का खानेवाला 'आपूपिकः' कहलाये, न कि अपूपादि का बनानेवाला। अतः भक्षण शब्द का यहाँ आक्षेप किया गया है। जैसे— अपूपभक्षणं शीलमस्येत्यापूपिकः। शाष्कुलिकः। दौग्धिकः। मौदकिकः॥ ६१॥

छत्रादिभ्यो णः॥ ६२॥

शीलमित्यनुवर्त्तते। छत्रादिभ्यः —५।३। णः —१।१। प्रथमासमर्थेभ्यः शीलसमानाधिकरणेभ्यश्छत्रादिप्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थे णः प्रत्ययो भवति। आतपादिनिवारणाय यद् धार्यते तच्छत्रमुच्यते।

भा०—किं यस्य छत्रधारणं शीलं स छात्रः। किंचातः। राजपुरुषे प्राप्नोति। एवं तर्ह्युत्तरपदलोपो द्रष्टव्यः। छत्रमिवच्छत्रम्। गुरुश्छत्रम्, गुरुणा शिष्यश्छत्रवच्छाद्यः। शिष्येण गुरुश्छत्रवत् परिपाल्यः॥

छात्रशब्देन लोके शिष्योऽभिधीयते। अतोऽयं यत्नः क्रियते। उपरिस्थमहा-भाष्यवचनेन स्पष्टं गम्यते-छत्रेण गुरुरुपमेय इति। अज्ञानम्=अन्धकारं शिष्यस्य छादयति निवारयतीति छत्रं गुरुः। यथा स्वरक्षकं छत्रं यत्नेन रक्षन्ति, एवं गुरुसेवनशीलः शिष्यश्छात्र इत्यभिधीयते। यथ च छत्रेणातपादिजातानि, दुःखानि निवर्त्तन्ते, एवं गुरुणा मूढत्वादिजातानि दुःखानि निवार्य्यन्ते। छत्रं गुरुस्तत् सेवनं शीलमस्य स छात्रः। बुभुक्षा शीलमस्य बौभुक्षः। कन्या चेच्छात्रा, बौभुक्षा।

अत्राजयादित्यभट्टोजिदीक्षितादयो वदन्ति। गुरुकार्येष्ववहितस्तच्छिद्रावरणप्रवृत्तश्छत्रशीलः शिष्यश्छात्र इति। तत्र जयादित्यादीनामयमभिप्रायः— यथा छत्रमावरकं भवत्येवं गुरोर्यानि कानिचिदयशस्कराणि पापकर्माणि तान्यावृणोत्यतश्छत्रशीलः शिष्यश्छात्र इत्युच्यते। तदेतद् बुद्धिमद्भिः शिष्टैर्वैयाकरणैर्विचारणीयं महाभाष्यादेतेषां कियान् विरोध आयाति। एतत् सूत्रव्याख्यानेनैतदनुमीयते जयादित्यादयो महापापात्मानो बभूवुः। सत्यं पापप्रवृत्तीनां कुतो लज्जा? अथ छत्रादिगणः—छत्र। शिक्षा। भिक्षा। पुरोह। स्था। बुभुक्षा। चुरा। तितिक्षा। उपस्थान। ऋषि। कर्मन्। विश्वधा। तपस्। सत्य। अनृत। शिविका। शिविखा। भक्षा। उदस्थान। पुरोडा। विक्षा। उक्षा। मन्द्र। इति च्छत्रादयः॥ ६२॥

भाषार्थ—पूर्वसूत्र से यहाँ 'शीलम्' पद की अनुवृत्ति है। प्रथमा समर्थ शील समानाधिकरण छत्र आदि गण पठित प्रातिपदिकों से षष्ठ्यर्थ में 'ण्' प्रत्यय होता है। आतप=धूपादि के निवारण के लिए जिसे धारण किया जाता है, वह छत्र (छाता) कहाता है। लोक में छात्र शब्द विद्यार्थी का वाची है। महाभाष्य में सन्देह निवृत्ति के लिये ऐसा व्याख्यान किया है—क्या जिस का छत्र धारण करने का शील है, उस पुरुष को छात्र कहते हैं? नहीं, ऐसी व्याख्या करने से राजपुरुष के लिये भी छात्र का प्रयोग प्राप्त होगा। इसलिये यहाँ उत्तरपद का लोप समझना चाहिये—छत्रमिव=छत्रम्। अर्थात् यहाँ छात्र शब्द से गुरु उपमेय है। गुरु शिष्य के अज्ञानादि दोषों के निवारण करने से छत्र है, उसे शिष्य को छत्र की भाँति आच्छादन=दोषों से बचाना चाहिये और शिष्य को गुरु की छत्र की भाँति रक्षा करनी चाहिये। जैसे अपनी धूपादि से बचाकर रक्षा करनेवाले छत्र की लोग प्रयत्न करके रक्षा करते हैं, इसी प्रकार छत्ररूप गुरु की सेवा के द्वारा रक्षा करनेवाला शिष्य छात्र कहलाता है। और जैसे छत्र से धूप, वर्षा से होनेवाले दुःखों की निवृत्ति होती है, इसी प्रकार गुरु के द्वारा शिष्य के मूर्खत्वादि दुःखों की निवृत्ति की जाती है।

जैसे—छत्रं गुरुस्तत्सेवनं शीलमस्य स छात्रः। बुभुक्षा शीलमस्य बौभुक्षः। कन्या चेच्छात्रा। बौभुक्षा, इत्यादि॥

इस सूत्र पर जयादित्य तथा भट्टोजिदीक्षितादि कहते हैं—जो गुरु के बुरे कर्मों के आच्छादन करने के स्वभाववाला शिष्य है, वह छात्र कहाता है। यहाँ जयादित्यादि का आशय यह है कि जैसे छत्र=छाता ढकनेवाला होता है वैसे ही गुरु के अपयश=निन्दा करानेवाले दुष्कर्मों को जो ढक देता है वह छत्र जैसे स्वभाववाला शिष्य छात्र कहलाता है। इस व्याख्यान पर बुद्धिमान् शिष्ट वैय्याकरण विचार करें कि इस व्याख्या का महाभाष्य से कितना विरोध आता है। और इस सूत्र की व्याख्या से यह अनुमान होता है कि ये जयादित्य, भट्टोजिदीक्षितादि महापापी थे, इसीलिये ऐसी व्याख्या महाभाष्य के विरुद्ध उन्होंने की। सत्य ही कहा है कि पापी पुरुषों को लज्जा कहाँ?॥ ६२॥

कर्माध्ययने वृत्तम्॥ ६३॥

तदस्येत्यनुवर्त्तते। कर्म —१।१। अध्ययने ७।१। वृत्तम् १।१। कर्मशब्देनात्र शब्दस्य स्वं रूपं नैव गृह्यते, किन्तु कर्त्तुरीप्सितं कारकं गृह्यते। वृत्तकर्मसमानाधिकरणात् प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति। वृत्तं वार्त्ता प्रश्नसंख्या गृह्यते। एकमन्यदध्ययनवृत्तमस्य ऐकान्यिकः। द्वैयान्यिकः। एकस्यां परीक्षायां बहवः प्रश्ना भवन्ति, तत्राध्येतैकं द्वौ त्रीन् वाऽन्यप्रकारेणायाथातथ्येन करोति स उच्यते-ऐकान्यिकः। द्वैयान्यिकः। त्रैयान्यिको वेति॥ ६३॥

भाषार्थ—यहाँ 'तदस्य' पद की अनुवृत्ति है। इस सूत्र में कर्मशब्द से स्वरूप का ग्रहण नहीं है, अपितु कर्त्ता को ईप्सित कारक का ग्रहण होता है। अध्ययनकाल में वृत्त=होनेवाले कर्म समानाधिकरण प्रातिपदिक से 'अस्येति' षष्ठ्यर्थ में 'ठक्' प्रत्यय होता है। 'वृत्त' शब्द से अध्ययकाल में होनेवाली वार्त्ता अथवा प्रश्नसंख्या का ग्रहण होता है। जैसे—एकमन्यद् अध्ययने कर्मवृत्तमस्य=ऐकान्यिकः। द्वैयान्यिकः। किसी परीक्षा में बहुत से प्रश्न होते हैं, उनमें से जो अध्येता=परीक्षार्थी एक, दो अथवा तीन प्रश्नों को ठीक रूप से नहीं कर सके, उस क्रम से 'ऐकान्यिकः, द्वैयान्यिकः, त्रैयान्यिकः' कहा जाता है॥ ६३॥

बह्वच्पूर्वपदाट् ठच्॥ ६४॥

पूर्वसूत्रं सर्वमनुवर्त्तते। बह्वच्पूर्वपदात् —५।१। ठच् —१।१। पूर्वेण ठक् प्राप्तः स बाध्यते। [अध्ययने वृत्त कर्म समानाधिकरणात् प्रथमासमर्थाद् बह्वच्पूर्वपदात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे ठच् प्रत्ययो भवति।] एकादशान्यन्यान्यध्ययने वृत्तानि कर्माण्यस्यैकादशान्यिकः। द्वादशान्यिकः। उदात्ते कर्त्तव्येऽनुदात्तं करोति, ह्रस्वे वा वक्तव्ये दीर्घं ब्रवीत्येवमेकादश द्वादश वा यस्य दोषा भवन्ति स उच्यते—ऐकादशान्यिकः। द्वादशान्यिकः॥ ६४॥

भाषार्थ—यहाँ 'समस्त पूर्वसूत्र की अनुवृत्ति है। पूर्वसूत्र से ठक् प्रत्यय प्राप्त था, उसका 'ठच्' प्रत्यय बाधक है। अध्ययन काल में वृत्त=होनेवाले कर्म समानाधिकरण प्रथमा समर्थ बह्वच् पूर्वपद में है जिसके, उस प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में 'ठच्' प्रत्यय होता है। जैसे—एकादशान्यन्यान्यध्ययने वृत्तानि कर्माण्यस्येति= ऐकादशान्यिकः। द्वादशान्यिकः। जो अध्ययन काल में उदात्त के स्थान में अनुदात्त अथवा ह्रस्व के स्थान में दीर्घ का उच्चारण करता है, इस प्रकार एकादश या द्वादश वार दोष=अपपाठ करनेवाले पाठक को 'एकादशान्यिकः' 'द्वादशान्यिकः' कहा जाता है॥ ६४॥

हितं भक्षाः॥ ६५॥

हितम् —१।१। भक्षाः —१।३। भक्षा इति बहुवचननिर्देशात् तद्वाचिनो गृह्यन्ते। हितयोगे चतुर्थी निर्दिश्यते, तत्रास्येत्यनुवृत्तौ कथं निर्वाहः स्यात्? महाभाष्यप्रामाण्यात् परस्मिन् सूत्रे तदस्मा इति पदं विभज्यास्मिन् सूत्रे

योजनीयम्। हितं भक्षास्तदस्मा इति। तत् परत्राप्यनुवर्तिष्यते। अथवाऽस्येत्यनुवर्त्तते, तत्रार्थाद् विभक्तेर्विपरिणाम इति चतुर्थी विपरिणामयितव्या। हितसमानाधिकरणात् प्रथमासमर्थाद् भक्ष्यवाचिनः प्रातिपदिकादस्मा इति चतुर्थ्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति। मोदका हितमस्मै मौदकिकः। शाष्कुलिकः॥ ६५॥

भाषार्थ—यहाँ सूत्र में 'भक्षाः' पद में बहुवचन निर्देश से भक्षवाचियों का ग्रहण होता है, [स्वरूपविधि का नहीं]। 'हित' शब्द के योग में चतुर्थी विभक्ति का विधान है। और यहाँ पूर्वसूत्र से अस्य=षष्ठ्यर्थ की अनुवृत्ति होने से संगति कैसे हो। (एवं वक्ष्यामि-'हितं भक्षास्तदस्मै' ततो 'दीयते नियुक्तम्') इस महाभाष्य के प्रमाण से अग्रिम सूत्र का विभाग करके 'तदस्मै' पदों को इस सूत्र में लगाना चाहिये। इससे 'हितं भक्षास्तदस्मै' सूत्र बनने से कार्यसिद्धि हो जायेगी और 'तदस्मै' पदों की अगले सूत्रार्थ में भी अनुवृत्ति हो जायेगी। अथवा दूसरा समाधान यह भी है—'अर्थाद् विभक्तेर्विपरिणामः' इस न्याय से अनुवृत्त षष्ठ्यर्थ चतुर्थ्यर्थ में परिवर्त्तित हो जायेगा। हितसमानाधिकरण प्रथमा समर्थ भक्ष्यवाची प्रातिपदिकों से अस्मै=चतुर्थ्यर्थ में ठक् प्रत्यय होता है। जैसे—मोदका हितमस्मै मौदकिकः। शाष्कुलिकः, इत्यादि॥ ६५॥

तदस्मै दीयते नियुक्तम्॥ ६६॥

तत्—१।१। अस्मै—४।१। दीयते-[क्रि०प०]। नियुक्तम्—१।१। नियमेनाव्यभिचारेण दीयते नियुक्तं दीयते। प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकान्नियुक्तमस्मै दीयत इत्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति। अग्रासनमस्मै दीयते—आग्रासनिकः। आग्रभोजनिकः। अपूपा अस्मै दीयन्त इत्यापूपिकः। मौदकिकः॥ ६६॥

भाषार्थ—नियमपूर्वक निरन्तर देने को 'नियुक्तम्' कहते हैं। प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से चतुर्थ्यर्थ में 'ठक्' प्रत्यय होता है, जो प्रथमा समर्थ है, वह यदि नियुक्तं दीयते=नियमपूर्वक दिया जाये। जैसे—अग्रासनमस्मै दीयते=आग्रासनिकः। आग्रभोजनिकः। अपूपा अस्मै दीयन्त इत्यापूपिकः। मौदकिकः, इत्यादि॥ ६६॥

श्राणामांसौदनाट् टिठन्॥ ६७॥

पूर्वसूत्रेण ठक् प्राप्तः स बाध्यते। श्राणामांसौदनात्—५।१। टिठन्—१।१। [प्रथमासमर्थाभ्यां श्राणा-मांसौदनप्रातिपदिकाभ्यां नियुक्तमस्मै दीयत इत्यर्थे टिठन् प्रत्ययो भवति।] श्राणा नियुक्तमस्मै दीयते—श्राणिकः। मांसौदनिकः॥ ६७॥

भाषार्थ—पूर्वसूत्र से ठक् प्रत्यय प्राप्त है, उसका 'टिठन्' बाधक है। [प्रथमासमर्थ श्राणा और मांसौदन प्रातिपदिकों से 'नियुक्तमस्मै दीयते' अर्थ में 'टिठन्' प्रत्यय होता है।] जैसे—श्राणा नियुक्तमस्मै दीयते=श्राणिकः। मांसौदनिकः॥ ६७॥

भक्तादणन्यतरस्याम्॥ ६८॥ (अ०)

भक्तात्—५।१। अण्—१।१। अन्यतरस्याम्-[अ०प०]। अप्राप्त-

विभाषेयम्। अधिकाराद् ठकि प्राप्तेऽण्विकल्पः। प्रथमासमर्थाद् भक्त-प्रातिपदिकान् नियुक्तमस्मै दीयत इत्यर्थे विकल्पेनाण् प्रत्ययो भवति। पक्षे ठगेव। भक्तं नियुक्तमस्मै दीयते-भाक्तः। भाक्तिकः॥ ६८॥

भाषार्थ—यह अप्राप्तविभाषा है। अधिकार होनेसे ठक् प्रत्यय की प्राप्ति में अण् प्रत्यय का विकल्प किया है। प्रथमा समर्थ भक्त प्रातिपदिक से 'नियुक्तमस्मै दीयते'' अर्थ में विकल्प से 'अण्' प्रत्यय होता है। पक्ष में 'ठक्' ही होता है। जैसे—भक्तं नियुक्तमस्मै दीयते=भाक्तः। भाक्तिकः॥ ६८॥

तत्र नियुक्तः॥ ६९॥

तत्र –[अ०प०] नियुक्तः —१।१। नियुक्त इति प्रत्ययार्थो निर्दिश्यते। सप्तमीसमर्थात् प्रातिपदिकान् नियुक्त इत्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति। पाकशालायां नियुक्तः पाकशालिकः। शुल्कशालायां नियुक्तः शौल्कशालिकः। हाटकिकः। आपणिकः॥ ६९॥

भाषार्थ—सूत्र में 'नियुक्त' शब्द से प्रत्ययार्थ का निर्देश है। सप्तमी समर्थ प्रातिपदिकों से नियुक्त अर्थ में 'ठक्' प्रत्यय होता है। जैसे—पाकशालायां नियुक्तः=पाकशालिकः। शुल्कशालायां नियुक्तः=शौल्कशालिकः। हाटकिक;। आपणिकः। [पूर्व सूत्र से अनुवृत्त 'नियुक्तम्' होने पर भी पुनः 'नियुक्तम्' का पाठ अर्थभेद के कारण है। ऊपर 'नियोगेन युक्तं नियुक्तम्' और यहाँ 'नियुक्तोऽधिकृतो व्यापारितः' का ग्रहण है]॥ ६९॥

अगारान्ताट् ठन्॥ ७०॥

अगारान्तात् —५।१ ठन् —१।१। पूर्वसूत्रं सर्वमनुवर्त्तते। ठकोऽपवादः। सप्तमीसमर्थात् [अगारान्तात्] प्रातिपदिकान् नियुक्तार्थे ठन् प्रत्यो भवति। पाकागारे नियुक्तः-पाकागारिकः। विक्रयागारिकः। अश्वागारिकः॥ ७०॥

भाषार्थ—यहाँ समस्त पूर्वसूत्र की अनुवृत्ति आती है। यह ठक् प्रत्यय का अपवाद सूत्र है। सप्तमीसमर्थ अगारान्त प्रातिपदिकों से नियुक्त अर्थ में 'ठन्' प्रत्यय होता है जैसे—पाकागारे नियुक्तः=पाकागारिकः। विक्रयागारिकः। अश्वागारिकः, इत्यादि॥ ७०॥

अध्यायिन्यदेशकालात्॥ ७१॥

तत्रेत्यनुवर्त्तते। नियुक्त इति निवृत्तम्। अध्यायिनि —७।१। अदेश-कालात्—५।१। अध्यायिनि अध्ययनशीले। अदेशकालादिति विरुद्धार्थे नञ्। यस्मिन् देशे काले चाध्ययनं प्रतिषिध्यते, तस्मात् सप्तमीसमर्थाद् देश-कालवाचिनः प्रातिपदिकादध्यायिन्यभिधेये ठक् प्रत्ययो भवति। अदेशात्तावत्-श्मशानेऽधीते-श्माशानिकः। शौद्रसांनिधिकः। अकालात्-अष्टम्यामधीते-आष्टमिकः। चातुर्दशिकः। पौर्णमासिकः॥ ७१॥

भाषार्थ—यहाँ 'तत्र' पद की अनुवृत्ति है और 'नियुक्त' पद निवृत्त हो गया है। 'अध्यायी' पद का अर्थ है—जिस देश=स्थान पर और काल में अध्ययन

का शास्त्रकारों निषेध किया है, उन देश व काल वाचक प्रातिपदिकों से अध्यायिनि= अध्ययनशील अर्थ में 'ठक्' प्रत्यय होता है। जैसे—अदेश से–श्मशानेऽधीते श्माशानिक:। शौद्रसांनिधिक:। अकाल से–अष्टम्यामधीते आष्टमिक:। चातुर्दशिक:, पौर्णमासिक:॥७१॥

कठिनान्तप्रस्तारसंस्थानेषु व्यवहरति॥७२॥

कठिनान्त-संस्थानेषु —७।३। व्यवहरति-[क्रि०प०]।सप्तमीसमर्थात् कठिनान्तात् प्रातिपदिकात् प्रस्तार-संस्थानाभ्यां च व्यवहरतीत्यस्य कर्त्तरि ठक् प्रत्ययो भवति। कुलकठिने व्यवहरति-कौलकठिनिक:। कौटुम्बकठिनिक:। प्रस्तारे व्यवहरति-प्रास्तारिक:। संस्थाने व्यवहरति-सांस्थानिक:॥७२॥

भाषार्थ—सप्तमीसमर्थ कठिनान्त, प्रस्तार और संस्थान प्रातिपदिकों से व्यवहार करना क्रिया के कर्त्तृवाच्य में ठक् प्रत्यय होता है। जैसे—कुलकठिने व्यवहरति= कौलकठिनिक:। कौटुम्बकठिनिक:। प्रस्तारे व्यवहरति प्रास्तारिक:। संस्थाने व्यवहरति सांस्थानिक:॥७२॥

निकटे वसति॥७३॥

निकटे —७।१।वसति। -[क्रि०प०]।सप्तमीसमर्थान् निकटप्रातिपदिकाद् वसतीत्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति। निकटे वसति नैकटिक:॥७३॥

भाषार्थ—सप्तमीसमर्थ निकट प्रातिपदिक से वसति=वसने अर्थवाली क्रिया के कर्त्तृवाच्य में 'ठक्' प्रत्यय होता है। जैसे—निकटे वसति नैकटिक:॥७३॥

आवसथात् ष्ठल्॥७४॥

आवसथात् —५।१ ष्ठल् —१।१। वसतीत्यनुवर्त्तते। सप्तमीसमर्थाद् आवसथप्रातिपदिकाद् वसतीत्यर्थे ष्ठल् प्रत्ययो भवति। आवसथे वसति-आवसथिक:। आवसथिकी। षित्करणं ङीषर्थम्। लकार: स्वरार्थ:॥७४॥

भाषार्थ—यहाँ पूर्वसूत्र से 'वसति' पद की अनुवृत्ति है सप्तमी समर्थ आवसथ प्रातिपदिक से वसने अर्थवाली क्रिया के कर्त्तृवाच्य में 'ष्ठल्' प्रत्यय होता है। जैसे—आवसथे वसति=आवसथिक:। आवसथिकी। प्रत्ययमें षित्करण 'ङीष्' प्रत्यय के लिये है और लकार स्वरार्थ है॥७४॥

प्राग्घिताद् यत्॥७५॥

प्राक्-[अ०प०]। हितात् —५।१।यत् —१।१।वक्ष्यमाणसूत्रे वहति-शब्द: पठ्यते। तस्मात्पूर्वं ठगधिकार: कृत: स इदानीं समाप्त:। तस्मिन् जीवत्येव द्वितीयो यदधिकार: स्थाप्यते। तस्मै हितमिति हिताधिकारात्पूर्वं पूर्वंयेऽर्था वक्ष्यन्ते, तेषु सामान्येन यत् प्रत्ययस्याधिकारो वेदितव्य:॥७५॥

भाषार्थ—इससे अगले सूत्र में 'वहति' शब्द का पाठ है, उससे पूर्व तक 'ठक्' प्रत्यय का अधिकार किया था, वह अब समाप्त हुआ। उसके जीवित रहते हुए ही दूसरे 'यत्' प्रत्यय का अधिकार किया गया है। [जैसे—राजा जब वृद्ध हो जाता है, तो वह जीते हुए ही पुत्र को गद्दी पर बैठा देता है।] यहाँ से प्रारम्भ

करके 'तस्मै हितम्' इस अधिकार सूत्र से पूर्व जो जो अर्थ कहेंगे, उन उन में समान्यरूप में यत् प्रत्यय का अधिकार समझना चाहिए॥७५॥

तद् वहति रथयुगप्रासङ्गम्॥७६॥

तत् —२।१ वहति। -[क्रि०प०] रथयुगप्रासङ्गम् —२।१। रथ, युग, प्रासङ्ग, इत्येतेभ्यो द्वितीयासमर्थेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो वहतीत्यर्थे यत् प्रत्ययो भवति। रथं वहति रथ्यः। युग्यः। प्रासङ्ग्यः। रथशब्दात्तस्येदमिति प्रकरणे 'यत्' विहितस्तत्र रथं वहति, रथस्य वोढेति समानमर्थाभिधानं प्रयोगश्चैक एव। पुनरुभयत्रकरणस्यैतत्प्रयोजनम्-यदा तदन्तविधिना द्विगुसंज्ञकाद् रथप्रातिपदिकात् प्रत्ययो विधास्यते, तदा रथस्य वोढेति सति प्रत्ययविधानस्य प्राग्दीव्यतीयत्वाद् 'द्विगोर्लुगनपत्य' इति लुक्। द्वयो रथयोर्वोढा द्विरथः। द्वौ रथौ वहतीति विग्रहे सति द्विरथ्यः। एवमर्थं पुनरुच्यते। एवं हलसीरप्रातिपदिकाभ्यां तत्र ठग्विहितोऽत्रापि तस्मिन्नपि रथवद् व्यवस्था विज्ञेया॥७६॥

भाषार्थ—द्वितीयासमर्थ रथ, युग और प्रासङ्ग प्रातिपदिकों से वहति=ले चलने अर्थवाली क्रिया के कर्त्तृवाच्य में 'यत्' प्रत्यय होता है। जैसे—रथं वहति=रथ्यः। युग्यः। प्रासङ्ग्यः।

रथ शब्द से 'तस्येदम्' प्रकरण में 'रथाद् यत्' (अ० ४।३।१२०) सम्बन्ध सामान्य में 'यत्' प्रत्यय का विधान किया है। जैसे—'रथं वहति, रथस्य वा वोढेति' इन दोनों में अर्थ की समानता और प्रयोग एक ही है। अर्थभेद कुछ भी नहीं है। फिर दोनों स्थानों पर प्रत्यय विधान का प्रयोजन यह है कि जब तदन्तविधि मानके द्विगुसंज्ञक 'रथ' प्रातिपदिक से प्रत्यय करेंगे, तब 'रथाद्यत्' (४।३।१२०) सूत्र से होनेवाला प्रत्यय प्राग्दीव्यतीय होने से 'द्विगोर्लुगनपत्ये' (अ० ४।१।८८) सूत्र से प्रत्यय का लुक् हो जाएगा। जैसे—द्वयो रथयोर्वोढा द्विरथः। और जब 'द्वौ रथौ वहति' ऐसा विग्रह करके प्रत्यय करेंगे, तब 'द्विरथ्यः' प्रयोग में प्रत्यय का लुक् नहीं होगा। इसीलिए यहाँ पुनरुक्ति की है। इसी प्रकार हल-सीर प्रातिपदिकों से भी दोनों स्थानों पर एक प्रत्यय 'ठक्' का ही विधान किया है उसमें भी रथ की भाँति लुक् व अलुक् की व्यवस्था समझनी चाहिए॥७६॥

धुरो यड्ढकौ॥७७॥

धुरः —५।१। यत्-ढकौ —१।२। द्वितीयासमर्थाद् धुर् इत्येतस्मात् प्रातिपदिकाद् वहतीत्यर्थे यत्-ढकौ प्रत्ययौ भवतः। धुरं वहति धुर्य्यः। धौरेयः॥७७॥

भाषार्थ—द्वितीया समर्थ 'धुर्' प्रातिपदिक से वहति=ले चलने अर्थवाली क्रिया के कर्त्तृवाच्य में यत् और ढक् प्रत्यय होते हैं। धुरं वहति=धुर्य्यः। धौरेयः॥७७॥

खः सर्वधुरात्॥७८॥

खः —१।१। सर्वधुरात् —५।१। धुरिति हलन्तात् समासान्तः।

पूर्वसूत्रेण तदन्तविधिना यत्-ढकौ प्राप्तावनेन बाध्येते। द्वितीयासमर्थात् सर्वधुरप्रातिपदिकाद् वहतीत्यर्थे खः प्रत्ययो भवति। सर्वधुरं वहति सर्वधुरीणः॥ ७८॥

भाषार्थ—सूत्रस्थ 'सर्वधुरात्' पद में 'ऋक् पू०' (अ० ५।४।७४) इस सूत्र से हलन्त 'धुर्' शब्द से समासान्त प्रत्यय है। पूर्वसूत्र से तदन्तविधि मानकर यत् और ढक् प्रत्यय प्राप्त हैं, उनका यह बाधक है। द्वितीया समर्थ 'सर्वधुर' प्रातिपदिक से वहति=ले चलने अर्थ में 'ख' प्रत्यय होता है। जैसे—सर्वधुरं वहति= सर्वधुरीणः॥ ७८॥

एकधुराल्लुक् च॥ ७९॥

ख इत्यनुवर्त्तते। एकधुरात् —५।१। लुक् —१।१। च —अ०प०। द्वितीयासमर्थाद् एकधुरप्रातिपदिकाद्वहतीत्यर्थे खः प्रत्ययो भवति, विहितस्य च प्रत्ययस्य लुक्। 'धुरो यड्ढकौ' इति तदन्तविधिना यड्-ढकौ विहितौ तयोरेव लुक्। एकधुरं वहति एकधुरीणः। लुकि एकधुरः॥ ७९॥

भाषार्थ—इस सूत्र से ख प्रत्यय की अनुवृत्ति है। द्वितीयासमर्थ 'एकधुर' प्रातिपदिक से वहति=ले चलने अर्थ में 'ख' प्रत्यय होता है और 'धुरो यत्-ढकौ' सूत्र से तदन्त विधि मानकर जो यत्-ढक् प्रत्ययों का विधान किया है, उनका लुक् हो जाता है। जैसे—एकधुरं वहति=एकधुरीणः। लुक् होने पर—एकधुरः॥ ७९॥

शकटादण्॥ ८०॥

शकटात् —५।१। अण् —१।१। द्वितीयासमर्थाच्छकटप्रातिपदिकाद् वहतीत्यर्थेऽण् प्रत्ययो भवति। यतोऽपवादः। शकटं वहति शाकटो वृषभः॥ ८०॥

भाषार्थ—द्वितीया समर्थ शकट प्रातिपदिक से वहति=ले चलने अर्थ में अण् प्रत्यय होता है। यह अण् प्रत्यय यत् प्रत्यय का अपवाद है। जैसे—शकटं वहति=शाकटो वृषभः॥ ८०॥

हलसीराट् ठक्॥ ८१॥

हलसीरात् —५।१। ठक् —१।१। द्वितीयासमर्थाभ्यां हलसीर-प्रातिपदिकाभ्यां वहतीत्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति। यत्प्राप्तः स बाध्यते। हलं वहति हालिकः। सैरिकः॥ ८१॥

भाषार्थ—द्वितीया समर्थ हल और सीर प्रातिपदिकों से वहति=ले चलने अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है। यत् प्रत्यय की प्राप्ति में ठक् बाधकरूप में विधान किया है। जैसे—हलं वहति=हालिकः। सैरिकः॥ ८१॥

संज्ञायां जन्याः॥ ८२॥

संज्ञायाम् —७।१। जन्याः —१।३। जनधातोरधिकरणकारक औणादिक इण् प्रत्ययः। तस्मात् 'कृदिकारादक्तिनः' इति स्त्रियां ङीष्। जायेते पुत्रकन्ये

अस्यां सा जनी वधूः। द्वितीयासमर्थाज्जनीप्रातिपदिकात् संज्ञायामभिधेयायां वहतीत्यर्थे यत् प्रत्ययो निपात्यते। जनीं वधूं वहन्ति जन्याः। विवाहसमये वधूमानेतुं ये मनुष्या गच्छन्ति ते जन्या इत्युच्यन्ते॥ ८२॥

भाषार्थ—'जनी' शब्द में 'जन' धातु से अधिकरण कारक में औणादिक 'इण्' प्रत्यय हुआ है। और फिर 'जनि' शब्द से स्त्रीलिङ्ग में ''कृदिकारादक्तिनः' इस गणवार्त्तिक से ङीष् होकर 'जनी' शब्द सिद्ध होता है। ''जायेते पुत्र-कन्ये अस्यां सा जनी वधूः'' इस व्युत्पत्ति से जनी शब्द वधू का पर्यायवाची है। द्वितीयासमर्थ जनी प्रातिपदिक से संज्ञा वाच्य हो तो ले जाने अर्थ में 'यत्' प्रत्यय का निपातन किया है। जैसे—जनीं=वधूं वहन्ति जन्याः। विवाह के समय जो वरयात्री वधू को लाने के लिये जाते हैं, वे 'जन्या' कहलाते है॥ ८२॥

विध्यत्यधनुषा॥ ८३॥

विध्यति-[क्रि०प०]। अधनुषा —३।१। धनुःशब्दात् तृतीयैकवचनमुच्यते। तेन ज्ञायते शस्त्रवाचिभ्यो न भवतीति। द्वितीयासमर्थात् प्रातिपदिकाद् विध्यतीत्यर्थे यत् प्रत्ययो भवति, शस्त्रवाचिनो वर्जयित्वा। पादौ विध्यति पद्या दूर्वा। कण्ठं विध्यति कण्ठ्यो रसः। अधनुषेति किम्-धनुषा विध्यति। शत्रुं विध्यति। अधनुषेति प्रतिषेधादुभयत्र न भवति॥ ८३॥

भाषार्थ—सूत्र में जो धनुष् शब्द से तृतीयान्त का निषेध किया है, उससे स्पष्ट है कि शस्त्रवाची से वेंधना हो तो यत् प्रत्यय नहीं होता। द्वितीया समर्थ प्रातिपदिक से विध्यति=वेधने अर्थ में यत् प्रत्यय होता है, शस्त्रवाची को छोड़कर। जैसे—पादौ विध्यति=पद्या दूर्वा। कण्ठं विध्यति=कण्ठ्यो रसः। अधनुषेति किम्-धनुषा विध्यति। शत्रुं विध्यति*। यहाँ निषेध होने से उभयत्र प्रत्यय नहीं होता है॥ ८३॥

धनगणं लब्धा॥ ८४॥

धनगणम् —२।१। लब्धा —१।१। लब्धेति तृन्नन्तः कर्त्ता प्रत्ययार्थः। तद्योगे षष्ठ्याः प्रतिषेधाद् द्वितीया। द्वितीयासमर्थाभ्यां धन, गण, इत्येताभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां लब्धरि यत् प्रत्ययो भवति। धनं लब्धा धन्यः। गण्यः॥ ८४॥

भाषार्थ—सूत्र में 'लब्धा' प्रयोग तृन् प्रत्ययान्त है, और वही प्रत्ययार्थ है। तृन् प्रत्ययान्त के प्रयोग में षष्ठी विभक्ति का 'न लोकाव्यय०' (२।३।६९) सूत्र से निषेध होने से द्वितीया का प्रयोग है। द्वितीया समर्थ धन, गण, प्रातिपदिकों से लब्धा=प्राप्त करनेवाला कर्त्ता वाच्य हो तो यत् प्रत्यय होता है। जैसे—धनं लब्धा धन्यः। गणं लब्धा गण्यः॥ ८४॥

अन्नाण्णः॥ ८५॥

अन्नात् —५।१।णः —१।१।द्वितीयासमर्थाद् अन्नप्रातिपदिकाल्लब्धे-

---

* धनुषा करणविशेषेण करणमात्रं लक्ष्यते। अत एव भाष्ये—'विध्यत्यकरणेन' इति प्रोक्तम्। तेन 'शत्रुं विध्यति' एतदादिष्वपि प्रत्ययो न भवति। अथवा-अनभिधानात् प्रत्ययो न भविष्यति॥

—अनुवादकः

त्यर्थे णः प्रत्ययो भवति। अन्नं लब्धा आन्नः॥८५॥

भाषार्थ—द्वितीया समर्थ अन्न प्रातिपदिक से लब्धा=प्राप्त करनेवाला कर्त्तावाच्य हो तो 'ण' प्रत्यय होता है। जैसे—अन्नं लब्धा आन्नः॥८५॥

वशं गतः॥८६॥

वशम् —२।१। गतः —१।१। द्वितीयासमर्थाद् वशप्रातिपदिकाद् गत इत्यर्थे यत् प्रत्ययो भवति। वशं गतो वश्यः। वशशब्देनात्र धात्वर्थो गृह्यते। वशं गतः कामं प्राप्त इत्यर्थः॥८६॥

भाषार्थ—द्वितीया समर्थ 'वश' प्रातिपदिक से गत अर्थ में 'यत्' प्रत्यय होता है। जैसे—वशं गतः=वश्यः। वश शब्द से यहां धात्वर्थ का ग्रहण होता है। जिससे 'वशं गतः' का अर्थ 'कामं प्राप्तः' है॥८६॥

पदमस्मिन् दृश्यम्॥८७॥

द्वितीयासमर्थविभक्तिर्निवृत्ता। पदम्—१।१ अस्मिन्—७।१ दृश्यम्—१।१ अत्र प्रथमानिर्देशादेव प्रथमाविभक्तिराश्रीयते। दृश्यसमानाधिकरणात् प्रथमासमर्थात् पदप्रातिपदिकादस्मिन्नित्यन्यपदार्थे यत् प्रत्ययो भवति। पदं दृश्यमस्मिन्—पद्यः कर्दमः। पद्याः सिकताः॥८७॥

भाषार्थ—यहाँ द्वितीया समर्थ विभक्ति की निवृत्ति हो गई है। सूत्र में प्रथमा के निर्देश से ही प्रथमा समर्थ 'पद' प्रातिपदिक से अस्मिन्=सप्तमी द्योत्य अन्यपदार्थ में यत् प्रत्यय होता है। जैसे—पदं दृश्यमस्मिन्=पद्यः कर्दमः। पद्याः सिकताः॥८७॥

मूलमस्याबर्हि॥८८॥

पूर्वस्मात् किमपि नानुवर्तते। मूलम्—१।१। अस्य—६।१। आबर्हि—१।१। आबर्हणमुत्पाटनमाबर्हः सोऽस्मिन्नस्तीत्याबर्हि मूलम्। आबर्हिसमानाधिकरणात् [प्रथमासमर्थात्] मूलप्रातिपदिकादस्येत्यर्थे यत् प्रत्ययो भवति। आबर्हिमूलमेषामिति मूल्या माषाः॥८८॥

भाषार्थ—यहाँ पूर्वसूत्र से समर्थविभक्ति आदि की अनुवृत्ति नहीं है। 'आबर्हि' शब्द का अर्थ है—'आबर्हणम्=उत्पाटनम् आबर्हिः, सोऽस्मिन्नस्तीत्याबर्हि मूलम्' अर्थात् जो मूल के विना न उखाड़े जा सकें, ऐसे सुसम्पन्न धान्य वाच्य में यह प्रत्यय विधान है। आबर्हि समानाधिकरण प्रथमासमर्थ मूल प्रातिपदिक से षष्ठी अन्यपदार्थ में यत् प्रत्यय होता है। जैसे—आबर्हि—मूलमेषाम्=मूल्या माषाः॥८८॥

संज्ञायां धेनुष्या॥८९॥

संज्ञायाम् —७।१। धेनुष्या —१।१। संज्ञायां विषये धेनुष्येति स्त्रीलिङ्गः शब्दो धेनुशब्दाद्यत् प्रत्ययान्तः कृतषुगागमश्च निपात्यते। धेनुष्या॥८९॥

भाषार्थ—संज्ञा विषय में धेनुष्या शब्द का निपातन किया गया है—

अर्थात् स्त्रीलिङ्ग धेनु शब्द से संज्ञा वाच्य हो तो, यत् प्रत्यय और षुगागम का निपातन किया है। जैसे—धेनुष्या। 'धेनुष्या' वह गाय कहलाती है, जिसे अधमर्ण=कर्जदार उत्तमर्ण=कर्ज देनेवाले (धनवान्) को ऋण उतारने तक दे देता

है। इसे 'पीतदुग्धा' भी कहते हैं॥८९॥

गृहपतिना संयुक्ते ञ्यः॥९०॥

गृहपतिना—३।१। संयुक्ते—७।१। ञ्यः—१।१। पूर्वसूत्रात् संज्ञाया-मित्यनुवर्त्तते। तृतीयासमर्थाद् गृहपतिप्रातिपदिकात् संयुक्त इत्यर्थे ञ्यः प्रत्ययो भवति संज्ञायामभिधेयायाम्। गृहपतिना संयुक्तो गार्हपत्यः। संज्ञायामित्यनु-वर्तनाद् दक्षिणाग्नेर्नाम न भवति॥९०॥

भाषार्थ—पूर्वसूत्र से 'संज्ञायाम्' पद की अनुवृत्ति है। तृतीया समर्थ गृहपति प्रातिपदिक से संयुक्त अर्थ में संज्ञा अभिधेय हो तो 'ञ्य' प्रत्यय होता है। जैसे—गृहपतिना संयुक्तो गार्हपत्यः। यहाँ 'संज्ञायाम्' पद की अनुवृत्ति होने से 'गार्हपत्य' नाम दक्षिणाग्नि के लिए प्रयुक्त नहीं होता॥९०॥

नौवयोधर्मविषमूलमूलसीतातुलाभ्यस्तार्यतुल्यप्राप्यवध्यानाम्य-समसमितसम्मितेषु॥९१॥

तृतीयासमर्थ विभक्तिरनुवर्त्तते। नौ-तुलाभ्यः—५।३ तार्य्य-सम्मितेषु—७।३ नौ, वयस्, धर्म, विष, मूल, मूल, सीता, तुला, इत्येतेभ्यस् तृतीया समर्थेभ्योऽष्टाभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः, तार्य्य, तुल्य, प्राप्य, वध्य, आनाम्य, सम, समित, सम्मित, इत्येतेष्वष्टस्वर्थेषु यथासंख्यं यत् प्रत्ययो भवति। नावा तार्यं नाव्यम्। वयसा तुल्यो वयस्यः सखा। धर्मेण प्राप्यो धर्म्योऽपवर्गः। विषेण वध्यो विष्यः पापात्मा। मूलेनानाम्यं मूल्यम्। मूलेन कारणेन समो मूल्यो घटः। सीतया समितं संयुक्तं क्षेत्रं सीत्यम्। तुलया सम्मितं समानं तुल्यम्॥९१॥

भाषार्थ—यहाँ तृतीया समर्थ विभक्ति की अनुवृत्ति है। तृतीया समर्थ नौ, वयस्, धर्म, विष, मूल, मूल, सीता, तुला, इन आठ प्रातिपदिकों से तार्य, तुल्य, प्राप्य, वध्य, आनाम्य, सम, समित, सम्मित, इन आठ अर्थों में यथासंख्य करके 'यत्' प्रत्यय होता है। जैसे—नावा तार्यं नाव्यम्। वयसा तुल्यो वयस्यः सखा। धर्मेण प्राप्यो धर्म्योऽपवर्गः। विषेण वध्यो विष्यः पापात्मा। मूलेनानाम्यं मूल्यम्। मूलेन कारणेन समो मूल्यो घटः। सीतया समितं संयुक्तं क्षेत्रं सीत्यम्। तुलया सम्मितं समानं तुल्यम्॥९१॥

धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते॥९२॥

धर्मपथ्यर्थन्यायात् —५।१। अनपेते —७।१। अपेतश्च्युतः पृथग्भूतः। तत् प्रतिषेधः। अर्थवशादत्र पंचमीसमर्थत्वमाश्रीयते। धर्म, पथि, अर्थ, न्याय इत्यतेभ्यः पंचमीसमर्थेभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽनपेत इत्यर्थे यत् प्रत्ययो भवति धर्मादनपेतं धर्म्यं मार्गम्। पथ्यम्। अर्थ्यम्। न्याय्यम्। अनपेतो धर्मादिषु प्रसितमिति॥९२॥

भाषार्थ—अपेत शब्द पृथक् होने अर्थ में है, उसका प्रतिषेध अनपेत है अर्थात् पृथक् न हो तो=युक्त होने अर्थ में प्रत्यय का विधान है। सूत्र में निर्देश से ही यहाँ पंचमी समर्थ विभक्ति का ग्रहण है। धर्म, पथिन्, अर्थ, न्याय, इन पंचमी

समर्थ प्रातिपदिकों से अनपेत (युक्त) अर्थ में यत् प्रत्यय होता है। जैसे—धर्मादनपेतं धर्म्यं मार्गम्। पथोऽनपेतं पथ्यम्। अर्थ्यम्। न्याय्यम्। यहाँ धर्मादि में लगे रहना ही अनपेत शब्द से अभिप्रेत है॥ ९२॥

छन्दसो निर्मिते॥ ९३॥

छन्दसः—५।१। निर्मिते—७।१। अत्रार्थानुकूल्यमाश्रित्य तृतीया-विभक्तिराश्रीयते। इच्छावाची छन्दः शब्दोऽत्रगृह्यते। तृतीयासमर्थाच्छन्दः-प्रातिपदिकान्निर्मित इत्यर्थे यत् प्रत्ययो भवति। छन्दसा निर्मितश्छन्दस्यः॥ ९३॥

भाषार्थ—यहाँ अर्थ निर्देशानुसार तृतीया समर्थ विभक्ति का ग्रहण है। और यहाँ छन्दस् शब्द इच्छा का पर्यायवाची है। तृतीया समर्थ 'छन्दस्' प्रातिपदिक से निर्मित अर्थ में 'यत्' प्रत्यय होता है। जैसे—छन्दसा निर्मितश्छन्दस्यः॥ ९३॥

उरसोऽण् च॥ ९४॥

निर्मित इत्यनुवर्त्तते तृतीयासमर्थत्वं च। उरसः —५।१ अण् —१।१ च-[अ०प०]। तृतीयासमर्थादुरस् प्रातिपदिकान् निर्मित इत्यर्थेऽण् चाद् यच्च प्रत्ययो भवति। उरसा निर्मित औरसःपुत्रः। उरस्यः पुत्रः। यतोऽपवादोऽत्राण्॥ ९४॥

भाषार्थ—यहाँ निर्मित पद की अनुवृत्ति है और तत्साहचर्य से तृतीया समर्थ विभक्ति का ग्रहण है। तृतीया समर्थ 'उरस्' प्रातिपदिक से निर्मित, अर्थ में अण् प्रत्यय होता है और चकार से यत्। जैसे—उरसा निर्मित औरसः पुत्रः। उरस्यः पुत्रः। इस सूत्र में 'यत्' के अपवाद 'अण्' का विधान है॥ ९४॥

हृदयस्य प्रियः॥ ९५॥

हृदयस्य —६।१। प्रियः —१।१। षष्ठीनिर्देशः समर्थविभक्त्यर्थः। प्रिय इति प्रत्ययार्थः। षष्ठीसमर्थाद् हृदयप्रातिपदिकात् प्रिय इत्यर्थे यत्प्रत्ययो भवति। हृदयस्य प्रियो हृद्यो देशः। हृदयस्य प्रिया हृद्या कन्या। 'हृदयस्य हृल्लेखयदण्लासेष्विति' यति परतो हृदयस्य हृदादेशः॥ ९५॥

भाषार्थ—सूत्र में निर्देश से ही यहाँ षष्ठी समर्थ विभक्ति का ग्रहण है और प्रत्यय का अर्थ प्रिय है। षष्ठी समर्थ हृदय शब्द से प्रिय अर्थ में यत् प्रत्यय होता है। जैसे—हृदयस्य प्रियो हृद्यो देशः। हृदयस्य प्रिया हृद्या कन्या। यहाँ 'हृदय' शब्द को यत् प्रत्यय परे होने पर 'हृदयस्य हृल्लेखयदण्लासेषु' (अ० ६।३।५०) सूत्र से 'हृद्' आदेश हुआ है॥ ९५॥

बन्धने चर्षौ॥ ९६॥

हृदयस्येत्यनुवर्त्तते। बन्धने—७।१। च-[अ०प०]। ऋषौ—७।१। बध्यते येन सत्कर्मसु तद्बन्धनम्। ऋषिर्वेदः। तद् विशेषणं बन्धनम् [षष्ठीसमर्थाद् हृदयप्रातिपदिकात् बन्धनेऽर्थे ऋषावभिधेये यत् प्रत्ययो भवति।] हृदयस्य बन्धनमृषिर्हृद्यो वेदः। यो मनुष्यो वेदान् पठित्वा तदुक्तं धर्मादिकृत्यं निश्चिनोति तस्य हृदयं धर्मादिकृत्येषु बध्यते। अर्थाद् दुष्कृतानि स नैव करोतीति॥ ९६॥

भाषार्थ—यहाँ पूर्वसूत्र से 'हृदयस्य' पद की अनुवृत्ति है। जिससे सत्कर्मों में मनुष्य बन्ध जाता है, उसे बन्धन कहते हैं। ऋषि शब्द वेद का पर्यायवाची है और 'बन्धन' शब्द ऋषि का विशेषण है। [षष्ठी समर्थ हृदय प्रातिपदिक से ऋषि=वेदवाची बन्धन अर्थ में 'यत्' प्रत्यय होता है।] जैसे—हृदयस्य बन्धनमृषिर्हृद्यो वेदः। जो मनुष्य वेदों को पढ़कर वेदोक्त धर्मादिकृत्यों का निश्चय करता है, उसका हृदय धर्मादि में बन्ध जाता है। अर्थात् वह दुष्कर्म नहीं करता है॥ ९६॥

मतजनहलात् करणजल्पकर्षेषु॥ ९७॥

षष्ठीसमर्थविभक्तिरनुवर्त्तते। मतजनहलात्—५।१।करणजल्पकर्षेषु—७।३। जल्पनं जल्पः। कर्षणं कर्षः। मत, जन, हल, इत्येतेभ्यः षष्ठीसमर्थेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः करण-जल्प-कर्षेषु यथासंख्येन यत् प्रत्ययो भवति। मतस्य करणं मत्यम्। जनस्य जल्पो जन्यः। हलस्य कर्षो हल्यः। द्विहल्य इति तदन्तविधिरपि भवति॥ ९७॥

भाषार्थ—यहाँ पूर्व सूत्रवत् सामर्थ्यलब्ध षष्ठी समर्थ विभक्ति की अनुवृत्ति है। 'जल्पनं जल्पः' तथा 'कर्षणं कर्षः' इससे जल्पादि में भाव में प्रत्यय का बोध होता है। षष्ठी समर्थ मत, जन, हल, प्रातिपदिकों से यथासंख्य करण, जल्प, कर्ष, अर्थों में यत् प्रत्यय होता है। जैसे—मतस्य करणं मत्यम्। जनस्य जल्पो जन्यः। हलस्य कर्षो हल्यः। यहाँ तदन्तविधि को मानकर 'द्विहल्यः' आदि प्रयोग भी सिद्ध होते हैं॥ ९७॥

तत्र साधुः॥ ९८॥

तत्र –[अ०प०]। साधुः —१।१ सप्तमीसमर्थात् प्रातिपदिकात् साधुरित्यर्थे यत् प्रत्ययो भवति। कर्मणि साधुः कर्मण्यः। पाके साधुः पाक्यः। सामन्यः॥ ९८॥

भाषार्थ—सप्तमीसमर्थ प्रातिपदिक मात्र से साधु=प्रवीण या योग्य अर्थ में 'यत्' प्रत्यय होता है। जैसे—कर्मणि साधुः=कर्मण्यः। पाके साधुः पाक्यः। सामसु साधुः सामन्यः। ['ये चाभावकर्मणोः' (अ० ६।४।१६८) सूत्र से यहां प्रकृतिभाव होने से 'सामन्यः' में टिलोप नहीं हुआ]॥९८॥

प्रतिजनादिभ्यः खञ्॥ ९९॥

प्रतिजनादिभ्यः —५।३।खञ् —१।१।पूर्वसूत्रेण यत्प्राप्तः स बाध्यते। सप्तमीसमर्थेभ्यः [प्रतिजनादिभ्यः] प्रातिपदिकेभ्यः साध्वर्थे खञ् प्रत्ययो भवति। प्रतिजने साधुः-प्रातिजनीनः। प्रातियुगीनः। ऐदंयुगीनः। सांयुगीनः।

अथ प्रतिजनादिः—प्रतिजन। इदंयुग। संयुग। समयुग। परयुग। परकुल। परस्यकुल। अमुष्यकुल। सर्वकुल। सर्वजन। विश्वजन। महाजन। पंचजन। इति प्रतिजनादिगणः॥ ९९॥

भाषार्थ—पूर्वसूत्र से यत् प्रत्यय प्राप्त था, उसका यह बाधक है। सप्तमी समर्थ प्रतिजनादि प्रातिपदिकों से साधु अर्थ में खञ् प्रत्यय होता है। जैसे—प्रतिजने साधु

प्रातिजनीनः। प्रातियुगीनः। एदंयुगीनः। सांयुगीनः। इत्यादि॥ ९९॥

भक्ताण्णः॥ १००॥

भक्तात्—५।१। णः—१।१। सप्तमीसमर्थाद् भक्तप्रातिपदिकात् साधुरित्यर्थे णः प्रत्ययो भवति। भक्ते साधुः-भाक्तः शालिः। भाक्ता ओदनाः॥ १००॥

भाषार्थ—सप्तमी समर्थ भक्त प्रातिपदिक से साधु अर्थ में 'ण' प्रत्यय होता है। जैसे—भक्ते साधुः=भाक्तः शालिः। भाक्ता ओदनाः॥ १००॥

परिषदो ण्यः॥ १०१॥

परिषदः —५।१। ण्यः —१।१। सप्तमीसमर्थात् परिषत्प्रातिपदिकात् साध्वर्थे ण्यः प्रत्ययो भवति। यतोऽपवादः। परिषदि साधुः पारिषद्यः॥ १०१॥

भाषार्थ—सप्तमी समर्थ 'परिषत्' प्रातिपदिक से साधु अर्थ में 'ण्य' प्रत्यय होता है। यह 'यत्' प्रत्यय का अपवाद है। जैसे—परिषदि साधुः पारिषद्यः॥ १०१॥

कथादिभ्यष्ठक्॥ १०२॥

कथादिभ्यः —५।३।ठक् —१।१।सप्तमीसमर्थेभ्यो गणोपदिष्टकथादि-प्रातिपदिकेभ्यः साधुरित्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति। यतोऽपवादः। कथायां साधुः काथिकः वैकथिकः। वैतण्डिकः। आयुर्वेदिकः। अथ कथादिगणः—कथा। विकथा। विश्वकथा। संकथा। वितण्डा। कुष्टचित्। जनवाद। जनेवाद। जनोवाद। वृत्ति। संग्रह। गण। गुणः। आयुर्वेद। इति कथादिगणः॥ १०२॥

भाषार्थ—सप्तमीसमर्थ गणोपदिष्ट कथादि प्रातिपदिकों से साधु अर्थ में 'ठक्' प्रत्यय होता है। यह यत् प्रत्यय का अपवाद है। जैसे—कथायां साधुः काथिकः। वैकथिकः। वैतण्डिकः। आयुर्वेदिकः इत्यादि॥ १०२॥

गुडादिभ्यष्ठञ्॥ १०३॥

गुडादिभ्यः —५।३।ठञ् —१।१।सप्तमीसमर्थेभ्यो गुडादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः साधुरित्यर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति। गुडे साधव इक्षवो गौडिकाः। कौल्माषिकाः। अथ गुडादिगणः—गुड। कुल्माष। सक्तु। अपूप। इक्षु। वेणु। संग्राम। संघात। प्रवास। निवास। उपवास। इति गुडादिः॥ १०३॥

भाषार्थ—सप्तमी समर्थ गणोपदिष्ट गुडादि प्रातिपदिकों से साधु अर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है। जैसे—गुडे साधव इक्षवः=गौडिकाः। कौल्माषिकाः। इत्यादि॥ १०३॥

पथ्यतिथिवसतिस्वपतेर्ढञ्॥ १०४॥

पथ्यतिथिवसतिस्वपतेः —५।१। ढञ् —१।१। पथिन्, अतिथि, वसति स्वपति, इत्येतेभ्यः सप्तमीसमर्थेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो [साधुरित्यर्थे] ढञ् प्रत्ययो भवति। यतोऽपवादः। पथि साधु पाथेयम्। आतिथेयम्। वासतेयम्। स्वापतेयम्॥ १०४॥

भाषार्थ—सप्तमी समर्थ पथिन्, अतिथि, वसति, स्वपति, प्रातिपदिकों से साधु अर्थ में ढञ् प्रत्यय होता है। यह यत् का अपवाद है। जैसे—पथि साधु पाथेयम्। आतिथेयम्। वासतेयम्। स्वापतेयम्॥ १०४॥

सभायाः यः॥ १०५॥

सभायाः —५।१। यः —१।१। सप्तमीसमर्थात् सभाप्रातिपदिकात् साधुरित्यर्थे यः प्रत्ययो भवति। यतोऽपवादः। सभायां साधुः सभ्यः॥ १०५॥

भाषार्थ—सप्तमी समर्थ 'सभा' प्रातिपदिक से साधु अर्थ में 'य' प्रत्यय होता है। यह यत् का अपवाद है। जैसे—सभायां साधुः सभ्यः। यहाँ य और यत् प्रत्ययों में स्वर का भेद है, प्रयोग का नहीं॥ १०५॥

ढश्छन्दसि॥ १०६॥

सभाया इत्यनुवर्तते। ढः —१।१। छन्दसि —७।१। पूर्वसूत्रेण सामान्यतो यः प्राप्तः स बाध्यते। सप्तमीसमर्थात् सभाप्रातिपदिकाच्छन्दसि वैदिकप्रयोग-विषये [साधुरित्यर्थे] ढः प्रत्ययो भवति। सभायां साधु सभेयम्। सादन्यं विदथ्यं सभेयम्। (ऋ० १।९१।२०)॥ १०६॥

भाषार्थ—पूर्व सूत्र से सामान्यरूप में य प्रत्यय प्राप्त है, उसका यह बाधक है। सप्तमी समर्थ 'सभा' प्रातिपदिक से छन्दसि (वैदिक प्रयोग विषय) में साधु अर्थ में 'ढ' प्रत्यय होता है। जैसे—सभायां साधु सभेयम्। सादन्यं विदथ्यं सभेयम्॥ (ऋ० १।९१।२०)॥ १०६॥

समानतीर्थे वासी॥ १०७॥

तत्रेत्यनुवर्तते। साधुरिति निवृत्तम्। समानतीर्थे —७।१। वासी —१।१। समानशब्दोऽत्रैकसंख्यावाची गृह्यते। अविद्यान्धकारात् तारकत्वात् तीर्थो गुरुरुच्यते। समानं तत् तीर्थं समानतीर्थम्। तस्मिन् वासीति ताच्छील्ये णिनिः। समानतीर्थे वस्तुं शीलः सतीर्थ्यो ब्रह्मचारी। 'तीर्थे ये' इति समानशब्दस्य सभावः। सप्तमीसमर्थात् समानतीर्थप्रातिपदिकात् वासीत्यर्थे यत् प्रत्ययो भवति॥ १०७॥

भाषार्थ—यहाँ 'तत्र' की अनुवृत्ति है और अर्थान्तरनिर्देश होने से साधु पद निवृत्त हो गया है। अविद्यारूपी अन्धकार से पार करने के कारण 'तीर्थ' शब्द से गुरु का ग्रहण है। यहाँ समान शब्द एकसंख्या का वाची है। 'समानम् (एकम्) तत् तीर्थम्=समानतीर्थम्' इस विग्रह से समानतीर्थ शब्द एक गुरु का वाची है और 'वासी' प्रत्ययार्थ में ताच्छील्यार्थ में णिनि प्रत्यय है। सप्तमी समर्थ 'समानतीर्थ' प्रातिपदिक से वासी=वसने अर्थ में यत् प्रत्यय होता है। समानतीर्थे वासी=वस्तुं शीलः=सतीर्थ्यो ब्रह्मचारी। जिनका एक गुरु पढ़ानेवाला हो और वेद का पाठ साथ-साथ हो, वे ब्रह्मचारी सतीर्थ्य कहाते हैं। 'सतीर्थ्य' शब्द में 'तीर्थे ये' (अ० ६।३।८६) सूत्र से 'समान' के स्थान पर 'स' आदेश हुआ है॥ १०७॥

समानोदरे शयित ओ चोदात्तः॥ १०८॥

समानोदरे—७।१ शयितः—१।१।ओ—१।१ च- [अ०प०]। उदात्तः—१।१। पूर्ववत् समानशब्दोऽत्रापि गृह्यते। समानं च तदुदरं समानोदरम्। सप्तमीसमर्थात् समानोदरप्रातिपदिकाच्छयित इत्यर्थे यत् प्रत्ययो भवति। समानोदरशब्दे य ओकारः स कृतेऽपि प्रत्यये उदात्त एव भवति। तित्स्वरितमिति स्वरितस्य बलीयस्त्वाद् वर्ज्यमानस्वरेण सर्वस्य पदस्यानुदात्तत्वं प्राप्तं तदर्थमोकार उदात्तो विधीयते। समानोदरे शयितः समानोदर्य्यो भ्राता॥ १०८॥

भाषार्थ—इस सूत्र में भी समान शब्द पूर्व सूत्र की भांति एक संख्या का वाची है। 'समानमेकं च तदुदरं समानोदरम्' यह इसका विग्रह है। सप्तमी समर्थ 'समानोदर' प्रातिपदिक से शयित=सोने अर्थात् स्थित होने अर्थ में 'यत्' प्रत्यय होता है और समानोदर शब्द के ओकार को प्रत्यय करने पर भी उदात्त ही होता है। 'तित्स्वरितम्' (६।१।१८५) सूत्र से स्वरितस्वर के बलवान् होने से वर्ज्यमान अर्थात् प्रत्यय से भिन्न शेष पद को जो अनुदात्तत्व प्राप्त है, उसका बाधक यह ओकार को उदात्त विधान किया है। जैसे—समानोदरे शयितः=समानोदर्य्यो भ्राता। यहाँ 'विभाषोदरे' (अ० ६।३।८७) सूत्र से विकल्प होने से 'समान' को 'स' आदेश नहीं हुआ है। जो एक माता के उदर से उत्पन्न हुए हैं, उन्हें समानोदर्य्य कहा जाता है॥ १०८॥

सोदराद्यः॥ १०९॥

शयित इत्यनुवर्त्तते। सोदरात् —५।१। यः —१।१। 'विभाषोदरे' इति सूत्रेण यकारादौ प्रत्यय इति विषयसप्तमीं मत्वा पूर्वमेव समानस्य सभावः। यस्मिन् पक्षे समानस्य सभावो भवति, तस्मात् सप्तमीसमर्थात् सोदरप्रातिपदिकाच्छयित इत्यर्थे यः प्रत्ययो भवति। समानोदरे शयितः सोदर्य्यो भ्राताः। स्वरविशेषार्थं प्रत्ययान्तरविधानम्॥ १०९॥

भाषार्थ—यहाँ पूर्व सूत्र से 'शयित' पद की अनुवृत्ति है। यहाँ 'विभाषोदरे' (अ० ६।३।८७) सूत्र से यकारादिप्रत्यय के बुद्धिस्थ होने पर (विषय सप्तमी मानकर) पहले ही 'समान' को 'स' आदेश हो जाता है और जिस पद में 'स' आदेश होता है, वहीं इस सूत्र से प्रत्यय का विधान है। सप्तमी समर्थ 'सोदर' प्रातिपदिक से शयित=शयन करने अर्थ में 'य' प्रत्यय होता है। जैसे—समानोदरे शयितः सोदर्य्यो भ्राता। यहाँ स्वरविशेष के लिये प्रत्ययान्तर का विधान किया है॥ १०९॥

भवे छन्दसि॥ ११०॥

भवे —७।१। छन्दसि —७।१। तत्रेत्यनुवर्त्तते यच्च। शैषिके भवे घादयोऽणादयश्च प्रत्ययाः प्राप्तास्तेऽनेन बाध्यन्ते। सप्तमीसमर्थात् प्रातिपदिकाच्छन्दसि-वैदिकप्रयोगविषये भवार्थे यत् प्रत्ययो भवति। मेघे भवो मेघ्यः। विद्युत्यः। सिकत्यः। अत्र पादपर्यन्तं छन्दसीत्यधिकारः प्रवर्त्तते। भवाधिकारस्तु 'समुद्राभ्राद् घः' इति यावत्॥ ११०॥

भाषार्थ—यहाँ 'तत्र' तथा 'यत्' प्रत्यय की अनुवृत्ति है। जो शैषिकाधिकार में भवार्थ में घादि तथा अणादि प्रत्ययों का विधान है, वे सब इससे बाधित हो जाते हैं। सप्तमी समर्थ प्रातिपदिकों से छन्दसि=वैदिक प्रयोग विषय में 'भव' अर्थ में 'यत्' प्रत्यय होता है। जैसे—मेघे भवो मेघ्यः। विद्युत्यः। सिकत्यः। यहाँ 'छन्दसि' का अधिकार इस पाद की समाप्ति तक है और 'भव' का अधिकार 'समुद्राभ्राद् घः' (अ० ४।४।११८) सूत्र तक जानना चाहिये॥११०॥

पाथोनदीभ्यां ड्यण्॥१११॥

पाथोनदीभ्याम् —५।२। ड्यण् —१।१। पाथस्, नदी, इत्येताभ्यां सप्तमीसमर्थाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां छन्दसि भव इत्येतस्मिन् विषये ड्यण् प्रत्ययो भवति। पाथसि भवः पाथ्यः। नाद्यः। पूर्वेण यत् प्राप्तस्तस्यापवादः॥१११॥

भाषार्थ—सप्तमी समर्थ पाथस्, नदी, इन प्रातिपदिकों से वैदिक प्रयोग विषय में भवार्थ में 'ड्यण्' प्रत्यय होता है। जैसे—पाथसि भवः पाथ्यः। नाद्यः। पूर्वसूत्र से 'यत्' प्रत्यय प्राप्त था, उसका यह अपवाद है॥१११॥

वेशन्तहिमवद्भ्यामण्॥११२॥

वेशन्त-हिमवद्भ्याम् —५।२। अण् —१।१। सप्तमीसमर्थाभ्यां वेशन्तहिमवत्प्रातिपदिकाभ्यां छन्दसि भव इत्यर्थेऽण् प्रत्ययो भवति। वेशन्ते भवो वैशन्तः। हिमवति भवो हैमवतः। यत्प्राप्तः स बाध्यते॥११२॥

भाषार्थ—सप्तमी समर्थ वेशन्त, हिमवत् प्रातिपदिकों से वैदिक प्रयोग विषय में भाषार्थ में 'अण्' प्रत्यय होता है। जैसे—वेशन्ते भवो वैशन्तः। हिमवति भवो हैमवतः। यह 'यत्' प्रत्यय का अपवाद है॥११२॥

स्रोतसो विभाषा ड्यड्ड्यौ॥११३॥

स्रोतसः —५।१। विभाषा-[अ०प०]। ड्यत्-ड्यौ —१।२। अप्राप्तविभाषेयम्। यति प्राप्ते ड्यड्ड्यौ विकल्प्येते। सप्तमीसमर्थात् स्रोतस्प्रातिपदिकाच्छन्दसि भव इत्यर्थे विकल्पेन ड्यत्, ड्य इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः। पक्षे स एव यत् यस्य प्राप्ताविय विभाषाऽऽरभ्यते। स्रोतसि भवः स्रोत्यः। स्रोतस्यः॥११३॥

भाषार्थ—यह अप्राप्त विभाषा है। यत् प्रत्यय की प्राप्ति में ड्यत् और ड्य प्रत्ययों का विकल्प किया गया है। सप्तमी समर्थ स्रोतस् प्रातिपदिक से वैदिक प्रयोगविषय में भव अर्थ में विकल्प से ड्यत् और ड्य प्रत्यय होते हैं। पक्ष में वह 'यत्' ही होता है जिसकी प्राप्ति में यह विकल्प से प्रत्यय विधान किया है। जैसे—स्रोतसि भवः स्रोत्यः। स्रोतस्यः। [यहाँ ड्यत् तथा ड्य प्रत्ययों में स्वर में ही विशेषता होती है। ड्यत् प्रत्ययान्त में 'तित्स्वरितम्' (६।१।१८५) से अन्तःस्वरित और ड्य प्रत्यय में प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त होता है]॥११३॥

सगर्भसयूथसनुताद् यन्॥११४॥

सगर्भ-सयूथ-सनुतात् —५।१। यन् —१।१। सप्तमीसमर्थेभ्यः सगर्भ,

सयूथ, सनुत, इत्येतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यश्छन्दसि भव इत्यर्थे यन् प्रत्ययो भवति। यतोऽपवादः। यद्यनोः स्वरभेदः। सगर्भ्यः। सयूथ्यः। सनुत्यः॥ ११४॥

भाषार्थ—सप्तमी समर्थ सगर्भ, सयूथ, सनुत, इन प्रातिपदिकों से वैदिक प्रयोग विषय में भव अर्थ में 'यन्' प्रत्यय होता है। यह 'यत्' प्रत्यय का अपवाद है। यत् और यन् में स्वर का ही भेद है। जैसे—सगर्भ्यः। सयूथ्यः। सनुत्यः॥ ११४॥

तुग्राद् घन्॥ ११५॥

तुग्रात् —५।१। घन् —१।१। सप्तमीसमर्थात् तुग्रप्रातिपदिकाच्छन्दसि भव इत्यर्थे घन् प्रत्ययो भवति। यतोऽपवादः। त्वमग्ने वृषभस्तुग्रियाणाम्॥ ११५॥

भाषार्थ—सप्तमी समर्थ 'तुग्र' प्रातिपदिक से वैदिक प्रयोग विषय में भव अर्थ में 'घन्' प्रत्यय होता है। यह यत् प्रत्यय का अपवाद है। जैसे—त्वमग्ने वृषभस्तुग्रियाणाम्॥ ११५॥

अग्राद् यत्॥ ११६॥

अग्रात् —५।१। यत् —१।१। परस्मिन् सूत्रेऽग्रप्रातिपदिकाद् घ-छौ प्रत्ययौ विधीयेते, तौ यतो बाधकौ मा भूतामिति पुनर्यद्विधानम्। सप्तमीसमर्थाद् अग्रप्रातिपदिकाच्छन्दसि भव इत्यर्थे यत् प्रत्ययो भवति। अग्रे भवमग्र्यम्॥ ११६॥

भाषार्थ—इससे अगले सूत्र से 'अग्र' प्रातिपदिक से घ और छ प्रत्ययों का विधान किया है, वे दोनों समान्य 'यत्' के बाधक न बन जायें, इसलिए पुनः यत् प्रत्यय का विधान किया है। सप्तमी समर्थ अग्र प्रातिपदिक से वैदिक प्रयोग विषय में भव अर्थ में 'यत्' प्रत्यय होता है। जैसे—अग्रे भवम्=अग्र्यम्॥ ११६॥

घछौ च॥ ११७॥

अग्रादित्यनुवर्त्तते। घ-छौ—१।२। च—[अ०प०]। सप्तमीसमर्थाद् अग्रप्रातिपदिकाद् [भवार्थे] घ-छौ प्रत्ययौ भवतः। अग्रे भवम् अग्रियम्। अग्रीयम्॥ ११७॥

भाषार्थ—यहाँ पूर्व सूत्र से 'अग्रात्' पद की अनुवृत्ति है। सप्तमी समर्थ अग्र प्रातिपदिक से भव अर्थ में घ और छ प्रत्यय होते हैं। जैसे—अग्रे भवम् अग्रियम्। अग्रीयम्॥ ११७॥

समुद्राभ्राद् घः॥ ११८॥

समुद्राभ्रात् —५।१। घः —१।१। सप्तमीसमर्थाभ्यां समुद्र, अभ्र, इत्येताभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां छन्दसि भव इत्यर्थे घः प्रत्ययो भवति। समुद्रे भवं समुद्रियम्। अभ्रियम्।

जयादित्येनात्रोक्तम्-अभ्रशब्दस्य पूर्वनिपातो न कृतोऽल्पाच्तरमिति सूत्रस्य व्यभिचारित्वादिति। अहो! जयादित्यस्येदृशी बुद्धिर्यया सूत्रमिदं दूषितम्। नैतत्तेन विचारितम्-समुद्रशब्दोऽन्तरिक्षनामसु पठितम्। अभ्रशब्दश्च मेघवाची।

तत्रान्तरिक्षं पिता मेघोऽभ्रं पुत्रः। मेघानामन्तरिक्षादेव जायमानत्वात्। समुद्र-शब्दोऽभ्यर्हितं मेघस्योत्पत्तिकारणत्वात्।(अभ्यर्हितं पूर्वं निपततीति) भवत्येव समुद्रशब्दस्य पूर्वनिपातः॥ ११८॥

भाषार्थ—सप्तमी समर्थ समुद्र, अभ्र प्रातिपदिकों से वैदिकप्रयोग विषय में भव अर्थ में 'घ' प्रत्य होता है। जैसे—समुद्रे भवं समुद्रियम्। अभ्रियम्।

इस सूत्र पर जयादित्य ने लिखा है—इस सूत्र में 'अल्पाच्तरम्' सूत्र के नियम का व्यभिचार होने से अभ्र शब्द का पूर्वनिपात नहीं किया है। ऐसी जयादित्य की बुद्धि पर आश्चर्य होता है, जिसने पाणिनि मुनि के सूत्र पर दोषारोपण किया है। उसने यह विचार नहीं किया कि वैदिक शब्दकोष निघण्टु में 'समुद्र' शब्द अन्तरिक्ष नामों में पठित है और अभ्रशब्द मेघवाची है। इनमें अन्तरिक्ष पितृतुल्य है और मेघ पुत्रवत् है, क्योंकि मेघ अन्तरिक्ष में ही उत्पन्न होते हैं। मेघ का उत्पत्ति कारण होने से समुद्र शब्द अभ्यर्हित है और 'अभ्यर्हितं पूर्वं निपतति' (अ० २।२।३४ वा०) इस वार्त्तिक सूत्र के नियम से समुद्र शब्द का पूर्व प्रयोग ठीक ही है॥ १८८॥

बर्हिषि दत्तम्॥ ११९॥

भव इति निवृत्तम्। बर्हिषि —७।१। दत्तम् —१।१। दत्तमिति प्रत्ययार्थः। सप्तमीसमर्थाद् बर्हिःप्रातिपदिकाद् दत्तमित्यर्थे यत् प्रत्ययो भवति। बर्हिषि दत्तं बर्हिष्यम्॥ ११९॥

भाषार्थ—'भवे' पद की यहाँ अनुवृत्ति नहीं है। 'दत्तम्' यह प्रत्ययार्थ है। सप्तमी समर्थ 'बर्हिष्' प्रातिपदिक से दत्त अर्थ में 'यत्' प्रत्यय होता है। जैसे—बर्हिषि दत्तम्=बर्हिष्यम्॥ ११९॥

दूतस्य भागकर्मणी॥ १२०॥

दूतस्य —६।१।भागकर्मणी —१।२।तत्रेति सप्तमीसमर्थपदं नानुवर्त्तते। अत्र दूतस्येति निर्देशादेव षष्ठीसमर्थत्वमाश्रीयते। [षष्ठीसमर्थाद् दूतप्राति-पदिकाद् भागे कर्मणि चार्थे यत् प्रत्ययो भवति।] दूतस्य भागः कर्म वा दूत्यम्॥ १२०॥

भाषार्थ—इस सूत्र में 'तत्र' पद की अनुवृत्ति नहीं है। 'दूतस्य' इस सूत्र के निर्देश से ही षष्ठी समर्थ विभक्ति है। षष्ठी समर्थ दूत प्रातिपदिक से भाग और कर्म अर्थों में 'यत्' प्रत्यय होता है। जैसे—दूतस्य भागः कर्म वा दूत्यम्॥ १२०॥

रक्षोयातूनां हननी॥ १२१॥

रक्षोयातूनाम् —६।३।हननी —१।१।हन्यते यया सा करणे ल्युडन्तान् ङीप्।सप्तमीसमर्थाभ्यां रक्षोयातूप्रातिपदिकाभ्यां हननीत्यर्थे यत् प्रत्ययो भवति। रक्षसां हननी रक्षस्या तनूः। यातूनां हननी यातव्या॥ १२१॥

भाषार्थ—'हननी' पद में करण कारक में ल्युट् प्रत्ययान्त से ङीप् प्रत्यय है।'हन्यते यया सा हननी।' सप्तमी समर्थ रक्षस्, यातू प्रातिपदिकों से हननी अभिधेय

में 'यत्' प्रत्यय होता है। जैसे—रक्षसां हननी रक्षस्यां तनूः। यातूनां हननी यातव्या॥१२१॥

रेवतीजगतीहविष्याभ्यः प्रशस्ये॥१२२॥

रेवती-जगती-हविष्याभ्यः —५।३। प्रशस्ये —७।१। षष्ठीसमर्थेभ्यो रेवती-जगती-हविष्याभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः प्रशस्येऽर्थे यत् प्रत्ययो भवति। प्रशंसनं प्रशस्यम्। 'कृत्यल्युटो बहुलमिति' भावे यत्। रेवत्याः प्रशस्यं रेवत्यम्। जगत्यम्। हविष्यम्। यस्येति चेति हविष्याशब्दस्याकारलोपे सति 'हलो यमां यमि लोप' इति प्रथमस्य यकारस्य लोपः॥१२२॥

भाषार्थ—षष्ठी समर्थ रेवती, जगती, हविष्या, इन प्रातिपदिकों से प्रशस्य अर्थ में 'यत्' प्रत्यय होता है। सूत्र के 'प्रशस्य' पद में 'प्रशंसनं प्रशस्यम्' अर्थ के अनुसार 'कृत्यल्युटो बहुलम्' (३।३।११३) सूत्र से भावे में 'यत्' प्रत्यय है। जैसे—रेवत्याः प्रशस्यं रेवत्यम्। जगत्यम्। हविष्यम्। 'हविष्या' शब्द से यत् प्रत्यय करने पर 'यस्येति च' (अ० ६।४।१४८) सूत्र से आकारलोप होने पर 'हलो यमां यमि लोपः'(अ० ८।४।६३) सूत्र से प्रथमयकार का लोप हुआ है॥१२२॥

असुरस्य स्वम्॥१२३॥

असुरस्य —६।१। स्वम् —१।१। स्वमिति प्रत्ययार्थः। स्व-स्वामि-सम्बन्धे तस्येदमित्यण् प्राप्तः स बाध्यते। षष्ठीसमर्थाद् असुर-प्रातिपदिकात् स्वमित्यर्थे यत् प्रत्ययो भवति। असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसा वृताः। असुराणां स्वे असुर्य्याः॥१२३॥

भाषार्थ—'असुर' शब्द से स्व-स्वामि-सम्बन्ध में 'तस्येदम्' (अ० ४।३।११९) सूत्र से 'अण्' प्रत्यय प्राप्त है, उसका यह अपवाद है। षष्ठी समर्थ 'असुर' प्रातिपदिक से स्व अर्थ में 'यत्' प्रत्यय होता है। जैसे—असुराणां स्वे असुर्य्याः। असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः। (यजु० ४०।३)॥१२३॥

मायायामण्॥१२४॥

मायायाम् —७।१।अण् —१।१।असुरस्येत्यनुवर्त्तते। पूर्वेण सामान्यतो यत् प्राप्तः स बाध्यते। षष्ठीसमर्थाद् असुरप्रातिपदिकात् स्वकीयायां मायायाम् अण् प्रत्ययो भवति। असुरस्येयम् आसुरी माया॥१२४॥

भाषार्थ—यहाँ 'असुरस्य' पद की अनुवृत्ति है। पूर्व सूत्र से सामान्यरूप से 'यत्' प्रत्यय प्राप्त है, यह उसका अपवाद है। षष्ठी समर्थ 'असुर' प्रातिपदिक से स्वकीय माया अभिधेय हो तो 'अण्' प्रत्यय होता है। जैसे—असुरस्ये यम्=आसुरी माया॥१२४॥

तद्वानासामुपधानो मन्त्र इतीष्टकासु लुक् च मतोः॥१२५॥

तद्वान्—१।१ आसाम्—६।३ उपधानः—१।१ मन्त्रः—१।१ इति—[अ०प०]। इष्टकासु—७।३। लुक्—१।१। च-[अ०प०]। मतोः—६।१। तद्वान् इति निर्देशादेव षष्ठीसमर्थत्वमाश्रीयते। उपधीयते आधीयतेऽग्निर्येन स

उपधानो मन्त्रः। उपधान-मन्त्रसमानाधिकरणात् तद्वान् इति मतुबन्तात् प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् आसामिति षष्ठ्यर्थवाचिकास्विष्टकास्वभिधेयासु यत् प्रत्ययो भवति। प्रकृत्यन्तर्गतस्य मतोश्च लुक्। वर्चःशब्दोऽस्मिन्नस्ति स वर्चस्वान् मन्त्रः। वर्चस्वान् उपधानो मन्त्र आसामिष्टकानामिति विगृह्य वर्चस्वान् शब्दे यो मतुप् स लुप्यते। वर्चस्या इष्टकाः। सहस्याः। तेजस्याः। उपधान इति किम्? वर्चस्वान् उपस्थान मन्त्र आसामित्यत्र मा भूत्। मन्त्र इति किम्? स्रुङ्मानुपधानो हस्त आसामिति मा भूत्। इष्टकास्विति किम्? वर्चस्वानुपधानो मन्त्र एषां कपालानामित्यत्र मा भूत्॥ १२५॥

भाषार्थ—'तद्वान्' इस सूत्रनिर्देश से यहाँ षष्ठी समर्थविभक्ति का ग्रहण है। उपधान मन्त्र वह कहलाता है—जिससे अग्नि का यज्ञादि में आधान किया जाये। उपधान मन्त्र समानाधिकरण तद्वान्=मतुबन्त प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में इष्टका अभिधेय में 'यत्' प्रत्यय होता है और प्रकृत्यन्तर्गत 'मतुप्' प्रत्यय का लुक् हो जाता है। जैसे—'वर्चस्शब्दोऽस्मिन्नस्ति स वर्चस्वान् मन्त्रः। वर्चस्वान् उपधानो मन्त्र आसामिष्टकानाम्' ऐसा विग्रह करके और 'यत्' प्रत्यय के परे 'मतुप्' का लुक् होने पर उदाहरण होगा—वर्चस्या इष्टकाः। सहस्याः। तेजस्याः।

यहाँ 'उपधान' का ग्रहण इसलिये है कि—वर्चस्वान् उपस्थान मन्त्र आसाम् यहाँ प्रत्यय न हो।

'मन्त्र' का ग्रहण इसलिए है कि—'स्रुङ्मान् उपधानो हस्त आसाम्' यहाँ प्रत्यय न हो। और 'इष्टका' ग्रहण इसलिए है कि—'वर्चस्वानुपधानो मन्त्र एषां कपालानाम्' यहाँ प्रत्यय न हो॥ १२५॥

अश्विमानण्॥ १२६॥

पूर्वसूत्रं सर्वमनुवर्त्तते। अश्विमान् —१।१। अण् —१।१। उपधान-मन्त्रसमानाधिकरणात् प्रथमासमर्थान् मतुबन्ताद् अश्विमान्प्रातिपदिकाद् आसामिति षष्ठ्यर्थेष्विष्टकास्वभिधेयास्वण् प्रत्ययो भवति। [प्रकृत्यन्तर्गतस्य मतोश्च लुक्।] पूर्वसूत्रेण यत् प्राप्तः स बाध्यते। अश्विशब्दो विद्यतेऽस्मिन् मन्त्रे सोऽश्विमान्। अश्विमान् उपधानो मन्त्र आसामिष्टकानामिति विगृह्य मतोर्लुक्। अश्विनीरुपदधाति। 'इनण्यनपत्य' इति प्रकृतिभावः॥ १२६॥

भाषार्थ—समस्त पूर्वसूत्र की यहाँ अनुवृत्ति है। पूर्वसूत्र से 'यत्' प्राप्त है, यह उसका अपवाद है। उपधान मन्त्र समानाधिकरण प्रथमा समर्थ मतुप् प्रत्ययान्त 'अश्विमत्' प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ इष्टका अभिधेय हो तो 'अण्' प्रत्यय होता है और प्रकृत्यन्तर्गत 'मतुप्' प्रत्यय का लुक् हो जाता है। जैसे—'अश्विशब्दो विद्यतेऽस्मिन् मन्त्रे सोऽश्विमान्। अश्विमान् उपधान मन्त्र आसामिष्टकानाम्' ऐसा विग्रह करके और मतुप् का लुक् करने पर उदाहरण बनेगा—आश्विनीरुपदधाति। इस प्रयोग में 'अश्विन्' शब्द के टि भाग का 'इनण्यनपत्ये' (अ० ६।४।१६४) सूत्र से प्रकृति भाव होने से लोप नहीं हुआ है॥ १२६॥

वयस्यासु मूर्ध्नो मतुप्॥ १२७॥

वयस्यासु —७।३।मूर्ध्नः —५।१।मतुप् —१।१।वयः शब्दोऽस्मिन् वर्त्तत इति वयस्वान् मन्त्रः। वयस्वान् उपधानो मन्त्र आसामिष्टकानामिति विग्रह्य पूर्वसूत्रेण यत्। वयस्या इष्टकास्तासु। पूर्वसूत्रवद् अत्रापि सर्वमनुवर्त्तते। उपधानमन्त्रसमानाधिकरणात् प्रथमासमर्थान् मतुबन्तान्मूर्धन्प्रातिपदिकाद् वयस्यास्विष्टका स्वभिधेयासु मतुप् प्रत्ययो भवति।[प्रकृत्यन्तर्गतस्य मतोश्च लुक् भवति।] मूर्धन् शब्दोऽस्मिन् वर्त्तत इति मूर्धन्वान् मन्त्रः। मूर्धन्वान् उपधानो मन्त्र आसां वयस्यानामिष्टकानामिति विगृह्य मूर्धन्वच्छब्दस्थस्य मतुपो लुक्। पश्चाद् यतोऽपवादो द्वितीयो मतुप्१ मूर्धन्वत्य इष्टकाः। वयस्यास्विति किम्-यस्मिन् मन्त्रे वयःशब्दो मूर्धन्-शब्दश्च वर्त्तते तत्रैव यथा स्यादन्यत्र माभूत्॥ १२७॥

भाषार्थ—वयस् शब्द जिस मन्त्र में हो उसे 'वयस्वान् मन्त्र' कहते हैं और 'वयस्वान् उपधानो मन्त्र आसामिष्टकानाम्' ऐसा विग्रह करके पूर्वसूत्र से यत् प्रत्यय करने से और मतुप् प्रत्यय का लुक् होने से 'वयस्या' शब्द सिद्ध होता है। पूर्वसूत्र की भाँति यहाँ भी 'उपधानो मन्त्र' इत्यादि पदों की अनुवृत्ति है। उपधान-मन्त्र समानाधिकरण प्रथमा समर्थ मतुबन्त 'मूर्धन्' प्रातिपदिक से वयस्या (इष्टका) अभिधेय हो तो 'मतुप्' प्रत्यय होता है और प्रकृत्यन्तर्गत 'मतुप्' प्रत्यय का लुक् हो जाता है। जैसे—मूर्धन् शब्दोऽस्मिन् वर्त्तत इति मूर्धन्वान् मन्त्रः। 'मूर्धन्वान् उपधानो मन्त्र आसां वयस्यानामिष्टकानाम्' ऐसा विग्रह करके 'मूर्धन्वत्' शब्द के मतुप् का लुक् और यत् प्रत्यय का अपवादरूप द्वितीय मतुप् प्रत्यय होता है। मूर्धन्वत्य इष्टकाः।

वयस्यास्विति किम्—जिस मन्त्र में वयस् और मूर्धन् दोनों शब्दों का पाठ हो, वहीं प्रत्ययविधि है, अन्यत्र न होवे॥ १२७॥

मत्वर्थे मासतन्वोः॥ १२८॥

पूर्वं सर्वं निवृत्तम्। छन्दसि यदित्यनुवर्त्तते। मत्वर्थे—७।१ मासतन्वोः—७।२ मत्वर्थः—'तदस्यास्त्यस्मिन्निति। मासतन्वोरिति प्रत्ययार्थविशेषण-मन्यपदार्थः। प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकान्मत्वर्थे मासतन्वोरन्यपदार्थयोः सतोर्यत् प्रत्ययो भवति, छन्दसि=वैदिकप्रयोगविषये। नभांसि विद्यन्तेऽस्मिन् नभस्यो मासः। तपस्यः। सहस्यः। तन्वां खलु—तेजो विद्यतेऽस्यां तेजस्या तनूः। ओजस्या तनूः।

मासतन्वोरिति किम्—चूताः सन्त्यस्मिन् वने तच्चूतिवनम्। तपस्वी पुरुषः।

वा०—मासतन्वोरित्यनन्तरार्थे वा॥ १॥

वा शब्दोऽत्र समुच्चयार्थे, समीपेऽन्यपदार्थे कार्यमिदं तथा स्यात्। मध्वस्मिन्नस्ति, मध्वस्मिन्ननन्तरमिति वा मधव्यः। माधवः। परस्य सूत्रस्येमे

उदाहरणे दत्ते, तेन ज्ञायते, द्वयोः सूत्रयोरुपरीदं वार्त्तिकम्।

वा०—लुगकारेकाररेफाश्च प्रत्ययाः॥ २॥

मासतन्वोर्विहितस्य प्रत्ययस्य लुक्, अकार, इकार, रेफ, इत्येते प्रत्ययाश्च भवन्ति। लुक्-मधुः। नभः। तपः। मासानां नामान्येतानि। अकारः—ईषः। ऊर्जः। इकारः—शुचिः। तनूविशेषणमेतत्। रेफ—शुक्रः॥ १२८॥

भाषार्थ—यहाँ पूर्व सूत्र में अनुवृत्त पदों की निवृत्ति हो गई है। केवल 'छन्दसि' और 'यत्' पदों की अनुवृत्ति है। 'मत्वर्थ' से अभिप्राय 'तदस्यास्त्यस्मिन्०' सूत्र में निर्दिष्ट अर्थ से है। और 'मासतन्वोः' पद प्रत्ययार्थ का विशेषण है। प्रथमा समर्थ प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में मास और तनूवाच्य हों तो, वैदिक प्रयोग विषय में 'यत्' प्रत्यय होता है। जैसे—नभांसि विद्यन्तेऽस्मिन् नभस्यो मासः। तपस्यः। सहस्यः। तनू वाच्य में—तेजो विद्यतेऽस्यां तेजस्या तनूः। ओजस्या तनूः। मासतन्वोरिति किम्—चूताः सन्त्यस्मिन् तच्चूतिवनम्। तपस्वी पुरुषः।

वा०—मासतन्वोरित्यनन्तरार्थे वा॥ १॥

वा शब्द का यहाँ समुच्चय अर्थ है। जिससे यह प्रत्ययविधि समीपवाले अन्य पदार्थ में हो। मध्वस्मिन्नस्ति, मध्वस्मिन्ननन्तरमिति वा मधव्यः। माधवः। इससे अगले सूत्र 'मधोरञ् च' (४।४।१२९) के ये उदाहरण देने से यह स्पष्ट होता है कि यह वार्त्तिक दोनों सूत्रों से सम्बद्ध है।

वा०—लुगकारेकाररेफाश्च प्रत्ययाः॥ २॥

मास और तनू अभिधेय में विहित प्रत्यय का वैदिक प्रयोग विषय में लुक् हो जाता है और अकार, इकार तथा रेफ ये प्रत्यय होते हैं। जैसे—लुक्—मधुः। नभः। तपः। ये सब मासों के नाम हैं, अकार—ईषः। ऊर्जः। इकारः—शुचिः। यह तनू का विशेषण है। रेफ—शुक्रः॥ १२८॥

मधोरञ् च॥ १२९॥

मधोः—५।१। अञ्—१।१। च-[अ०प०]। प्रथमासमर्थान्मत्वर्थीयान्मधुप्रातिपदिकान्मासतन्वोरन्यपदार्थयोरञ् प्रत्ययो भवति, चकाराद् यच्च। मधु=मधुरगुणा अस्यां सन्ति माध्वी तनूः। मधव्या तनूः। मधुस्तनूः। पूर्वस्मिन् सूत्रे वार्त्तिकोपसंख्यानाल्लुगपि भवति। [मासे—माधवो मासः। मधव्यः। मधुः।]

इदानीन्तनेषु मुद्रितपुस्तकेषु काशिकादिव्याख्यानेषु च मधोर्ञ चेति सूत्रं सर्वत्र वर्त्तते। जयादित्येनेदृशमेव व्याख्यातम्। तत्सर्वत्र भ्रमादेव केनापि लिखितम्। कुतः। अञि सति ङीब् भवति, अन्यथा स्त्रियां टाबेव स्यात्। षष्ठाध्यायस्य चतुर्थपादान्ते माध्वीति निपातनं कृतं, नैव तत्र स्त्रियां ङीप् निपातितः। किन्तु यणादेश एव तत्र निपातनम्॥ १२९॥

भाषार्थ—प्रथमासमर्थ मधु प्रातिपदिक से मत्वर्थ में मास और तनू अभिधेय में 'अञ्' प्रत्यय तथा चकार से 'यत्' प्रत्यय होते हैं।

जैसे—मधु=मधुरगुणा अस्यां सन्ति माध्वी तनूः। यत्—मधव्या तनूः। मधुस्तनूः। इस प्रयोग में पूर्वसूत्र में वार्त्तिकोपसंख्यान करने से प्रत्यय का लुक् भी होता है। मास अभिधेय में—माधवो मासः। मधव्यः। मधुः।

वर्त्तमान में मुद्रित पुस्तकों में तथा व्याख्याग्रन्थ काशिकादि में 'मधोर्ञ च' सूत्र का पाठ मिलता है। काशिकाकार जयादित्य ने भी ऐसा ही सूत्र मानकर व्याख्या की है। किन्तु यह सूत्र का अपपाठ भ्रमवश हो गया है। क्योंकि 'अञ्' और 'ञ' प्रत्ययान्त प्रयोगों में स्त्रीलिङ्ग में अन्तर हो जाता है। अञ् प्रत्ययान्त से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय होगा और ञ प्रत्ययान्त से टाप्। और इसका निर्णय करने के लिये षष्ठाध्याय के चतुर्थ पाद का अन्तिम सूत्र 'ऋत्व्यः वास्त्व०' (६।४।१७५) द्रष्टव्य हैं। उस सूत्र में 'माध्वी' प्रयोग में निपातन से यणादेश ही किया है ङीप् प्रत्यय नहीं। और जो न्यासकार ने 'माध्वी' निपातन में 'तस्येदम्' (४।३।११९) सूत्र से अण् माना है, वह भी चिन्त्य है। क्योंकि 'भवे छन्दसि' सूत्र पर यह लिखा है कि यह अधिकार अणादि और पादि प्रत्ययों का अपवाद है॥१२९॥

ओजसोऽहनि यत्खौ॥१३०॥

मत्वर्थ इत्यनुवर्त्तते। ओजसः—५।१। अहनि—७।१। यत्खौ—१।२। अहनीति प्रत्ययार्थः। प्रथमासमर्थाद् ओजसुप्रातिपदिकान् मत्वर्थेऽहनीत्यन्यपदार्थे यत्खौ भवतः। ओजोऽस्मिन् वर्त्तत इति-ओजस्यमहः। ओजसीनमहः॥१३०॥

भाषार्थ—यहाँ 'मत्वर्थ' की अनुवृत्ति है। 'अहनि' यह प्रत्ययार्थ है। प्रथमा समर्थ ओजस् प्रातिपदिक से मत्वर्थ में अहः=दिन वाच्य हो तो यत् और ख प्रत्यय होते हैं। जैसे—ओजोऽस्मिन् वर्त्तत इति ओजस्यमहः। ओजसीनमहः॥१३०॥

वेशोयशआदेर्भगाद् यल्॥१३१॥

मत्वर्थ इत्यनुवर्त्तते। वेशो यश आदेः-५।१। भगात्-५।१। यल्-१।१। वेशोयशसी शब्दावादी यस्य तस्मात् प्रथमासमर्थाद् वेशोयशादेर्भगान्तात् प्रातिपदिकान्मत्वर्थे यल् प्रत्ययो भवति। वेशो भगो विद्यतेऽस्मिन् वेशोभग्यः। यशोभग्यः॥१३१॥

भाषार्थ—यहाँ मत्वर्थ की अनुवृत्ति है। वेशस् और यशस् आदि में हैं जिसके उस प्रथमासमर्थ भग शब्दान्त प्रातिपदिक से मत्वर्थ में 'यल्' प्रत्यय होता है। जैसे—वेशोभगो विद्यतेऽस्मिन् वेशोभग्यः। यशोभग्यः॥१३१॥

ख च॥१३२॥

वेशो यश आदेर्भगादित्यनुवर्त्तते। ख—१।१। च—[अ०प०]। खेति लुप्तविभक्तिको निर्देशः। वेशोयश आदेर्भगान्तात् प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकान्मत्वर्थे ख प्रत्ययो भवति। वेशो भगो विद्यतेऽस्य वेशोभगीनः। यशोभगीनः। पृथग् योग उत्तरार्थः॥१३२॥

भाषार्थ—पूर्वसूत्र से 'वेशोयशआदेर्भगात्' पद की यहाँ अनुवृत्ति है। सूत्र में 'ख' पद में विभक्ति का लोप करके निर्देश किया गया है। वेशस् और यशस्

जिसके आदि में हैं, ऐसे प्रथमासमर्थ भगान्त प्रातिपदिक से मत्वर्थ में 'ख' प्रत्यय होता है। जैसे—वे शो भगो विद्यतेऽस्य वेशोभगीनः। यशोभगीनः। पृथक् योग करने का प्रयोजन उत्तरसूत्र के लिये है॥ १३२॥

पूर्वैः कृतमिनियौ च॥ १३३॥

मत्वर्थ इति निवृत्तम्। पूर्वैः—३।३। कृतम्—१।१। इनि-यौ—१।२। च-[अ०प०]। पूर्वैरिति निर्देशादेव तृतीयासमर्थत्वमाश्रीयते। पूर्वैरिति बहुवचननिर्देशात् प्राक्तनाः पुरुषा गृह्यन्ते। कृतमिति प्रत्ययार्थः। तृतीया-समर्थात् पूर्वप्रातिपदिकाद् कृतमित्यर्थ इनि, य, इत्येतौ प्रत्ययो भवतः। पूर्वैः कृतः पन्थाः-पूर्वी। पूर्व्यः॥ १३३॥

भाषार्थ—सूत्र में 'पूर्वैः' निर्देश से ही तृतीयासमर्थ विभक्ति का ग्रहण है। और 'पूर्वैः' पद में बहुवचन निर्देश से प्राचीन पुरुषों का ग्रहण किया गया है। 'कृतम्' इससे प्रत्ययार्थ का ग्रहण है। तृतीया समर्थ 'पूर्व' प्रातिपदिक से कृत अर्थ में इनि और य प्रत्यय होते हैं। जैसे—पूर्वैः कृतः पन्थाः पूर्वी। पूर्व्यः। [यहाँ चकार से ख प्रत्यय का भी ग्रहण है, इसीलिये इससे पूर्व सूत्र में 'पृथग्योग उत्तरार्थः' लिखा है। इससे 'पूर्वीणः' उदाहरण भी सिद्ध होता है] ॥ १३३॥

अद्भिः संस्कृतम्॥ १३४॥

अद्भिः —३।३। संस्कृतम् —१।१। तृतीयासमर्थाद् अप्प्रातिपदिकात् संस्कृतमित्यर्थे यत्प्रत्ययो भवति। अद्भिः संस्कृतम्—अप्यं हविः॥ १३४॥

सहस्रेण सम्मितौ घः॥ १३५॥

सहस्रेण —३।१। सम्मितौ —७।१। घः —१।१। सम्मितं तुल्यं सदृशमिति प्रत्ययार्थाः। तृतीयासमर्थात् सहस्रप्रातिपदिकात् सम्मितावभिधेयायां घः प्रत्ययो भवति। सहस्रेण सम्मितः सहस्रियोऽग्निः॥ १३५॥

भाषार्थ—सम्मित शब्द तुल्यादि के अर्थ में है और यह प्रत्ययार्थ है। तृतीया समर्थ सहस्र प्रातिपदिक से सम्मित=सदृश अर्थ में 'घ' प्रत्यय होता है। जैसे—सहस्रेण सम्मितः सहस्रियोऽग्निः॥ १३५॥

मतौ च॥ १३६॥

सहस्रेण घ इत्यनुवर्त्तते। मतौ —७।१। च -[अ०प०]। अर्थाद् विभक्तेर्विपरिणाम' इति सहस्रशब्दात् प्रथमा विपरिणम्यते। प्रथमासमर्थात् सहस्रप्रातिपदिकान्मत्वर्थे घः प्रत्ययो भवति। 'तपः सहस्राभ्यां विनीनी' 'अण् चेति' सूत्रद्वयेन सहस्रशब्दान्मत्वर्थे इनि, अण्, इति प्रत्ययौ प्राप्तौ, तौ छन्दसि मा भूतामिति बाध्येते। सहस्रमस्य विद्यत इति सहस्रियः। छन्दसीत्येकत्र कथनेन सर्वत्र विज्ञेयम्॥ १३६॥

भाषार्थ—पूर्वसूत्र से 'सहस्रेण घः' पदों की यहाँ अनुवृत्ति है। अर्थ से विभक्ति बदल जाती है, इस नियम से सहस्र शब्द यहाँ प्रथमान्त हो जाता है। प्रथमा समर्थ 'सहस्र' प्रातिपदिक से मत्वर्थ में 'घ' प्रत्यय होता है। यह सूत्र 'तपः

सहस्राभ्यां विनीनी' और 'अण् च' (अ० ५।२।१०२, १०३) इन सूत्रों से मत्वर्थ में प्राप्त इनि और अण् प्रत्ययों का वैदिक प्रयोगों में अपवाद होने से बाधक है। जैसे—सहस्रमस्य विद्यते सहस्रियः। 'छन्दसि' का एक वार कथन करने से इन सब सूत्रों में ग्रहण होता है॥१३६॥

सोममर्हति यः॥ १३७॥

सोमम् —२।१।अर्हति –[क्रि.प.] यः —१।१।निर्देशादेव द्वितीया-समर्थविभक्तिराश्रीयते। द्वितीयासमर्थात् सोमप्रातिपदिकाद् अर्हतीत्यस्य कर्त्तरि यः प्रत्ययो भवति। सोममर्हति सोम्यः। य-यतोः स्वरभेदः। अतः प्रत्ययान्तरविधानम्॥ १३७॥

भाषार्थ—सूत्रनिर्देश से ही यहाँ द्वितीया समर्थ विभक्ति का ग्रहण किया गया है। द्वितीया समर्थ 'सोम' प्रातिपदिक से अर्हति=योग्यता रखनेवाले (समर्थ) कर्त्ता के वाच्य में 'य' प्रत्यय होता है। जैसे—सोममर्हति सोम्यः॥ य और यत् प्रत्ययों में स्वर का भेद है, अतः प्रत्ययान्तर का विधान किया है॥१३७॥

मये च॥ १३८॥

सोमं य इत्यनुवर्त्तते। मये —७।१। च —[अ०प०] मय इति मयडर्थो लक्ष्यते। आगत-विकार-अवयव-प्रकृता मयडर्थाः। सोमशब्दाद् यथायोगं समर्थ विभक्तिर्विपरिणम्यते। [सोमप्रातिपदिकाद् यथायोगं समर्थविभक्ति-योगान्मयडर्थे यः प्रत्ययो भवति।] सोमस्य विकारोऽवयवो वा सोम्यः। सोमादागतं सोम्यम्। प्रकृतः सोमः सोम्यः। इति सामान्येन मयडर्थे यः॥ १३८॥

भाषार्थ—पूर्वसूत्र से 'सोमं यः' पदों की अनुवृत्ति है। यहाँ 'मये' पद से 'मयडर्थ' का ग्रहण है। 'मयट्' प्रत्यय के आगत, विकार, अवयव और प्रकृत अर्थ हैं। सोम शब्द से मयडर्थ के अनुसार समर्थ विभक्ति का परिवर्त्तन हो जाता है। [जिन-जिन अर्थों में जिस-जिस समर्थ विभक्ति से 'मयट्' प्रत्यय का विधान किया है, उन्हीं समर्थ विभक्तियों से 'सोम' प्रातिपदिक से 'मयट्' प्रत्यय के अर्थों में 'य' प्रत्यय होता है।] जैसे—सोमस्य* विकारोऽवयवो वा सोम्यः। सोमादागतम्=सोम्यम्। प्रकृतः सोमः सोम्यः। इस प्रकार इस सूत्र में सामान्य रूप में मयडर्थ में 'य' प्रत्यय का विधान किया गया है॥१३८॥

मधोः॥ १३९॥

मय इत्यनुवर्त्तते। मधोः —५।१। मधुप्रातिपदिकात् [यथायोगं समर्थ-विभक्तियोगात्] मयडर्थे यत् प्रत्ययो भवति। मधोर्विकारोऽवयवो वा मधव्यः। मधोरागतं मधव्यम्॥ १३९॥

भाषार्थ—मधु प्रातिपदिक से 'मयट्' प्रत्यय के अर्थों में यथायोग समर्थ

---

* विकारावयवयोरर्थयोः षष्ठी, प्रकृतवचने प्रथमा, आगतार्थे च पंचमी समर्थविभक्तिः। तथा च सूत्राणि—मयड् वैतयोर्भाषायाम्० (४।३।१४०), तत् प्रकृतवचने मयट् (५।४।२१), मयट् च (४।३।८२)। —अनुवादकः

विभक्ति से 'यत्' प्रत्यय होता है। जैसे—मधोर्विकारोऽवयवो वा मधव्य:। मधोरागतं मधव्यम्॥ १३९॥

वसो: समूहे च॥ १४०॥

[वसो:—५।१। समूहे—७।१। च—अ०प०] चकारग्रहणान्मय इत्यनुवर्त्तते। वसुप्रातिपदिकात् समूहे मयडर्थे च यत् प्रत्ययो भवति। यथायोगं समर्थविभक्तिराश्रयणीया। वसो: समूहो विकारोऽवयवादिर्वा वसव्य:।

वा०—अक्षरसमूहे छन्दस उपसंख्यानम्॥ १॥

छन्द: प्रातिपदिकादक्षरसमूहे यत्प्रत्ययो यथा स्यात्। ओश्रावयेति चतुरक्षरम्। अस्तु श्रौषडिति चतुरक्षरम्। ये यजामह इति पञ्चाक्षरम्। यजेति द्व्यक्षरम्। द्व्यक्षरो वषट्कार:। एष वै सप्तदशाक्षरश्छन्दस्य: प्रजापतिर्यज्ञमनुविहित:। अत्र छन्दस्यशब्देन सप्तदशाक्षराणि गणितानि॥ १॥

वा०—छन्दसि बहुभिर्वसव्यैरुपसंख्यानम्॥ २॥

हस्तौ पृणस्व बहुभिर्वसव्यै:। वसव्यैरिति वसुप्रातिपदिकात् स्वार्थे यदित्युपसंख्यातं वार्त्तिकेन॥ १४०॥

भाषार्थ—चकार ग्रहण से मय (मयड्) की अनुवृत्ति आ रही है। वसु प्रातिपदिक से समूह और मयट्प्रत्यय के अर्थों में यत् प्रत्यय होता है। यथायोग समर्थविभक्ति का आश्रय कर लेना चाहिए। वसो: समूहो विकारोऽवयवादिर्वा वसव्य:।

वा०—अक्षरसमूहे छन्दस उपसंख्यानम्॥ १॥

छन्द: प्रातिपदिक से अक्षरसमूह अर्थ में यत् प्रत्यय का विधान करना चाहिए। 'ओश्रावय' यह और 'अस्तु श्रौषट्' ये दोनों चार-चार अक्षरों के समूह हैं। ये यजामहे यह पञ्चाक्षरीय समूह है। 'यज' यह द्व्यक्षरात्मक है। 'वषट्' (वषट्कार) भी दो अक्षरोंवाला है। यह सत्रह अक्षरों का समूह छन्दस्य कहाता है। यह (छन्दस्य) यज्ञ में प्रजापति के दृष्ट होने का साधनरूप है। यहाँ छन्दस्य शब्द से सत्रह अक्षरों की गणना का ग्रहण किया जाता है।

वा०—छन्दसि बहुभिर्वसव्यैरुपसंख्यानम्॥ २॥

इस वार्त्तिक से छन्द में (वेद में) वसुप्रतिपदिक से स्वार्थ में यत् प्रत्यय का विधान किया जाना चाहिए। हस्तौ पृणस्व बहुभिर्वसव्यै। वसव्यै: पद में यत् प्रत्यय है॥ १४०॥

नक्षत्राद् घ:॥ १४१॥

समूह इति नानुवर्त्तते। नक्षत्रात् —५।१। घ: —१।१। नक्षत्रप्रातिपदिकात् स्वार्थे घ: प्रत्ययो भवति। नक्षत्रियेभ्य: स्वाहा॥ १४१॥

भाषार्थ—'नक्षत्र' प्रातिपदिक से स्वार्थ में यत् प्रत्यय होता है जैसे—नक्षत्रियेभ्य: स्वाहा॥ १४१॥

सर्वदेवात् तातिल्॥ १४२॥

सर्वदेवात् —५।१। तातिल् —१।१। सर्व, देव, इत्येताभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां स्वार्थे तातिल् प्रत्ययो भवति। लकारः स्वरार्थः। सर्वतातिः। देवतातिः॥ १४२॥

भाषार्थ—वैदिक प्रयोग विषय में सर्व और देव प्रातिपदिकों से स्वार्थ में 'तातिल्' प्रत्यय होता है। प्रत्यय में लकार स्वर के लिए है। जैसे—सर्वतातिः। देवतातिः॥ १४२॥

शिवशमरिष्टस्य करे॥ १४३॥

तातिल् इत्यनुवर्त्तते। शिवशमरिष्टस्य —६।१ करे —७।१। अत्र निर्देशादेव षष्ठीसमर्थत्वम्। करोतीति करः। शिव, शम्, अरिष्ट, इत्येतेभ्यः षष्ठीसमर्थेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः कर इत्यर्थे तातिल् प्रत्ययो भवति। शिवं करोतीति शिवतातिः। शंतातिः। अरिष्टतातिः॥ १४३॥

भाषार्थ—पूर्वसूत्र से 'तातिल्' प्रत्यय की अनुवृत्ति है। और सूत्र निर्देश से ही यहाँ षष्ठी समर्थ विभषित का ग्रहण है। 'करोतीति करः' [यह प्रत्ययार्थ है]। शिव, शम्, अरिष्ट, इन षष्ठी समर्थ प्रातिपदिकों से कर (करने) अर्थ में 'तातिल्'-प्रत्यय होता है। जैसे—शिवं करोतीति शिवतातिः। शन्तातिः। अरिष्टतातिः॥ १४३॥

भावे च॥ १४४॥

शिवादयोऽनुवर्त्तन्ते तातिल् इति च। भावे —७।१। च —[अ०प०]। शिवादिभ्यः षष्ठीसमर्थेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो भावे तातिल् प्रत्ययो भवति। शिवस्य भावः शिवतातिः। शंतातिः। अरिष्टतातिः। अस्मिन् सूत्रे चकार इत्यर्थे समाप्तिं सूचयति॥ १४४॥

इति चतुर्थाध्यायस्य चतुर्थः पादोऽध्यायश्च समाप्तः॥

[इति श्रीमत् परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां श्रीयुतविरजानन्द सरस्वतीस्वामिनां शिष्येण श्रीमद्-दयानन्द-सरस्वती-स्वामिना प्रणीतेऽष्टाध्यायी-भाष्ये चतुर्थोऽध्यायः।]

भाषार्थ—इस सूत्र में 'शिवादि' तथा 'तातिल्' की अनुवृत्ति है। षष्ठी समर्थ शिव, शम् तथा अरिष्ट प्रतिपदिकों से वैदिक प्रयोग विषय में भाव अर्थ में तातिल् प्रत्यय होता है। जैसे—शिवस्य भावः शिवतातिः। शन्तातिः। अरिष्टतातिः। इस सूत्र में चकार इति (समाप्ति) अर्थ में है। और यह अध्याय की समाप्ति का सूचक है॥ १४४॥

यह चतुर्थ अध्याय का चतुर्थपाद और अध्याय समाप्त हुआ॥

इत्युत्तरप्रदेशान्तर्गत—गाजियाबाद—मण्डले फजलगढ—नाम्नि ग्रामे लब्धजन्म श्रील—शिवचरणात्मजेन, झज्जर-गुरुकुलेऽधीतविद्येन तत्रभवता श्रीयुतस्वामि ओमानन्दसरस्वतीनामन्तेवासिना दयानन्द-सन्देश—सम्पादकेन राजवीरशास्त्रिणा महर्षिपाणिनिकृताया अष्टाध्याय्याश्चतुर्थाध्यायस्य दयानन्दसरस्वतीकृत-संस्कृतभाष्य-स्यार्य-भाषायां व्याख्यातः चतुर्थाध्यायस्तृतीयभागश्चायं समाप्तिमगात्॥

अष्टाध्यायी की पाण्डुलिपि का प्रथम पृष्ठ

णेर्लोपः सार्वधातुकत्वाच्छपावर्धयन्त्विति प्राप्ते। उपत्येपाम शरणां बहुलमम्। अत्र सा

र्वधातुकत्वाल्लिङः सलोपः। आर्द्धधातुकत्वाद्भुमास्थेति स्या धातोरेकारादेशः॥ १९॥

इति तृतीयाध्यायस्य चतुर्थः पादोऽध्यायश्च समाप्तः॥ ३॥ अथ चतुर्थः॥

ङ्याप्प्रातिपदिकात्॥ १॥

ङ्याप्प्रातिपदिकात्। प॰ १। ङी च आप् च प्रातिपदिकानि च तेषां समाहारो ङ्याप्प्रातिप

दिकम्। तस्मात्। समाहारद्वन्द्वः। निरनुबन्धकग्रहणे सानुबन्धकानां ग्रहणं भवतीति

ङीन् ङीष् ङीनां सामान्येन ग्रहणम्। तथा टाप् डाप् चापामादित्यनेन। अधिकारसूत्रमि

दम्। आ पंचमाध्यायपरिसमाप्तेर्ङ्याप्प्रातिपदिकादिति प्रकृतेरधिकारः। प्रत्ययाधिका

रस्तु कृत एव। क एष पर्यन्ते पुंस्त्वादि पृष्ठा ङ्याप्प्रातिपदिकात् प्रत्यया विधास्यन्ते। धातो

स्तव्यदादयः प्रत्यया विधीयन्ते धात्वधिकारे समाप्ते शिष्टाः प्रत्ययाः प्रातिपदिकादेव भवि

ष्यन्ति पुनः प्रातिपदिकाधिकारस्यैतत् प्रयोजनम्। भा॰। बहुच्छत्रावर्णा स्वरलक्षणेन

र्हि प्रत्ययविधौ तत्स्थं प्रत्ययार्थं ङ्याप्प्रातिपदिकग्रहणं क्रियते। बहुत्रा अवहुत्रा अवैणी

न्तात्। अव इति। एतानि ङ्याप्प्रातिपदिकविशेषणानि यथा स्युः॥ यद्यत्र प्रातिपदिकग्र

हणं न क्रियेत तर्हि समर्थानां प्रथमाद्वेति वक्ष्यमाणस्त्रेण समर्थविशेषणानि स्युः। सत्र

अष्टाध्यायी की पाण्डुलिपि का अन्तिम पृष्ठ

समूह इति नानुवर्त्तते। नक्षत्रात्। प॰ १। घः। १।१। नक्षत्रप्रातिपदिकात्स्वार्थे घः

प्रत्ययो भवति। नक्षत्रियेभ्यः स्वाहा॥ १४१॥ सर्वदेवात्तातिल्॥ १४२॥

सर्वदेवात्। प॰ १। तातिल्। १।१। सर्व, देव, इत्येताभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां स्वार्थे ता

स्वार्थे

तिल् प्रत्ययो भवति। लकारः स्वार्थः। सर्वतातिः। देवतातिः॥ १४२॥ शिवशमरिष्टस्य करे॥ १४३॥

तातिलित्यनुवर्त्तते

शिवशमरिष्टस्य। ६।१। करे। ७।१। अत्र निर्देशादेव षष्ठीसमर्थत्वम्। करोती

ति करः। शिव, शम, अरिष्ट, इत्येतेभ्यः षष्ठीसमर्थेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः कर इत्य

र्थे तातिल्प्रत्ययो भवति। शिवं करोतीति शिवतातिः। शंतातिः। अरिष्टतातिः॥ १४३॥

तातिलिति भावे च॥ १४४॥

शिवादयोऽनुवर्त्तन्ते। भावे। ७।१। च। शिवादिभ्यः षष्ठीसमर्थेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो

भावे तातिल्प्रत्ययो भवति। शिवस्य भावः शिवतातिः। शंतातिः। अरिष्टतातिः।

अस्मिन्सूत्रे चकार इत्यर्थे समाप्तिं दर्शयति॥ १४४॥

इति चतुर्थाध्यायस्य चतुर्थः पादोऽध्यायश्च समाप्तः॥